ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २८

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

श्री आर्यरक्षितस्थविरविरचित

अनुयोगद्वारसूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा ☐
उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व० स्वामी श्रीब्रजलालजी महाराज

आद्यसंयोजक—प्रधानसम्पादक ☐
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक ☐
उपाध्याय श्री केवलमुनिजी

सम्पादक ☐
देवकुमार जैन

मुख्यसम्पादक ☐
पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्रकाशक ☐
श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर (राजस्थान)

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fourth Upānga

ANUYOGADVĀRASŪTRA

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Upadhyaya Sri Kewal Muniji

Sub Editor
DevKumar Jain

Chief Editor
Pt. Shobhachandra Bharill

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २८

☐ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनिश्री कन्हैयालालजी 'कमल'
उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनिश्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण संवत् २५१३
वि. सं. २०४४
ई. सन् १९८७

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन-समिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible] /-

Jinagam Granthmala Publication No. 28

☐ **Direction**
Sadhwi Umravkunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharill

☐ **Managing Editor**
Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**
Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2513
Vikram Samvat 2044; July, 1987

☐ **Publisher**
Sri Agam Prakashan Samiti,
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
Pin 305 901

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price : [illegible] 80/-**

प्रकाशकीय

अनुयोगद्वारसूत्र जैन आगमो मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमे प्रतिपादित विषय अन्य आगमों मे प्ररूपित विषयो से बहुत अशो मे भिन्न हैं, अतएव विशिष्ट जिज्ञासु जनो के लिए इसका अध्ययन और मनन भी विशेष उपयोगी है। प्रमोद का विषय है कि आगमप्रकाशन की कडी मे समिति इस आगम को पाठको के कर-कमलो मे पहुँचा रही है।

आगमो की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना के लेखन मे साहित्यवाचस्पति विद्वद्वर उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म. का बहुमूल्य सहयोग समिति को प्रारभ से ही प्राप्त रहा है। सचाई यह है कि आपका सहयोग भी आगमप्रकाशन की त्वरित गति का एक प्रधान कारण रहा है। साधुसम्मेलन पूना मे सम्मिलित होने के लिए सुदूर विहार करते हुए भी आपने प्रस्तावनालेखन के हमारे अनुरोध को विस्मृत नही किया। शब्दो द्वारा आपका आभार व्यक्त करना सभव नही है। पूर्ण विश्वास है, आगे भी इसी प्रकार आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

प्रस्तुत आगम के अनुवादक-विवेचक श्रमणसघ के उपाध्याय विद्वान् श्रेष्ठ प्रवक्ता श्री केवल मुनिजी म. का नाम कौन नही जानता ? आपकी ओर से समिति को जो महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है, वह मुक्त कठ से सराहनीय ही नहीं स्तुत्य भी है। साथ ही जिन विद्वानो के सहयोग ने ग्रन्थ के प्रकाशन, सम्पादन, सशोधन मे सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के प्रति हम आभारी हैं।

अनुयोगद्वार आगमग्रन्थमाला का २८वा ग्रन्थ है। इसके पश्चात् जीवाजीवाभिगम, छेदसूत्र और चन्द्र-सूर्य-प्रज्ञप्ति का ही प्रकाशन शेष रहता है। कतिपय अनिवार्यताओ के कारण इनके प्रकाशन मे कुछ विलम्ब होने की सभावना है, तथापि प्रयास यही है कि यथासभव शीघ्र बत्तीसी का प्रकाशन पूरा किया जा सके। कतिपय आगमो के पत्राकार प्रकाशन की योजना भी समिति के समक्ष है। उसे भी कार्यान्वित करने का प्रयास चालू कर दिया गया है।

गत खाचरोद अधिवेशन मे निर्णय लिया गया है कि आगम बत्तीसी की उपलब्धि को अक्षुण्ण रखा जाए और जो आगम समाप्त हो जाएँ उनका पुनः मुद्रण कराया जाए। इस निर्णय के अनुसार आगमप्रकाशन का कार्य भविष्य मे भी निरन्तर चालू रहेगा और आगमप्रकाशन समिति स्थायी रूप ग्रहण करेगी। अतएव निवेदन है कि जिन सदस्य महानुभावो ने अपनी किश्तें अभी तक नही भेजी हैं, वे कृपया शीघ्र भेजकर इस पुनीत योजना के कार्यान्वयन मे पुण्य के भागी बनें।

रतनचंद मोदी	सायरमल चोरड़िया	चांदमल विनायकिया
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधानमत्री	मत्री

आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)

स्वकथ्य

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा भाषित और गणधरो आदि द्वारा संकलित अग, उपांग, आगमो से यह अनुयोगद्वारसूत्र अपनी वर्णनशैली और वर्ण्य विषय की दृष्टि से भिन्न है। समस्त आगमो के आशय और उसकी व्याख्या को समझने की कुंजी रूप होने से इसका अनूठा ही स्थान है। इसमें आध्यात्मिक-विचारों की विवेचना की अपेक्षा दार्शनिक दृष्टि प्रमुख होने से इसे उत्तरवर्ती जैन दार्शनिको के लिये मार्गनिर्देशक शास्त्र कहा जा सकता है। दूसरे शब्दो मे कहें तो शास्त्र-व्याख्याताओ के लिये यह सूत्र प्रशिक्षण (Training) देने वाला है।

अनुयोग का अर्थ

'अनुयोग' अनु और योग शब्दो का यौगिकरूप है। इसका सामान्य अर्थ है—शब्द का उसके अर्थ के साथ योग—सम्बन्ध जोडना। लेकिन प्रत्येक शब्द मूल मे एक होते हुए भी अनेकार्थक है। वे अर्थ उसमे गर्भित हैं। अत. यथाप्रसग शब्द और निश्चित अर्थ की सयोजना अनुयोग कहलाता है।

आगमों में अनुयोग की चर्चा

नन्दी और समवायाग सूत्र में जो आगमो का परिचय दिया है, उसमें आचाराग आदि आगमो के सख्येय अनुयोगद्वार हैं, यह उल्लेख है। स्थानांगसूत्र में द्रव्यानुयोग के दस प्रकार बताये हैं। भगवतीसूत्र मे अनुयोगद्वारसूत्रगत अनुयोगद्वार के चार मूल द्वारो मे से नयविचारणा का विस्तार से वर्णन किया है। इस सक्षिप्त सकेत से यह कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर के समय मे सूत्र की व्याख्या करने की जो विधा थी, उस सबका समावेश रूप—एक परिपक्वरूप अनुयोगद्वारसूत्र है।

अनुयोगद्वारसूत्र में स्वीकृत व्याख्यापद्धति का परिज्ञान तो पाठक स्वय इस शास्त्र के अध्ययन से कर लेंगे कि व्याख्येय शब्द का निक्षेप करके उसके अनेक अर्थों का निर्देश कर उस शब्द का प्रस्तुत मे कौन सा अर्थ ग्राह्य है, यह शैली अपनायी है। इसी शैली का अनुसरण वैदिक और बौद्ध-साहित्य मे किया गया है, जो अनेक ग्रथो को देखने से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु विस्तारभय से उस सबका यहाँ उल्लेख किया जाना संभव नही है।

अनुयोगद्वारसूत्र के कर्ता

इस सूत्र के कर्त्ता स्थविर आर्यरक्षित माने जाते हैं। यह इस आधार पर माना जाता है कि आर्य वज्र तक तो जिस किसी भी सूत्र का अनुयोग करना होता उसको चरणकरणानुयोग आदि चारों अनुयोग सम्बन्धी मानकर व्याख्या की जाती थी, परन्तु समयपरिवर्तन को लक्ष्य मे लेकर दीर्घद्रष्टा स्थविर आर्यरक्षित ने अनुयोग का पार्थक्य किया, तब से किसी भी सूत्र का सम्बन्ध चारो अनुयोगो मे से किसी एक अनुयोग से जोड़ कर अर्थ किया जाने लगा। इसीलिए इसके कर्त्ता स्थविर आर्यरक्षित माने जाते हैं। लेकिन आचारांग आदि आगमो के परिचय का जैसा पूर्व मे उल्लेख किया गया है, उससे स्पष्ट है कि इसके मूल उपदेष्टा श्रमण भगवान् महावीर हैं और उसी आधार से स्थविर आर्यरक्षित ने अनुयोगद्वारसूत्र का निर्यूहण (दोहन) किया। इसीलिए कर्त्ता के रूप में स्थविर आर्यरक्षित का पुण्य-स्मरण किया जाने लगा।

उपसंहार

स्वकथ्य का अंतिम चरण उपसंहार है। इसमें पूर्वोक्त संक्षिप्त विचारों का संक्षेप में दुहराना योग्य नहीं है। अतः सर्वप्रथम स्व. विद्वद्वर्य युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म. का एवं उनकी दूरदर्शी श्लाघनीय प्रतिभा का अभिनंदन करता हूँ कि उनकी प्रेरणा से आगम वाङ्मय सर्वजनसुलभ हो सका। मुझे हर्ष है कि समिति के माध्यम से प्रस्तुत अनुयोगद्वारसूत्र द्वारा इस प्रकाशन में सहयोग देने की आकांक्षा की पूर्ति का अवसर प्राप्त हुआ।

समिति के प्रबन्धकों को साधुवाद है कि स्वर्गीय युवाचार्यश्री द्वारा निर्धारित प्रणाली के अनुसार वे आगम-साहित्य के प्रकाशन में संलग्न हैं। वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के प्रति प्रमोदभाव व्यक्त करता हूँ कि वे अपनी विद्वत्ता को सुनियोजित कर आगमों को जनगम्य बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं।

अंत में मैं अपने सहयोगी श्री देवकुमारजी जैन की आत्मीयता का स्मरण करता हूँ कि इस जटिल माने-जाने वाले सूत्र को सुसंपादित करने एवं सुगम से सुगमतर बनाने में अपनी योग्यता, बुद्धि का पूरा-पूरा योग दिया है। उनके श्रम का सुफल है कि शास्त्रगत भावों को इतना स्पष्ट कर दिया कि वे सर्वजनहिताय सरल, सुबोध हो सके।

इसी संदर्भ में एक बात और स्पष्ट कर देता हूँ कि शास्त्रगत भावों को स्पष्ट करने में पूर्ण विवेक रखा है, फिर भी कहीं स्खलना हो गई हो तो पाठक क्षन्तव्य मानकर संशोधित और सूचित करने का लक्ष्य रखेंगे। किं बहुना !

अहमदनगर
१५-४-१९८७

—केवल मुनि

विषयानुक्रम

आवश्यकनिरूपण

श्रुतनिरूपण

स्कन्धनिरूपण

उपक्रमनिरूपण

आनुपूर्वीनिरूपण

नामाधिकार

प्रमाणाधिकार

वक्तव्यतानिरूपण

अर्थाधिकारनिरूपण

समवतारनिरूपण

निक्षेपाधिकार

अनुगमनिरूपण

नयनिरूपण

परिशिष्ट

अनुयोगद्वार : एक समीक्षात्मक अध्ययन

प्रस्तावना

अध्यात्म और विज्ञान

अतीत काल से ही मानवजीवन के साथ अध्यात्म और विज्ञान का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध रहा है। ये दोनों सत्य के अन्तस्तल को समुद्घाटित करने वाली दिव्य और भव्य दृष्टियाँ हैं। अध्यात्म आत्मा का विज्ञान है। वह आत्मा के शुद्ध और अशुद्ध स्वरूप का, बंध और मोक्ष का, शुभ और अशुभ परिणितियो का, ह्रास और विकास का गम्भीर व गहन विश्लेषण है तो विज्ञान भौतिक प्रकृति की गुरु गम्भीर ग्रन्थियो को सुलझाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। उसने मानव के तन, मन और इन्द्रियो के सरक्षण व सपोषण के लिए विविध आयाम उपस्थित किए हैं। जीवन की अखण्ड सत्ता के साथ दोनो का मधुर सम्बन्ध है। अध्यात्म जीवन की अन्तरग धारा का प्रतिनिधित्व करता है तो विज्ञान बहिरग धारा का नेतृत्व करता है।

अध्यात्म का विषय है—जीवन के अन्त करण, अन्तश्चैतन्य एव आत्मतत्त्व का विवेचन व विश्लेषण करना। आत्मा के विशोधन व ऊर्ध्वीकरण करने की प्रक्रिया प्रस्तुत करना। जीव और जगत्, आत्मा और परमात्मा, व्यक्ति और समाज प्रभृति के शाश्वत तथ्यपरक सत्य का दिग्दर्शन करना। जब कि विज्ञान का क्षेत्र है प्रकृति के अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक का प्रयोगात्मक अनुसन्धान करना। अध्यात्म योग है तो विज्ञान प्रयोग है। अध्यात्म मन वचन और काया की प्रशस्त शक्तियो को केन्द्रित कर मानव-चेतना को विकसित करने वाली निर्भय और निर्द्वन्द्व बनाने की दिव्य व भव्य दृष्टि प्रदान करता है। वह विवेक के तृतीय नेत्र को उद्घाटित कर काम और विकारो को भस्म करता है। जब कि विज्ञान नित्य नई भौतिक सुख-सुविधाओ को समुपलब्ध कराने मे अपूर्व सहयोग देता है। विज्ञान के फलस्वरूप ही मानव अनन्त आकाश मे पक्षियो की भाँति उडानें भरने लगा है, मछलियो की भाँति अनन्त सागर की गहराई मे जाने लगा है और पृथ्वी पर द्रुतगामी साधनो से गमन करने लगा है। विद्युत् के दिव्य चमत्कारो से कौन चमत्कृत नहीं है!

अध्यात्म अन्तर्मुख है तो विज्ञान बहिर्मुख है। अध्यात्म अन्तरग जीवन को सजाता है, संवारता है, तो विज्ञान बहिरग जीवन को विकसित करता है। बहिरग जीवन मे किसी भी प्रकार की विशृ खलता नहीं आये, द्वन्द्व समुत्पन्न न हो, इसलिए अन्तरग दृष्टि की आवश्यकता है एव अन्तरग जीवन को समाधियुक्त बनाने के लिए बहिरंग का सहयोग भी अपेक्षित है। बिना बहिरग सहयोग के अन्तरग जीवन विकसित नही हो सकता। मूलत. अध्यात्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नही हैं। उनमे किसी प्रकार का विरोध और द्वन्द्व नही है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं, जीवन की अखण्डता के लिए दोनो की अनिवार्य आवश्यकता है।

अध्यात्म का प्रतिनिधि आगम

जैन-आगम आध्यात्मिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले चिन्तन का अद्भुत व अनूठा सग्रह है, सकलन है। आगम शब्द बहुत ही पवित्र और व्यापक अर्थगरिमा को अपने-आप मे समेटे हुए है। स्थूल दृष्टि से भले ही आगम और ग्रन्थ पर्यायवाची शब्द रहे हो पर दोनो में गहरा अन्तर है। आगम 'सत्य शिव सुन्दर' की साक्षात् अनुभूति की अभिव्यक्ति है। वह अनन्त सत्य के द्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग तीर्थंकरो की विमल वाणी का सकलन-आकलन है। जबकि ग्रन्थो व पुस्तको के लिए यह निश्चित नियम नही है। वह राग-द्वेष के दलदल मे फँसे हुए विषय-कषाय की आग मे झुलसते हुए, विकार और वासनाओ से सत्रस्त व्यक्ति के विचारो का सग्रह भी हो सकता है। उसमे कमनीय कल्पना की ऊँची उडान भी हो सकती है पर वह केवल वाणी का विलास है, शब्दो का आडम्बर है, किन्तु उसमे अन्तरग की गहराई नही है।

जैन आगम मे सत्य का साक्षात् दर्शन है, जो अखण्ड है, सम्पूर्ण व समग्र मानवचेतना को सस्पर्श करता है। सत्य के साथ शिव का मधुर सम्बन्ध होने से वह सुन्दर ही नही, अतिसुन्दर है। वह आर्षवाणी तीर्थंकर या ऋषियों की वाणी है। यास्क ने ऋषि की परिभाषा करते हुए लिखा है—'जो सत्य का साक्षात् द्रष्टा है, वह ऋषि है'।[1] प्रत्येक साधक ऋषि नही बन सकता, ऋषि वह है जिसने तीक्ष्ण प्रज्ञा, तर्कशुद्ध ज्ञान से सत्य की स्पष्ट अनुभूति की है।[2] यही कारण है कि वेदो मे ऋषि को मत्रद्रष्टा कहा है। मत्रद्रष्टा का अर्थ है—साक्षात् सत्यानुभूति पर आधृत शिवत्व का प्रतिपादन करने वाला सर्वथा मौलिक ज्ञान। वह आत्मा पर आई हुई विभाव परिणतियो के कालुष्य को दूर कर केवलज्ञान और केवलदर्शन से स्व-स्वरूप को आलोकित करता है। जो यथार्थ सत्य का परिज्ञान करा सकता है, आत्मा का पूर्णतया परिबोध करा सके, जिससे आत्मा पर अनुशासन किया जा सके, वह आगम है। उसे दूसरे शब्दो मे शास्त्र और सूत्र भी कह सकते हैं।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य मे लिखा है—जिसके द्वारा यथार्थ सत्य रूप ज्ञेय का, आत्मा का परिबोध हो एव आत्मा का अनुशासन किया जा सके, वह शास्त्र है।[3] शास्त्र शब्द शास् धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—शासन, शिक्षण और उद्बोधन। जिस तत्त्वज्ञान से आत्मा अनुशासित हो, उद्बुद्ध हो, वह शास्त्र है। जिससे आत्मा जागृत होकर तप, क्षमा एव अहिंसा की साधना मे प्रवृत्त होती है, वह शास्त्र है। और जो केवल गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्न दशपूर्वी के द्वारा कहा गया है, वह सूत्र है।[4] दूसरे शब्दो मे जो ग्रन्थ प्रमाण से अल्प अर्थ की अपेक्षा महान्, बत्तीस दोषों से रहित, लक्षण तथा आठ गुणो से सम्पन्न होता हुआ सारवान् अनुयोगो से सहित, व्याकरणविहित, निपातो से रहित, अनिद्य और सर्वज्ञ कथित है, वह सूत्र है।[5]

---

१ ऋषिदर्शनात्। —निरुक्त २।११

२ साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवु। —निरुक्त १।२०

३ 'सासिज्जए तेण तहिं वा नेयमावावतो सत्थ'
टीका—शासु अनुशिष्टौ शास्यते ज्ञेयमात्मा वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वा शास्त्रम्। —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १३८४

४ सुत्त गणधरकधिद तहेव पत्तेयबुद्धकधिद च।
सुदकेवलिणा कधिद अभिण्णदसपुव्वि कधिद च॥ —मूलाचार, ५।८०

५ अप्पग्गथ महत्थ बत्तीसा दोसविरहिय ज च।
लक्खणजुत्त सुत्त अट्ठेहि गुणेहि उववेय।
अप्पक्खरमसदिद्ध च सारव विस्सओ मुह।
अत्थोभमणवज्ज च सुत्त सव्वण्णुभासिय॥ —आव निर्युक्ति, ८८०, ८८६

इस सन्दर्भ मे यह समझना आवश्यक है कि आगम कहो, शास्त्र कहो या सूत्र कहो, सभी का एक ही प्रयोजन है। वे प्राणियो के अन्तर्मानस को विशुद्ध बनाते हैं। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने कहा—जैसे जल वस्त्र की मलिनता का प्रक्षालन करके उसको उज्ज्वल बना देता है, वैसे ही शास्त्र भी मानव के अन्त करण मे स्थित काम, क्रोध आदि कालुष्य का प्रक्षालन करके उसे पवित्र और निर्मल बना देता है।[६] जिससे आत्मा का सम्यक् बोध हो, आत्मा अहिंसा सयम और तप साधना के द्वारा पवित्रता की ओर गति करे, वह तत्त्वज्ञान शास्त्र है, आगम है।

आगम भारतीय साहित्य की मूल्यवान् निधि है। डॉ हरमन जेकोबी, डॉ शुब्रिंग प्रभृति अनेक पाश्चात्य मूर्धन्य मनीषियो ने जैन-आगम साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन कर इस सत्य-तथ्य को स्वीकार किया है कि विश्व को अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद के द्वारा सर्वधर्म-समन्वय का पुनीत पाठ पढाने वाला यह सर्वश्रेष्ठतम साहित्य है।

आगम साहित्य बहुत ही विराट् और व्यापक है। समय-समय पर उसके वर्गीकरण किये गए है। प्रथम वर्गीकरण पूर्व और अग के रूप मे हुआ।[७] द्वितीय वर्गीकरण अगप्रविष्ट और अगबाह्य के रूप मे किया गया।[८] तृतीय वर्गीकरण आर्य रक्षित ने अनुयोगो के आधार पर किया है। उन्होने सम्पूर्ण आगम साहित्य को चार अनुयोगो मे बाँटा है।[९]

अनुयोग शब्द पर चिन्तन करते हुए प्राचीन साहित्य मे लिखा है—'अणुओयणमणुयोगो'—अनुयोजन को अनुयोग कहा है।[१०] 'अनुयोजन' यहाँ पर जोडने व सयुक्त करने के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। जिससे एक दूसरे को सम्बन्धित किया जा सके।[११] इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने लिखा है—जो भगवत् कथन से सयोजित करता है, वह 'अनुयोग' है। अभिधानराजेन्द्र कोष मे लिखा है—लघु-सूत्र के साथ महान्-अर्थ का योग करना अनुयोग है।[१२]

अनुयोग एक चिन्तन

अनुयोग शब्द 'अनु' और 'योग' के सयोग मे निर्मित हुआ है। अनु उपसर्ग है। यह अनुकूल अर्थवाचक है। सूत्र के साथ अनुकूल, अनुरूप या सुसगत सयोग अनुयोग है। बृहत्कल्प[१३] मे लिखा है कि अनु का अर्थ

---

६ मलिनस्य यथात्यन्त जल वस्त्रस्य शोधनम्।
अन्त करणरत्नस्य, तथा शास्त्र विदुर्बुधा ॥ —योगबिन्दु, प्रकरण २।९

७ समवायाग १४।१३६

८ अहवा त समासओ दुविह पण्णत्त त जहा—अगपविट्ठ अगबाहिर च। —नन्दी, सूत्र ४३

९ (क) आवश्यक निर्युक्ति, ३६३-३७७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य २२८४-२२९५
(ग) दशवैकालिक निर्युक्ति, ३ टी

१० "युज्यते सबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योग"

११. "अणुसूत्र महानर्थस्ततो महतोर्थस्याणुना सूत्रेण योगो अनुयोग"

१२. देखो 'अणुओग' शब्द, पृ. ३४०

१३ अणुणा जोगो अणुजोगो अणु पच्छाभावओ य थेवे य।
जम्हा पच्छाऽभिहिय सुत्त थोव च तेणाणु ॥ —बृहत्कल्प १, गा १९०

पश्चाद्भाव या स्तोक है। उस दृष्टि से अर्थ के पश्चात् जायमान या स्तोक सूत्र के साथ जो योग है, वह अनुयोग है। आचार्य मलयगिरि[१४] के अनुसार अर्थ के साथ सूत्र की जो अनुकूल योजना की जाती है, उसका नाम अनुयोग है। अथवा सूत्र का अपने अभिधेय मे जो योग होता है, वह अनुयोग है। यही बात आचार्य हरिभद्र,[१५] आचार्य अभयदेव,[१६] आचार्य शान्तिचन्द्र[१७] ने लिखी है। आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का भी यही अभिमत है।[१८]

जैन आगम साहित्य मे अनुयोग के विविध भेद-प्रभेद हैं। नन्दी मे आचार्य देववाचक ने अनुयोग के दो विभाग किये हैं। वहाँ पर दृष्टिवाद के परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका ये पाँच भेद किये गये हैं।[१९] उसमे 'अनुयोग' चतुर्थ है। अनुयोग के 'मूल प्रथमानुयोग' और 'गण्डिकानुयोग' ये दो भेद किए गये हैं।[२०]

मूल प्रथमानुयोग क्या है ? इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए आचार्य ने कहा—मूल प्रथमानुयोग मे अर्हन् भगवान् को सम्यक्त्वप्राप्ति के भव से पूर्वभव, देवलोकगमन, आयुष्य, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्यश्री, प्रव्रज्या, तप, केवलज्ञान की उत्पत्ति, तीर्थप्रवर्तन, शिष्य-समुदाय, गण-गणधर, आर्यिकाएँ, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, सामान्य केवली, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक् श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमान मे गये हुए मुनि, उत्तर वैक्रियधारी मुनि, सिद्ध अवस्था प्राप्त मुनि, पादपोपगमन अनशन को प्राप्त कर जो जिस स्थान पर जितने भक्त का अनशन कर अन्तकृत् हुए। अज्ञान-रज से विप्रमुक्त हो जो मुनिवर अनुत्तर सिद्धि मार्ग को प्राप्त हुए उनका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्हीं प्रकार के अन्य भाव, जो अनुयोग मे कथित हैं, वह 'प्रथमानुयोग' है। दूसरे शब्दो मे यो यह सकते हैं—'प्रथमानुयोग मे सम्यक्त्वप्राप्ति से लेकर तीर्थप्रवर्तन और मोक्षगमन तक का वर्णन है।[२१]

दूसरा गण्डिकानुयोग है। गण्डिका का अर्थ है—समान वक्तव्यता से अर्थाधिकार का अनुसरण करने वाली वाक्यपद्धति, और अनुयोग अर्थात्—अर्थ प्रकट करने की विधि। आचार्य मलयगिरि ने लिखा है—इक्षु के मध्य भाग की गण्डिका सदृश एकार्थ का अधिकार यानी ग्रन्थपद्धति। गण्डिकानुयोग के अनेक प्रकार है—[२२]

---

१४ सूत्रस्यार्थेन सहानुकूल योजनमनुयोग ।
अथवा अभिधेये व्यापार सूत्रस्य योग ।
अनुकूलोऽनुरूपो वा योगो अनुयोग ।
यथा घटशब्देन घटस्य प्रतिपादनमिति ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, मलय वृ नि १२७

१५. आवश्यकनिर्युक्तिहरिभद्रियावृत्ति १३०

१६. (क) समवायाग, अभयदेववृत्ति १४७
(ख) स्थानाग, ४।१।२६२, पृ २००

१७ जम्बूदीपप्रज्ञप्ति—प्रमेयरत्नमंजूषा वृत्ति, पृ ४-५

१८. अणुजोयणमणुजोगो सुयस्स नियएण जमाभिधेयेण ।
वावारो वा जोगो जो अणुरूवोऽणुकूलो वा ॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गा. १३८३

१९. परिक्कमे, सुत्ताइ, पुव्वगए, अणुयोगे, चूलिया। —श्रीमलयगिरीयानदीवृत्ति, पृ २३५

२०. पढमाणुयोगे, गडियाणुयोगे। —श्रीनन्दीचूर्णी मूल, पृ ५८

२१. इह मूलभावस्तु तीर्थंकर तस्य प्रथम पूर्वभवादि अथवा मूलस्स पढमाणुयोगे एत्थतित्थगरस्स अतीतभव-परियाय परिसत्तई भाणियव्वा। श्रीनदीवृत्ति चूर्णी, पृ. ५८

२२. से किं त गंडियाणुयोगे ? गडियाणुयोगे अणेगविहे पण्णत्ते.. —श्रीसमवायागवृत्ति, पृ १२०

(१) कुलकर गण्डिकानुयोग—विमलवाहन आदि कुलकरो की जीवनियाँ।
(२) तीर्थंकर गण्डिकानुयोग—तीर्थंकर प्रभु की जीवनियाँ।
(३) गणधर गण्डिकानुयोग—गणधरो की जीवनियाँ।
(४) चक्रवर्ती गण्डिकानुयोग—भरतादि चक्रवर्ती राजाओ की जीवनियाँ।
(५) दशार्ह गण्डिकानुयोग—समुद्रविजय आदि दशार्हों की जीवनियाँ।
(६) बलदेव गण्डिकानुयोग—राम आदि बलदेवो की जीवनियाँ।
(७) वासुदेव गण्डिकानुयोग—कृष्ण आदि वासुदेवो की जीवनियाँ।
(८) हरिवश गण्डिकानुयोग—हरिवश मे उत्पन्न महापुरुषो की जीवनियाँ।
(९) भद्रबाहु गण्डिकानुयोग—भद्रबाहु स्वामी की जीवनी।
(१०) तप कर्म गण्डिकानुयोग—तपस्या के विविध रूपो का वर्णन।
(११) चित्रान्तर गण्डिकानुयोग—भगवान् ऋषभ तथा अजित के अन्तर समय मे उनके वश के सिद्ध या सर्वार्थसिद्ध मे गये है, उनका वर्णन।
(१२) उत्सर्पिणी गण्डिकानुयोग—उत्सर्पिणी काल का विस्तृत वर्णन।
(१३) अवसर्पिणी गण्डिकानुयोग—अवसर्पिणी काल का विस्तृत वर्णन।

देव, मानव, तिर्यंच, और नरक गति मे गमन करना, विविध प्रकार से पर्यटन करना आदि का अनुयोग 'गण्डिकानुयोग' मे है। जैसे—वैदिकपरम्परा मे विशिष्ट व्यक्तियो का वर्णन पुराण साहित्य मे हुआ है, वैसे ही जैनपरम्परा मे महापुरुषो का वर्णन गण्डिकानुयोग मे हुआ है। गण्डिकानुयोग की रचना समय-समय पर मूर्धन्य मनीषी तथा आचार्यों ने की। पचकल्पचूर्णि[२३] के अनुसार कालकाचार्य ने गण्डिकाएँ रची थी, पर उन गण्डिकाओ को सघ ने स्वीकार नही किया। आचार्य ने सघ से निवेदन किया—मेरी गण्डिकाएँ क्यो स्वीकृत नही की गई है? उन गण्डिकाओ मे रही हुई त्रुटियाँ बतायी जायें, जिससे उनका परिष्कार किया जा सके। सघ के बहुश्रुत आचार्यों ने उन गण्डिकाओ का गहराई से अध्ययन किया और उन्होने उन पर प्रामाणिकता की मुद्रा लगा दी। इससे यह स्पष्ट है—कालकाचार्य जैसे प्रकृष्ट प्रतिभासम्पन्न आचार्य की गण्डिकाएँ भी सघ द्वारा स्वीकृत होने पर ही मान्य की जाती थी। इससे गण्डिकाओ की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

अनुयोग का अर्थ व्याख्या है। व्याख्येय वस्तु के आधार पर अनुयोग के चार विभाग किये गये है—चरण-करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, और द्रव्यानुयोग।[२४] दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थ द्रव्यसग्रह की टीका[२५] मे, पचास्तिकाय[२६] मे, तत्त्वार्थवृत्ति[२७] मे, इन अनुयोगो के नाम इस प्रकार मिलते हैं—प्रथमानुयोग,

---

२३ पञ्चकल्पचूर्णि। —कालकाचार्य प्रकरण, पृ २३-२४

२४ चत्तारिउ अणुओगा, चरणे धम्म गणियाणुओगे य।
दवियाऽणुओगे य तहा, जहकम्म ते महड्ढीया॥ —अभिधान राजेन्द्रकोष, प्र. भाग, पृ २५६

२५ प्रथमानुयोगो चरणानुयोगो करणानुयोगो द्रव्यानुयोगो इत्युक्तलक्षणानुयोगचतुष्टयरूपे चतुर्विध श्रुतज्ञान ज्ञातव्यम्। —द्रव्यसग्रह टीका, ४२।१८२

२६ पचास्तिकाय, १७३

२७ तत्त्वार्थवृत्ति, २५४।१५

चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग। श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो में नाम और कर्म मे कुछ अन्तर अवश्य है पर भाव सभी का एक-सा है।

श्वेताम्बर दृष्टि से सर्वप्रथम चरणानुयोग है।[२८] रत्नकरण्डश्रावकाचार मे आचार्य समन्तभद्र[२९] ने चरणानुयोग की परिभाषा करते हुए लिखा है—गृहस्थ और मुनियो के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के विधान करने वाले अनुयोग को चरणानुयोग कहते हैं। द्रव्यसग्रह की टीका मे लिखा है—उपासकाध्ययन आदि मे श्रावक का धर्म और मूलाचार, भगवती आराधना आदि मे यति का धर्म जहाँ मुख्यता से कहा गया है, वह चरणानुयोग है।[३०] बृहद्द्रव्यसग्रह, अनगारधर्मामृत[३१] टीका आदि मे भी चरणानुयोग की परिभाषा इसी प्रकार मिलती है। आचार सम्बन्धी साहित्य चरणानुयोग मे आता है।

जिनदासगणि[३२] महत्तर ने धर्मकथानुयोग की परिभाषा करते हुए लिखा है—सर्वज्ञोक्त अहिंसा आदि स्वरूप धर्म का जो कथन किया जाता है, अथवा अनुयोग के विचार से जो धर्मसम्बन्धी कथा कही जाती है, वह धर्मकथा है। आचार्य हरिभद्र[३३] ने भी अनुयोगद्वार की टीका मे अहिंसा लक्षणयुक्त धर्म का जो आख्यान है, उसे धर्मकथा कहा है। महाकवि पुष्पदन्त[३४] ने भी लिखा है—जो अभ्युदय, नि.श्रेयस् की ससिद्धि करता है और सद्धर्म से जो निबद्ध है, वह सद्धर्मकथा है। धर्मकथानुयोग को ही दिगम्बर परम्परा मे प्रथमानुयोग कहा है। रत्नकरण्डश्रावकाचार[३५] मे लिखा है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का परमार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान है, जिसमे एक पुरुष या त्रिषष्टि श्लाघनीय पुरुषो के पवित्र-चरित्र मे रत्नत्रय और ध्यान का निरूपण है, वह प्रथमानुयोग है।

गणितानुयोग, गणित के माध्यम से जहाँ विषय को स्पष्ट किया जाता है, दिगम्बर परम्परा मे इसके स्थान पर करणानुयोग यह नाम प्रचलित है। करणानुयोग का अर्थ है—लोक-अलोक के विभाग को, युगो

---

२८ (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३६३-७७७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य २२८४-२२९५

२९ गृहमेध्यनगाराणा चारित्रोत्पत्ति-वृद्धिरक्षाङ्गम् ।
चरणानुयोगसमय सम्यग्ज्ञान विजानाति ॥ —रत्नकरण्ड ४५

३० द्रव्यसग्रह टीका, ४२।१८२।९

३१ सकलेतरचारित्र-जन्म रक्षा विवृद्धिकृत् ।
विचारणीयश्चरणानुयोगश्चरणादृतै ॥ —अनगारधर्मामृत, ३।११ प. आशाधरजी

३२ धम्मकहा नाम जो अहिंसादिलक्खण सव्वण्णुपणीय
धम्म अणुयोग वा कहेइ एसा धम्मकहा ॥ —दशवैकालिकचूर्णि, पृ २९

३३ अहिंसालक्षणधर्मान्वाख्यान धर्मकथा। —अनुयोगद्वार टीका, पृ १०

३४ यतोऽभ्युदयनि श्रेयसार्थ-ससिद्धिरजसा ।
सद्धर्मस्तन्निबद्धा या सा सद्धर्मकथा स्मृता ॥ —महापुराण, महाकवि पुष्पदत, १।१२०

३५ प्रथमानुयोगमर्थाख्यान चरित पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधान बोधति बोध समीचीन ॥ —रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४३

३६ लोकालोक-विभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीना च ।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोग च ॥ —रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४४

के परिवर्तन को तथा चारों गतियो को दर्पण के सदृश प्रकट करने वाले सम्यग्ज्ञान को करणानुयोग कहते हैं।[३६] करण शब्द के दो अर्थ हैं—(१) परिणाम और (२) गणित के सूत्र।

द्रव्यानुयोग—जो श्रुतज्ञान के प्रकाश मे जीव-अजीव, पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष आदि तत्त्वो को दीपक के सदृश प्रकट करता है, वह द्रव्यानुयोग है।[३७] जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य मे लिखा है[३८]—द्रव्य का द्रव्य मे, द्रव्य के द्वारा अथवा द्रव्यहेतुक जो अनुयोग होता है, उसका नाम द्रव्यानुयोग है। इसके अतिरिक्त द्रव्य का पर्याय के साथ अथवा द्रव्य का द्रव्य के ही साथ जो योग (सम्बन्ध) होता है, वह भी द्रव्यानुयोग है। इसी तरह बहुवचन—द्रव्यो का द्रव्यो मे भी समझना चाहिए।

आगम-साहित्य मे कही सक्षेप से और कही विस्तार से इन अनुयोगो का वर्णन है। आर्य वज्र तक आगमो मे अनुयोगात्मक दृष्टि से पृथक्ता नही थी। प्रत्येक सूत्र की चारो अनुयोगो द्वारा व्याख्या की जाती थी। आचार्य भद्रबाहु[३९] ने इस सम्बन्ध मे लिखा है—कालिक श्रुत अनुयोगात्मक व्याख्या की दृष्टि से अपृथक् थे। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं—उनमे चरण-करणानुयोग प्रभृति अनुयोग चतुष्टय के रूप मे अविभक्तता थी। आर्य वज्र के पश्चात् कालिक सूत्र और दृष्टिवाद की अनुयोगात्मक पृथक्ता (विभक्तता) की गई।

आचार्य मलयगिरि[४०] ने प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक श्रमण तीक्ष्ण बुद्धि के धनी थे, अत अनुयोग की दृष्टि से अविभक्त रूप से व्याख्या प्रचलित थी। प्रत्येक सूत्र मे चरण-करणानुयोग आदि का अविभागपूर्वक वर्तन था। मुख्यता की दृष्टि से निर्युक्तिकार ने यहाँ पर कालिक श्रुत को ग्रहण किया है अन्यथा अनुयोगो का कालिक-उत्कालिक आदि सभी मे अविभाग था।[४१]

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने इस सम्बन्ध मे विश्लेषण करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक जब अनुयोग अपृथक् थे तब एक ही सूत्र की चारो अनुयोगो के रूप मे व्याख्या होती थी।

---

३७. जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोग-दीप श्रुतविद्या लोकमातनुते ॥ —रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ४६

३८ दव्वस्स जोऽणुओगो दव्वे दव्वेण दव्वहेऊ वा।
दव्वस्स पज्जवेण व जोगो, दव्वेण वा जोगो ॥
बहुवयणओऽवि एव नेओ जो वा कहे अणुवउत्तो।
दव्वाणुओग एसो —विशेषावश्यकभाष्य, १३९८-९९

३९ जावत अज्जवइरा अपुहुत्त कालिआणुओगस्स।
तेणारेण पुहुत्त कालिअसुइ दिट्ठिवाए अ ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति, गाथा १६३, पृ ३८३

४० यावदार्यवज्रा—आर्यवज्रस्वामिनो मुखो महामतयपस्तावत्कालिकानुयोगस्य कालिकश्रुतव्याख्यानस्यापृथक्त्व-प्रतिसूत्र चरण करणानुयोगादीनामविभागेन वर्तनमासीत्, तदासाधूना तीक्ष्णप्रज्ञत्वात्। कालिकग्रहण प्राधान्यख्यापनार्थम्, अन्यथा सर्वानुयोगस्यापृथक्त्वमासीत्।
—आवश्यकनिर्युक्ति, पृ ३८३ प्रका आगमोदय समिति

४१ अपुहुत्ते अणिओगो चत्तारि दुवार भासए एगो।
पुहुत्ताणुओग करणे ते अत्थ तओवि वोच्छिन्ना ॥
किं वइरेहिं पुहुत्त कयमह तदणतरेहिं भणियम्मि।
तदणतरेहिं तदभिहिय गहिय सुत्तत्थ सारेहि ॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २२८६-२२८७

अनुयोगो का विभाग कर दिया जाय, उनकी पृथक्-पृथक् छँटनी कर दी जाय तो वहाँ उस सूत्र में चारो अनुयोग व्यवच्छिन्न हो जायेंगे। इन प्रश्न का समाधान करते हुए भाष्यकार ने लिखा है, जहाँ किसी एक सूत्र की व्याख्या चारो अनुयोगो मे होती थी, वहाँ चारो मे से अमुक अनुयोग के आधार पर व्याख्या करने का यहाँ पर अभिप्राय है।

आर्यरक्षित से पूर्व अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था, उसमे प्रत्येक सूत्र की व्याख्या चरण-करण, धर्म गणित और द्रव्य की दृष्टि से की जाती थी। यह व्याख्यापद्धति बहुत ही क्लिष्ट और स्मृति की तीक्ष्णता पर अवलम्बित थी। आर्यरक्षित के १ दुर्बलिका पुष्यमित्र, २ फल्गुरक्षित, ३ विन्ध्य और ४ गोष्ठामाहिल ये चार प्रमुख शिष्य थे। विन्ध्यमुनि महान् प्रतिभासम्पन्न शीघ्रग्राही मनीषा के धनी थे। आर्यरक्षित शिष्यमण्डली को आगम वाचना देते, उसे विन्ध्यमुनि उसी क्षण ग्रहण कर लेते थे। अत उनके पास अग्रिम अध्ययन के लिए बहुत-सा समय अवशिष्ट रहता। उन्होने आर्यरक्षित से प्रार्थना की—मेरे लिए अध्ययन की पृथक् व्यवस्था करें। आचार्य ने प्रस्तुत महनीय कार्य के लिए महामेधावी दुर्बलिका पुष्यमित्र को नियुक्त किया। अध्यापनरत दुर्बलिका पुष्यमित्र ने कुछ समय के पश्चात् आर्यरक्षित से निवेदन किया—आर्य विन्ध्य को आगम वाचना देने से मेरे पठित पाठ के पुनरावर्तन मे बाधा उपस्थित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था से मेरी अधीत पूर्वज्ञान की राशि विस्मृत हो जायेगी। आर्यरक्षित ने सोचा—महामेधावी शिष्य की भी यह स्थिति है तो आगमज्ञान का सुरक्षित रहना बहुत ही कठिन है। दूरदर्शी आर्यरक्षित ने गम्भीरता से चिन्तन कर जटिल व्यवस्था को सरल बनाने हेतु आगम-अध्ययन क्रम को चार अनुयोगो मे विभक्त किया।[४२]

यह महत्त्वपूर्ण कार्य दशपुर मे वीरनिर्वाण स ५९२, वि स १२२ के आसपास सम्पन्न हुआ था। यह वर्गीकरण विषय सादृश्य की दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत वर्गीकरण करने के बावजूद भी यह भेद-रेखा नही खीची जा सकती कि अन्य आगमो मे अन्य अनुयोगों का वर्णन नही है। उदाहरण के रूप मे, उत्तराध्ययनसूत्र मे धर्मकथा के अतिरिक्त दार्शनिक तथ्य भी पर्याप्त मात्रा मे है। भगवतीसूत्र तो अनेक विषयो का विराट् सागर है। आचाराग आदि मे भी अनेक विषयो की चर्चाएँ है। कुछ आगमो को छोडकर अन्य आगमो में चारो अनुयोगो का सम्मिश्रण है। यह जो वर्गीकरण हुआ है वह स्थूल दृष्टि को लेकर हुआ है। व्याख्याक्रम की दृष्टि से यह वर्गीकरण अपृथक्त्वानुयोग और पृथक्त्वानुयोग के रूप मे दो प्रकार का है।

हम यहाँ पर चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग और धर्मकथानुयोग पर चिन्तन न कर केवल अनुयोगद्वारसूत्र पर चिन्तन करेंगे। मूल आगमो मे नन्दी के पश्चात् अनुयोगद्वार का नाम आता है। नन्दी और अनुयोगद्वार ये दोनो आगम चूलिका सूत्र के नाम से पहचाने जाते है। चूलिका शब्द का प्रयोग उन अध्ययनो या ग्रन्थो के लिए होता है जिनमे अवशिष्ट विषयो का वर्णन या वर्णित विषयो का स्पष्टीकरण किया गया हो।

---

४२ (क) देविदवदिएहि महाणुभावेहि रक्खियज्जेहिं।
जुगमासज्ज विभत्तो, अणुयोगो तो कओ चउहा॥
चत्तारि अणुयोग चरणधम्मगणियाणुयोग य।
दव्वियणुयोगे तहा जहक्कम महिड्ढिया॥ —अभिधानराजेन्द्रकोश

(ख) कालिय सुय च इसिभासिआइ तइओ अ सूरपन्नत्ती।
सव्वोअ दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो॥ —आवश्यकनिर्युक्ति—१२४

दशवैकालिक और महानिशीथ के अन्त मे भी चूलिकाएँ-चूलाएँ-चूड़ाएँ प्राप्त होती हैं। चूलिकाओं को वर्तमान युग की भाषा में ग्रन्थ का परिशिष्ट कह सकते हैं। नन्दी और अनुयोगद्वार भी आगम साहित्य के अध्ययन के लिए परिशिष्ट का कार्य करते हैं। जैसे पाच ज्ञानरूप नन्दी मंगलस्वरूप है वैसे ही अनुयोगद्वारसूत्र भी समग्र आगमो को और उसकी व्याख्याओ को समझने मे कुजी सदृश है। ये दोनो आगम एक दूसरे के परिपूरक हैं। आगमो के वर्गीकरण मे इनका स्थान चूलिका मे है। जैसे भव्य मन्दिर शिखर से अधिक शोभा पाता है वैसे ही आगम-मन्दिर भी नन्दी और अनुयोगद्वार रूप शिखर से अधिक जगमगाता है।

हम पूर्व पक्तियो मे यह बता चुके है अनुयोग का अर्थ व्याख्या या विवेचन है। भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक-निर्युक्ति मे अनुयोग के अनुयोग-नियोग, भाषा-विभाषा और वार्तिक ये पर्याय बताये हैं।[४३] जिनभद्रगणि क्षमा-श्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य मे[४४] सघदासगणि ने बृहत्कल्पभाष्य[४५] मे इन सभी पर्यायो का विवरण प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि जो पर्याय दिये गये है, वे सभी पर्याय पूर्णरूप से एकार्थक नही है, किन्तु अनुयोगद्वार के जो विविध प्रकार हैं, उन्हे ही पर्याय लिखने मे आया है।[४६]

आगमप्रभावक श्री पुण्यविजयजी महाराज ने अपनी अनुयोगद्वार की विस्तृत प्रस्तावना मे अग साहित्य मे अनुयोग की चर्चा कहाँ-कहाँ पर आई है, इस पर प्रमाण पुरस्सर प्रकाश डाला है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि श्रमण भगवान् महावीर के समय सूत्र की जो व्याख्यापद्धति थी उसी व्याख्यापद्धति का विकसित और परिपक्वरूप हमे अनुयोगद्वारसूत्र मे सहज रूप से निहारने को मिलता है। उसके पश्चात् लिखे गये जैन आगमो के व्याख्यासाहित्य मे अनुयोगद्वार की ही शैली अपनाई गई। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे ही नही दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे भी इस शैली के सुन्दर सदर्शन होते हैं।

अनुयोगद्वार मे द्रव्यानुयोग की प्रधानता है। उसमे चार द्वार है, १८९९ श्लोकप्रमाण उपलब्ध मूल पाठ है। १५२ गद्य सूत्र है और १४३ पद्य सूत्र है।

अनुयोगद्वार मे प्रथम पचज्ञान से मगलाचरण किया गया है। उसके पश्चात् आवश्यक-अनुयोग का उल्लेख है। इससे पाठक को सहज ही यह अनुमान होता है कि इसमे आवश्यकसूत्र की व्याख्या होगी, पर ऐसा नही है। इसमे अनुयोग के द्वार अर्थात् व्याख्याओ के द्वार उपक्रम आदि का ही विवेचन किया गया है। विवेचन या व्याख्यापद्धति कैसी होनी चाहिए यह बताने के लिए आवश्यक को दृष्टान्त के रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत सूत्र मे केवल आवश्यक, श्रुत, स्कन्ध, अध्ययन नामक ग्रन्थ की व्याख्या, उसके छह अध्ययनो मे पिण्डार्थ (अर्थाधिकार का निर्देश), उनके नाम और सामायिक शब्द की व्याख्या दी है। आवश्यकसूत्र के पदो की व्याख्या नही है। इससे स्पष्ट है कि अनुयोगद्वार मुख्यरूप से अनुयोग की व्याख्याओ के द्वारो का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है—आवश्यक-सूत्र की व्याख्या करने वाला नही।

आगमसाहित्य मे अगो के पश्चात् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आवश्यकसूत्र को दिया गया है, क्योकि

---

४३ अणुयोगो अणियोगो भास विभासा य वत्तिय चेव।
एते अणुओगस्स तु णामा एगट्ठिया पच॥ —आव नि. गाथा १२६, विशे १३८२, बृ १८७

४४ विशेषावश्यकभाष्य १४१८, १४१९, १४२०

४५ बृहत्कल्पभाष्य गा १९५, १९६, १९८, १९९

४६ नदिसुत्त—अणुओगद्दाराइ —प्रस्तावना पुण्यविजयजी म, पृ ३७-३९

प्रस्तुत सूत्र मे निरूपित सामायिक से ही श्रमणजीवन का प्रारम्भ होता है। प्रतिदिन प्रात. सन्ध्या के समय श्रमण-जीवन की जो आवश्यक क्रिया है इसकी शुद्धि और आराधना का निरूपण इसमे है। अत अगो के अध्ययन से पूर्व आवश्यक का अध्ययन आवश्यक माना गया है। एतदर्थ ही आवश्यक की व्याख्या करने की प्रतिज्ञा प्रस्तुत सूत्र मे की है। व्याख्या के रूप मे भले ही सम्पूर्ण ग्रन्थ की व्याख्या न हो, केवल ग्रन्थ के नाम के पदो की व्याख्या की गई हो, तथापि व्याख्या की जिस पद्धति को इसमे अपनाया गया है वही पद्धति सम्पूर्ण आगमो की व्याख्या में भी अपनाई गई है। यदि यह कह दिया जाय कि आवश्यक की व्याख्या के बहाने से ग्रन्थकार ने सम्पूर्ण आगमो के रहस्यो को समझाने का प्रयास किया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आगम के प्रारम्भ मे आभिनिबोधिक आदि पाच ज्ञानो का निर्देश करके श्रुतज्ञान का विस्तार से निरूपण किया है। क्योकि श्रुतज्ञान का उद्देश (पढने की आज्ञा), समुद्देश (पढ़े हुए का स्थिरीकरण), अनुज्ञा (अन्य को पढ़ाने की आज्ञा) एव अनुयोग (विस्तार से व्याख्यान) होता है, जबकि शेष चार ज्ञानो का नही होता। अगप्रविष्ट और अगबाह्य के उद्देशादि होते है वैसे ही कालिक, उत्कालिक और आवश्यकसूत्र के भी होते है।

सर्वप्रथम यह चिन्तन किया गया है कि आवश्यक एक अगरूप है या अनेक अगरूप ? एक श्रुतस्कन्ध है या अनेक श्रुतस्कन्ध ? एक अध्ययनरूप है या अनेक अध्ययनरूप ? एक उद्देशनरूप है या अनेक उद्देशनरूप ? समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा है कि आवश्यक न एक अगरूप है, न अनेक अगरूप, वह एक श्रुतस्कन्ध है और अनेक अध्ययन-रूप है। उसमे न एक उद्देश है न अनेक। आवश्यक श्रुतस्कन्धाध्ययन का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए आवश्यक, श्रुत, स्कन्ध और अध्ययन इन चारो का पृथक्-पृथक् निक्षेप किया गया है। आवश्यक निक्षेप चार प्रकार का है—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। किसी का भी आवश्यक यह नाम रख देना नाम-आवश्यक है।

किसी वस्तु की आवश्यक के रूप मे स्थापना करने का नाम स्थापनाआवश्यक है। स्थापनाआवश्यक के ४० प्रकार हैं—काष्ठकर्मजन्य, चित्रकर्मजन्य, वस्त्रकर्मजन्य, लेप्यकर्मजन्य, ग्रथिकर्मजन्य, वेष्टनकर्मजन्य, पूरिकर्मजन्य, (धातु आदि को पिघला कर साचे मे डालना) सघातिकर्मजन्य (वस्त्रादि के टुकडे जोडना) और अक्षकर्मजन्य (पासा) वराटककर्मजन्य (कौडी) इनसे प्रत्येक के दो भेद हैं—एक रूप और अनेक रूप। पुन सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना रूप दो भेद हैं। इस तरह स्थापनाआवश्यक के ४० भेद होते है।

द्रव्यआवश्यक के आगमत और नोआगमत ये दो भेद है। आवश्यकपद स्मरण कर लेना और उसका निर्दोष उच्चारणादि करना आगमत द्रव्यआवश्यक है। इसका विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए सप्तनय की दृष्टि से द्रव्यावश्यक पर चिन्तन किया है। नोआगमत द्रव्यावश्यक का तीन दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। वे दृष्टियाँ हैं—ज्ञशरीर, भव्यशरीर और तद्व्यतिरिक्त। आवश्यकपद के अर्थ को जानने वाले व्यक्ति के प्राणरहित शरीर को ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक कहते हैं। जैसे मधु या घृत से रिक्त हुए घट को भी मधुघट या घृतघट कहते है, क्योकि पहले उसमे मधु या घृत था। वैसे ही आवश्यकपद का अर्थ जानने वाला चेतन तत्त्व, अभी नही है तथापि उसका शरीर है, भूतकालीन सम्बन्ध के कारण वह ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक कहलाता है। जो जीव वर्तमान मे आवश्यकपद का अर्थ नही जानता है, किन्तु आगामी काल मे अपने इसी शरीर द्वारा उसे जानेगा वह भव्यशरीरद्रव्यावश्यक है। ज्ञशरीर और भव्यशरीर से अतिरिक्त तद्व्यतिरिक्त है। वह लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तरीय रूप मे तीन प्रकार का है। राजा, युवराज सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति का प्रात व सायकालीन आवश्यक कर्त्तव्य वह लौकिकद्रव्यावश्यक है। कुतीर्थिको की क्रियाएँ कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यक है। श्रमण के गुणो से रहित, निरकुश,

जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा का उल्लघन करने वाले स्वच्छन्द-विहारी की अपने मत की दृष्टि से उभयकालीन क्रियाएँ लोकोत्तरद्रव्यावश्यक हैं।

भावआवश्यक आगमत और नोआगमत: रूप मे दो प्रकार का है। आवश्यक के स्वरूप को उपयोग-पूर्वक जानना आगमत' भावआवश्यक है। नोआगमत भावआवश्यक भी लौकिक और कुप्रावचनिक तथा लौकोत्तरिक रूप मे तीन प्रकार का है। प्रात महाभारत, साय रामायण प्रभृति का स-उपयोग पठन-पाठन लौकिक-आवश्यक है। चर्म आदि धारण करने वाले तापस आदि का अपने इष्टदेव को साजलि नमस्कारादि करना कुप्रावचनिक भावआवश्यक है। शुद्ध-उपयोग सहित वीतराग के वचनो पर श्रद्धा रखने वाले चतुर्विध तीर्थ का प्रात सायकाल उपयोगपूर्वक आवश्यक करना लोकोत्तरिक-भावआवश्यक है।

आवश्यक का निक्षेप करने के पश्चात् सूत्रकार श्रुत, स्कन्ध और अध्ययन का निक्षेपपूर्वक विवेचन करते हैं। श्रुत भी आवश्यक की तरह ४ प्रकार का है—नामश्रुत, स्थापनाश्रुत, द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। श्रुत के श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना-प्रवचन एव आगम ये एकार्थक नाम हैं।[४७] स्कन्ध के भी नाम, स्थापना, द्रव्य और भावस्कन्ध ऐसे ४ प्रकार हैं। स्कन्ध के गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुञ्ज, पिंड, निकर, सघात, आकुल और समूह, ये एकार्थक नाम है।[४८] अध्ययन ६ प्रकार का है—सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। सामायिक रूप प्रथम अध्ययन के उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय ये चार अनुयोगद्वार हैं।

उपक्रम का नामोपक्रम, स्थापनोक्रम, द्रव्योपक्रम, क्षेत्रोपक्रम, कालोपक्रम और भावोपक्रम रूप ६ प्रकार का है। अन्य प्रकार से भी उपक्रम के छह भेद बताये गये हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार और समवतार। उपक्रम का प्रयोजन है कि ग्रन्थ के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक ज्ञातव्य विषय की चर्चा। इस प्रकार की चर्चा होने से ग्रन्थ मे आये हुए क्रमरूप से विषयो का निक्षेप करना। इससे वह सरल हो जाता है।

आनुपूर्वी के नामानुपूर्वी, स्थापनानुपूर्वी, द्रव्यानुपूर्वी, क्षेत्रानुपूर्वी, कालानुपूर्वी, उत्कीर्तनानुपूर्वी, गणनानु-पूर्वी, सस्थानानुपूर्वी, सामाचार्यानुपूर्वी, भावानुपूर्वी, ये दस प्रकार हैं जिनका सूत्रकार ने अतिविस्तार से निरूपण किया है। प्रस्तुत विवेचन मे अनेक जैन मान्यताओ का दिग्दर्शन कराया गया है।

नामानुपूर्वी मे नाम के एक, दो यावत् दस नाम बताये हैं। ससार के समस्त द्रव्यो के एकार्थवाची अनेक नाम होते हैं किन्तु वे सभी एक नाम के ही अन्तर्गत आते हैं। द्विनाम के एकाक्षरिकनाम और अनेकाक्षरिकनाम ये दो भेद है। जिसके उच्चारण करने मे एक ही अक्षर का प्रयोग हो वह एकाक्षरिक नाम है। जैसे धी, स्त्री, ह्री इत्यादि। जिसके उच्चारण मे अनेक अक्षर हो, वह अनेकाक्षरिकनाम है। जैसे—कन्या, वीणा, लता, माला इत्यादि। अथवा जीवनाम, अजीवनाम अथवा अविशेषिकनाम, विशेषिकनाम इस तरह दो प्रकार का है। इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। त्रिनाम के द्रव्यनाम, गुणनाम और पर्यायनाम ये तीन प्रकार है। द्रव्यनाम के

---

४७. सुय सुत्त गथ सिद्धन्त सासण आण त्ति वयण उवएसो।
पण्णवणे आगमे वि य एगट्ठा पज्जवा सुत्ते॥ —सू. ४२, गाथा १

४८ गण काय निकाए चिए खधे वग्गे तहेव रासी य।
पुंजे य पिण्डे निगरे सघाए आउल समूहे॥ —सू. १२, गा. १ (स्कन्धाधिकार)

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय (काल) ये छह भेद हैं। गुणनाम के वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम और सस्थाननाम आदि अनेक भेद-प्रभेद है। पर्यायनाम के एक गुण कृष्ण, द्विगुण कृष्ण, त्रिगुण कृष्ण, यावत् दसगुण, सख्येयगुण, असख्येयगुण और अनन्तगुण कृष्ण इत्यादि अनेक प्रकार हैं। चतुर्नाम ४ प्रकार का है—आगमत , लोपत , प्रकृतित और विकारत । विभक्त्यन्त पद मे वर्ण का आगमन होने से पद्म का पद्मानि। यह आगमत पद का उदाहरण है। वर्णों के लोप से जो पद बनता है वह लोपत पद है, जैसे—पटोऽत्र-पटोत्र। सन्धिकार्य प्राप्त होने पर भी सन्धि का न होना प्रकृतिभाव कहलाता है। जैसे शाले एते, माले इमे। विकारत पद के उदाहरण—दडाग्र , नदीह, मधूदकम्। पचनाम पाच प्रकार का है—नामिक, नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक और मिश्र। षट्नाम औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक और सन्निपातिक—छह प्रकार का है। इन भावो पर कर्मसिद्धान्त व गुणस्थानो की दृष्टि से विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् सप्तनाम मे सप्त स्वर पर, अष्टनाम मे अष्ट विभक्ति पर, नवनाम मे नवरस एव दसनाम मे गुणवाचक दस नाम बताये है।

उपक्रम के तृतीय भेद प्रमाण पर चिन्तन करते हुए द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण के रूप मे चार भेद किये गये हैं। द्रव्यप्रमाण प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न रूप से दो प्रकार का है। प्रदेशनिष्पन्न-द्रव्यप्रमाण के अन्तर्गत परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध आदि है। विभागनिष्पन्न-द्रव्यप्रमाण के मान, उन्मान, अवमान, गणितमान और प्रतिमान, ये पाच प्रकार है। इनमे से मान के दो प्रकार है—धान्यमानप्रमाण, रसमानप्रमाण। धान्यमानप्रमाण के प्रसृति, सेधिका, कुडब, प्रस्थ, आढक, द्रोणि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, कुम्भ आदि अनेक भेद हैं। इसी प्रकार रसमान प्रमाण के भी विविध भेद है। उन्मान प्रमाण के अर्द्धकर्ष, कर्ष, अर्द्धपल, पल, अर्द्धतुला, तुला, अर्द्धभार, भार आदि अनेक भेद है। इस प्रमाण से अगर, कुमकुम, खाड, गुड आदि वस्तुओ का प्रमाण मापा जा सकता है। जिस प्रमाण से भूमि आदि का माप किया जाय वह अवमान है। इसके हाथ, दड, धनुष्य आदि अनेक प्रकार हैं। गणितमानप्रमाण मे सख्या से प्रमाण निकाला जाता है। जैसे एक, दो से लेकर हजार, लाख, करोड आदि जिससे द्रव्य के आय-व्यय का हिसाब लगाया जाय। प्रतिमान—जिससे स्वर्ण आदि मापा जाय। इसके गुञ्जा कागणी निष्पाव, कर्ममाशक, मण्डलक, सोनैया आदि अनेक भेद है। इस प्रकार द्रव्यप्रमाण की चर्चा है।

क्षेत्रप्रमाण प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न दो प्रकार का है। एक-प्रदेशावगाही, द्वि-प्रदेशावगाही आदि पुद्गलो से व्याप्त क्षेत्र को प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण कहा गया है। विभागनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण के अगुल, वितस्ति, हस्त, कुक्षि, दड, कोश, योजन आदि नाना प्रकार हैं। अगुल—आत्मागुल, उत्सेधागुल और प्रमाणागुल के रूप मे तीन प्रकार का है। जिस काल मे जो मानव होते हैं उनके अपने अगुल से १२ अगुल प्रमाण मुख होता है। १०८ अगुल प्रमाण पूरा शरीर होता है। वे पुरुष उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप से ३ प्रकार के है। जिन पुरुषो मे पूर्ण लक्षण हैं और १०८ अगुल प्रमाण जिनका शरीर है वे उत्तम पुरुष हैं, जिन पुरुषो का शरीर १०४ अगुल प्रमाण है वे मध्यम पुरुष हैं और जिनका शरीर ९६ अगुल प्रमाण है वे जघन्य पुरुष हैं। इन अगुलो के प्रमाण से छह अगुल का १ पाद, २ पाद की १ वितस्ति, २ वितस्ति का १ हाथ, २ हाथ की १ कुक्षि, २ कुक्षि का एक धनुष्य, दो हजार धनुष्य का १ कोश, ४ कोश का एक योजन होता है। प्रस्तुत प्रमाण से आराम, उद्यान, कानन, वन, वनखण्ड, कुंआ, वापिका, नदी, खाई, प्राकार, स्तूप आदि नापे जाते हैं।

उत्सेधागुल का प्रमाण बताते हुए परमाणु त्रसरेणु, रथरेणु का वर्णन विविध प्रकार से किया है। प्रकाश मे जो धूलिकण आंखो से दिखाई देते है वे त्रसरेणु हैं। रथ के चलने से जो धूलि उडती है वह रथरेणु है। परमाणु

का दो दृष्टियो से प्रतिपादन है—सूक्ष्म-परमाणु और व्यावहारिक-परमाणु। अनन्त सूक्ष्म-परमाणुओ के मिलने से एक व्यावहारिक-परमाणु बनता है। व्यावहारिक-परमाणुओं की क्रमश वृद्धि होते-होते मानवो का बालाग्र, लीख, जूँ, यव और अगुल बनता है, जो क्रमश आठ गुने अधिक होते हैं। प्रस्तुत अगुल के प्रमाण से छह अगुल का अर्द्धपाद, १२ अगुल का पाद, २४ अगुल का एक हस्त, ४८ अगुल की एक कुक्षि, ९६ अगुल का १ धनुष्य होता है। इसी धनुष्य के प्रमाण से दो हजार धनुष्य का १ कोश और ४ कोश का १ योजन होता है। उत्सेधागुल का प्रयोजन ४ गतियो के प्राणियो की अवगाहना नापना है। यह अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट रूप से दो प्रकार की होती है। जैसे नरक मे जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य प्रमाण है और उत्तर विक्रिया करने पर जघन्य अगुल के सख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार धनुष्य होती है। इस तरह उत्सेधागुल का प्रमाण स्थायी, निश्चित और स्थिर है। उत्सेधागुल से एक हजार गुना अधिक प्रमाणागुल होता है। वह भी उत्सेधागुल के समान निश्चित है। अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ और उनके पुत्र भरत के अगुल को प्रमाणागुल माना गया है। अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर के एक अगुल के प्रमाण मे दो उत्सेधागुल होते है। दूसरे शब्दो मे कहे तो उनके ५०० अगुल के बराबर १००० उत्सेधागुल अर्थात् १ प्रमाणागुल होता है। इस प्रमाणागुल से अनादि पदार्थों का नाप ज्ञात किया जाता है। इससे बडा अन्य कोई अगुल नही है।

कालप्रमाण प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न रूप से दो प्रकार का है। एक समय की स्थिति वाले परमाणु या स्कन्ध आदि का काल प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण कहलाता है। समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, अहोरात्रि, पक्ष, मास, सवत्सर, युग, पल्य, सागर, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, परावर्तन आदि को विभागनिष्पन्न काल-प्रमाण कहा गया है। समय बहुत ही सूक्ष्म कालप्रमाण है। इसका स्वरूप प्रतिपादित करते हुए वस्त्र-विदारण का उदाहरण दिया है। असख्यात समय की एक आवलिका, सख्यात आवलिका का एक उच्छ्वासनिश्वास, प्रसन्न मन, पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के एक श्वासोच्छ्वास को प्राण कहते है। सात प्राणो का १ स्तोक, ७ स्तोको का १ लव, उसके पश्चात् शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम की सख्या तक प्रकाश डाला है जिसका हम अन्य आगमो के विवेचन मे उल्लेख कर चुके है। इस कालप्रमाण से चार गतियो के जीवो के आयुष्य पर विचार किया गया है।

भावप्रमाण तीन प्रकार का है—गुणप्रमाण, नयप्रमाण और सख्याप्रमाण। गुणप्रमाण—जीवगुण-प्रमाण और अजीवगुणप्रमाण इस तरह से दो प्रकार का है। जीवगुणप्रमाण के तीन भेद—ज्ञानगुणप्रमाण, दर्शनगुणप्रमाण और चारित्रगुणप्रमाण है। इसमे से ज्ञानगुणप्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम ये चार भेद है। प्रत्यक्ष के इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष दो भेद है। इन्द्रियप्रत्यक्ष के श्रोत्रेन्द्रिय से स्पर्शेन्द्रिय तक पाच भेद है। नोइन्द्रियप्रत्यक्ष के अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञानप्रत्यक्ष—ये तीन भेद है।[४९]

अनुमान—पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्टसाधर्म्यवत् तीन प्रकार का है। पूर्ववत्अनुमान को समझाने के लिए एक रूपक दिया है। जैसे—किसी माता का कोई पुत्र लघुवय मे अन्यत्र चला गया और युवक होकर पुन अपने नगर मे आया। उसे देखकर उसकी माता पूर्व लक्षणो मे अनुमान करती है कि यह पुत्र मेरा ही है। इसे पूर्ववत्अनुमान कहा है।

---

४९ प्रत्यक्षप्रमाण का विस्तृत विवरण नन्दीसूत्र के विवेचन मे दिया गया है। इसके अतिरिक्त देखिए, लेखक का 'जैन आगम साहित्य मनन मीमासा' ग्रन्थ।

शेषवत्‌अनुमान कार्यत , कारणत , गुणत', अवयवत और आश्रयत' इस तरह पांच प्रकार का है। कार्य से कारण का ज्ञान होना कार्यत अनुमान कहा जाता है। जैसे शख, भेरी आदि के शब्दो से उनके कारणभूत पदार्थों का ज्ञान होना, यह एक प्रकार का अनुमान है। कारणतः अनुमान वह है जिसमे कारणो से कार्य का ज्ञान होता है, जैसे—तन्तुओ से पट बनता है, मिट्टी के पिण्ड से घट बनता है। गुणत अनुमान वह है जिससे गुण के ज्ञान से गुणी का ज्ञान किया जाय, जैसे—कसौटी से स्वर्ण की परीक्षा, गध से फूलो की परीक्षा। अवयवत अनुमान है अवयवो से अवयवी का ज्ञान होना, जैसे—सीगो से महिष का, शिखा से कुक्कुट का, दांतों से हाथी का। आश्रयत - अनुमान वह है जिसमे आश्रय से आश्रयी का ज्ञान होता है। इसमे साधन से साध्य पहचाना जाता है, जैसे धुएँ से अग्नि, बादलो से जल, सदाचरण से कुलीन पुत्र का ज्ञान होता है।

दृष्टसाधर्म्यवत्‌-अनुमान के सामान्यदृष्ट और विशेषदृष्ट—ये दो भेद हैं। किसी एक व्यक्ति को देखकर तद्देशीय या तज्जातीय अन्य व्यक्तियो की आकृति आदि का अनुमान करना सामान्यदृष्ट-अनुमान है। इसी प्रकार अनेक व्यक्तियो की आकृति आदि से एक व्यक्ति की आकृति का अनुमान भी किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को पहले एक बार देखा हो, पुन उसको दूसरे स्थान पर देखकर अच्छी तरह पहचान लेना विशेषदृष्ट-अनुमान है।

उपमानप्रमाण के साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत ये दो भेद है। साधर्म्योपनीत के किंचित्‌ साधर्म्योपनीत, प्राय साधर्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत ये—तीन प्रकार है। जिसमे कुछ साधर्म्य हो वह किंचित्‌-साधर्म्योपनीत है। उदाहरण के लिए जैसा आदित्य है वैसा खद्योत है, क्योकि दोनो ही प्रकाशित है। जैसा चन्द्र है वैसा कुमुद है, क्योकि दोनो मे शीतलता है। जिसमे लगभग समानता हो वह प्राय साधर्म्योपनीत है, जैसे—गाय है वैसी नील-गाय है। जिसमे सब प्रकार की समानता हो वह सर्वसाधर्म्योपनीत है। यह उपमा देश, काल आदि की भिन्नता के कारण अन्य मे नही प्राप्त होती। अत उसकी उसी से उपमा देना सर्वसाधर्म्योपनीत-उपमान है। इसमे उपमेय और उपमान भिन्न नही होते। जैसे—सागर सागर के सदृश है। तीर्थंकर तीर्थंकर के समान है।

वैधर्म्योपनीत के किंचित्‌वैधर्म्योपनीत, प्राय वैधर्म्योपनीत और सर्ववैधर्म्योपनीत—ये तीन प्रकार है।

आगम दो प्रकार के है—लौकिक और लोकोत्तर। मिथ्यादृष्टियो के बनाये हुए ग्रन्थ लौकिक आगम है। जिन्हे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है ऐसे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी द्वारा प्रतिपादित द्वादशाग गणिपिटक—यह लोकोत्तर आगम है अथवा आगम के सूत्रागम, अर्थागम और तदुभयागम अथवा आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम, इस प्रकार तीन भेद है। तीर्थंकर द्वारा कथित अर्थ उनके लिए आत्मागम है। गणधररचित सूत्र गणधर के लिए आत्मागम है और अर्थ उनके लिए परम्परागम है। उसके पश्चात्‌ सूत्र, अर्थ दोनो परम्परागम है। यह ज्ञानगुण-प्रमाण का वर्णन है।

दर्शनगुणप्रमाण के चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन गुणप्रमाण—ये चार भेद है।

चारित्रगुणप्रमाण पाच प्रकार का है—सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसपराय और यथाख्यातचारित्र गुणप्रमाण।

सामायिकचारित्र इत्वरिक और यावत्कथित रूप से दो प्रकार का है। छेदोपस्थापनीयचारित्र भी सातिचार और निरतिचार (सदोष और निर्दोष) ऐसे दो प्रकार का है। इसी प्रकार परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसपराय और यथाख्यातचारित्र भी क्रमश' निर्विश्यमान और निर्विष्टकायिक, प्रतिपाती और अप्रतिपाती, छाद्मस्थिक और कैवलिक इस प्रकार दो-दो तरह के है। चारित्रगुणप्रमाण के अवान्तर भेद-प्रभेदो पर प्रस्तुत आगम मे प्रकाश नहीं डाला गया है।

अजीवगुणप्रमाण के ५ प्रकार हैं—वर्णगुणप्रमाण, गंधगुणप्रमाण, रसगुणप्रमाण, स्पर्शगुणप्रमाण और संस्थानगुणप्रमाण। इनके क्रमशः ५, २, ५, ८ और ५ भेद प्रतिपादित किये गये हैं। यह गुणप्रमाण का वर्णन हुआ।

भावप्रमाण का दूसरा भेद नयप्रमाण है। नय के नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—ये सात प्रकार हैं। प्रस्थक, वसति एवं प्रदेश के दृष्टान्त से इन नयो का स्वरूप समझाया है।

भावप्रमाण का तृतीय भेद संख्याप्रमाण है। वह नामसंख्या, स्थापनासंख्या, द्रव्यसंख्या, उपमान-संख्या, परिमाणसंख्या, ज्ञानसंख्या, गणनासंख्या और भावसंख्या—इस तरह आठ प्रकार का है।

गणनासंख्या विशेष महत्त्वपूर्ण होने से उसका विस्तार से विवेचन किया है। जिसके द्वारा गणना की जाय वह गणनासंख्या कहलाती है। एक का अंक गिनने मे नही आता अत. दो से गणना की संख्या का प्रारम्भ होता है। संख्या के संख्येयक, असंख्येयक और अनन्त, ये तीन भेद हैं। संख्येयक के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ,ये तीन भेद हैं। असंख्येयक के परीतासंख्येयक, युक्तासंख्येयक और असंख्येयासंख्येयक तथा इन तीनो के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ये तीन-तीन भेद है। इस प्रकार असंख्येयक के ९ भेद हुए। अनन्तक के परीतानन्तक, युक्तानन्तक और अनन्तानन्तक, ये तीन भेद है। इनमे से परीतानन्तक और युक्तानन्तक के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ये तीन-तीन भेद हैं और अनन्तानन्तक के जघन्य और मध्यम, ये दो भेद हैं। इस प्रकार कुल ८ भेद होते हैं।

संख्येयक के ३, असंख्येयक के ९ और अनन्तक के ८, कुल २० भेद हुए। यह भावप्रमाण का वर्णन हुआ।

हमने पूर्व पृष्ठो मे सामायिक के चार अनुयोगद्वारो मे से प्रथम अनुयोगद्वार उपक्रम के आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार और समवतार, ये ६ भेद किये थे। उनमे आनुपूर्वी, नाम और प्रमाण पर चिन्तन किया जा चुका है। अवशेष ३ पर चिन्तन करना है।

वक्तव्यता के स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और उभयसमयवक्तव्यता, ये तीन प्रकार हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि स्व-सिद्धान्तो का वर्णन करना स्वसमयवक्तव्यता है। अन्य मतो के सिद्धान्तो की व्याख्या करना परसमयवक्तव्यता है। स्वपर—उभय मतो की व्याख्या करना उभयसमयवक्तव्यता है।

जो जिस अध्ययन का अर्थ है अर्थात् विषय है वही उस अध्ययन का अर्थाधिकार है। उदाहरण के रूप मे, जैसे आवश्यक सूत्र के ६ अध्ययनो का सावद्ययोग से निवृत्त होना ही उसका विषयाधिकार है वही अर्थाधिकार कहलाता है।

समवतार का तात्पर्य यह है कि आनुपूर्वी आदि जो द्वार है उनमे उन-उन विषयो का समवतार करना अर्थात् सामायिक आदि अध्ययनो की आनुपूर्वी आदि पाच बातें विचार कर योजना करना। समवतारनाम के नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसमवतार इस प्रकार छह भेद है। द्रव्यो का स्वगुण की अपेक्षा से आत्मभाव मे अवतीर्ण होना—व्यवहारनय की अपेक्षा से पररूप मे अवतीर्ण होना आदि द्रव्यसमवतार है। क्षेत्र का भी स्व-रूप, पररूप और उभयरूप से समवतार होता है। काल समवतार श्वासोच्छ्वास से संख्यात, असंख्यात और अनन्तकाल (जिसका विस्तार पूर्व मे दे चुके हैं) तक का होता है। भावसमवतार के भी दो भेद है—आत्मभाव-समवतार और तदुभयसमवतार। भाव का अपने ही स्वरूप मे समवतीर्ण होना आत्मभावसमवतार कहलाता है। जैसे—क्रोध का क्रोध के रूप मे समवतीर्ण होना। भाव का स्वरूप और पररूप दोनो मे समवतार होना तदुभय-भावसमवतार है। जैसे—क्रोध का क्रोध के रूप मे समवतार होने के साथ ही मान के रूप मे समवतार होना तदुभयभावसमवतार है।

अनुयोगद्वारसूत्र का अधिक भाग उपक्रम की चर्चा ने रोक रखा है। शेष तीन निक्षेप संक्षेप मे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना ऐसी है कि ज्ञातव्य विषयो का प्रतिपादन उपक्रम मे ही कर दिया है जिससे बाद के विषयो को समझना अत्यन्त सरल हो जाता है।

उपक्रम मे जिन विषयो की चर्चा की गई है उन सभी विषयो पर हम तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करना चाहते थे जिससे कि प्रबुद्ध पाठको को यह परिज्ञात हो सके कि आगमसाहित्य मे अन्य स्थलो पर इन विषयो की चर्चा किस रूप मे है। और परवर्ती साहित्य मे इन विषयो का विकास किस रूप मे हुआ है। पर समयाभाव के कारण हम चाहते हुए भी यहाँ नही कर पा रहे है। 'प्रमाण एक अध्ययन' शीर्षक लेख मे हमने प्रमाण की चर्चा विस्तार से की है, अत जिज्ञासु पाठक उस ग्रन्थ का अवलोकन कर सकते है।[५०]

निक्षेप—यह अनुयोगद्वार का दूसरा द्वार है। निक्षेप जैनदर्शन का एक पारिभाषिक और लाक्षणिक शब्द है। पदार्थबोध के लिए निक्षेप का परिज्ञान बहुत ही आवश्यक है। निक्षेप की अनेक व्याख्याएँ विभिन्न ग्रन्थो मे मिलती है। जीतकल्पभाष्य मे आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है 'नि' शब्द के तीन अर्थ है—ग्रहण, आदान और आधिक्य। 'क्षेप' का अर्थ है—प्रेरित करना। जिस वचनपद्धति मे नि/अधिक क्षेप/विकल्प है, वह निक्षेप है।[५१]

सूत्रकृतागचूर्णि जिनदासगणिमहत्तर ने निक्षेप की परिभाषा इस प्रकार की है—जिसका क्षेप/स्थापन नियत और निश्चित होता है, वह निक्षेप है।[५२] बृहद् द्रव्यसग्रह मे आचार्य नेमिचन्द ने लिखा है, युक्तिमार्ग से प्रयोजनवशात्, जो वस्तु को नाम आदि चार भेदो मे क्षेपण स्थापन करे वह निक्षेप है।[५३] नयचक्र मे आचार्य मल्लिसेन मल्लधारी ने निक्षेप की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—वस्तु का नाम आदि मे क्षेप करने या धरोहर रखना निक्षेप है।[५४] षट्खण्डागम की धवला टीका मे आचार्य वीरसेन ने निक्षेप की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय मे अवस्थित वस्तु को उनसे निकालकर जो निश्चय मे क्षेपण करता है, वह निक्षेप है।[५५] दूसरे शब्दो मे यू कह सकते है, जो अनिर्णीत वस्तु का नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव द्वारा निर्णय कराये वह निक्षेप है। इसे यो भी कह सकते है—अप्रकृत का निराकरण करके प्रकृत का निरूपण करना निक्षेप है।

---

५० जैनदर्शन स्वरूप और विश्लेषण, पृष्ठ ३७६ से ४०५। —लेखक देवेन्द्र मुनि शास्त्री

५१ गहण आदाण ति होति णिसद्दो तहाहियत्थम्मि।
खिव पेरणे व भणितो अहिउक्खेवो तु णिक्खेवो॥
—जीतकल्पभाष्य ८०९ (बबलचन्द्र केशवलाल मोदी, अहमदाबाद)

५२ निक्षिप्यतेऽनेनेति निक्षेप ।
नियतो निश्चितो क्षेपो निक्षेप ॥ —सूत्रकृतागचूर्णि १, पृष्ठ १७

५३ जुत्ती सुजुत्तमग्गे ज चउभेयेण होइ खलु ठवण।
वज्जे सदि णामादिसु त णिक्खेव हवे समये॥ —बृहद्नयचक्र २६९

५४ वस्तु नामादिषु क्षिपतीति निक्षेप । —नयचक्र ४८

५५ सशयविपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितस्तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेप ।
—धवला ४।१, ३, १।२।६

अर्थात् शब्द का अर्थ मे और अर्थ का शब्द मे आरोप करना यानी शब्द और अर्थ को किसी एक निश्चित अर्थ में स्थापित करना निक्षेप है।[५६]

संक्षिप्त मे सार यह है कि जिसके द्वारा वस्तु का ज्ञान या उपचार से वस्तु मे जिन प्रकारो से आक्षेप किया जाय वह निक्षेप है। क्षेपणक्रिया के भी दो प्रकार है, प्रस्तुत अर्थ का बोध कराने वाली शब्दरचना और दूसरा प्रकार है अर्थ का शब्द मे आरोप करना। क्षेपणक्रिया वक्ता के भावविशेष पर आधृत है।

आचार्य उमास्वाति ने निक्षेप का पर्यायवाची शब्द न्यास दिया है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मे 'न्यासो निक्षेप'[५७] के द्वारा स्पष्टीकरण किया है। नाम आदि के द्वारा वस्तु मे भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं।[५८]

निक्षेप के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार प्रकार है। प्रस्तुत द्वार मे निक्षेप के ओघनिष्पन्ननिक्षेप, नामनिष्पन्ननिक्षेप और सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप—इस प्रकार तीन भेद किये हैं। ओघनिष्पन्ननिक्षेप, अध्ययन, अक्षीण, आय और क्षपणा के रूप मे चार प्रकार का है। अध्ययन के नामाध्ययन, स्थापनाध्ययन, द्रव्याध्ययन और भावाध्ययन—ये चार भेद है। अक्षीण के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—ये चार भेद हैं। इन चार मे भावाक्षीणता के आगमत भावाक्षीणता और नोआगमत भावाक्षीणता कहलाती है। जो व्यय करने पर भी किञ्चिन्मात्र भी क्षीण न हो वह नोआगमत भावाक्षीणता कहलाती है। जैसे—एक जगमगाते दीपक से शताधिक दीपक प्रज्वलित किये जा सकते है, किन्तु उससे दीपक की ज्योति क्षीण नही होती वैसे ही आचार्य श्रुत का दान देते है। वे स्वय भी श्रुतज्ञान से दीप्त रहते है और दूसरो को भी प्रदीप्त करते है। साराश यह है कि श्रुत का क्षीण न होना भावाक्षीणता है।

आय के नाम, स्थापनादि चार भेद हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र का लाभ प्रशस्त आय है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की प्राप्ति अप्रशस्त आय है।

क्षपणा के नाम, स्थापनादि चार भेद है। क्षपणा का अर्थ निर्जरा, क्षय है। क्रोधादि का क्षय होना प्रशस्त क्षपणा है। ज्ञानादि का नष्ट होना अप्रशस्त क्षपणा है।

ओघनिष्पन्ननिक्षेप के विवेचन के पश्चात् नामनिष्पन्ननिक्षेप का विवेचन करते हुए कहा है—जिस वस्तु का नामनिक्षेपनिष्पन्न हो चुका है उसे नामनिष्पन्ननिक्षेप कहते है, जैसे सामायिक। इसके भी नामादि चार भेद हैं। भाव-सामायिक का विवेचन विस्तार से किया है और भावसामायिक करने वाले श्रमण का आदर्श प्रस्तुत करते हुए बताया है—जिसकी आत्मा सभी प्रकार से सावद्य व्यापार से निवृत्त होकर मूलगुणरूप सयम, उत्तरगुणरूप नियम तथा तप आदि मे लीन है उसी को भावसामायिक का अनुपम लाभ प्राप्त होता है। जो त्रस और स्थावर सभी प्राणियो को आत्मवत् देखता है, उनके प्रति समभाव रखता है वही सामायिक का सच्चा अधिकारी है। जिस प्रकार मुझे दु ख प्रिय नही है, वैसे ही अन्य प्राणियो को भी दु ख प्रिय नहीं है, ऐसा जानकर जो न किसी अन्य प्राणी का हनन करता है, न करवाता है और न करते हुए की अनुमोदना ही करता है वह श्रमण है, आदि।

---

५६ णिच्छए णिण्णए खिवदि त्ति णिक्खेओ। —धवला पु १, पृ. १०

५७ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास। —तत्त्वार्थसूत्र १।५

५८ उपायो न्यास उच्यते। —धवला १।१।१।१, गा ११।१७

सूत्रालापक निक्षेप वह है जिसमे 'करेमि भते सामाइय' आदि पदो का नामादि भेदपूर्वक व्याख्यान किया जाता है। इसमे सूत्र का शुद्ध और स्पष्ट रूप से उच्चारण करने की सूचना दी है।

अनुयोगद्वार का तृतीय द्वार अनुगम है। उत्तराध्ययनचूर्णि मे अनुगम की व्याख्या इस प्रकार की गई है—जिसके द्वारा सूत्र का अनुसरण अथवा सूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण किया जाता है, वह अनुगम/व्याख्या है।[५९] अनुयोगद्वारचूर्णि मे अनुगम की व्याख्या इस प्रकार मिलती है—अर्थ से सूत्र अणु अर्थात् लघु होता है, उसके अनुरूप गमन करना अनुगम है।[६०] दूसरे शब्दो मे यो भी कह सकते हैं कि सूत्र और अर्थ के अनुकूल गमन करना अनुगम है।[६१] अनुयोगद्वार मलधारीय टीका मे अनुगम की परिभाषा इस रूप मे मिलती है—सूत्र पढने के पश्चात् गमन/व्याख्यान करना अनुगम है। जिसके द्वारा सूत्रानुसारी ज्ञान होता है, वह अनुगम है।[६२] अनुगम के सूत्रानुगम और निर्युक्त्यनुगम, ये दो भेद हैं। निर्युक्त्यनुगम के तीन भेद हैं— निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम और सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम। इसमे निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम का विवेचन किया जा चुका है। उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम के उद्देश, निर्देश, निर्गम आदि छब्बीस भेद बताये है। सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम का अर्थ है—अस्खलित, अमिलित, अन्य सूत्रो के पाठो से असयुक्त, प्रतिपूर्ण घोषयुक्त, कण्ठ—ओष्ठ से विप्रमुक्त तथा गुरुमुख से ग्रहण किये हुए उच्चारण से युक्त सूत्रो के पदो का स्वसिद्धान्त के अनुरूप विवेचन करना।

अनुयोगद्वार का चौथा द्वार नय है। नय जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जो वस्तु का बोध कराते हैं वे नय है।[६३] वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वस्तु के उन सम्पूर्ण धर्मों का यथार्थ और प्रत्यक्ष ज्ञान केवल सर्वज्ञ-सर्वदर्शी को ही हो सकता है। पर सामान्य मानव मे वह सामर्थ्य नही है। सामान्य मानव एक समय में कुछ धर्मों का ही ज्ञान कर पाता है। यही कारण है कि उसका ज्ञान आशिक है, आशिक ज्ञान को नय कहते है। यह स्मरण रखना होगा, प्रमाण और नय ये दोनो ज्ञानात्मक है। किन्तु दोनो मे अन्तर यही है कि प्रमाण सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान कराता है तो नय वस्तु के एक अश का ज्ञान कराता है। प्रमाण को सकलादेश और नय को विकलादेश कहा है। सकलादेश मे वस्तु के समस्त धर्मों की विवक्षा होती है पर विकलादेश मे एक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों की विवक्षा नही होती। विकलादेश को सम्यक् इसीलिए माना जाता है कि वह जिस धर्म की विवक्षा करता है उसके अतिरिक्त अन्य धर्मों का प्रतिषेध नही करता किन्तु उन धर्मों की उपेक्षा करता है।

वक्ता के अभिप्राय की दृष्टि से नय का लक्षण इस प्रकार है—विरोधी धर्मों का निषेध न करते हुए वस्तु के एक अश या धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय नय है।[६४] दूसरे शब्दो मे अनेकान्तात्मक वस्तु मे विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्यविशेष की यथार्थता को प्राप्त कराने मे समर्थ शब्दप्रयोग नय है।[६५] जितने वचन

---

५९ अनुगम्यतेऽनेनार्थिमश्चेति अनुगम । —उत्तराध्ययनचूर्णि, पृष्ठ ९

६० अत्थातो सुत्त अणु, तस्स अणुरूवगमणत्ताओ अनुगमो। —अनुयोगद्वारचूर्णि, पृष्ठ १८

६१ सूत्रार्थानुकूलगमन वा अनुगम । —अनुयोगद्वारचूर्णि, पृष्ठ २३

६२ सूत्रपठनादनु पश्चाद् गमन—व्याख्यानमनुगम ।
अनुसूत्रमर्थो गम्यते-ज्ञायते अनेनेत्यनुगम ॥ —अनुयोगद्वार मल्लधारी टीका, पत्रा ५४

६३ नयति गमयति प्राप्नुवति वस्तु ये ते नया । —उत्तराध्ययनचूर्णि, पृष्ठ २३४

६४ प्रमेयकमलमार्तण्ड। —पृष्ठ ६७६

६५ सर्वार्थसिद्धि। —१।३३

के प्रकार हैं, उतने ही नय भी हैं।[66] इस तरह नय के अनन्त भेद हो सकते हैं। तथापि उनका समाहार करते हुए और समझने की सरलता की दृष्टि से उन सब वचन-पक्षो को अधिक से अधिक सात भेदो मे विभाजित कर दिया है। अनुयोगद्वार मे सात नयो का वर्णन है। १. नैगमनय, २ सग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजुसूत्रनय, ५ शब्द-नय, ६. समभिरूढनय ७. एव भूतनय। ठाणांग[67] और प्रज्ञापना[68] मे भी सात नयो का वर्णन है। सात नयो मे शब्द समभिरूढ और एवभूत ये तीन शब्दनय हैं[69] और नैगम, सग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थनय हैं। तीन शब्द को विषय कहते है, अत शब्दनय है और शेष चार अर्थ को अपना विषय बनाते हैं इसलिये अर्थनय है।

सामान्य और विशेष आदि अनेक धर्मो को ग्रहण करने वाला अभिप्राय नैगमनय है।[70] प्रस्तुत नय सत्तारूप सामान्य को द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व रूप अवान्तर सामान्य को असाधारण रूप विशेष तथा पररूप से व्यावृत्त और सामान्य से भिन्न अवान्तर विशेषो को जानता है अथवा दो द्रव्यो मे से, दो पर्यायो मे से तथा द्रव्य और पर्याय मे से किसी एक को मुख्य और दूसरे को गौण करके जानना नैगमनय है।[71] विशेषो की अपेक्षा न करके वस्तु को सामान्य रूप से जानना सग्रहनय है।[72] जैसे—जीव कहने से त्रस, स्थावर प्रभृति सभी प्रकार के जीवो का परिज्ञान होता है, भेद सहित सभी पर्यायो या विशेषो को अपनी जाति के विरोध के बिना एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करने वाला सग्रहनय है।[73] दूसरे शब्दो मे समस्त पदार्थों का सम्यक् प्रकार से एकीकरण करके जो अभेद रूप से ग्रहण करता है, वह सग्रहनय है।[74] अथवा यो भी कह सकते हैं कि व्यवहार की अपेक्षा न करके सत्तादि रूप से सकल पदार्थों का सग्रह करना सग्रहनय है।[75] सग्रहनय से जाने हुए पदार्थों का योग्य रीति से विभाग करने वाला अभिप्राय व्यवहारनय है।[76] सग्रहनय जिस अर्थ को ग्रहण करता है उस अर्थ का विशेष रूप से बोध करने के लिए उसका पृथक्करण आवश्यक होता है। यह सत्य है, सग्रहनय मे सामान्य मात्र का ही ग्रहण होता है तथापि उस सामान्य का रूप क्या है? इसका विश्लेषण करने के लिए व्यवहार की जरूरत होती है। इसलिए सामान्य को भेदपूर्वक ग्रहण करना व्यवहारनय है।[77] वर्तमानकालवर्ती पर्याय को मान्य करने

---

६६ जावइया वयणपहा तावइया चेव होन्ति णयवाया। —सन्मतितर्क, गाथा ४७

६७ सत्त मूलनया प त —नेगमे, सगहे, ववहारे, उज्जुसुते, सद्दे, समभिरूढे, एवभूते। —स्थानाग ७।५५२

६८ से किं त णयगती ? जण्ण णेगमसगहववहारउज्जुसुयसद्दसमभिरूढएवभूयाण नयाण जा गती, अथवा सव्वणया वि ज इच्छति। —प्रज्ञापना, पन्ना १६

६९ तिह सद्दनयाण। —अनुयोगद्वार १४८

७० सामान्यविशेषाद्यनेकधर्मोपनयनपरोऽध्यवसायो नैगम। —जैनतर्कभाषा

७१. णेगेहि माणेहि मिय इत्ति णेगमस्स य निरूत्ती। —अनुयोगद्वारसूत्र

७२ सामान्यमात्रग्राही परामर्श सग्रह। —जैनतर्कभाषा

७३ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपानीय पर्यायानाक्रान्तभेदान् विशेषेण समस्तग्रहणात् सग्रह.। —सर्वार्थसिद्धि १।३३

७४ सममेकीभावसम्यक्त्वे वर्तमानो हि गृह्यते।
निरुक्त्या लक्षण तस्य तथासति विभाव्यते॥ —श्लोकवार्तिक १।३३

७५ व्यवहारमनपेक्ष्य सत्तादिरूपेण सकलवस्तुसग्राहक सग्रहनय। —धवलाखण्ड १३

७६ सग्रहेण गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरण येनाभिसधिना क्रियते स व्यवहार। —जैनतर्कभाषा

७७ सग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु येन व्यवह्रियते इति व्यवहार। —आप्तपरीक्षा ९

वाले—ग्रहण करने वाले अभिप्राय को ऋजुसूत्रनय कहते हैं।[७८] भूतकाल विनष्ट और भविष्यकाल अनुत्पन्न होने से वह केवल वर्तमान कालवर्ती पर्याय को ही ग्रहण करता है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान क्षण की पर्याय को ही प्रधानता देता है। जैसे—मैं इस समय सुख भोग रहा हूँ। यहाँ पर क्षणस्थायी सुखपर्याय को सुख मानकर उस सुखपर्याय का आधार जो आत्मद्रव्य है, उसको गौण कर दिया गया है। पर्यायवाची शब्दो मे भी काल, कारक, लिंग, सख्या, पुरुष और उपसर्ग के भेद से अर्थभेद मानना शब्दनय है।[७९] विभिन्न सयोगो के आधार पर जो शब्दो मे अर्थभेदी कल्पना की जाती है, वह शब्दनय है। पर्यायवाची शब्दो मे भिन्न अर्थ को द्योतित करना निर्युक्ति यानी व्युत्पत्ति के भेद से पर्यायवाची शब्दो के अर्थ मे भेद स्वीकार करने वाला समभिरूढनय है। इन्द्र, शक्र, पुरन्दर, प्रभृति शब्द पर्यायवाची है। तथापि भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति से भिन्न-भिन्न अर्थ को द्योतित करते है। शब्दनय तो समान काल, कारक, लिंग आदि युक्त पर्यायवाची शब्दो का एक ही अर्थ मानता है। किन्तु कारक आदि का भेद होने पर ही पर्याय-वाची शब्दो मे अर्थभेद स्वीकार करता है। पर कारक आदि का भेद न होने पर पर्यायवाची शब्दो मे अभिन्न अर्थ मानता है पर समभिरूढनय तो पर्यायभेद होने से ही उन शब्दो मे अर्थभेद मानता है।[८०] जिस समय पदार्थों मे जो क्रिया होती है, उस समय क्रिया के अनुकूल शब्दो से अर्थ के प्रतिपादन करने को एवभूतनय कहते है।[८१] जैसे—ऐश्वर्य का अनुभव करते समय इन्द्र, समर्थ होने के समय शक्र और नगरो का नाश करते समय पुरन्दर कहना। एवभूतनय निश्चय प्रधान है, शब्दो की जो व्युत्पत्ति है उस व्युत्पत्ति की निमित्तभूतक्रिया जब पदार्थ मे होती है तब वह पदार्थ को उस शब्द का वाच्य मानता है। इस प्रकार सातो नय पूर्व-पूर्व नय से उत्तर-उत्तर नयो का विषय सूक्ष्म होता चला गया। नैगमनय सामान्य और विशेष भेद-अभेद दोनो को ग्रहण करता है। जबकि सग्रहनय की दृष्टि उससे सकीर्ण है, वह सामान्य और अभेद को विषय करता है। सग्रहनय से भी व्यवहारनय का विषय कम है। सग्रहनय जहाँ समस्त सामान्य पदार्थों को जानता है, और व्यवहारनय सग्रह से जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से ग्रहण करता है। ऋजुसूत्रनय का विषय व्यवहारनय से कम है, चूकि व्यवहारनय त्रैकालिक विषय की सत्ता को मानता है। जबकि ऋजुसूत्रनय से वर्तमान पदार्थ का ही परिज्ञान होता है। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा शब्दनय का विषय कम है। क्योकि शब्दनय काल आदि के भेद से वर्तमान पर्याय मे भी भेद स्वीकार करता है। शब्दनय वर्तमान पर्याय के वाचक विविध पर्यायवाची शब्दो मे से काल, लिंग, सख्या, पुरुष आदि व्याकरण सम्बन्धी विषमताओ का निराकरण करके केवल समान काल, लिंग आदि शब्दो को एकार्थवाची मानना है। जबकि ऋजुसूत्रनय मे काल आदि का भेद नही होता। शब्दनय से भी समभिरूढ का विषय कम है। वह पर्याय और व्युत्पत्तिभेद से अर्थभेद मानता है। जबकि शब्दनय पर्यायवाची शब्दो मे किसी भी प्रकार का भेद नही मानता। समभिरूढनय इन्द्र, शक्र आदि एकार्थवाची शब्दो को भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से भिन्न अर्थवाची मानता है। वह किसी एक ही शब्द को वाचक रूप मे रूढ करता है। पर वह सूक्ष्मता शब्दनय मे नही है। एवभूतनय का विषय समभिरूढनय से भी न्यून है। वह अर्थ को भी उस शब्द का वाच्य तभी मानता है, जब अर्थ अपनी

---

७८ (क) ऋजु वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्र प्राधान्यत सूत्रयन्नभिप्राय ऋजुसूत्र ।

(ख) पच्चुप्पन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेअव्वो। —जैनतर्कभाषा

७९ कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेद प्रतिपद्यमान शब्द । कालकारकलिंगसख्यापुरुषोपसर्गा कालादय ।

—जैनतर्कभाषा

८०. पर्यायशब्देषु निर्युक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढ । —जैनतर्कभाषा

८१ येनात्मनाभूतस्तेनैवाध्यवसायतीति एवभूत । —सर्वार्थसिद्धि १।३३

व्युत्पत्ति मूलक्रिया में लगा हो। सारांश यह है, पूर्व-पूर्व नय की अपेक्षा उत्तर-उत्तर नय सूक्ष्म और सूक्ष्मतर विषय वाला होता है, और उत्तर-उत्तर नय का विषय पूर्व-पूर्व नय के विषय पर ही आधृत है; और प्रत्येक का विषय क्षेत्र उत्तरोत्तर न्यून होने से इनका परस्पर मे पौर्वापर्य सम्बन्ध है। नयद्वार के विवेचन के साथ ही चारो प्रकार के अनुयोगद्वार का वर्णन पूर्ण होता है।

इस प्रकार अनुयोगद्वारसूत्र मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण जैन पारिभाषिक शब्द-सिद्धान्तो का विवेचन है। उपक्रम-निक्षेप शैली की प्रधानता और साथ ही भेद-प्रभेद की प्रचुरता होने से यह आगम ग्रन्थ आगमो से क्लिष्ट है तथापि जैनदर्शन के रहस्य को समझाने के लिए यह अतीव उपयोगी है। जैनआगम की प्राचीन चूर्णि-टीकाओ के प्रारम्भ के भाग को देखने हुए ज्ञात होता है कि समग्र निरूपण मे वही पद्धति अपनाई गई है जो अनुयोगद्वार मे है। यह सिर्फ श्वेताम्बरसम्मत जैन आगमो की टीकाओ पर ही नही लागू होता वरन् दिगम्बरो ने भी यह पद्धति अपनाई है। इसका प्रमाण दिगम्बरसम्मत षट्खण्डागम आदि प्राचीन शास्त्रो की टीका से मिलता है। इससे इसकी प्राचीनता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अनुयोगद्वार मे सास्कृतिक सामग्री भी प्रचुर मात्रा मे है। सगीत के सात स्वर, स्वरस्थान, गायक के लक्षण, ग्राम, मूर्च्छनाएँ, सगीत के गुण और दोष, नवरस, सामुद्रिक लक्षण, १०८ अगुल के माप वाले, शखादि चिह्न वाले, मस, तिल आदि व्यजन वाले उत्तम पुरुष आदि बताये गये हैं। निमित्त के सम्बन्ध मे भी प्रकाश डाला है, जैसे—आकाशदर्शन और नक्षत्रादि के प्रशस्त होने पर सुवृष्टि और अप्रशस्त होने पर दुर्भिक्ष आदि। इस तरह इसमे सास्कृतिक व सामाजिक वर्णन भी किया गया है।[८२]

अनुयोगद्वार के रचयिता या सकलनकर्त्ता आर्यरक्षित माने जाते हैं। आर्यरक्षित से पहले यह पद्धति थी कि आचार्य अपने मेधावी शिष्यो को छोटे-बडे सभी सूत्रो की वाचना देते समय चारो अनुयोगो का बोध करा देते थे। उस वाचना का क्या रूप था? वह आज हमारे समक्ष नही है, तथापि इतना कहा जा सकता है कि वे वाचना देते समय प्रत्येक सूत्र पर आचारधर्म, उसके पालनकर्त्ता, उनके साधन-क्षेत्र का विस्तार और नियमग्रहण की कोटि एव भग आदि का वर्णन कर सभी अनुयोगो का एक साथ बोध कराते थे। इसी वाचना को अपृथक्त्वानुयोग कहा गया है। आचार्य मलयगिरि ने लिखा है कि जब चरणकरणानुयोग आदि चारो अनुयोगो का प्रत्येक सूत्र पर विचार किया जाय तो वह अपृथक्त्वानुयोग है। अपृथक्त्वानुयोग मे विभिन्न नयदृष्टियो का अवतरण किया जाता है और उसमे प्रत्यक सूत्र पर विस्तार से चर्चा की जाती है।[८३]

आर्य वज्रस्वामी तक कालिक आगमो के अनुयोग (वाचना) मे अनुयोगो का अपृथक्त्व रूप रहा। उसके पश्चात् आर्यरक्षित ने कालिक श्रुत और दृष्टिवाद के पृथक् अनुयोग की व्यवस्था की।[८४] कारण कि आर्यरक्षित के धर्मशासन मे ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी और वादी सभी प्रकार के सन्त थे। उन शिष्यो मे पुष्यमित्र के तीन विशिष्ट महामेधावी शिष्य थे। उनमे से एक का नाम दुर्बलिकापुष्यमित्र, दूसरे का घृतपुष्यमित्र और तीसरे का वस्त्रपुष्यमित्र था। घृतपुष्यमित्र और वस्त्रपुष्यमित्र की लब्धि का यह प्रभाव था कि प्रत्येक गृहस्थ के घर से श्रमणो को घृत और वस्त्र सहर्ष उपलब्ध होते थे। दुर्बलिकापुष्यमित्र निरन्तर स्वाध्याय मे तल्लीन रहते थे।

---

८२ 'नन्दीसुत्त अनुयोगदाराइ' की प्रस्तावना। —पृष्ठ ५२ से ७०

८३ अपुहुत्तमेगभावो सुत्ते सुत्ते सुवित्थर जत्थ।
भन्नतणुओगा चरणधम्मसखाणदव्वाण॥ —आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ ३८३

८४ जावति अज्जवइरा अपुहुत्त कालियाणुओगे य।
तेणारेण पुहुत्त कालियसुय दिट्ठिवाये य॥ —(वही)

आर्यरक्षित के अन्य मुनि, विन्ध्य, फल्गुरक्षित, गोष्ठामाहिल प्रतिभासम्पन्न शिष्य थे। उन्हें जितना सूत्रपाठ आचार्य से प्राप्त होता था उससे उन्हे सन्तोष नही होता था, अत उन्होने एक पृथक् वाचनाचार्य की व्यवस्था के लिए प्रार्थना की। आचार्य ने दुर्बलिकापुष्यमित्र को इसके लिए नियुक्त किया। कुछ दिनो के पश्चात् दुर्बलिका-पुष्यमित्र ने आचार्य से निवेदन किया कि वाचना देने मे समय लग जाने के कारण मैं पठित ज्ञान का पुनरावर्तन नही कर पाता, अत विस्मरण हो रहा है। आचार्य को आश्चर्य हुआ कि इतने मेधावी शिष्य की भी यह स्थिति है। अत उन्होंने प्रत्येक सूत्र के अनुयोग पृथक्-पृथक् कर दिये। अपरिणामी और अतिपरिणामी शिष्य नय दृष्टि का मूलभाव नही समझ कर कही कभी एकान्त ज्ञान, एकान्त क्रिया, एकान्त निश्चय अथवा एकान्त व्यवहार को ही उपादेय न मान लें तथा सूक्ष्म विषय मे मिथ्याभाव नही ग्रहण करें, एतदर्थ नयो का विभाग नही किया।[८५]

अनुयोगद्वार का रचना समय वीर निर्वाण सवत् ८२७ से पूर्व माना गया है और कितने ही विद्वान् उसे दूसरी शताब्दी की रचना मानते हैं। आगमप्रभावक पुण्यविजयजी महाराज आदि का यह मन्तव्य है कि अनुयोग का पृथक्करण तो आचार्य आर्यरक्षित ने किया किन्तु अनुयोगद्वारसूत्र की रचना उन्होने ही की हो ऐसा निश्चित रूप से नही कह सकते।

व्याख्या साहित्य

मूल ग्रन्थ के रहस्य का समुद्घाटन करने हेतु अतीतकाल से उस पर व्याख्यात्मक साहित्य लिखा जाता रहा है। व्याख्यात्मक लेखक मूल ग्रन्थ के अभीष्ट अर्थ का विश्लेषण तो करता ही है, साथ ही उस सम्बन्ध मे अपना स्वतन्त्र चिन्तन भी प्रस्तुत करता है। प्राचीनतम जैन व्याख्यात्मक साहित्य मे आगमिक व्याख्याओ का गौरवपूर्ण स्थान है। उस व्याख्यात्मक साहित्य को पाँच भागो मे विभक्त किया जा सकता है। (१) निर्युक्तियाँ (निज्जुत्ति), (२) भाष्य (भास), (३) चूर्णियाँ (चुण्णि), (४) सस्कृत टीकाएँ और (५) लोक-भाषाओ मे रचित व्याख्याएँ।

निर्युक्तियाँ और भाष्य ये जैन आगमो की प्राकृत पद्य-बद्ध टीकाएँ हैं जिनमे विशेष रूप से पारिभाषिक शब्दो की व्याख्याएँ की गई हैं। इस व्याख्याशैली का दर्शन हमे अनुयोगद्वारसूत्र मे होता है। पर अनुयोगद्वार पर न निर्युक्ति लिखी गई है और न कोई भाष्य ही लिखा गया है। अनुयोगद्वार पर सबसे प्राचीन व्याख्या चूर्णि है। चूर्णियाँ प्राकृत अथवा सस्कृतमिश्रित प्राकृत मे लिखी गई व्याख्याएँ हैं। गद्यात्मक होने के कारण चूर्णियो मे भावनाभिव्यक्ति निर्बाध गति से हो पाई है। वह भाष्य और निर्युक्ति की अपेक्षा अधिक विस्तृत और चतुर्मुखी ज्ञान का स्रोत है। अनुयोगद्वार पर दो चूर्णियाँ उपलब्ध हैं। एक चूर्णि के रचयिता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण हैं, जो केवल अगुल पद पर है। दूसरी अनुयोगद्वारचूर्णि के रचयिता जिनदासगणिमहत्तर हैं वे सस्कृत और प्राकृत के अधिकारी विज्ञ थे। इनके गुरु का नाम गोपालगणि था, जो वाणिज्यकुलकोटिक गण और वज्रशाखा के

---

८५ (क) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पृष्ठ ३९९
(ख) प्रभावकचरित्र २४०-२४३, पृष्ठ १७
(ग) ऋषिमण्डल स्तोत्र २१०

विद्वान् थे[८६] और उनके विद्यागुरु प्रद्युम्नक्षमाश्रमण थे।[८७] उनके पिता का नाम नाग था[८८] और माता का नाम गोपा था।[८९]

जिनदासमहत्तर के जीवन के सम्बन्ध मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही है। नन्दीचूर्णि के अन्त में उन्होंने जो अपना परिचय दिया है, वह बहुत ही अस्पष्ट है।[९०] उत्तराध्ययनचूर्णि मे उन्होने अपने गुरु के नाम का एवं कुल, गण और शाखा का उल्लेख किया है, पर स्वय के नाम का उल्लेख नही किया।[९१] निशीथचूर्णि के प्रारम्भ मे उन्होंने प्रद्युम्न क्षमाश्रमण का विद्यागुरु के रूप मे उल्लेख किया है। निशीथचूर्णि के अन्त मे उन्होंने अपना परिचय रहस्य शैली मे दिया है। वे लिखते हैं, अकारादि स्वरप्रधान वर्णमाला को एक वर्ग मानने पर अवर्ग से सवर्ग तक आठ वर्ग बनते हैं। प्रस्तुत क्रम से तृतीय 'च' वर्ग का तृतीय अक्षर 'ज', चतुर्थ 'ट' वर्ग का पचम अक्षर 'ण', पचम 'त' वर्ग का तृतीय अक्षर 'द', अष्टम वर्ग का तृतीय अक्षर 'स' तथा प्रथम 'अ' वर्ग की मात्रा 'इकार' द्वितीय मात्रा 'आकार' को क्रमश 'ज' और 'द' के साथ मिला देने पर जो नाम होता है, उसी नाम को धारण करने वाले व्यक्ति ने प्रस्तुत चूर्णि का निर्माण किया है।[९२]

अनुयोगद्वारचूर्णि के रचयिता जिनदासगणिमहत्तर ही हैं। उनका समय विक्रम सवत् ६५० से ७५० के मध्य है। क्योकि नन्दीचूर्णि की रचना वि स ७३३ मे हुई है।

अनुयोगद्वारचूर्णि मूल सूत्र का अनुसरण करते हुए लिखी गई है। इस चूर्णि मे प्राकृत भाषा का ही मुख्य रूप से प्रयोग हुआ है। सस्कृत भाषा का प्रयोग अति अल्प मात्रा मे हुआ है। इसमे आराम, उद्यान, शिबिका प्रभृति शब्दो की व्याख्या है। प्रारम्भ मे मगल के सम्बन्ध मे भावनन्दी का स्वरूपविश्लेषण करते हुए ज्ञान के

---

८६ वाणिजकुलसभूतो कोडियगणितो य वज्जसाहीतो।
गोवालियमहत्तरओ विक्खातो आसि लोगम्मि॥
ससमय-परसमयविऊ ओयस्सी देहिग सुगभीरो।
सीसगणसपरिवुडो वक्खाणरतिप्पियो आसी॥
तेसिं सीसेण इम उत्तज्झयणाण चुण्णिखड तु।
रइय अणुग्गहत्थ सीसाण मदबुद्धीण॥ —उत्तराध्ययनचूर्णि-१-२, ३, गाथा

८७ सविसेसायरजुत्त काउ पणाम च अत्थदायिस्स।
पज्जुण्णखमासमणस्स चरण-करणाणुपालस्स॥ —निशीथविशेषचूर्णि, पीठिका २

८८ सकरजडमउडविभूसणस्स तण्णामसरिसणामस्स।
तस्स सुतेणेस कता विसेसचुण्णी णिसीहस्स॥ —निशीथविशेषचूर्णि, उद्देशक १३

८९ रविकरमभिधाणक्खरसत्तमवग्गत-अक्खरजुएण।
णाम जस्सित्थिए सुतेण तिसे कया चुण्णी॥ —निशीथविशेषचूर्णि, उद्देशक १५

९० णि रे ण ग म त ण ह स दा जि या पसुपतिसखगजट्ठिताकुला।
कमट्ठिता धीमतचिंतियक्खरा फुड कहेयतऽभिधाण कत्तुणो॥ —नन्दीचूर्णि १

९१ उत्तराध्ययनचूर्णि १, २, ३

९२ ति चउ पण अट्ठमवग्गे ति तिग अक्खरा व तेसिं।
पढमततिएही तिदुसरजुएही णाम कय जस्स॥ —निशीथचूर्णि

पाच भेदो पर चिन्तन न कर यह लिखा है कि इस पर हम नन्दीचूर्णि मे व्याख्या कर चुके है। अत उसका अवलोकन करने हेतु प्रबुद्ध पाठको को सूचन किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि अनुयोगद्वारचूर्णि, नन्दीचूर्णि के पश्चात् लिखी गई। अनुयोगविधि और अनुयोगार्थ पर चिन्तन करते हुए आवश्यक पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आनुपूर्वी पर विवेचन करते हुए कालानुपूर्वी का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए उन्होने पूर्वांगो का परिचय दिया है। सप्त स्वरो का सगीत की दृष्टि से गहराई से चिन्तन किया है। वीर, शृ गार, अद्भुत, रौद्र, व्रीडनक, वीभत्स, हास्य, करुण और प्रशान्त इन नौ रसो का सोदाहरण निरूपण है। आत्मागुल, उत्सेधागुल, प्रमाणागुल, कालप्रमाण, मनुष्य आदि प्राणियो का प्रमाण गर्भज आदि मानवो की सख्या आदि पर विवेचन किया गया है। ज्ञान और प्रमाण, सख्यात-असख्यात, अनन्त आदि विषयो पर भी चूर्णिकार ने प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, जो सुप्रसिद्ध भाष्यकार रहे है, जिन्होने अनुयोगद्वार के अगुल पद पर एक चूर्णि लिखी थी, उस चूर्णि को जिनदासगणिमहत्तर ने अक्षरश उद्धृत किया है।[९३] प्रस्तुत चूर्णि मे आचार्य ने अपना नाम भी दिया है।[९४]

चूर्णि के पश्चात् जैन मनीषियो ने आगम साहित्य पर सस्कृत मे अनेक टीकाएँ लिखी है। टीकाकारो मे आचार्य हरिभद्रसूरि का नाम सर्वप्रथम है। वे प्राचीन टीकाकार है। हरिभद्रसूरि प्रतापपूर्ण प्रतिभा के धनी आचार्य थे। उन्होने अनेक आगमो की टीकाएँ लिखी है। अनुयोगद्वार पर भी उनकी एक महत्त्वपूर्ण टीका है, जो अनुयोगद्वारचूर्णि की शैली पर लिखी गई है। टीका के प्रारम्भ मे उन्होने सर्वप्रथम श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार कर अनुयोगद्वार पर विवृत्ति लिखने की प्रतिज्ञा की है।[९५] अनुयोगवृत्ति का नाम उन्होने शिष्यहिता दिया है। इस वृत्ति की रचना नन्दी विवरण के पश्चात् हुई है।[९६] मगल आदि शब्दो का विवेचन नन्दीवृत्ति मे हो जाने के कारण इसमे विवेचन नही किया है, ऐसा टीकाकार का मत है। आवश्यक शब्द पर निक्षेपपद्धति से चिन्तन किया है। श्रुत पर निक्षेपपद्धति से विचार कर टीकाकार ने चतुर्विध श्रुत के स्वरूप को आवश्यक विवरण से समझाने का सूचन किया है। स्कन्ध, उपक्रम आदि को भी निक्षेप की दृष्टि से समझाने के पश्चात् विस्तार के साथ आनुपूर्वी का प्रतिपादन किया है। आनुपूर्वी के अनुक्रम, अनुपरिपाटी, ये पर्यायवाची बताये है। आनुपूर्वी के पश्चात् द्विनाम से लेकर दशनाम तक का व्याख्यान किया गया है। प्रमाण पर चिन्तन करते हुए विविध अगुलो के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है और समय से लेकर पल्योपम-सागरोपम तक का वर्णन किया गया है। भावप्रमाण के वर्णन मे प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य, आगम, दर्शन, चारित्र नय और सख्या पर विचार किया है। ज्ञाननय और क्रियानय के समन्वय की उपयोगिता सिद्ध की गई है।[९७]

---

९३ गणधरवाद प दलसुख मालवणिया, पृष्ठ २११

९४ श्री श्वेताम्बराचार्य श्री जिनदासगणिमहत्तर-
पूज्यपादानामनुयोगद्वाराणा चूर्णि —अनुयोगद्वारचूर्णि

९५ प्रणिपत्य जिनवरेन्द्र त्रिदशेन्द्रनरेन्द्रपूजित वीरम्।
अनुयोगद्वाराणा प्रकटार्थां विवृत्तिमभिधास्ये ॥ —अनुयोगद्वारवृत्ति १

९६ नन्द्यध्ययनव्याख्यानसमनन्तरमेवानुयोगद्वाराध्ययनावकाश । —अनुयोगद्वारवृत्ति, पृष्ठ १

९७ विज्ञप्ति फलदा पुमा, न क्रिया फलदा मता।
मिथ्याज्ञानात्प्रवृत्तस्य, फलासवाददर्शनात् ॥
क्रियैव फलदा पुमा, न ज्ञान फलद मतम्।
यत स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितो भवेत् ॥ —अनुयोगद्वारवृत्ति, पृष्ठ १२६, १२७

अनुयोगद्वार पर दूसरी वृत्ति मलधारी आचार्य हेमचन्द्र की है। आचार्य हेमचन्द्र महान् प्रतिभा-सम्पन्न और आगमो के समर्थ ज्ञाता थे। यह वृत्ति सूत्रस्पर्शी है। सूत्र के गुरु गम्भीर रहस्यो को इसमे प्रकट किया गया है। वृत्ति के प्रारम्भ मे श्रमण भगवान् महावीर को, गणधर गौतम प्रभृति आचार्यवर्ग को एव श्रुत देवता को नमस्कार किया गया है।

वृत्तिकार ने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि प्राचीन मेधावी आचार्यों ने चूर्णि व टीकाओ का निर्माण किया है। उनमे उन आचार्यों का प्रकाण्ड पाण्डित्य झलक रहा है। तथापि मैने मन्दबुद्धि व्यक्तियो के लिए इस पर वृत्ति लिखी है। यह वृत्ति ग्रन्थकार की प्रौढ रचना है। कृति के अध्ययन से ग्रन्थकार की गहन अध्ययन-शीलता का अनुभव होता है। आगम के मर्मस्पर्शी विवेचन से यह स्पष्ट है कि आचार्य आगम के एक मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनकी प्रस्तुत वृत्ति अनुयोगद्वार की गहनता को समझाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य हरिभद्र की टीका अत्यन्त सक्षिप्त थी और वह मुख्य रूप से प्राकृत चूर्णि का ही अनुवाद थी। आचार्य हेमचन्द्र ने सुविस्तृत टीका लिखकर पाठको के लिए अनुयोगद्वार को सरल और सुग्राह्य बना दिया है। वृत्ति मे यत्र-तत्र अन्य ग्रन्थो के श्लोक उद्धृत किए गये है। वृत्ति का ग्रन्थमान ५९०० श्लोक प्रमाण है। पर वृत्ति मे रचना के समय का कोई उल्लेख प्राप्त नही है।

सस्कृत टीका युग के पश्चात् लोक भाषाओ मे बालावबोध की रचनाएँ प्रारम्भ हुई, क्योकि टीकाओ मे दार्शनिक विषयो की चर्चाएँ चरम सीमा पर पहुँच गई थी। जनसाधारण उन विषयो को सहज रूप से नही समझ सकता था, अत जनहित की दृष्टि से आगमो के शब्दार्थ करने वाले सक्षिप्त लोकभाषाओ मे टब्बाओ का निर्माण किया। स्थानकवासी आचार्य मुनि धरमसिंहजी ने विक्रम की अठारहवी शताब्दी मे सत्ताईस आगमो पर बालावबोध टब्बे लिखे। टब्बे मूलस्पर्शी अर्थ को स्पर्श करते हैं। सामान्य व्यक्तियो के लिए ये बहुत ही उपयोगी है। अनुयोगद्वार पर भी एक टब्बा लिखा हुआ है।

टब्बा के पश्चात् आगमो का अनुवादयुग प्रारम्भ हुआ। आचार्य अमोलक ऋषिजी म ने स्थानकवासी परम्परामान्य बत्तीस आगमो का हिन्दी अनुवाद किया। उसमे अनुयोगद्वार भी एक है। यह अनुवाद सामान्य पाठको के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। श्रमण सघ के प्रथम आचार्य आत्मारामजी म ने आगमो के रहस्यो को समुद्घाटित करने हेतु अनेक आगमो पर हिन्दी मे व्याख्याएँ लिखी। वे व्याख्याएँ सरल, सरस और सुगम है। उन्होने अनुयोगद्वार पर भी सक्षिप्त मे विवेचन लिखा।

स्थानकवासी परम्परा के आचार्य घासीलालजी म ने सस्कृत मे विस्तृत टीकाएँ लिखी। उन टीकाओ का हिन्दी और गुजराती म अनुवाद भी किया। प्राय उनके रचित बत्तीस आगमो की टीकाएँ मुद्रित हो चुकी है। लेखक ने अनेक ग्रन्थो के उद्धरण भी दिये है।

इस प्रकार अनुयोगद्वारसूत्र पर अनेक मूर्धन्य मनीषियो ने कार्य किया है। जब प्रकाशनयुग प्रारम्भ हुआ तब सर्वप्रथम सन् १८८० मे अनुयोगद्वारसूत्र मलधारी हेमचन्द्रकृत वृत्ति सहित रायबहादुर धनपतसिंह कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् सन् १९१५-१६ मे वही आगम देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार बम्बई से प्रकाशित हुआ है। पुन सन् १९२४ मे आगमोदय समिति बम्बई से वह वृत्ति प्रकाशित हुई और सन् १९३९-१९४० मे केसरबाई ज्ञान मन्दिर पाटन से यह वृत्ति प्रकाशित हुई।

सन् १९२८ मे अनुयोगद्वार हरिभद्रकृत वृत्ति सहित ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर सस्था रतलाम से प्रकाशित हुआ।

वीर संवत् २४४६ मे सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जौहरी हैदराबाद ने अनुयोगद्वार, आचार्य अमोलक ऋषिजी द्वारा किये गये हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित किया।

सन् १९३१ मे श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस बम्बई ने उपाध्याय आत्मारामजी म. कृत हिन्दी अनुवाद का पूर्वार्ध प्रकाशित किया और उसका उत्तरार्ध मुरारीलाल चरणदास जैन पटियाला ने प्रकाशित किया।

अनुयोगद्वारसूत्र का मूलपाठ अनेक स्थलो से प्रकाशित हुआ है, पर महावीर विद्यालय बम्बई का सस्करण अपनी शानी का है। शुद्ध मूलपाठ के साथ ही प्राचीनतम प्रतियो के आधार से महत्त्वपूर्ण टिप्पण भी दिये हैं और आगमप्रभावक पुण्यविजयजी म की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना भी है।

प्रस्तुत आगम

स्वर्गीय सन्तरत्न युवाचार्य मधुकर मुनिजी महाराज ने आगम बत्तीसी के प्रकाशन का दायित्व वहन किया और उनकी प्रबल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर अनेक मूर्धन्य मनीषियो ने आगम सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया। विविध मनीषियो के पुरुषार्थ से स्वल्प समय मे अनेक आगम प्रकाशित होकर प्रबुद्ध पाठको के हाथों मे पहुँचे। प्राय शुद्ध मूलपाठ, अर्थ और सक्षिप्त विवेचन के कारण यह सस्करण अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है।

प्रस्तुत जिनागम ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अनुयोगद्वारसूत्र का शानदार प्रकाशन होने जा रहा है। पूर्व परम्परा की तरह इसमे भी शुद्ध मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद और विवेचन किया गया है। इस आगम के सम्पादक और विवेचक हैं उपाध्याय श्री केवलमुनिजी महाराज। आप ज्योतिपुरुष जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के शिष्यरत्न हैं। आप प्रसिद्ध प्रवचनकार, सगीतकार, कहानीकार, उपन्यासकार और निबन्धकार हैं। आपकी तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें विविध विधाओ मे प्रकाशित हुई हैं और वे अत्यधिक लोकप्रिय भी हुई हैं। आपश्री जीवन के उषाकाल मे गीतकार रहे, शताधिक सरस-सरल भजनो का निर्माण कर जन-जन के प्रिय बने। उसके पश्चात् विविध विषयो पर कहानियाँ लिखी, कहानियो के माध्यम से उन्होंने जन-जीवन मे सुख और शान्ति का सरसब्ज बाग किस प्रकार लहलहा सकता है, इस पर प्रकाश डाला। उसके पश्चात् उनकी लेखनी उपन्यास की विधा की ओर मुडी। पौराणिक-ऐतिहासिक-धार्मिक कथाओ को उन्होने उपन्यास विधा मे प्रस्तुत कर जनमानस का ध्यान जैनसाहित्य को पढने के लिए उत्प्रेरित किया। साथ ही उन्होने ललित शैली मे निबन्ध लिखकर अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक रुचि का परिचय दिया।

अनुयोगद्वार जैनआगम साहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है जैसा कि हम पूर्व पक्तियो मे बता चुके हैं। अनुयोगद्वार का सम्पादन करना बहुत ही कठिन है। किन्तु उपाध्याय श्रीजी ने सुन्दर सम्पादन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। यह सम्पादन अपने-आप मे अनूठा है। जिज्ञासु पाठको के लिए अनुयोग-द्वार का यह सुन्दर सस्करण अति उपयोगी सिद्ध होगा। सम्पादनकला विशारद पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से परिमार्जन कर सोने मे सुगन्ध का कार्य किया है।

मैं प्रस्तुत आगम पर बहुत ही विस्तार से प्रस्तावना लिखना चाहता था, पर पूना सन्त सम्मेलन होने के कारण पाली से पूना पहुँचना बहुत ही आवश्यक था। निरन्तर विहार यात्रा चलने के कारण तथा सम्मेलन के भीड-भरे वातावरण मे भी लिखना सम्भव नही था। सम्मेलन मे महामहिम राष्ट्रसत आचार्यसम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने मुझे सघ का उत्तरदायित्व प्रदान किया, इसलिए समयाभाव रहना स्वाभाविक था। उधर प्रस्तावना के लिए निरन्तर आग्रह आता रहा कि लघु प्रस्तावना भी लिखकर भेज दें। समयाभाव के कारण सक्षेप

मे ही कुछ लिख गया हूँ। यदि कभी समय मिल गया तो विस्तार से अनुयोगद्वार पर लिखने की भावना रखता हूँ। परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज का मैं किन शब्दो मे आभार व्यक्त करूँ। उनकी अपार कृपा सदा मुझ पर रही है। प्रस्तुत प्रस्तावना लिखने मे भी उनका पथ-प्रदर्शन मेरे लिए सम्बल रूप मे रहा है। अन्त मे मैं आशा करता हूँ कि प्रबुद्ध पाठकगण प्रस्तुत आगम का स्वाध्याय कर अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे और जीवन को पावन-पवित्र बनायेंगे।

—उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

श्री तिलोकरत्न स्था.
जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड
आचार्य आनन्द ऋषिजी महाराज मार्ग
अहमदनगर (महाराष्ट्र)

आचार्यसम्राट् जयन्ती—२६ जुलाई, १९८७

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

कार्यकारिणी समिति

सिरिअज्जरक्खियथेरविरइयं

अणुओगद्दारसुत्तं

श्रीआर्यरक्षितस्थविरविरचित

अनुयोगद्वारसूत्र

अनुयोगद्वारसूत्र

मंगलाचरण

१. नाणं पंचविहं पण्णत्तं। तं जहा—आभिणिबोहियणाणं १. सुयणाणं २. ओहिणाणं ३. मणपज्जवणाणं ४. केवलणाणं ५।

[१] ज्ञान के पाच प्रकार (भेद) कहे हैं। वे इस प्रकार—१ आभिनिबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मन पर्यवज्ञान, ५ केवलज्ञान।

विवेचन—यह मगलाचरणात्मक सूत्र है। शास्त्र के स्वय मगलरूप होने पर भी सूत्रकार ने शिष्ट पुरुषो की आचार-व्यवहार-परपरा का परिपालन करने के लिये, शास्त्र की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये, शिष्यो को शास्त्र के विषयभूत अर्थज्ञान की प्राप्ति की दृढ़ प्रतीति कराने के लिये शास्त्र की आदि मे मगलसूत्र का निर्देश किया है।

ज्ञान की मंगलरूपता कैसे? सर्व ज्ञेय पदार्थों का ज्ञाता, विघ्नो का उपशमक, कर्म की निर्जरा का हेतु, निज-आनन्द का प्रदाता और आत्मगुणो का बोधक होने से ज्ञान मगलरूप है। इसीलिये सूत्रकार की मगलरूपता का बोध कराने के लिये ज्ञान के वर्णन से शास्त्र को प्रारम्भ किया है।

ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति—भावसाधन, करणसाधन, अधिकरणसाधन और कर्तृसाधन इन चार प्रकारो से ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति सभव है—

'ज्ञाति ज्ञानम्'- अर्थात् जानना ज्ञान है। यह भावसाधन ज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति है। अर्थात् जानने रूप क्रिया को ज्ञान कहते है। 'ज्ञायते अनेन इति ज्ञानम्' यह ज्ञान शब्द की करण-साधन व्युत्पत्ति है, अर्थात् आत्मा जिसके द्वारा पदार्थों को जानता है, वह ज्ञान है। इस व्युत्पत्ति द्वारा ज्ञानावरणकर्म का क्षय अथवा क्षयोपशम लक्षित होता है। क्योकि इनके होने पर ही आत्मा मे ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। इसलिये ज्ञानावरणकर्म का क्षय और क्षयोपशम ज्ञान रूप होने के कारण अभेद सबध से ज्ञानरूप ही है, जो पदार्थों को जानने मे साधकतम है। 'ज्ञायते अस्मिन्निति ज्ञानमात्मा' पदार्थ जिसमे जाने जाये वह ज्ञान है—यह अधिकरणमूलक व्युत्पत्ति है। इसके द्वारा आत्मा ज्ञान रूप प्रतीत होता है। यहाँ परिणाम (ज्ञान) और परिणामी (आत्मा) का अभेद होने के कारण आत्मा को ज्ञान रूप मान लिया गया है। क्योकि ज्ञानावरणकर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से विशिष्ट आत्मा का परिणाम ज्ञान है और आत्मा उस परिणाम वाला है। अथवा ज्ञान गुण है और आत्मा उस गुण का आधार होने से गुणवान्-गुणी है। 'जानातीति ज्ञानम्' इस कर्तृसाधन व्युत्पत्ति से यह अर्थ लभ्य है कि आत्मा जानने की क्रिया का कर्त्ता है। इसलिये क्रिया और कर्त्ता मे अभेदोपचार होने से ज्ञान का 'आत्मा' यह व्यपदेश होता है।

उक्त समग्र कथन का साराश यह हुआ कि जिसके द्वारा वस्तुओ का स्वरूप जाना जाये, अथवा जो निज स्वरूप का प्रकाशक है, अथवा जो ज्ञानावरणकर्म के क्षय या क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, वह ज्ञान है ।

ज्ञान की पंचप्रकारता का कारण—ज्ञान के पाच प्रकार—भेद अर्थापेक्षया तीर्थकरो ने और सूत्र की अपेक्षा गणधरो ने प्ररूपित किये है । यह सकेत 'पण्णत्त -प्रज्ञप्त' शब्द द्वारा किया गया है ।[1] अथवा 'पण्णत्त' शब्द की सस्कृतछाया प्राज्ञाप्त भी होने से यह अर्थ हुआ कि ज्ञान की पच-प्रकारता का बोध गणधरो ने प्राज्ञो—तीर्थकर भगवन्तो से आप्त—प्राप्त किया है । अथवा 'पण्णत्ता' पद की सस्कृतछाया प्राज्ञात्त भी होती है । अतएव इस पक्ष मे प्राज्ञो—गणधरो द्वारा आत्त—तीर्थंकरो से ग्रहण किया है, यह अर्थ हुआ । अथवा 'प्रज्ञाप्त' यह सस्कृत छाया होने पर यह अर्थ हुआ कि भव्य जीवो ने स्वप्रज्ञा-बुद्धि से ज्ञान की पचप्रकारता का बोध आप्त—प्राप्त किया है ।

साराश यह कि सूत्रकार ने 'पण्णत्त' शब्द प्रयोग द्वारा अपनी लघुता प्रकट करते हुए यह स्पष्ट किया है कि स्वबुद्धि या कल्पना से यह कथन नही करता हूँ, प्रत्युत तीर्थकर भगवन्तो द्वारा निरूपित आशय को ही यहाँ स्पष्ट कर रहा हूँ ।[2]

ज्ञान के पांच भेदों के लक्षण—क्रमश इस प्रकार है—

आभिनिबोधिकज्ञान—योग्य देश मे अवस्थित वस्तु को मन और इन्द्रियो की सहायता से जानने वाले बोध—ज्ञान को आभिनिबोधिकज्ञान कहते है । यह अर्थ अभि-नि-बोध इन शब्दो से प्रकट होता है । इस आभिनिबोधिकज्ञान का अपर नाम मतिज्ञान भी है ।

यहाँ ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञान का तथा अभिनिबोध शब्द इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट ज्ञान का बोधक है । अत 'आभिनिबोधिक च तज्ज्ञान च आभिनिबोधिकज्ञान' इस तरह इन दोनो—सामान्य-विशेष—ज्ञानो मे समानाधिकरणता है ।

श्रुतज्ञान—बोले गये शब्द द्वारा अर्थग्रहण रूप उपलब्धिविशेष को श्रुतज्ञान कहते है । श्रुत अर्थात् शब्द । कारण मे कार्य का उपचार करने से शब्द को भी श्रुतज्ञान कहते है । क्योकि शब्द श्रोता को अभिलषित अर्थ का ज्ञान कराने मे कारण है । यह ज्ञान भी मन और इन्द्रियो के निमित्त से उत्पन्न होता है, फिर भी इसकी उत्पत्ति मे इन्द्रियो की अपेक्षा मन की मुख्यता होने से इसे मन का विषय माना गया है ।[3]

अवधिज्ञान—'अवधानमवधि इन्द्रियाद्यनपेक्षमात्मन साक्षादर्थग्रहणम्, अवधिरेव ज्ञानमवधि-ज्ञानम्'—अर्थात् इन्द्रियो और मन की सहायता के विना केवल आत्मा द्वारा होने वाले अर्थग्रहण को अवधि कहते है और अवधिरूप जो ज्ञान वह अवधिज्ञान कहलाता है । अथवा अवधि शब्द

---

१ अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउण । —आव निर्युक्ति, गाथा ९२

२. 'पण्णत्तनि' प्रज्ञप्तमर्थतस्तीर्थंकरै सूत्रतो गणधरै प्ररूपितमित्यर्थ ।
अनेन सूत्रकृता आत्मन स्वमनीषिकापरिहृता भवति । —अनु. सूत्रवृत्ति, पृष्ठ १

३. श्रुतमनिन्द्रियस्य । —तत्त्वार्थसूत्र २।२२

का अर्थ मर्यादा है और रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करना अरूपी को नही, यही इसकी मर्यादा-अवधि है। अतएव जो ज्ञान मर्यादा सहित-रूपी पदार्थों को जानता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मनःपर्यवज्ञान—मन -परि-अव इन तीन शब्दो से निष्पन्न 'मन पर्यव' शब्द है। सज्ञी जीवों द्वारा काययोग से गृहीत और मन रूप से परिणामित मनोवर्गणा के पुद्गलो को मन कहते हैं। 'परि' का अर्थ है सर्व प्रकार से और 'अव्' धातु रक्षण, गति, काति, प्रीति, तृप्ति और अवगम (बोध) अर्थ मे प्रयुक्त होती है। उक्त अर्थों मे से यहाँ अवगम अर्थ मे अव् धातु का प्रयोग हुआ है। अतएव सज्ञी जीवो द्वारा किए जाने वाले चिन्तन के अनुरूप मन के परिणामो को सर्व प्रकार से अवगम करना—जानना मन पर्यवज्ञान कहलाता है।

केवलज्ञान—सपूर्ण ज्ञेय पदार्थों को (उनकी त्रिकालवर्ती गुण-पर्यायो सहित) विषय करने वाले, जानने वाले ज्ञान को केवल[1] ज्ञान कहते है।

पांच ज्ञानों का क्रम—केवलज्ञान के अतिरिक्त शेष मतिज्ञान आदि चार ज्ञानो के अनेक अवान्तर भेद है, जिन्हे जिज्ञासु जन नन्दीसूत्र आदि मे जान लेवें। प्रासगिक होने से पाच ज्ञानो के क्रमविन्यास का कारण स्पष्ट किया जाता है।

सर्वप्रथम मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का निर्देश करने का कारण यह है कि ये दोनो ज्ञान सम्यक् अथवा मिथ्या रूप मे, न्यूनाधिक मात्रा मे, समस्त ससारी जीवो मे सदैव रहते है। इन दोनो ज्ञानो के होने पर ही शेष ज्ञान होते है। इसीलिये इन दोनो का सर्वप्रथम निर्देश किया है और दोनो मे भी पहले मतिज्ञान के उल्लेख का कारण यह है कि मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान[2] होता है।

मति और श्रुत ज्ञान के अनन्तर अवधिज्ञान कहने का कारण यह है कि इन दोनो के साथ अवधिज्ञान की कई बातो मे समानता है। यथा—जैसे मिथ्यात्व के उदय से मति और श्रुत ज्ञान मिथ्यारूप मे परिणत होते है, उसी प्रकार अवधिज्ञान भी मिथ्यारूप मे परिणत हो जाता है[3] तथा जब कोई विभगज्ञानी सम्यग्दृष्टि होता है, तब तीनो ज्ञान एक साथ सम्यक् रूप मे परिणत होते है। मति एव श्रुत ज्ञान की लब्धि की अपेक्षा छियासठ सागरोपम से कुछ अधिक स्थिति है, अवधिज्ञान की भी उतनी ही स्थिति है।

अवधिज्ञान के अनन्तर मन पर्यवज्ञान का निर्देश करने का कारण यह है कि दोनो मे प्रत्यक्षत्व आदि की समानता है। जैसे अवधिज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है, विकल है, क्षयोपशमजन्य है एव रूपी पदार्थ इसका विषय है, उसी प्रकार मन पर्यवज्ञान भी है।

केवलज्ञान सबसे अत मे प्राप्त होता है, अतएव उसका निर्देश सबसे अत मे किया है।

इन पाच ज्ञानो मे आदि के चार ज्ञान क्षायोपशमिक और अतिम केवलज्ञान ज्ञानावरणकर्म के सर्वथा क्षय से आविर्भूत होने के कारण क्षायिकभाव रूप है।

---

१. केवल शब्द के एक, शुद्ध, सकल, असाधारण, अनन्त और निरावरण भी अर्थ होते है। इसका अर्थ ग्रन्थान्तरो से ज्ञात करें।

२. श्रुत मतिपूर्वं ··· ··। —तत्त्वार्थसूत्र १।२०

३. मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च। —तत्त्वार्थसूत्र १।३२

मतिज्ञानादि पाच ज्ञानो मे से एक साथ एक जीव मे अधिक से अधिक चार ज्ञान लब्धि की अपेक्षा से हो सकते हैं। यदि एक ज्ञान हो तो मात्र केवलज्ञान होगा। क्योकि यह क्षायिक ज्ञान है, अत इसके साथ मतिज्ञान आदि चार क्षायोपशमिक ज्ञानो का सद्भाव नही पाया जाता है। दो होने पर मति और श्रुत ज्ञान होगे। क्योकि ये दोनो ज्ञान सामान्यतया सभी ससारी जीवो मे पाये जाते है। तीन होने पर मति, श्रुत और अवधि अथवा मति, श्रुत और मन पर्यव यह तीन ज्ञान पाये जाते है और चारो हो तो मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव ये चारो ज्ञान सभव हैं। उपयोग की दृष्टि से एक समय मे एक ही ज्ञान होता है।

अभिधेयनिर्देश

२. **तत्थ चत्तारि णाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं, णो उद्दिस्संति णो समुद्दिस्संति णो अणुण्ण-विज्जंति, सुयणाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ।**

[२] इन (पाच प्रकार के) ज्ञानो मे से चार ज्ञान (मति, अवधि, मन पर्यव और केवलज्ञान) व्यवहार योग्य न होने से स्थाप्य है, स्थापनीय है। क्योकि ये चारो ज्ञान (गुरु द्वारा शिष्यो को) उपदिष्ट नही होते है, समुपदिष्ट नही होते है और न इनकी आज्ञा दी जाती है। किन्तु श्रुतज्ञान का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होता है।

विवेचन—सूत्र मे श्रुतज्ञान को अभिधेय कोटि मे ग्रहण करने और शेष चार ज्ञानो को ग्रहण न करने के कारण को स्पष्ट किया है कि यद्यपि श्रुतज्ञान के अतिरिक्त शेष मतिज्ञान आदि चारो ज्ञान भी पदार्थबोध के हेतु है, परन्तु श्रुतज्ञान की तरह इनमे शब्दव्यवहार की प्रवृत्ति का अभाव होने से ये अपने स्वरूप, अनुभव एव पदार्थ के स्वरूप को व्यक्त नही कर पाते है। श्रुतज्ञान का आश्रय लिये बिना वे अपने विषयभूत हेयोपादेय विषय से न तो साक्षात् रूप मे निवृत्त कराते है और न उसमे प्रवृत्त कराते है। इसीलिये उक्त चार ज्ञानो को यहाँ विचारकोटि मे ग्रहणयोग्य नही माना है। जो लोकोपकार मे प्रवृत्त होता है, वह सव्यवहार्य है, लेकिन मत्यादि चार ज्ञानो की स्थिति वैसी नही है।

मत्यादि चार ज्ञानो के असव्यवहार्य होने से इनका उद्देश, समुद्देश नही होता और न अनुज्ञा-आज्ञा होती है। ये चारो ज्ञान अपने-अपने आवरणीय कर्म के क्षयोपशम एव क्षय से स्वत ही आविर्भूत हो जाया करते है। अपनी आविर्भूति-उत्पत्ति मे उद्देश, समुद्देश आदि की अपेक्षा नही रखते है।

श्रुतज्ञान के उद्देश आदि होने का कारण—प्राय लोक की हेयोपादेय अर्थ मे प्रवृत्ति-निवृत्ति श्रुतज्ञान के द्वारा देखने मे आती है तथा केवलज्ञानादि द्वारा जाने गये अर्थ की प्ररूपणा श्रुतज्ञान (शब्द) द्वारा की जाती है। इसीलिये उसे सव्यवहार्य-लोकव्यवहार का कारण होने से, गुरुपदेश से उसकी प्राप्ति होने से, गुरु द्वारा शिष्यो को प्रदान किये जाने से और स्वपर-स्वरूप का प्रतिपादन करने मे समर्थ होने से श्रुतज्ञान का उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञा आदि किया जाना सभव है और जिसके उद्देश आदि होने है, उसमे अनुयोग, उपक्रम आदि अनुयोगद्वारो की प्रवृत्ति होती है। साराश यह हुआ कि श्रुतज्ञान के अतिरिक्त शेष चार ज्ञान आदान-प्रदान करने योग्य नही हैं, परोप-कारी नही हैं, अपितु जिस आत्मा को जो ज्ञान होता है वही उसका अनुभव करता है, अन्य नही।

किन्तु श्रुतज्ञान परोपकारी है इसीलिये श्रुतज्ञान के उद्देश आदि होते हैं और चारो ज्ञानों का स्वरूप-वर्णन भी श्रुतज्ञान द्वारा किया जाता है।

विशिष्ट शब्दों के अर्थ—ठप्पाइं—स्थाप्य—असव्यवहार्य-व्यवहार मे जिनका उपयोग किया जाना संभव नही है। **ठवणिज्जाइं**—स्थापनीय हैं—अव्याख्येय होने से इस प्रसग मे वे विचारकोटि में ग्रहण किये जाने योग्य नही हैं। **णो उद्दिस्संति**—इनका उद्देश नही किया जाता है। तुम्हे पढना चाहिए, शिष्य के लिये इस प्रकार के गुरु के आज्ञा-उपदेश रूप वचन को उद्देश कहते हैं। **णो समुद्दिस्संति**—समुद्देश नही होता। यह पठित ग्रन्थ विस्मृत न हो जाय, अत इसकी आवृत्ति करो, इसे स्थिर-परिचित करो, इस प्रकार का गुरु का आदेशमूलक वचन समुद्देश कहलाता है। **णो अणुण्णविज्जंति**—अनुज्ञा-आज्ञा नही दी जाती। पठित ग्रन्थ का धारणा रूप सस्कार जमाओ, दूसरो को इसे पढाओ, इस प्रकार के गुरु के आज्ञा रूप वचन को अनुज्ञा कहते है।

३. जइ सुयणाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ? अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?

अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, अंगबाहिरस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ।

इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो।

[३ प्र] भगवन् ! यदि श्रुतज्ञान मे उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो वह उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति अगप्रविष्ट श्रुत मे होती है। अथवा अगबाह्य श्रुत मे उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है ?

[३ उ] आयुष्मन् ! अगप्रविष्ट (आचाराग आदि) श्रुत मे भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तथा अगबाह्य आगम (श्रुत) मे भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवर्तित होते है।

४. जइ अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो ? उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो ?

कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो। उक्कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो।

इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो।

[४ प्र] भगवन् ! यदि अगबाह्य श्रुत मे उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो क्या वह उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति कालिकश्रुत मे होती है अथवा उत्कालिक श्रुत मे उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवर्तमान होते हैं ?

[४ उ] आयुष्मन् ! कालिकश्रुत मे भी उद्देश यावत् अनुयोग की प्रवृत्ति होती है और उत्कालिक श्रुत मे भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होते है, किन्तु यहाँ उत्कालिक श्रुत का उद्देश यावत् अनुयोग प्रारम्भ किया जायेगा।

विवेचन—यह दो सूत्र शास्त्र के वर्ण्य विषय की भूमिका रूप है और प्रश्नोत्तर के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि अगप्रविष्ट और अगबाह्य रूप मे माने गये दोनो प्रकार के श्रुत का अनुयोग किया जाता है। लेकिन यहाँ अगबाह्यश्रुत और उसके भी कालिक एव उत्कालिक रूप से माने गये दो भेदो मे से मात्र उत्कालिक श्रुत के सम्बन्ध मे अनुयोग का विचार किया जा रहा है।

अंगप्रविष्ट—तीर्थकरो के उपदेशानुसार जिन शास्त्रो की रचना स्वय गणधर करते हैं, वे अगप्रविष्ट शास्त्र कहलाते है।

अंगबाह्य—अगश्रुत का आधार लेकर जिनकी रचना स्थविर करते हैं, उन शास्त्रो को अगबाह्य कहते है।

कालिकश्रुत—जिस श्रुत का रात्रि व दिन के प्रथम और अतिम प्रहर मे स्वाध्याय किया जाता है।

उत्कालिकश्रुत—जो अस्वाध्यायकाल को छोडकर कालिक से भिन्नकाल मे भी पढा जाता है।

अगप्रविष्ट आदि विभागो मे परिगणित शास्त्रों के नाम एव परिचय के लिये नदीसूत्र देखिये।

५. **जइ उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो ? किं आवस्सगस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो ? आवस्सगवइरित्तस्स उद्देस्सो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो ?**

आवस्सगस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो, आवस्सगवइरित्तस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो।

इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो।

[५ प्र] भगवन् ! यदि उत्कालिक श्रुत के उद्देश आदि ४ होते है तो क्या वे उद्देश आदि आवश्यक के होते है अथवा आवश्यकव्यतिरिक्त (आवश्यकसूत्र से भिन्न) उत्कालिक श्रुत के होते है ?

[५ उ] आयुष्मन् ! यद्यपि आवश्यक और आवश्यक से भिन्न दोनो के उद्देश आदि ४ होते है परन्तु यहाँ (इस शास्त्र मे) आवश्यक का अनुयोग प्रारम्भ किया जा रहा है।

विवेचन—सूत्र मे शास्त्र के निश्चित वर्ण्य विषय का सकेत किया गया है कि सूत्रकार को आवश्यकसूत्र का अनुयोग करना अभीष्ट है और इष्ट होने का कारण यह है कि आवश्यकसूत्र सकल समाचारी का मूल आधार है।

आवश्यकसूत्र मे उद्देश, समुद्देश एव अनुज्ञा के प्रवर्तमान होने पर भी सूत्रकार ने उनका उल्लेख न करके अवसर प्राप्त होने की अपेक्षा केवल अनुयोग करने का सकेत किया है।

अनुयोग का निरुक्त्यर्थ—सूत्र के साथ **अनु**—नियत-अनुकूल अर्थ का **योग**—जोडना अर्थात् इस सूत्र का यह अभिधेय है, इस प्रकार की सयोजना करके शिष्य को समझाना, सूत्र के अर्थ का कथन करना। अथवा एक सूत्र के अनन्त अर्थ होते है, इस प्रकार अर्थ महान् और सूत्र अणुरूप होता है, अतएव अणु-सूत्र के साथ अर्थ के योग को अणुयोग (अनुयोग) कहते है।[1]

---

१ निययाणुकूलो जोगो सुत्तस्सत्थेण जो य अणुओगो।
सुत्त च अणु तेण जोगो अत्थस्स अणुओगो ॥ —अनुयोग वृत्ति प. ७

अनुयोगविषयक वक्तव्यता का क्रम इस प्रकार है—

१. **निक्षेप**—नाम, स्थापना आदि रूप से वस्तु स्थापित करके अनुयोग (कथन) करना।

२. **एकार्थ**—अनुयोग के पर्यायवाची शब्दों को कहना जैसे अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा, वार्तिक, ये अनुयोग के समानार्थक पर्यायवाची नाम हैं।[1]

३. **निरुक्ति**—शब्दगत अक्षरों का निर्वचन करना। अर्थात् तीर्थंकरप्ररूपित अर्थ का गणधरोक्त शब्दसमूह रूप सूत्र के साथ अनुकूल, नियत सम्बन्ध प्रकट करना।

४. **विधि**—सूत्र के अर्थ कहने अथवा अनुयोग करने की पद्धति को विधि कहते हैं। वह इस प्रकार है—सर्वप्रथम गुरु को शिष्य के लिये सूत्र का अर्थ कथन करना चाहिये। दूसरी बार उस कथित अर्थ को निर्युक्ति करके समझाना चाहिये और तीसरी बार प्रसग, अनुप्रसग सहित जो अर्थ होता हो उसका निर्देश करना चाहिये। यही सामान्य से अनुयोग की विधि है।[2]

अनुयोग श्रवण के अधिकारी—सामान्य से परिषद् (श्रोतृसमूह) के तीन प्रकार है—१ ज्ञायक २ अज्ञायक और ३ दुर्विदग्धा।[3]

ज्ञायकपरिषद्—गुण और दोषों के स्वरूप को जो विशेष रूप से जानती है और कुशास्त्रों के मानने वाले मतो मे जिसे आग्रह नही होता, ऐसी परिषद् ज्ञायकपरिषद् कहलाती है। यह परिषद् हस की तरह दोष रूपी जल का परित्याग करके गुण रूपी दूध को ग्रहण करने वाली होती है।

अज्ञायकपरिषद्—जिसके सदस्य स्वभावत भद्र, सरल होते है और समझाने से सन्मार्ग पर आ जाते हैं। ऐसी परिषद् को अज्ञायकपरिषद् कहते हैं।

दुर्विदग्धापरिषद्—जिसके सदस्य किसी भी विषय मे निष्णात न हो, अप्रतिष्ठा के भय से जो निष्णात से नहीं पूछे, ज्ञान के सस्कार से रहित, पल्लवग्राही पाडित्य से युक्त हों, ऐसे व्यक्तियो की सभा दुर्विदग्धापरिषद् कहलाती है।

इन तीन परिषदाओ मे से आदि की दो अनुयोग का बोध प्राप्त करने योग्य है।

अनुयोगकर्त्ता की योग्यता—अनुयोग करने के अधिकारी-कर्त्ता की योग्यता का शास्त्रो में इस प्रकार से उल्लेख किया है—

१-४—जो आर्यदेश मे उत्पन्न हुआ हो। जिसका कुल (पितृवश) और जाति (मातृवश) विशुद्ध हो। सुन्दर आकृति, रूप आदि से सपन्न हो। ५ जो दृढ सहननी (शारीरिक शक्तिसपन्न) हो। ६ धृतियुक्त—परिषह और उपसर्ग सहन करने मे समर्थ हो। ७. अनाशसी—सत्कार-सम्मान आदि का अनाकाक्षी हो। ८ अविकत्थन—व्यर्थ का भाषण करने वाला न हो। ९ अमायी—कपट-

---

१ अणुओगो य निओगो भास विभासा य वत्तिय चेव।
एए अणुओगस्स य नामा एगट्ठिया पच॥ —अनुयोगवृत्ति प ७

२ सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसितो भणितो।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे॥ —अनुयोग वृत्ति प. ७

३ अनुयोग. वृत्ति प. ८

भावरहित—निष्कपट हो। १० स्थिरपरिपाटी—अभ्यास द्वारा अनुयोग करने का स्थिर अभ्यासी अथवा गुरुपरम्परा से प्राप्त ज्ञान का धनी हो। ११ ग्रहीतवाक्य—आदेय वचन बोलने वाला हो। १२ जित-परिषद्—सभा को प्रभावित करने वाला एव क्षुभित न होने वाला हो। १३ जितनिद्र—शास्त्रीय अध्ययन-चिन्तन-मनन करते हुए निद्रा का वशवर्ती नही होने वाला। १४ मध्यस्थ—पक्षपात रहित—निष्पक्ष हो। १५ देश, काल, भाव का ज्ञाता हो। १६ आसन्नलब्धप्रतिभ—प्रतिवादी को परास्त करने की प्रतिभा से सम्पन्न हो। १७ नानाविधदेशभाषाविज्ञ—अनेक देशो की भाषाओ का ज्ञाता हो। १८ पचविध आचारयुक्त—ज्ञानाचार आदि पाच प्रकार के आचारो का पालक हो। १९ सूत्रार्थ-तदुभय-विधिज्ञ—सूत्र, अर्थ एव उभय (सूत्रार्थ) की विधि का जानकार हो। २० आहरण-हेतु-उपनय-नय-निपुण—उदाहरण, हेतु, उपनय और नय दृष्टि का मर्मज्ञ हो। २१ ग्राहणाकुशल—शिष्य को तत्त्व ग्रहण कराने मे कुशल हो। २२ स्वसमय-परसमयवित्—स्व और पर सिद्धान्त मे निष्णात हो। २३ गम्भीर-उदार स्वभाव वाला हो। २४ दीप्तिमान्—परवादियो द्वारा परास्त न किया जा सके। २५ शिव—जनकल्याण करने की भावना से भावित हो। २६ सौम्य—शान्त स्वभाव वाला हो। २७ गुणशतकलित—दया, दाक्षिण्य आदि सैकडो गुणो से युक्त हो। इस प्रकार के गुणो से युक्त व्यक्ति प्रवचन का अनुयोग करने मे समर्थ होता है या अनुयोग करने का अधिकारी है।[1]

इस प्रकार अनुयोग सम्बन्धी वक्तव्यता जानना चाहिये।

आवश्यक पद के निक्षेप की प्रतिज्ञा

६. जइ आवस्सयस्स अणुओगो आवस्सयण्णं किमंग अंगाइ? सुयक्खंधो सुयक्खंधा? अज्झयणं अज्झयणाइं? उद्देसगो उद्देसगा?

आवस्सयण्ण णो अंग णो अंगाइ, सुयक्खधो णो सुयक्खंधा, णो अज्झयण, अज्झयणाइ, णो उद्देसगो, णो उद्देसगा।

[६ प्र] भगवन्! यदि यह अनुयोग आवश्यक का है तो क्या वह (आवश्यकसूत्र) एक अग रूप है या अनेक अग रूप है? एक श्रुतस्कन्ध रूप है या अनेक श्रुतस्कन्ध रूप है? एक अध्ययन रूप है या अनेक अध्ययन रूप है? एक उद्देशक रूप है या अनेक उद्देशक रूप है?

[६ उ] आयुष्मन्! आवश्यकसूत्र (अगप्रविष्ट द्वादशाग से बाह्य होने से) एक अग नही है और अनेक अग रूप भी नही है। वह एक श्रुतस्कन्ध रूप है, अनेक श्रुतस्कन्ध रूप नही है, (छह अध्ययन होने से) अनेक अध्ययन रूप है, एक अध्ययन रूप नही है, एक या अनेक उद्देशक रूप नही है, (अर्थात् आवश्यकसूत्र मे उद्देशक नही है।)

विवेचन—यहाँ आवश्यकसूत्र के परिचय सबन्धी एक और बहुवचन की अपेक्षा आठ प्रश्न है और उनके उत्तर दिये है कि यह छह अध्ययनात्मक श्रुतस्कन्ध रूप होने से अनेक अध्ययन और एक श्रुतस्कन्ध रूप है। शेष छह प्रश्न अग्राह्य होने से अनादेय है।

---

१ अनुयोग-वृत्ति प. ७

विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार है—

अंग—तीर्थंकरों के अर्थ—उपदेशानुसार गणधरों द्वारा शब्दनिबद्ध श्रुत की अंग संज्ञा है।

श्रुतस्कन्ध—अध्ययन का समूहात्मक बृहत्काय खंड श्रुतस्कन्ध कहलाता है।

अध्ययन—शास्त्र के किसी एक विशिष्ट अर्थ के प्रतिपादक अंश को अध्ययन कहते हैं।

उद्देशक—अध्ययन के अन्तर्गत नामनिर्देशपूर्वक वस्तु का निरूपण करने वाला प्रकरणविशेष उद्देशक कहलाता है।

आवश्यक आदि पदों का निक्षेप करने की प्रतिज्ञा

७. तम्हा आवस्सयं णिक्खिविस्सामि, सुयं णिक्खिविस्सामि, खंधं णिक्खिविस्सामि, अज्झयणं णिक्खिविस्सामि।

[७] (आवश्यकसूत्र श्रुतस्कन्ध और अध्ययन रूप है) इसलिये आवश्यक का निक्षेप करूंगा। इसी तरह श्रुत, स्कन्ध एवं अध्ययन शब्दों का निक्षेप—यथासंभव नाम आदि में न्यास—करूंगा।

८. जत्थ य जं जाणेज्जा णिक्खेवं णिक्खिवे णिरवसेसं।
जत्थ वि य न जाणेज्जा चउक्कयं निक्खिवे तत्थ॥ १॥

[८] यदि निक्षेप्ता (निक्षेप करने वाला) जिस वस्तु के समस्त निक्षेपों को जानता हो तो उसे (उस जीवादि रूप वस्तु में) उन सबका निरूपण करना चाहिये और यदि सर्व निक्षेपों को न जानता हो तो चार (नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव) निक्षेप तो करना ही चाहिये॥ १॥

विवेचन—इन दो सूत्रों में आवश्यक आदि पदों का निक्षेप करने की प्रतिज्ञा एवं अधिकतम, न्यूनतम निक्षेप करने के कारण व कर्ता की योग्यता का निर्देश किया है।

आवश्यक आदि पदों का निक्षेप करने का कारण—पूर्व में यह स्पष्ट हो चुका है कि इस शास्त्र में आवश्यक का अनुयोग किया जायेगा। इसके अर्थ का स्पष्ट रूप से विवेचन तभी हो सकता है जब पदों का निक्षेप किया जाये। इसलिये आवश्यक आदि पदों का निक्षेप करने की प्रतिज्ञा की है।

निक्षेप करने की उपयोगिता—यह है कि शब्द के विविध अर्थों में से प्रसंगानुरूप अर्थ की अभिव्यक्ति निक्षेप द्वारा ही होती है। ऐसा करने पर अर्थ का प्रतिपादन किस दृष्टि से किया जा रहा है, यह बात समझ में आती है। क्योंकि अप्रस्तुत का निराकरण करके प्रस्तुत का विधान करने में निक्षेप ही समर्थ है। जिससे प्रकृत अर्थ का बोध और अप्रकृत अर्थ का निराकरण हो जाता है।

निक्षेपकर्ता की योग्यता—वाग्व्यवहार की प्रामाणिकता का कारण निक्षेप है। इसलिये सामान्यतया तो साधारण, असाधारण सभी व्यक्ति इसके करने के अधिकारी हैं। लेकिन यदि निक्षेप्ता नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि जितने रूप से शब्द का अर्थ जाने, अधिक से अधिक उतने प्रकारों द्वारा शब्द का निक्षेप करे। यदि इन सब भेदों से परिचित न हो तो उसे शब्द का नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार प्रकार से अवश्य निक्षेप करना चाहिये। क्योंकि इनका क्षेत्र व्यापक होने से प्रत्येक पदार्थ कम से कम नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव रूप तो है ही।

आवश्यक के निक्षेप

९. से किं तं आवस्सयं ?

आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं । तं जहा—नामावस्सयं १ ठवणावस्सयं २ दव्वावस्सयं ३ भावावस्सयं ४ ।

[९ प्र] भगवन् ! आवश्यक का स्वरूप क्या है ?

[९ उ] आयुष्मन् ! आवश्यक चार प्रकार का कहा है । यथा—१ नाम-आवश्यक, २ स्थापना-आवश्यक, ३ द्रव्य-आवश्यक, ४ भाव-आवश्यक ।

विवेचन—'यथोद्देश निर्देश' इस न्यायानुसार प्रथम आवश्यक का निक्षेप किया है ।

सूत्र मे 'से किं त आवस्सय' इत्यादि मे से 'से' अथ अर्थ का द्योतक मगधदेशीय शब्द है और 'अथ' शब्द का प्रयोग मगल, अनन्तर, प्रारम्भ, प्रश्न और उपन्यास आदि अर्थों मे होता है । प्रस्तुत मे इसका उपयोग वाक्य के उपन्याम अर्थ मे किया गया है । 'किं' प्रश्नार्थसूचक है और 'त' पूर्व प्रक्रान्त परामर्शक सर्वनाम है ।

'आवश्यक' शब्द का निर्वचन[1]—विभिन्न रूपो मे इस प्रकार किया जा मकता है—

जो अवश्य करने योग्य हो, वह आवश्यक है । अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध सघ के द्वारा प्रतिदिन क्रमश दिन और रात्रि के अत मे करने योग्य साधना को आवश्यक कहते हैं—अवश्य कर्तव्यमावश्यकम् ।

आत्मा को दुर्गुणो से हटाकर पूर्णरूपेण—सर्व प्रकार से गुणो के वश्य—अधीन करे, वह आवश्यक है—'गुणाना आसमन्ताद्वश्यमात्मान करोतीत्यावश्यकम् ।'

इन्द्रिय और कषाय आदि भावशत्रु सर्वप्रकार से जिसके द्वारा वश मे किये जाते है, वह आवश्यक है—'आ-समन्ताद् वश्या भवन्ति इन्द्रियकषायादिभावशत्रवो यस्मात्तदावश्यकम् ।'

'आवस्सय' का सस्कृत रूप 'आवासक' भी होता है । अतएव गुणशून्य आत्मा को सर्वात्मना गुणो से जो वासित करे उसे आवासक (आवश्यक) कहते है—'गुणशून्यमात्मानम् आ-समन्तात् वासयति गुणैरित्यावासकम् ।'

निक्षेपविधि के अनुसार आवश्यक के सामान्यतया नाम आदि चार प्रकार होने का कारण यह है कि प्रत्येक शब्द का अर्थ नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार रूपो मे हो सकता है ।

शास्त्रीय भाषा मे इस रूप का सकेत करने के लिये **निक्षेप शब्द का प्रयोग हुआ है । अब यथाक्रम** उक्त चार रूपो द्वारा आवश्यक का वर्णन करते हैं ।

नाम-स्थापना-आवश्यक

१०. से किं तं नामावस्सयं ?

नामावस्सयं जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सए त्ति नामं कीरए । से तं नामावस्सयं ।

---

१. सयुक्त पद का खण्ड-खण्ड रूप मे पृथक्करण करके वाक्य के अर्थ के स्पष्टीकरण करने को निर्वचन कहते हैं ।

[१० प्र] भगवन् ! नाम-आवश्यक का स्वरूप क्या है ?

[१० उ.] आयुष्मन् ! जिस किसी जीव या अजीव का अथवा जीवो या अजीवो का, तदुभय (जीव और अजीव) का अथवा तदुभयो (जीवो और अजीवों) का (लोकव्यवहार चलाने के लिये) 'आवश्यक' ऐसा नाम रख लिया जाता है, उसे नाम-आवश्यक कहते है ।

११. से किं तं ठवणावस्सयं ?

जण्णं कट्ठकम्मे वा चित्तकम्मे वा पोत्थकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगा वा सब्भावठवणाए वा असब्भावठवणाए वा आवस्सए त्ति ठवणा ठविज्जति । से तं ठवणावस्सयं ।

[११ प्र] भगवन् ! स्थापना-आवश्यक का क्या स्वरूप है ?

[११ उ] आयुष्मन् ! स्थापना-आवश्यक का स्वरूप इस प्रकार है—काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म, ग्रथिम, वेष्टिम, पूरिम, सघातिम, अक्ष अथवा वराटक मे एक अथवा अनेक आवश्यक रूप से जो सद्भाव अथवा असद्भाव रूप स्थापना की जाती है, वह स्थापना-आवश्यक है। यह स्थापना-आवश्यक का स्वरूप है ।

१२. नाम-ट्ठवणाणं को पइविसेसो ?

णामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा ।

[१२ प्र] भगवन् ! नाम और स्थापना मे क्या भिन्नता—अतर है ?

[१२ उ] *आयुष्मन् ! नाम यावत्कथिक होता है, किन्तु स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक,* दोनो प्रकार की होती है ।

विवेचन—इन तीन सूत्रो मे नाम और स्थापना आवश्यक का स्वरूप एव दोनो की विशेषता—भिन्नता का निर्देश किया है ।

नाम-आवश्यक—नाम, अभिधान या सज्ञा को कहते है । अतएव तदात्मक आवश्यक नाम-आवश्यक कहलाता है । नाम-आवश्यक मे नाम ही आवश्यक रूप होता है—अथवा नाम मात्र से ही जो आवश्यक कहलाये वह नाम-आवश्यक है ।

नाम का क्षेत्र इतना व्यापक है कि लोकव्यवहार चलाने के लिये जीव, अजीव, जीवों, अजीवो अथवा जीवाजीव से मिश्रित पदार्थ अथवा पदार्थों के लिये उपयोग होता है । इसको उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते है ।

जीव का आवश्यक यह नामकरण किये जाने मे व्यक्ति की इच्छा मुख्य है । जैसे किसी व्यक्ति ने अपने पुत्र का नाम देवदत्त रखा । लेकिन उसे देव ने दिया नही है, फिर भी लोकव्यवहार के लिये ऐसा कहा जाता है । यही दृष्टि नाम-आवश्यक के लिये भी समझना चाहिये कि भाव-आवश्यक से शून्य किसी जीव, अजीव का व्यवहारार्थ आवश्यक नामकरण कर दिया गया है ।

एक अजीव मे आवश्यक नाम का प्रयोग इस प्रकार जानना चाहिये—आवश्यक शब्द का एक अर्थ आवास भी बतलाया है। अतएव सूखे अचित्त अनेक कोटरो से व्याप्त वृक्षादि मे 'यह सर्प का आवास है,' इस नाम से लोकव्यवहार होता है।

अनेक जीवो के लिये आवासक यह नाम इस प्रकार घटित होता है—इष्टिकापाक आदि की अग्नि मे अनेक मूषिकाये समूर्च्छन जन्म धारण करती है। इस अपेक्षा मे वह इष्टिकापाक आदि की अग्नि मूषिकावास रूप से कही जाती है। इस प्रकार उन असख्यात अग्निजीवो का आवासक नाम सिद्ध होता है।

अनेक अजीवो का आवासक नाम इस प्रकार जानना चाहिये—घोसला अनेक अचित्त तिनको से बनता है और उसमे पक्षी रहने से पक्षियो का वह आवासक है, यह कहा जाता है। अत उन अनेक अजीवो मे आवासक ऐसा नाम सिद्ध है।

जीव और अजीव इन दोनो का आवासक यह नाम इस प्रकार है—जलाशय, उद्यान आदि से युक्त राजमहल राजा का आवास नाम से कहलाता है। वहाँ जलाशय-उद्यान आदि सचित्त और ईट आदि अचित्त है और इन दोनो से निष्पन्न राजमहल आवास रूप होने से वह इन दोनो से निष्पन्न राजमहल आवास रूप होने से आवासक नामनिक्षेप का विषय बनता है। इसी प्रकार राजप्रासाद से युक्त समस्त नगर राजा आदि का आवास रूप से व्यवहार मे कह दिया जाता है। जिससे उन सम्मिलित अनेक अजीवो और जीवो का आवासक ऐसा नाम कहलाता है।

इसी प्रकार अन्य सभी जीव आदि के लिये आवासक सज्ञा समझ लेना चाहिये।

स्थापना-आवश्यक—'अमुक यह है' इस अभिप्राय से जो स्थापना की जाती है, उसे स्थापना और काष्ठादि की पुतली मे आवश्यकवान् श्रावक आदि रूप जो स्थापना होती है उसे स्थापना-आवश्यक कहते है। यह आवश्यक क्रिया और आवश्यकक्रियावान् मे अभेदोपचार से सभव है। अर्थात् भाव-आवश्यक से रहित वस्तु मे भाव-आवश्यक के अभिप्राय से स्थापना किये जाने से इसे स्थापना-आवश्यक कहते है।

यह स्थापना तत्सदृश-तदाकार और असदृश-अनाकार (अतदाकार) इन दोनो प्रकार की वस्तुओ मे कुछ कालविशेष के लिये अथवा यावत्कथिक (जब तक वस्तु रहे तब तक) के लिये की जा सकती है।

यद्यपि जैसे भाव-आवश्यक से शून्य वस्तु मे नामनिक्षेप किया जाता है, उसी प्रकार भाव से शून्य वस्तु मे तदाकार या अतदाकार स्थापना भी की जाती है, अतएव भावशून्यता की अपेक्षा दोनो मे समानता है। परन्तु काल-मर्यादा की अपेक्षा दोनो मे विशेषता होने से दोनो पृथक्-पृथक् माने जाते है। नाम तो स्वाश्रय द्रव्य के अस्तित्व काल तक रहता है। अर्थात् नामव्यवहार यावत्कथिक ही है, जबकि स्थापना स्वल्प काल के लिये भी और यावत्कथिक भी होती है।

इसके सिवाय दोनो मे अन्य प्रकार से भी भिन्नता सभव है। जैसे कि इन्द्रादि की प्रतिमा मे कुडल-कटक-केयूर आदि से भूषित आकृति दिखती है और देखकर सम्मान, आदर का भाव पैदा होता है—वैसा नाम इन्द्र को देखने-सुनने से उल्लास आदि उत्पन्न नही होता है।

इस प्रकार की स्थितिविशेष नाम और स्थापना निक्षेप के पार्थक्य—भिन्नता का कारण है।

सूत्रगत विशिष्ट शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—

कट्ठकम्मे (काष्ठकर्म)—लकडी मे उकेरी गई आकृति। **चित्तकम्मे**—(चित्रकर्म) कागज आदि पर चित्रित आकृति। **पोत्थकम्मे** (पुस्तकर्म)—कपडे पर चित्रित आकृति आदि। अथवा पुस्तक आदि मे बनाई गई रचना विशेष या ताडपत्र पर छेद कर बनाये गये आकार आदि। **लेप्पकम्मे** (लेप्यकर्म)—गीली मिट्टी के पिंड से रचित आकार। **गंथिमे** (ग्रन्थिम)—सूत आदि को गूथकर बनाई गई रचना। **वेढिमे** (वेष्टिम)—एक, दो या अनेक वस्त्रो को वेष्टित कर, लपेटकर बनाया गया आकार। **पूरिमे** (पूरिम)—गर्म ताबे, पीतल आदि को साचे मे ढालकर बनाया गया आकार। **संघाइमे** (सघातिम)—पुष्पो आदि को अथवा अनेक वस्त्रखडो को साधकर-जोडकर बनाया गया रूपक। **अक्खे** (अक्ष)—चौपड के पासे आदि। **वराडए** (वराटक)—कौडी।

१३. से किं तं दव्वावस्सयं ?

दव्वावस्सयं दुविहं पण्णत्तं। त जहा—आगमतो य १ णो आगमतो य २।

[१३ प्र] भगवन्! द्रव्य-आवश्यक का क्या स्वरूप है?

[१३ उ] आयुष्मन्! द्रव्यावश्यक दो प्रकार का कहा है। वह इस प्रकार—१ आगम-द्रव्यावश्यक, २ नोआगमद्रव्यावश्यक।

विवेचन—यहाँ भेद करके द्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया गया है।

द्रव्य—जो उन-उन पर्यायो को प्राप्त करता है वह द्रव्य है, अर्थात् जो अतीत, अनागत भाव का कारण हो उसे द्रव्य कहते है। विवक्षित पर्याय का जो अनुभव कर चुकी अथवा भविष्यत् काल मे अनुभव करेगी ऐसी वस्तु प्रस्तुत प्रसग मे द्रव्य के रूप मे परिगणित हुई है।

इस प्रकार का द्रव्य रूप जो आवश्यक हो वह द्रव्य-आवश्यक है। अर्थात् जो आवश्यक रूप परिणाम का अनुभव कर चुका अथवा भविष्य मे अनुभव करेगा ऐसा आवश्यक के उपयोग से शून्य साधु का शरीर आदि द्रव्य-आवश्यक पद का अभिधेय है।

आगमद्रव्य-आवश्यक

१४. से किं तं आगमतो दव्वावस्सयं ?

आगमतो दव्वावस्सयं जस्स ण आवस्सए त्ति पद सिक्खित ठित जितं मित परिजितं णामसमं घोससमं अहीणक्खरं अणच्चक्खर अव्वाइद्धक्खर अक्खलिय अमिलिय अवच्चामेलियं पडिपुण्ण पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्क गुरुवायणोवगय। से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए, णो अणुप्पेहाए। कम्हा? "अणुवओगो दव्व" मिति कट्टु।

[१४ प्र] भगवन्! आगमद्रव्य-आवश्यक का क्या स्वरूप है?

[१४ उ] आयुष्मन्! आगमद्रव्य-आवश्यक का स्वरूप इस प्रकार है—जिस (साधु) ने 'आवश्यक' पद को सीख लिया है, (हृदय मे) स्थित कर लिया है, जित—आवृत्ति करके धारणा रूप कर लिया है, मित—श्लोक, पद, वर्ण आदि के सख्याप्रमाण का भली-भाति अभ्यास कर लिया है,

परिजित—आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी पूर्वक सर्वात्मना परावर्तित कर लिया है, नामसम—स्वकीय नाम की तरह अविस्मृत कर लिया है, घोषसम—उदात्तादि स्वरो के अनुरूप उच्चारण किया है, अहीनाक्षर—अक्षर की हीनतारहित उच्चारण किया है, अनत्यक्षर—अक्षरो की अधिकता रहित उच्चारण किया है, अव्याविद्धाक्षर—व्यतिक्रम रहित उच्चारण किया है, अस्खलित—स्खलित रूप (बीच-बीच मे कुछ अक्षरों को छोडकर) से उच्चारण नही किया है, अमिलित—शास्त्रान्तर्वर्ती पदो को मिश्रित करके उच्चारण नही किया है, अव्यत्याम्रे डित—एक शास्त्र के भिन्न-भिन्न स्थानगत एकार्थक सूत्रो को एकत्रित करके पाठ नही किया है,[1] प्रतिपूर्ण—अक्षरो और अर्थ की अपेक्षा शास्त्र का अन्यूनाधिक अभ्यास किया है, प्रतिपूर्णघोष—यथास्थान समुचित घोषो पूर्वक शास्त्र का परावर्तन किया है, कठोष्ठविप्रमुक्त—स्वरोत्पादक कठादि के माध्यम से स्पष्ट उच्चारण किया है, गुरुवाचनोपगत—गुरु के पास (आवश्यक शास्त्र की) वाचना ली है, जिससे वह उस शास्त्र की वाचना, पृच्छना, परावर्तना, धर्मकथा से भी युक्त है। किन्तु (अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप) अनुप्रेक्षा (उपयोग) से रहित होने से वह आगमद्रव्य-आवश्यक है। क्योकि 'अनुपयोगो द्रव्य' इस शास्त्रवचन के अनुसार आवश्यक के उपयोग से रहित होने के कारण उसे आगमद्रव्य-आवश्यक कहा जाता है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे आगमद्रव्य-आवश्यक का स्वरूप बताया है। सूत्रार्थ स्पष्ट है। आगम-श्रुतज्ञान का कारण आत्मा, तदधिष्ठित देह और उपयोगशून्य सूत्र का उच्चारण शब्द है। ये सभी साधन होने से कारण मे कार्य का उपचार करके उन्हे आगम कहा है। द्रव्य कहने का कारण यह है कि विवक्षित भाव का कारण द्रव्य होता है। इसलिये आवश्यक मे उपयोग रहित आत्मा को आगमद्रव्य-आवश्यक कहा जाता है। यदि उपयोग पूर्वक अनुप्रेक्षा हो तब वह भाव-आवश्यक हो जाये। अतएव अनुपयोग के कारण उसे द्रव्य-आवश्यक कहा गया है।

सूत्रकार ने शिक्षितादि श्रुतगुणो के वर्णन द्वारा यह सूचित किया है कि इस प्रकार से शास्त्र का अभ्यासी भी यदि उसमे अनुपयुक्त (उपयोग बिना का) हो रहा है तो वह द्रव्यश्रुत-द्रव्यआवश्यक ही है।

श्रुतगुणो मे 'अहीनाक्षर' का ग्रहण इसलिये किया है कि हीनाक्षर सूत्र का उच्चारण करने से अर्थ मे भेद हो जाता है और उससे क्रिया मे भेद आने से परम कल्याण रूप मोक्ष की प्राप्ति न होकर अनन्त ससार की प्राप्ति रूप अनर्थ प्रकट होते है।

घोषसम और परिपूर्ण घोष—इन दोनो विशेषणो मे से घोषसम विशेषण शिक्षाकालाश्रयी है और परिपूर्णघोष विशेषण परावर्तनकाल की अपेक्षा है।

आगमद्रव्य-आवश्यक और नयदृष्टियाँ

१५. [१] **णेगमस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एग दव्वावस्सयं, दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइ, तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइ, एवं जावइया अणुवउत्ता तावइयाइ ताइं णेगमस्स आगमओ दव्वावस्सयाइं।**

---

१ सूत्रो का पाठ करते समय बीच-बीच मे स्वबुद्धि से रचित तत्सदृश सूत्रो का उच्चारण करना अथवा बोलते समय जहाँ विराम लेना हो वहाँ विराम नही लेना और जहाँ विराम नही लेना हो वहाँ विराम लेने को भी व्यत्याम्रे डित कहते हैं।

[१५-१] नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-आवश्यक है। दो अनुपयुक्त आत्माएँ दो आगमद्रव्य-आवश्यक, तीन अनुपयुक्त आत्माएँ तीन आगमद्रव्य-आवश्यक है। इसी प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्माएँ है, वे सभी उतनी ही नैगमनय की अपेक्षा आगमद्रव्य-आवश्यक है।

[२] एवमेव ववहारस्स वि।

[१५-२] इसी प्रकार (नैगमनय के सदृश ही) व्यवहारनय भी आगमद्रव्य-आवश्यक के भेद स्वीकार करता है।

[३] संगहस्स एगो वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वावस्सयं वा दव्वावस्सयाणि वा से एगे दव्वावस्सए।

[१५-३] संग्रहनय (सामान्यमात्र को ग्रहण करने वाला होने से) एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्य-आवश्यक और अनेक अनुपयुक्त आत्माएँ अनेक द्रव्य-आवश्यक है, ऐसा स्वीकार नही करता है। वह सभी आत्माओ को एक द्रव्य-आवश्यक ही मानता है।

[४] उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एग दव्वावस्सयं, पुहत्तं नेच्छइ।

[१५-४] ऋजुसूत्रनय के मत से एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-आवश्यक है। वह पृथक्त्व—भेदो को स्वीकार नही करता है।

[५] तिण्ह सद्दनयाण जाणए अणुवउत्ते अवत्थू। कम्हा? जइ जाणए अणुवउत्ते ण भवति। से त आगमओ दव्वावस्सयं।

[१५-५] तीनो शब्दनय (शब्द, समभिरूढ, एवभूत नय) ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो उसे अवस्तु (असत्) मानते है। क्योकि जो ज्ञायक है वह उपयोगशून्य नही होता है और जो उपयोगरहित है उसे ज्ञायक नही कहा जा सकता।

यह आगम से द्रव्य-आवश्यक का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे आगमद्रव्य-आवश्यक के विषय मे नयो का मन्तव्य स्पष्ट किया है।

वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। किन्तु वचन मे एक समय मे एक ही धर्म का कथन करने की योग्यता होने से उस एक धर्म के ग्राहक बोध को नय कहते है। प्रत्येक वस्तु मे अनन्त धर्मो के होने से नयो की सख्या भी अनन्त है, तथापि सुगमता से बोध कराने के लिये उनका सात विभागो मे समावेश कर लिया जाता है।

नेगमनय की मान्यतानुसार पदार्थ सामान्य और विशेष उभय रूप है। वह न केवल सामान्य रूप है और न केवल विशेष रूप ही है। अत वह एक नही अपितु अनेक प्रकारो द्वारा अर्थ का बोध कराता है। अतएव उस नय की दृष्टि से विशेष रूप भेद को प्रधान मानकर जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति है, उतने ही आगमद्रव्य-आवश्यक है। वह सग्रहनय की तरह एक ही द्रव्य-आवश्यक नही मानता।

संग्रहनय द्वारा गृहीत पदार्थों का विधिपूर्वक विभाग जिस अभिप्राय से किया जाता है, उस अभिप्राय को व्यवहारनय कहते है। व्यवहारनय मे लौकिक प्रवृत्ति—व्यवहार की प्रधानता होती है, जिससे वह लोकव्यवहारोपयोगी पदार्थों को स्वीकार करता है, अन्य को नही। लोकव्यवहार मे जल आदि लाने के लिये घट आदि 'विशेष' उपकारी दिखते है अत उस विशेष के अतिरिक्त अन्य कोई घटत्व आदि सामान्य नही है। अतएव व्यवहारनय विशेष को वस्तु रूप से स्वीकार करता है, सामान्य को नही। जिससे विशेष—भेद की मुख्यता से नैगमनय के सदृश ही जितने भी अनुपयुक्त व्यक्ति हो, उतने ही आगमद्रव्य-आवश्यक है।

इस प्रकार प्ररूपणा मे समानता होने से सूत्रकार ने क्रमप्राप्त संग्रहनय को छोडकर ग्रन्थ-लाघव की दृष्टि से व्यवहारनय का उपन्यास संग्रहनय से पूर्व और नैगमनय के अनन्तर किया है।

समस्त भुवनत्रयवर्ती वस्तुसमूह का सामान्यमुखेन संग्रह करने वाले, जानने वाले संग्रहनय की अपेक्षा एक अथवा अनेक जितनी भी अनुपयुक्त आत्माये हैं, वे सब आगम से एक द्रव्य-आवश्यक है। क्योकि संग्रहनय मात्र सामान्य को ही ग्रहण करता है, विशेषो को नही और विशेषो को स्वीकार न करने मे उसका मन्तव्य यह है कि वे विशेष सामान्य से पृथक् है या अपृथक् है? यदि प्रथमपक्ष स्वीकार किया जाय तो सामान्य के अभाव मे खरविषाणवत् विशेष सम्भव नही है और विशेष सामान्य से अपृथक् होने से वे सामान्य ही है। इसलिये सामान्य से व्यतिरिक्त विशेष सम्भव नही है। अत जितने भी द्रव्य-आवश्यक है, वे सभी सामान्य से अव्यतिरिक्त होने के कारण एक ही आगम-द्रव्य-आवश्यक रूप हैं।

अतीत, अनागत पर्यायो को छोडकर वर्तमान स्वकीय पर्याय को स्वीकार करने वाला ऋजुसूत्रनय एक आगमद्रव्य-आवश्यक को मानता है, पार्थक्य—भेद को स्वीकार नही करता है। क्योकि अतीत पर्याय के विनष्ट होने और अनागत पर्याय के अनुत्पन्न होने से वह वर्तमान पर्याय को ही मानता है और वह वर्तमान पर्याय एक सामयिक होने से एक ही है। इसी कारण इस नय की दृष्टि मे पृथक्त्व—नानात्व नही है। जिससे इस नय की मान्यतानुसार आगमद्रव्य-आवश्यक एक ही है, अनेक नही।

शब्दप्रधान नयो का नाम शब्दनय है। शब्द के द्वारा ही अर्थावगम होने से ये शब्द को प्रधान मानते है। शब्द, समभिरूढ और एवभूत के भेद से शब्दनय तीन है। इनका मन्तव्य है कि ज्ञातृत्व और अनुपयुक्तता का समन्वय सम्भव नही है। क्योकि ज्ञाता होने पर अनुपयुक्त और अनुपयुक्त होने पर ज्ञाता यह स्थिति बन नही सकती है। ज्ञाता है तो वह उसमे उपयुक्त है और यदि अनुपयुक्त है तो वह उसका ज्ञाता नही है। इसलिये आवश्यकशास्त्र के अनुपयुक्त ज्ञाता को लेकर की जाने वाली आगमद्रव्य-आवश्यक की प्ररूपणा असत् है।

इस प्रकार से आगमद्रव्य-आवश्यक का स्वरूप एव तत्सम्बन्धित नयो का मन्तव्य जानना चाहिये।

नोआगमद्रव्य-आवश्यक

१६. से किं तं नोआगमतो दव्वावस्सयं ?

नोआगमतो दव्वावस्सयं तिविहं पण्णत्तं। तं जहा—जाणगसरीरदव्वावस्सयं १ भवियसरीर-दव्वावस्सयं २ जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तं दव्वावस्सयं ३।

[१६ प्र] भगवन्! नोआगमद्रव्य-आवश्यक का स्वरूप क्या है?

[१६ उ] आयुष्मन्! नोआगमद्रव्य-आवश्यक तीन प्रकार का है। यथा—१ ज्ञायक-शरीरद्रव्यावश्यक, २ भव्यशरीरद्रव्यावश्यक, ३ ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक।

विवेचन—सूत्र मे भेदो के द्वारा नोआगमद्रव्यावश्यक का स्वरूप बताया है। नो शब्द का प्रयोग सर्वथा और एकदेश दोनो प्रकार के निषेधो मे होता है। यहाँ नोआगमद्रव्यावश्यक के भेदो मे 'नो' शब्द सर्वथा और एकदेश अभाव के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। क्योकि इन भेदो मे आगम का—आवश्यकादि ज्ञान का सर्वथा अभाव है और एकदेशप्रतिषेधवचन मे नो शब्द का उदाहरण इस प्रकार जानना चाहिये—आवर्तादि क्रियाओ को करते और वदनासूत्र आदि रूप आगम का उच्चारण करते हुए जो आवश्यक करते है, वे नोआगमद्रव्यावश्यक है। इसके तीन प्रकार है। अब क्रम से उनका विवेचन करते है।

नोआगमज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक

१७. से किं तं जाणगसरीरदव्वावस्सयं?

जाणगसरीरदव्वावस्सयं आवस्सए त्ति पदत्थाधिकारजाणगस्स जं सरीरयं ववगयचुतचावित-चत्तदेहं जीवविप्पजढं सेज्जागयं वा संथारगयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ता णं कोइ भणेज्जा-अहो! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं आवस्सए त्ति पयं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं। जहा को दिट्ठंतो? अयं महुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी। से तं जाणगसरीर-दव्वावस्सयं।

[१७ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है?

[१७ उ] आयुष्मन्! आवश्यक इस पद के अर्थाधिकार को जानने वाले के व्यपगत—चैतन्य से रहित, च्युत-च्यावित—आयुकर्म के क्षय होने से श्वासोच्छ्वास आदि दस प्रकार के प्राणो से रहित, त्यक्तदेह—आहार-परिणतिजनित वृद्धि से रहित, ऐसे जीवविप्रमुक्त शरीर को शैयागत, सस्तारकगत अथवा सिद्धशिलागत—अनशन आदि अगीकार किये गये स्थान पर स्थित देखकर कोई कहे—'अहो! इस शरीररूप पुद्गलसघात ने जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक पद का (गुरु से) अध्ययन किया था, सामान्य रूप से शिष्यो को प्रज्ञापित किया था, विशेष रूप से समझाया था, अपने आचरण द्वारा शिष्यो को दिखाया था, निदर्शित—अक्षम शिष्यो को आवश्यक ग्रहण कराने का प्रयत्न किया था, उपदर्शित—नयो और युक्तियो द्वारा शिष्यो के हृदय मे अवधारण कराया था।' ऐसा शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्य-आवश्यक है।

शिष्य—इसका समर्थक कोई दृष्टान्त है?

आचार्य—(दृष्टान्त इस प्रकार है—) यह मधु का घडा था, यह घी का घडा था।

यह ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे द्रव्यावश्यक के दूसरे भेद नोआगम के ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है। जिसने पहले आवश्यकशास्त्र का सविधि ज्ञान प्राप्त कर लिया था, किन्तु अब पर्यायान्तरित हो जाने से उसका वह निर्जीव शरीर आवश्यकसूत्र के ज्ञान से सर्वथा रहित होने के कारण नोआगमज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक है।

यद्यपि मृतावस्था मे चेतना नही होने से उस शरीर मे द्रव्यावश्यकता नही है, तथापि भूतपूर्व-प्रज्ञापननयापेक्षया अतीत आवश्यक पर्याय के प्रति कारणता मानकर उसमे द्रव्यावश्यकता मानी गई है। लोकव्यवहार मे ऐसा माना भी जाता है, जो सूत्रगत दृष्टान्तो से स्पष्ट है कि पहले जिस घडे मे मधु या घृत भरा जाता था लेकिन अब नही भरे जाने पर भी 'यह मधुकुभ है, यह घृतकुभ है' ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार निर्जीव शय्यादिगत शरीर भी भूतकालीन आवश्यक पर्याय का कारण रूप आधार होने से नोआगम की अपेक्षा द्रव्यावश्यक है।

सूत्रस्थ 'अहो' शब्द दैन्य, विस्मय और आमत्रण इन तीन अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। जैसे शरीर अनित्य है इसमे दैन्य का, इस निर्जीव शरीर ने आवश्यक जाना था इससे विस्मय का और देखो इस शरीरसघात ने आवश्यकशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था, इससे परिचितो को आमन्त्रित करने का आशय घटित होता है।

विशिष्ट शब्दों का अर्थ—सेज्जा (शय्या) सर्वागप्रमाण लबा-चौडा पाटा आदि। **सथार** (सस्तार) अढाई हाथ प्रमाण लबा-चौडा पाट, यह **शय्या** के प्रमाण मे आधा होता है। **सिद्धसिलातल** (सिद्धशिलातल) अनेकविध तपस्याओ को करने वाले साधुजनो ने जहाँ स्वयमेव जाकर भक्त-प्रत्याख्यान रूप अनशन किया है, करते है और करेगे, अथवा जहाँ पर जिस किसी महर्षि ने सस्तारक करके मरणधर्म को प्राप्त किया हो, उस स्थान का नाम सिद्धशिलातल है।

नोआगमभव्यशरीरद्रव्यावश्यक

१८. से किं तं भवियसरीरदव्वावस्सय ?

भवियसरीरदव्वावस्सयं जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते इमेणं चेव सरीरसमुस्सएणं आदत्तएण जिणोवदिट्ठेण भावेणं आवस्सए त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ, न ताव सिक्खइ। जहा को दिट्ठंतो ? अयं महुकुंभे भविस्सइ, अय घयकुंभे भविस्सइ। से तं भवियसरीरदव्वावस्सयं।

[१८ प्र] भगवन्! भव्यशरीरद्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है?

[१८ उ] आयुष्मन्! समय पूर्ण होने पर जो जीव जन्मकाल मे योनिस्थान से बाहर निकला और उसी प्राप्त शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार भविष्य मे आवश्यक पद को सीखेगा, किन्तु अभी सीख नही रहा है, ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यावश्यक कहलाता है।

शिष्य—इसका कोई दृष्टान्त है?

आचार्य—(दृष्टान्त इस प्रकार है—) यह मधुकुभ होगा, यह घृतकुभ होगा।

यह भव्यशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे नोआगमद्रव्यावश्यक के दूसरे भेद भव्यशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है। वर्तमान की अपेक्षा इस शरीर मे आगम के अभाव को लेकर नोआगमता जानना चाहिये।

यद्यपि इस समय के शरीर मे आगम का अभाव है, लेकिन 'भाविनि भूतवदुपचार'—भावी मे भी भूत की तरह उपचार होता है—के न्यायानुसार भविष्यकालीन स्थिति को ध्यान मे रखकर उपचार से उसमे द्रव्यावश्यकता मानी है। क्योकि वर्तमान मे न सही किन्तु यही शरीर आगे चलकर इसी पर्याय मे आवश्यकशास्त्र का ज्ञाता बनेगा। यही बात दृष्टान्तो द्वारा स्पष्ट की गई है कि भविष्य मे मधु या घृत जिनमे भरा जाएगा उन घडो को वर्तमान मे मधुघट या घृतघट कहा जाता है।

इन दोनों दृष्टान्तो मे सकल्पमात्रग्राही नैगमनय की अपेक्षा है।

ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक

१९. से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वावस्सए ?

जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वावस्सए तिविधे पण्णत्ते। तं जहा—लोइए १ कुप्पावयणिते २ लोउत्तरिते ३।

[१९ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[१९ उ] आयुष्मन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक तीन प्रकार का है। यथा—१ लौकिक, २ कुप्रावचनिक, ३ लोकोत्तरिक।

विवेचन—सूत्र मे उभयव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक के तीन भेदो के नाम गिनाये हैं। यथाक्रम उनका वर्णन करते है।

लौकिक द्रव्यावश्यक

२०. से किं तं लोइय दव्वावस्सयं ?

लोइयं दव्वावस्सयं जे इमे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितिओ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए सुविमलाए फुल्लुप्पल-कमलकोमलुम्मिल्लियम्मि अहपंडुरे पभाए रत्तासोगप्पगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागसरिसे कमलागर-नलिणिसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते मुहधोयण-दंतपक्खालण-तेल्ल-फणिह-सिद्धत्थय-हरियालिय-अद्दाग-धूव-पुप्फ-मल्ल-गंध-तंबोल-वत्थमाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेत्ता ततो पच्छा रायकुलं वा देवकुलं वा आरामं वा उज्जाणं वा सभं वा पवं वा गच्छंति। से तं लोइयं दव्वावस्सयं।

[२० प्र] भगवन्! लौकिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[२० उ] आयुष्मन्! जो ये राजेश्वर अथवा राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि रात्रि के व्यतीत होने से प्रभातकालीन किंचिन्मात्र प्रकाश होने पर, पहले की अपेक्षा अधिक स्फुट प्रकाश होने, विकसित कमलपत्रो एवं मृगों के नयनों के

ईषद् उन्मीलन से युक्त, यथायोग्य पीतमिश्रित श्वेतवर्णयुक्त प्रभात के होने तथा रक्त अशोकवृक्ष, पलाशपुष्प, तोते के मुख और गुजा (चिरमी) के अर्ध भाग के समान रक्त, सरोवरवर्ती कमलवनो को विकसित करने वाले और अपनी सहस्र रश्मियो से दिवसविधायक तेज से देदीप्यमान सूर्य के उदय होने पर मुख को धोना, दतप्रक्षालन, तेलमालिश करना, स्नान, कघी आदि से केशो को सवारना, मगल के लिए सरसो, पुष्प, दूर्वा आदि का प्रक्षेपण, दर्पण मे मुख देखना, धूप जलाना, पुष्पो और पुष्पमालाओ को लेना, पान खाना, स्वच्छ वस्त्र पहनना आदि करते है और उसके बाद राजसभा, देवालय, आराम-गृह, उद्यान, सभा अथवा प्रपा (प्याऊ) की ओर जाते है, वह लौकिक द्रव्यावश्यक है।

विवेचन—सूत्र मे लौकिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है कि ससारी जनो द्वारा आवश्यक कृत्यो के रूप मे जिनको अवश्य करना होता है, वे सब लौकिक द्रव्यावश्यक है।

इन दतप्रक्षालन आदि लौकिक आवश्यक कृत्यो मे द्रव्य शब्द का प्रयोग मोक्षप्राप्ति के कारणभूत आवश्यक की अप्रधानता की अपेक्षा से किया है। मोक्ष का प्रधान कारण तो भावावश्यक है, न कि द्रव्यावश्यक। अतएव 'अप्पाहण्णे वि दव्वसद्दोत्थि'—अप्रधान अर्थ मे भी द्रव्य शब्द प्रयुक्त होता है—इस शास्त्रवचन के अनुसार अप्रधानभूत आवश्यक द्रव्यावश्यक है तथा इन दतधावनादि कृत्यो मे लोकप्रसिद्धि से भी आगमरूपता नही है, अत इनमे आगम का अभाव होने से नोआगमता सिद्ध है।

प्रभातवर्णन की विशेषता—'पाउप्पभायाए' इत्यादि पदो द्वारा सूत्रकार ने प्रभात की विशेष अवस्थाओ का वर्णन किया है। यथा—'पाउप्पभायाए' इस पद द्वारा प्रभात की प्रथम अवस्था बतलाई है। इस समय मे प्रभात की आभा की प्रारभिक अवस्था होती है। इसके बाद यथाक्रम से प्रभात की द्वितीय अवस्था होती है, जिसमे पूर्व की अपेक्षा प्रकाश स्फुटतर तथा धीरे-धीरे बढकर कमलो के ईषत् विकास से युक्त होकर कुछ-कुछ श्वेततामिश्रित पीत वर्ण से समन्वित हो जाता है, जिसे सुविमलाए अहपडुरे पभाए पद से स्पष्ट किया है। इसके बाद प्रभात तृतीय अवस्था मे पहुँचता है। तब सूर्य पूर्ण रूप मे उदित होकर अपने प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है। इस उषाकालीन स्थिति का सकेत रत्तासोगप्पगास तेयसा जलते पद द्वारा किया है।

विशिष्ट शब्दो के अर्थ—**राईसर**—राजेश्वर—चक्रवर्ती, वासुदेव आदि, अथवा राजा—महामाडलिक, ईश्वर—युवराज, सामान्य माडलिक, अमात्य आदि, **तलवर**—राजा द्वारा प्रदत्त रत्नालकृत स्वर्णपट्ट को मस्तक पर धारण करने वाला। **माडबिय**—जिसके आसपास मे अन्य गाव नही हो अथवा छिन्न-भिन्न जनाश्रय विशेष को मडब और इन मडबो के अधिपति को माडबिक कहते है। **कोडु बिय**-कौटुम्बिक—अनेक कुटुम्बो का प्रतिपालन करने वाले। **इब्भ**—इभ नाम हाथी का है। जिनके पास हाथी-प्रमाण द्रव्य हो। **सेट्ठि**—जो कोटयधीश है तथा राजा द्वारा नगरसेठ की उपाधि से विभूषित एव समानार्थ स्वर्णपट्टप्राप्त। **सेणावइ**—हाथी आदि चतुरग सेना के नायक सेनापति। **सत्थवाह**—सार्थवाह—गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य रूप क्रय-विक्रय योग्य द्रव्यसमूह को लेकर लाभ की इच्छा से जो अन्य व्यापारियो के समूह के साथ देशान्तर जाते है एव उन का सवर्धन करते है।

कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक

२१ से किं तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं ?

कुप्पावयणिग्रं दव्वावस्सयं जे इमे चरग-चीरिग-चम्मखंडिय-भिच्छुंडग-पंडुरंग-गोतम-गोव्वतिय-गिहिधम्म-धम्मचिंतग-अविरुद्ध-विरुद्ध-वुड्ढ-सावगप्पभितयो पासंडत्था कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा सिवस्स वा वेसमणस्स वा देवस्स वा नागस्स वा जक्खस्स वा भूयस्स वा मुगुंदस्स वा अज्जाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवण-सम्मज्जणाऽऽवरिसण-धूव-पुप्फ-गंध-मल्लाइयाइं दव्वावस्सयाइं करेंति । से तं कुप्पावयणियं दव्वाव-स्सयं ।

[२१ प्र] भगवन् ! कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[२१ उ] आयुष्मन् ! जो ये चरक, चीरिक, चर्मखडिक, भिक्षोण्डक, पाडुरग, गौतम, गोव्रतिक, गृहीधर्मा, धर्मचिन्तक, अविरुद्ध, विरुद्ध, वृद्धश्रावक आदि पाषडस्थ रात्रि के व्यतीत होने के अनन्तर प्रभात काल मे यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान तेज से दीप्त होने पर इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रमण-कुबेर अथवा देव, नाग, यक्ष, भूत, मुकुन्द, आर्यादेवी, कोट्टक्रियादेवी आदि की उपलेपन, समार्जन, स्नपन (प्रक्षालन), धूप, पुष्प, गध, माला आदि द्वारा पूजा करने रूप द्रव्यावश्यक करते है, वह कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है ।

विवेचन—सूत्र मे कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप बतलाया है । मोक्ष के कारणभूत सिद्धातो से विपरीत सिद्धान्तो की प्ररूपणा एव आचरण करने वाले चरक आदि कुप्रावचनिको के आवश्यक को कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक कहते है ।

ये चरक आदि इन्द्रादिको की प्रतिमाओ का उपलेपन आदि आवश्यक कृत्य करते है, अत आवश्यक पद दिया है तथा इन उपलेपनादि क्रियाओ मे मोक्ष के कारणभूत भावावश्यक की अप्रधानता होने से द्रव्यत्व एव आगम के सर्वथा अभाव की अपेक्षा नोआगमता जानना चाहिये ।

सूत्र मे 'प्रभृति' शब्द से परिव्राजक आदि का एव यावत् शब्द से पूर्वोक्त २० वे सूत्र मे कथित प्रात काल की तीन अवस्थाओ और सूर्य के सहस्ररश्मि, दिनकर आदि विशेषणो को ग्रहण किया गया है ।

सूत्रगत शब्दो का अर्थ—चरग (चरक)—समुदाय रूप मे एकत्रित होकर भिक्षा मागने वाले अथवा खाते-खाते चलने वाले । **चीरिग** (चीरिक)—मार्ग मे पडे हुए वस्त्रखडो (चिथडो) को पहनने वाले । **चम्मखंडिय**(चर्मखडिक)—चमडे को वस्त्र रूप मे पहनने वाले अथवा जिनके चमडे के ही समस्त उपकरण होते हैं । भिच्छुडग (भिक्षोण्डक)—अपने घर मे पालित गाय आदि के दूधादि से नही किन्तु भिक्षा मे प्राप्त अन्न से ही उदरपूर्ति करने वाले अथवा सुगत के शासन को मानने वाले । **पंडुरंग** (पाण्डुराग)—शरीर पर भस्म (राख) का लेप करने वाले । **गोतम** (गौतम)—बैल को कौडियो की मालाओं से विभूषित करके उसकी विस्मयकारक चाल दिखाकर भिक्षावृत्ति करने वाले । **गोव्वतिय** (गोव्रतिक)—गोचर्या का अनुकरण करने वाले । गोव्रत का पालन करने वाले ये गायो के मध्य मे रहने की इच्छा से गाये जब गाव से निकलती है तब उनके साथ ही निकलते है, वे जब बैठती है तब

बैठते हैं, खडी होती हैं तब खडे होते है, जब चरती है, तब कन्दमूल, फल आदि का भोजन करते हैं और जब जल पीती है तब जल पीते है।[1] **गिहिधम्म** (गृहिधर्मा)—गृहस्थधर्म ही श्रेयस्कर है, ऐसी जिनकी मान्यता है और ऐसा मानकर उसी का आचरण करने वाले। **धम्मचितग** (धर्मचिन्तक)—याज्ञवल्क्य आदि ऋषिप्रणीत धर्मसहिता आदि के अनुसार धर्म के विचारक और तदनुसार दैनिक प्रवृत्ति, आचार वाले। **अविरुद्ध** (अविरुद्ध)—देव, नृप, माता, पिता और तिर्यंचादि का बिना किसी भेदभाव के समानरूप मे—एकसा विनय करने वाले वैनयिक मिथ्यादृष्टि। **विरुद्ध** (विरुद्ध)—पुण्य-पाप, परलोक आदि को नही मानने वाले अक्रियावादी। इनका आचार-विचार सर्व पाखडियो, सर्व धर्म वालो की अपेक्षा विपरीत होने से ये विरुद्ध कहलाते है। **वुड्ढ-सावग** (वृद्ध श्रावक)—ब्राह्मण। प्राचीन काल की अपेक्षा इनमे वृद्धता मानी है। क्योकि भरतचक्रवर्ती ने अपने शासनकाल मे देव, धर्म, गुरु का स्वरूप सुनाने के लिये इनकी स्थापना की थी। अथवा वृद्धावस्था मे दीक्षा अगीकार करके तपस्या करने वाले श्रावक। **पासंडत्था** (पाषण्डस्थ)—पाषण्ड अर्थात् व्रतो का पालन करने वाले। **खंद** (स्कन्द)—कार्तिकेय-महेश्वर का पुत्र। **रुद्द** (रुद्र)—महादेव। **सिव** (शिव)—व्यतरदेव विशेष। **वेसमण** (वैश्रमण)—कुबेर, धनरक्षक यक्षविशेष। **नाग** (नागकुमार) भवनपतिनिकाय का देवविशेष। **जक्ख, भूत** (यक्ष, भूत)—व्यतरजातीय देव। **मुगुन्द** (मुकुन्द) बलदेव। **अज्जा** (आर्या)—देवीविशेष। **कोट्टकिरिया** (कोट्टक्रिया)—महिषासुर की मर्दक देवी। **उवलेवण** (उपलेपन)—तेल, घी आदि का लेप करना। **सम्मज्जण** (सम्मार्जन)—वस्त्रखड मे पोछना। **आवरिसण** (आवर्षण)—गधोदक से अभिषेक करना, स्नान कराना।

लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक

२२. **से किं तं लोगोत्तरियं दव्वावस्सयं ?**

लोगोत्तरियं दव्वावस्सयं जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हया इव उद्दामा गया इव निरकुसा घट्ठा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडरपडपाउरणा जिणाण अणाणाए सच्छद विहरिऊण उभओकाल आवस्सगस्स उवट्ठति। से त लोगुत्तरिय दव्वावस्सय से तं जाणगसरीरभवियसरीर-वइरित्तं दव्वावस्सय। से त नोआगमतो दव्वावस्सयं। से तं दव्वावस्सय।

[२२ प्र] भगवन्! लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक का क्या स्वरूप है?

[२२ उ] आयुष्मन्! लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक का स्वरूप इस प्रकार है—जो (साधु) श्रमण के (मूल और उत्तर) गुणो से रहित हों, छह काय के जीवो के प्रति अनुकम्पा न होने के कारण अश्व की तरह उद्दाम (शीघ्रगामी—जल्दी-जल्दी चलने वाले) हो, हस्तिवत् निरकुश हो, स्निग्ध पदार्थों के लेप से अग-प्रत्यगो को कोमल, सलौना बनाते हो, जल आदि से बारबार शरीर को धोते हो, अथवा तेलादि से केशो का सस्कार करते हो, ओठो को मुलायम रखने के लिये मक्खन लगाते हो, पहनने-ओढने के वस्त्रो को धोने मे आसक्त हो और जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा की उपेक्षा कर स्वच्छद विचरण करते हो, किन्तु उभयकाल (प्रात सायकाल) आवश्यक करने के लिये तत्पर हो तो उनकी वह क्रिया लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है।

---

१. इन गोव्रतिकों की चर्या का विस्तृत वर्णन रघुवश प्रथम सर्ग मे राजा दिलीप की प्रवृत्ति द्वारा किया गया है।

इस प्रकार यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का स्वरूप जानना चाहिये।

यह नोआगमद्रव्यावश्यक का निरूपण हुआ और साथ ही द्रव्यावश्यक की वक्तव्यता भी पूर्ण हुई।

विवेचन—सूत्र मे उभयव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक के तीसरे भेद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए नोआगमद्रव्यावश्यक एव द्रव्यावश्यक की वक्तव्यता का उपसहार किया है।

लोक मे श्रेष्ठ साधुओ द्वारा आचरित एव लोक मे उत्तर-उत्कृष्टतर जिनप्रवचन मे वर्णित होने से आवश्यक लोकोत्तरिक है। किन्तु श्रमणगुण से रहित स्वच्छन्दविहारी द्रव्यलिंगी साधुओ द्वारा किये जाने से वह आवश्यककर्म अप्रधान होने के कारण द्रव्यावश्यक है तथा भावशून्यता के कारण उसका कोई फल प्राप्त नही होता है।

प्रस्तुत मे 'नो' शब्द एकदेश प्रतिषेध अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। क्योकि प्रतिक्रमणक्रिया रूप एकदेश मे आगमरूपता नही है, किन्तु उसके ज्ञान का सद्भाव होने से आगम की एकदेशता है। इस प्रकार क्रिया की दृष्टि से आगम का अभाव और ज्ञान की दृष्टि से आगम का सद्भाव प्रकट करने से 'नो' शब्द मे देशप्रतिषेधरूपता है।

इस प्रकार सप्रभेद द्रव्यावश्यक का निरूपण जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त भावावश्यक का वर्णन करते है।

भावावश्यक

२३. से किं तं भावावस्सयं?

भावावस्सयं दुविहं पण्णत्तं। तं जहा—आगमतो य १ णोआगमतो य २।

[२३ प्र] भगवन्! भावावश्यक का क्या स्वरूप है?

[२३ उ] आयुष्मन्! भावावश्यक दो प्रकार का है—१ आगमभावावश्यक और २ नो-आगमभावावश्यक।

विवेचन—प्रस्तुत मे भेदो द्वारा भावावश्यक का स्वरूपवर्णन प्रारम्भ किया है।

विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त अर्थ को भाव कहते है। अत यहाँ भाव शब्द विवक्षित क्रिया के अनुभव से युक्त साध्वादि के लिये प्रयुक्त हुआ है और उनका आवश्यक भावावश्यक है। यह कथन भाव और भाववान् मे अभेदोपचार की अपेक्षा किया गया है। जैसे ऐश्वर्य रूप इन्दन क्रिया के अनुभव से युक्त को भावत इन्द्र कहा जाता है अथवा विवक्षित क्रिया के अनुभव रूप भाव को लेकर जो आवश्यक होता है वह भावावश्यक है।

इस भावावश्यक के दो भेद है। क्रम से जिनका वर्णन इस प्रकार है—

आगमभावावश्यक

२४. से किं तं आगमतो भावावस्सयं?

आगमतो भावावस्सयं जाणए उवउत्ते। से तं आगमतो भावावस्सयं।

[२४ प्र.] भगवन् ! आगमभावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[२४ उ.] आयुष्मन् ! जो आवश्यक पद का ज्ञाता हो और साथ ही उपयोग युक्त हो, वह आगमभावावश्यक कहलाता है।

विवेचन—सूत्र मे आगमभावावश्यक के स्वरूप का निर्देश किया है। ज्ञायक होने के साथ जो उसके उपयोग से भी युक्त हो वह आगम से भाव-आवश्यक है। अर्थात् आवश्यक के अर्थज्ञान से जनित उपयोग को भाव और उस भाव से युक्त आवश्यक को भावावश्यक कहते है एव आवश्यक के अर्थ के ज्ञाता का आवश्यक मे उपयोगरूप परिणाम आगमभावावश्यक है।

ज्ञायक एव उपयोगयुक्त साधु को उस परिणाम से युक्त होने के कारण अभेदविवक्षा से भावावश्यक कहा जाता है।

नोआगमभावावश्यक

२५. से किं तं नोआगमतो भावावस्सय ?

नोआगमतो भावावस्सयं तिविहं पण्णत्त। त जहा—लोइयं १ कुप्पावयणिय २ लोगुत्तरिय ३।

[२५ प्र.] भगवन् ! नोआगमभावावश्यक किसे कहते है ?

[२५ उ.] आयुष्मन् ! नोआगमभावावश्यक तीन प्रकार का है। जैसे—१ लौकिक, २ कुप्रावचनिक और ३ लोकोत्तरिक।

विवेचन—नोआगमद्रव्यावश्यक के अनुरूप नोआगमभाववावश्यक के भी लौकिक आदि तीन भेद है। क्रम से उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

लौकिक भावावश्यक

२६. से किं तं लोइयं भावावस्सय ?

लोइय भावावस्सय पुव्वण्हे भारह अवरण्हे रामायण। से त लोइयं भावावस्सय।

[२६ प्र.] भगवन् ! लौकिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[२६ उ.] आयुष्मन् ! दिन के पूर्वार्ध मे महाभारत का और उत्तरार्ध मे रामायण का वाचन करने, श्रवण करने को लौकिक नोआगमभावावश्यक कहते है।

विवेचन—सूत्र मे नोआगम मे लौकिक भावावश्यक का स्वरूप बतलाया है कि नियत समय पर लोकव्यवहार मे आगमरूप मे माने गये महाभारत, रामायण आदि का वाचना और श्रवण अवश्य करने योग्य होने से लौकिक आवश्यक है और उनके अर्थ मे वक्ता एव श्रोता के उपयोगरूप परिणाम होने मे भावरूपता है। किन्तु वाचने वाले का बोलने, पुस्तक के पन्ने पलटने, हाथ का सकेत करने तथा श्रोता के हाथो को जोडे रहने आदि रूप क्रियाये आगमरूप नही है। क्योंकि 'किरिया आगमो न होइ'—क्रिया आगम नही होती है, ज्ञान ही आगमरूप है। इसलिये क्रियारूप देश मे आगम का अभाव होने से नोआगमता है।

इस तरह एकदेश मे आगमता की अपेक्षा यह लौकिक-भावावश्यक का स्वरूप जानना चाहिये।

कुप्रावचनिक भावावश्यक

२७. से किं तं कुप्पावयणियं भावावस्सयं ?

कुप्पावयणिय भावावस्सयं जे इमे चरग-चीरिय-जाव पासंडत्था इज्जंजलि-होम-जप्प-उंदुरुक्क-नमोक्कारमाइयाइं भावावस्सयाइं करेंति । से तं कुप्पावयणिय भावावस्सयं ।

[२७ प्र] भगवन् ! कुप्रावचनिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ।

[२७ उ] आयुष्मन् ! जो ये चरक, चीरिक यावत् पाषण्डस्थ (उपयोगपूर्वक) इज्या- यज्ञ, अजलि, होम—हवन, जाप, उन्दुरुक्क—धूपप्रक्षेप या बैल जैसी ध्वनि, वदना आदि भावावश्यक करते हैं, वह कुप्रावचनिक भावावश्यक है ।

विवेचन—सूत्र मे कुप्रावचनिक भावावश्यक का स्वरूप बतलाया है। मिथ्याशास्त्रो को मानने वाले चरक, चीरिक आदि पाषडी यथावसर जो भावसहित यज्ञ आदि क्रियाये करते है, वह कुप्रावचनिक भावावश्यक है ।

चरक आदि द्वारा अवश्य ही—निश्चित रूप से किये जाने से ये यज्ञ आदि आवश्यक रूप है तथा इनके करने वालो की उन क्रियाओ मे उपयोग एव श्रद्धा होने से भावरूपता है। तथा इन चरकादि का उन क्रियाओ सबन्धी उपयोग तो देशत आगम रूप है और हाथ, सिर आदि द्वारा होने वाली प्रवृत्ति आगमरूप नही है । इसीलिए आगम के एक देश की अपेक्षा नोआगम है ।

कतिपय शब्दो के विशिष्ट अर्थ —इज्जंजलि— (इज्याजलि) यज्ञ और तन्निमित्तिक जलधारा प्रक्षेप—छोडना। अथवा इज्या—पूजा गायत्री आदि के पाठपूर्वक ब्राह्मणो द्वारा की जाने वाली सध्योपासना और अजलि—हाथ जोडकर नमस्कार करना अथवा इज्या—माता आदि गुरुजनो को अजलि—नमस्कार करना। **उन्दुरुक्क**—उन्दु-मुख और रुक्क बैल जैसी ध्वनि करना, अर्थात् मुख से बैल जैसी गर्जना करना अथवा धूपप्रक्षेप करना ।

लोकोत्तरिक भावावश्यक

२८. से किं तं लोगोत्तरियं भावावस्सयं ?

लोगोत्तरियं भावावस्सयं जण्णं इमं समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तयज्झवसिते तत्तिव्वज्झवसाणे तयट्ठोवउत्ते तयप्पियकरणे तब्भावणाभाविते अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेंति, से तं लोगोत्तरियं भावावस्सयं। से तं नोआगमतो भावावस्सयं । से त भावावस्सय ।

[२८ प्र] भगवन् ! लोकोत्तरिक भावावश्यक का क्या स्वरूप है ?

[२८ उ] आयुष्मन् ! दत्तचित्त और मन की एकाग्रता के साथ, शुभ लेश्या एव अध्यवसाय से सम्पन्न, यथाविधि क्रिया को करने के लिये तत्पर अध्यवसायो से सम्पन्न होकर, तीव्र आत्मोत्साहपूर्वक उसके (आवश्यक के) अर्थ मे उपयोगयुक्त होकर एव उपयोगी करणो—शरीरादि को नियोजित कर, उसकी भावना से भावित होकर जो ये श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविकाये

अन्यत्र मन (वचन-काय) को डोलायमान (सयोजित) किये बिना उभयकाल (प्रात -सध्या समय) आवश्यक—प्रतिक्रमणादि करते हैं, वह लोकोत्तरिक भावावश्यक है।

इस प्रकार से यह नोआगम भावावश्यक का स्वरूप जानना चाहिये और इसके साथ ही भावावश्यक की वक्तव्यता पूर्ण हुई।

विवेचन—सूत्र मे लोकोत्तरिक भावावश्यक का स्वरूप बतलाया है। जो श्रमण आदि जिन-प्रवचन मे मन को केन्द्रित कर दोनो समय आवश्यक करते है, उसे लोकोत्तरिक भावावश्यक कहते है।

प्रतिक्रमण आदि क्रियाये श्रमण आदि जनो को अवश्य करने योग्य होने से आवश्यक है। इनके करने वालो का उनमे उपयोग वर्तमान रहने से भावरूपता है। 'तयट्ठोवउत्ते' और 'तयप्पिय-करणे' इन दो पदो द्वारा यह स्पष्ट किया है कि आवश्यक क्रियाये स्वय तो आगम रूप नही है अत आवश्यकक्रियारूप एकदेश मे तो अनागमता है किन्तु इनके ज्ञानरूप एकदेश मे आगमता का सद्भाव होने से उभयरूपता के कारण इन्हे नोआगम लोकोत्तरिक भावावश्यक जानना चाहिये।

आवश्यक के पर्यायवाची नाम

२९. तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा णामधेज्जा भवंति। त जहा—

आवस्सयं १ अवस्सकरणिज्ज २ धुवणिग्गहो ३ विसोही य ४।
अज्झयणछक्कवग्गो ५ नाओ ६ आराहणा ७ मग्गो ८॥ २॥
समणेण सावएण य अवस्सकायव्वयं हवति जम्हा।
अंतो अहो—निसिस्स उ तम्हा आवस्सयं नाम॥ ३॥

से तं आवस्सय।

[२९] उस आवश्यक के नाना घोष (स्वर) और अनेक व्यजन वाले एकार्थक अनेक नाम इस प्रकार है—

१ आवश्यक, २ अवश्यकरणीय, ३ ध्रुवनिग्रह, ४ विशोधि, ५ अध्ययन-षट्कवर्ग, ६ न्याय, ७ आराधना और ८ मार्ग।

श्रमणो और श्रावको द्वारा दिन एव रात्रि के अन्त मे अवश्य करने योग्य होने के कारण इसका नाम आवश्यक है। यह आवश्यक का स्वरूप है।

विवेचन—यहाँ आवश्यक के पर्यायवाची नाम बतलाये है। जो पृथक्-पृथक् उदात्तादि स्वर वाले और अनेक प्रकार के ककारादि व्यजन वाले होने से किचित् अर्थभेद रखते हुए भी एकार्थ—समानार्थवाचक है—

१. आवश्यक—अवश्य करने योग्य कार्य को आवश्यक कहते है। सामायिक आदि की साधना साधु आदि के द्वारा अवश्य—निश्चित रूप से किये जाने योग्य होने से आवश्यक है। अथवा ज्ञानादि गुणो और मोक्ष की जिसके द्वारा पूर्णतया प्राप्ति होती है वह आवश्यक है—'ज्ञानादिगुणा मोक्षो वा आसमन्ताद्वश्य क्रियतेऽनेनेत्यावश्यकम्।' अथवा इन्द्रिय, कषायादि भावशत्रुओ को सर्वत: वश मे करने वालो के द्वारा जो किया जाता है, उसे आवश्यक कहते है—'आसमन्ताद् वश्या इन्द्रियकषायादि-भावशत्रवो येषा, तैरेव क्रियते यत् तदावश्यकम्।'

२. **अवश्यकरणीय**—मुमुक्षु साधको द्वारा नियमत अनुष्ठेय होने के कारण अवश्यकरणीय है।

३. **ध्रुवनिग्रह**—अनादि होने के कारण कर्मों को तथा कर्मों के फल, जन्म—जरा—मरणादि रूप ससार को भी ध्रुव कहते है और आवश्यक कर्म एव कर्मफलरूप ससार का निग्रह करने वाला होने के कारण ध्रुवनिग्रह है।

४. **विशोधि**—कर्म से मलिन आत्मा की विशुद्धि का हेतु होने से आवश्यक विशोधि कहलाता है।

५. **अध्ययनषट्कवर्ग**—आवश्यकसूत्र मे सामायिक आदि छह अध्ययन होने से यह अध्ययन-षट्कवर्ग है।

६. **न्याय**—अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का सम्यक् उपाय होने से न्याय है। अथवा जीव और कर्म के अनादिकालीन सम्बन्ध के अपनयन का कारण होने से भी न्याय कहलाता है।

७. **आराधना**—आराध्य—मोक्षप्राप्ति का हेतु होने से आराधना है।

८. **मार्ग**—मार्ग का अर्थ है उपाय। अत मोक्षपुर का प्रापक—उपाय होने से मार्ग है।

इस प्रकार से सूत्रकार ने पहले जो 'आवस्सय निक्खिविस्सामि' प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार आवश्यक का न्यास करके वर्णन किये जाने से यह आवश्यकाधिकार समाप्त हुआ।

श्रुत के भेद

३०. से किं तं सुयं ?

सुय चउव्विहं पण्णत्तं। तं जहा—नामसुयं १ ठवणासुयं २ दव्वसुयं ३ भावसुयं ४।

[३० प्र] भगवन्! श्रुत का क्या स्वरूप है?

[३० उ] आयुष्मन्! श्रुत चार प्रकार का है—१ नामश्रुत, २ स्थापनाश्रुत, ३ द्रव्यश्रुत, ४ भावश्रुत।

विवेचन—सूत्रकार ने आवश्यक के अनन्तर 'सुय निक्खिविस्सामि'—श्रुत का निक्षेप करूंगा, इस प्रतिज्ञानुसार निक्षेपविधि से श्रुत के स्वरूप का वर्णन करना प्रारभ किया है।

नाम और स्थापना श्रुत

३१. से किं तं नामसुयं ?

नामसुयं जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा सुए इ नामं कीरति। से तं नामसुयं।

[३१ प्र] भगवन्! नामश्रुत का क्या स्वरूप है?

[३१ उ] आयुष्मन्! जिस किसी जीव या अजीव का, जीवो या अजीवो का, उभय का अथवा उभयो का 'श्रुत' ऐसा नाम रख लिया जाता है, उसे नामश्रुत कहते हैं।

३२. से किं तं ठवणासुयं ?

ठवणासुयं जण्णं कट्ठकम्मे वा जाव सुए इ ठवणा ठविज्जति । से तं ठवणासुयं ।

[३२ प्र] भगवन् ! स्थापनाश्रुत का स्वरूप क्या है ?

[३२ उ] आयुष्मन् ! काष्ठ यावत् कौडी आदि मे 'यह श्रुत है,' ऐसी जो स्थापना, कल्पना या आरोप किया जाता है, वह स्थापनाश्रुत है ।

३३. नाम-ठवणाणं को पतिविसेसो ?

नामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा ।

[३३ प्र] भगवन् ! नाम और स्थापना मे क्या विशेषता—अन्तर है ?

[३३ उ] आयुष्मन् ! नाम यावत्कथिक होता है, जबकि स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक दोनो प्रकार की होती है ।

विवेचन— यहाँ नाम और स्थापनारूप श्रुत का स्वरूप बतलाने के साथ उन दोनो मे अन्तर का निर्देश किया है ।

नाममात्र से श्रुत नामश्रुत है—नाम्ना- नाममात्रेण श्रुत नामश्रुतमिति—इस समास के अनुसार जिस जीव, अजीव आदि का श्रुत यह नाम रख लिया जाता है, वह नामश्रुत है । जीव आदि का श्रुत नाम रखने का कारण पूर्वोक्त नामावश्यक के कथनानुसार जानना चाहिये ।

स्थापनाश्रुत का विवेचन भी पूर्वोक्त स्थापनावश्यक के अनुरूप है । किन्तु आवश्यक के बदले यहाँ श्रुत शब्द का प्रयोग करना चाहिये । अतएव तदाकार, अतदाकार काष्ठादि अथवा काष्ठादि से निर्मित्त आकृति मे जो श्रुतपठनादि क्रियावन्त साधु आदि की स्थापना की जाती है, यह स्थापना-श्रुत है ।

नाम और स्थापना आवश्यक के सदृश ही नाम और स्थापना श्रुत मे भी अन्तर जानना चाहिये कि नाम का प्रयोग वस्तु के सद्भाव रहने तक होता है जबकि स्थापना वस्तु के सद्भाव पर्यन्त और यथायोग्य अल्पकाल के लिये भी की जा सकती है ।

द्रव्यश्रुत के भेद

३४. से किं तं दव्वसुयं ?

दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं । तं जहा—आगमतो य १ नोआगमतो य २ ।

[३४ प्र] भगवन् ! द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[३४ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यश्रुत दो प्रकार का है । जैसे—१ आगमद्रव्यश्रुत, २ नोआगम-द्रव्यश्रुत ।

आगमद्रव्यश्रुत

३५. से किं तं आगमतो दव्वसुयं ?

आगमतो दव्वसुयं जस्स णं सुए त्ति पयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजियं जाव कम्हा ? जइ जाणते अणुवउत्ते ण भवइ । से तं आगमतो दव्वसुयं ।

[३५ प्र] भगवन् ! आगम की अपेक्षा द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[३५ उ] आयुष्मन् ! जिस साधु आदि ने श्रुत यह पद सीखा है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है यावत् जो ज्ञायक है वह अनुपयुक्त नही होता है आदि । यह आगम द्रव्यश्रुत का स्वरूप है ।

विवेचन—सूत्र मे आगम द्रव्यश्रुत का स्वरूप बतलाया है कि श्रुतपद के अभिधेय—आचारादि शास्त्रों को जिसने सीख तो लिया है, किन्तु उसके उपयोग से शून्य है, इस कारण वह आगम से द्रव्यश्रुत है ।

'जाव कम्हा' पद द्वारा आवश्यक विषयक पूर्वोक्त शब्दनय आदि की मान्यता सम्बन्धी सूत्रालापक तक का अतिदेश किया गया है जो इस प्रकार है—

णामसम घोषसम अहीणक्खर अणच्चक्खर अव्वाइद्धक्खर अक्खलिय अमिलिय अवच्चामेलिय पडिपुण्ण पडिपुण्णघोस कठोट्ठविप्पमुक्क गुरुवायणोवगय । से ण तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए णो अणुप्पेहाए । कम्हा ? 'अणुवओगो दव्व' मिति कट्टु ।

णेगमस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एग दव्वावस्सय (दव्वसुय) दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वावस्सयाइ (दव्वसुयाइ) तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वावस्सयाइ (दव्वसुयाइ) एव जावइया अणुवउत्ता तावइयाइ ताइ णेगमस्स आगमओ दव्वावस्सयाइ (दव्वसुयाइ) ।

एवमेव ववहारस्स वि ।

सगहस्स एगो वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वावस्सय (दव्वसुय) वा दव्वावस्सयाणि (दव्वसुयाणि) वा से एगे दव्वावस्सए (दव्वसुए) ।

उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एग दव्वावस्सय (दव्वसुय), पुहुत्त नेच्छइ ।

तिण्ह सद्दनयाण जाणए अणुवउत्ते अवत्थू । कम्हा ? ।

इनका अर्थ द्रव्यावश्यक के प्रसग मे किये गये गये अर्थ के अनुरूप है । किन्तु सर्वत्र आवश्यक के स्थान मे श्रुत शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।[1]

नोआगमद्रव्यश्रुत

३६. से किं तं णोआगमतो दव्वसुयं ?

णोआगमतो दव्वसुयं तिविह पन्नत्त । तं जहा—जाणयसरीरदव्वसुय १ भवियसरीरदव्वसुय २ जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं ३ ।

[३६ प्र] भगवन् ! नोआगमद्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[३६ उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्यश्रुत तीन प्रकार का कहा है । जैसे—१ ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत, २ भव्यशरीरद्रव्यश्रुत, ३ ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत ।

विवेचन—सूत्र मे नोआगमद्रव्यावश्यक के समान नोआगमद्रव्यश्रुत के भी तीन भेदो के नामो का उल्लेख किया है । क्रम से अब इन तीनो का स्पष्टीकरण करते हैं ।

---

१ देखें सूत्र सख्या १४, १५ का अर्थ ।

ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत

३७. से किं तं जाणयसरीरदव्वसुतं ?

जाणयसरीरदव्वसुतं सुतत्तिपदत्थाहिकारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुतचावितचत्तदेहं जीवविप्पजढं सेज्जागयं वा संथारगयं वा सिद्धसिलातलगयं वा, अहो ! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं सुए इ पयं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं । जहा को दिट्ठंतो ? अयं मधुकुंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी । से त जाणयसरीरदव्वसुतं ।

[३७ प्र.] भगवन् ! ज्ञायकशरीर-द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[३७ उ] आयुष्मन् ! श्रुतपद के अर्थाधिकार के ज्ञाता के व्यपगत, च्युत, च्यावित, त्यक्त, जीवरहित शरीर को शय्यागत, सस्तारकगत अथवा सिद्धशिला-तपोभूमिगत देखकर कोई कहे—अहो ! इस शरीररूप परिणत पुद्गलसघात द्वारा जिनोपदेशित भाव से 'श्रुत' इस पद की गुरु से वाचना ली थी, शिष्यो को सामान्य रूप से प्रज्ञापित और विशेष रूप से प्ररूपित, दर्शित, निर्दशित, उपदर्शित किया था, उसका वह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक है ।

शिष्य—इसका दृष्टान्त ?

आचार्य—(जैसे किसी घडे मे से मधु या घी निकाल लिये जाने के बाद कहा जाये कि) यह मधु का घडा है, यह घी का घडा है ।

इसी प्रकार निर्जीव शरीर भूतकालीन श्रुतपर्याय का आधाररूप होने से ज्ञायकशरीर-द्रव्यश्रुत कहलाता है ।

विवेचन—यहाँ ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत का स्वरूप बतलाया है। सूत्रगत पदो की विस्तृत व्याख्या ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक के अनुरूप जानना चाहिये ।

जीवविप्रमुक्तता के आधार पर पत्थर आदि पुद्गलसघातो मे भी कदाचित् श्रुतज्ञातृत्व, कर्तृत्व एव मुक्तत्व की सभावना की जाय तो उसका निराकरण करने के लिये सूत्र में शय्यागत आदि पदो की योजना की है ।

भव्यशरीरद्रव्यश्रुत

३८. से किं तं भवियसरीरदव्वसुत ?

भवियसरीरदव्वसुतं जे जीवे जोणीजम्मण-निक्खते इमेण चेव सरीरसमुस्सएण आदत्तएण जिणोवइट्ठेणं भावेणं सुए इ पयं सेकाले सिक्खिस्सति, ण ताव सिक्खति । जहा को दिट्ठतो ? अयं मधुकुंभे भविस्सति, अयं घयकुंभे भविस्सति । से त भवियसरीरदव्वसुतं ।

[३८ प्र.] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[३८ उ] आयुष्मन् ! भव्यशरीरद्रव्यश्रुत का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि मे से निकला और प्राप्त शरीरसंघात द्वारा भविष्य मे जिनोपदिष्ट

भावानुसार श्रुतपद को सीखेगा, किन्तु वर्तमान मे सीख नही रहा है, ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीर-द्रव्यश्रुत है।

शिष्य—इसका दृष्टान्त क्या है?

आचार्य—(मधु और घी जिन घडो मे भरा जाने वाला है, परन्तु अभी भरा नहीं है, उनके लिये) 'यह मधुघट है, यह घृतघट है' ऐसा कहा जाता है।

विवेचन—यहाँ भविष्य मे भावश्रुत की कारण रूप पर्याय होने की योग्यता की अपेक्षा भव्यशरीरद्रव्यश्रुत का स्वरूप निर्दिष्ट किया है।

ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत

३९. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्तं दव्वसुत?

जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्तं पत्तयपोत्थयलिहियं।

[३९ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है?

[३९ उ] आयुष्मन्! ताडपत्रो अथवा पत्रो के समूहरूप पुस्तक मे अथवा वस्त्रखडो पर लिखित श्रुत ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत है।

विवेचन—पूर्वोक्त ज्ञशरीर और भव्यशरीर द्रव्यश्रुत का लक्षण घटित न होने से उनसे भिन्न यह द्रव्यश्रुत का लक्षण यहाँ निरूपित किया है। पत्रादि पर लिखित श्रुत भावश्रुत का कारण होने से उभयव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत है।

पत्र आदि पर लिखे श्रुत मे उपयोग रहितता होने से द्रव्यत्व है। आत्मा, देह और शब्द आगम के कारण है। इनका अभाव होने से अथवा पत्र आदि मे लिखित श्रुत मे अचेतनता होने के कारण नोआगमता है।

'सुय' पद की सस्कृतछाया 'सूत्र' भी होती है, अत शिष्य की बुद्धि की विशदता के लिये सुय के प्रकरण मे प्रकारान्तर से सूत्र (सूत) की भी व्याख्या की जाती है—

४०. अहवा सुत्तं पचविहं पण्णत्तं। तं जहा—अंडयं १ बोडयं २ कीडयं ३ वालयं ४ वक्कयं ५।

[४०] अथवा (ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्य-) सूत्र पाच प्रकार का है—१. अडज २ बोंडज, ३. कीटज, ४ वालज, ५ बल्कज।

४१. से किं तं अंडयं?

अंडयं हंसगब्भादि। से तं अंडयं।

[४१ प्र.] भगवन्! अडज किसे कहते है?

[४१ उ] आयुष्मन्! हसगर्भादि से बने सूत्र को अडज कहते हैं।

४२. से किं तं बोंडयं?

बोंडयं फलिहमादि। से तं बोंडयं।

[४२ प्र] भगवन् ! बोडज किसे कहते है ?

[४२ उ] आयुष्मन् ! बोड—कपास या रुई से बनाये गये सूत्र को कहते हैं।

४३. से किं तं कीडयं ?

कीडयं पंचविहं पण्णत्तं। तं जहा—पट्टे १ मलए २ अंसुए ३ चीणंसुए ४ किमिरागे ५। से तं कीडयं।

[४३ प्र.] भगवन् ! कीटजसूत्र किसे कहते है।

[४३ उ.] आयुष्मन् ! कीटजसूत्र पाच प्रकार का है—१ पट्ट, २ मलय, ३ अंशुक, ४. चीनांशुक, ५ कृमिराग।

४४. से किं तं वालयं ?

वालयं पंचविहं पण्णत्तं। तं जहा—उण्णिए १ उट्टिए २ मियलोमिए ३ कुतवे ४ किट्टिसे ५। से तं वालयं।

[४४ प्र] भगवन् ! वालज सूत्र का क्या स्वरूप है ?

[४४ उ] आयुष्मन् ! वालज सूत्र के पाच प्रकार है—१ और्णिक, २ औष्ट्रिक, ३ मृगलोमिक, ४ कौतव, ५ किट्टिस।

४५. से किं तं वक्कयं ?

वक्कयं सणमाई। से तं वक्कयं। से तं जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तं दव्वसुयं। से तं नोआगमतो दव्वसुयं। से तं दव्वसुयं।

[४५ प्र] भगवन् ! बल्कज किसे कहते है ?

[४५ उ] आयुष्मन् ! सन आदि से निर्मित सूत्र को कहते है।

इस प्रकार यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत का वर्णन है और इसके साथ ही नोआगमद्रव्यश्रुत एवं सप्रभेद द्रव्यश्रुत का निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—यहाँ सुय का अर्थ सूत्र (सूत) भी होने की अपेक्षा उभयव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत का वर्णन करने के साथ नोआगमद्रव्यश्रुत एव समग्र द्रव्यश्रुत के निरूपण की पूर्णता का सकेत किया है।

कारण मे कार्य का उपचार अडज आदि नामो का हेतु है। अतएव जिस वस्तु से और जिस क्षेत्रविशेष मे जो सूत्र बना, उसको उस नाम से कहा है।

अंडज आदि की व्याख्या

अडज के रूप मे हंसगर्भ का उल्लेख किया गया है। हंस, पतंगा जातीय एक चतुरिन्द्रिय जीव है, जिसे कोशा भी कहते है। वह अपनी लार से एक थैली (कोशिका, कुशेरा) बनाकर उसी में बद हो जाता है। उससे उत्पन्न सूत्र का नाम अंडज है।

बोड अर्थात् कपास का कोश और उस कपास से बने सूत को बोडज कहते है। अथवा बोड अर्थात् वमनीफल-रुई से या सेमल की रुई से बने सूत्र का नाम बोडज है।

कीट—चतुरिन्द्रिय जीवविशेष की लार से उत्पन्न सूत्र को कीटज कहते हैं। पट्ट आदि पाचों भेद कीटजन्य होने से कीटज है।

पट्टसूत्र की उत्पत्ति के विषय मे ऐसा माना जाता है कि जगल मे सघन लताच्छादित स्थानों मे मासपुज रखकर उसकी आजू-बाजू कुछ अतर मे ऊची-नीची अनेक कीले गाड दी जाती हैं। मास के लोभी कीट-पतगे मासपुजो पर मडराते हैं और कीलो के आसपास घूमकर अपनी लार को छोडते है। उस लार को एकत्रित करके जो सूत बनता है, उसे पट्टसूत्र कहते है।

मलय देश मे बने कीटज सूत्र को मलय कहते है तथा चीन देश से बाहर कीटो की लार से बना सूत्र अशुक और चीन देश मे बना सूत्र चीनाशुक कहलाता है।

कृमिरागसूत्र के विषय मे ऐसा सुना जाता है कि किन्ही क्षेत्रविशेषो मे मनुष्यादि का रक्त बर्तन मे भरकर उसके मुख को छिद्रो वाले ढक्कन से ढँक देते है। उसमे बहुत से लाल रग के कृमि—कीडे उत्पन्न हो जाते है। वे कृमि छिद्रो से निकलकर बाहर आसपास के प्रदेश मे उडते हुए अपनी लार छोडते हैं। इस लार को इकट्ठा करके जो सूत बनाया जाता है, वह कृमिरागसूत्र कहलाता है। लाल रग के कृमियो से उत्पन्न होने के कारण इस सूत का रग भी लाल होता है।

रोमो—बालो से बने सूत को बालज कहते हैं। भेड के रोमो—बालो से जो सूत बनता है वह और्णिक, ऊट के रोमो से बना सूत औष्ट्रिक, मृग के रोमो से बना सूत मृगलोमिक तथा चूहे के रोमो से बना सूत कौतव कहलाता है। इन और्णिक आदि सूत्रो को बनाते समय इधर-उधर बिखरे बालो का नाम किट्टिम है। इनसे निर्मित अथवा और्णिक आदि सूत को दुहरा-तिहरा करके बनाया गया सूत अथवा घोडो आदि के बालो से बना सूत किट्टिस कहलाता है।

सन आदि की छाल से बनाया गया सूत बल्कज है।

भावश्रुत

४६. से किं तं भावसुयं ?

भावसुय दुविहं पन्नत्त। तं जहा—आगमतो य १ नोआगमतो य २।

[४६ प्र] भगवन्! भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

[४६ उ] आयुष्मन्! भावश्रुत दो प्रकार का है। यथा—१ आगमभावश्रुत और २ नोआगमभावश्रुत।

४७. से किं तं आगमतो भावसुयं ?

आगमतो भावसुयं जाणते उवउत्ते। से तं आगमतो भावसुयं।

[४७ प्र.] भगवन्! आगमभावश्रुत का क्या स्वरूप है?

[४७ उ] आयुष्मन्! जो श्रुत (पद) का ज्ञाता होने के साथ उसके उपयोग से भी सहित हो, वह आगमभावश्रुत है। यह आगम से भावश्रुत का लक्षण है।

विवेचन—सूत्र मे आगमभावश्रुत का लक्षण बताया है। श्रुत रूप पद के अर्थ के अनुभव-उपयोग से युक्त साधु आदि भावशब्द का वाच्यार्थ है। अभेदोपचार से साध्वादि भी भावश्रुत

हैं। श्रुत मे उपयोगरूप परिणाम के सद्भाव से उसमे भावता और श्रुत के अर्थज्ञान के सद्भाव से आगमता जानना चाहिये।

नोआगमभावश्रुत

४८. से किं तं नोआगमतो भावसुयं ?

नोआगमतो भावसुयं दुविहं पन्नत्तं। तं जहा—लोइयं १ लोउत्तरियं च २।

[४८ प्र.] भगवन् ! नोआगम की अपेक्षा भावश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[४८ उ.] आयुष्मन् ! नोआगमभावश्रुत दो प्रकार का है। जैसे—१ लौकिक, २ लोकोत्तरिक।

लौकिक भावश्रुत

४९. से किं तं लोइयं भावसुयं ?

लोइयं भावसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छदिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धि-मइविगप्पियं। तं जहा—भारहं रामायणं भीमासुरुक्कं कोडिल्लयं घोडमुहं सगडभद्दिआओ कप्पासियं नागसुहुमं कणगसत्तरी वइसेसियं बुद्धवयणं वेसियं काविलं लोयाययं सट्ठितंतं माढरं पुराणं वागरणं नाडगादी, अहवा बावत्तरि-कलाओ चत्तारि य वेदा संगोवंगा। से तं लोइयं भावसुयं।

[४९ प्र.] भगवन् ! लौकिक (नोआगम) भावश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[४९ उ.] आयुष्मन् ! अज्ञानी मिथ्यादृष्टियो द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचित महाभारत, रामायण, भीमासुरोक्त, कौटिल्य (रचित अर्थशास्त्र), घोटकमुख, शटकभद्रिका, कार्पासिक, नागसूक्ष्म, कनकसप्तति, वैशेषिकशास्त्र, बौद्धशास्त्र, कामशास्त्र, कपिलशास्त्र, लोकायतशास्त्र, षष्ठितत्र, माठरशास्त्र, पुराण, व्याकरण, नाटक आदि अथवा बहत्तर कलाये और सागोपाग चार वेद लौकिक नोआगमभावश्रुत हैं।

विवेचन—सूत्र मे लौकिक नोआगमभावश्रुत का स्वरूप बतलाया है कि सर्वज्ञोक्त प्रवचन से विरुद्ध अभिप्राय वाली बुद्धि और मति द्वारा विरचित सभी शास्त्र लौकिक भावश्रुत है।

महाभारत, रामायण आदि मे आगमशास्त्र रूप लोकप्रसिद्धि होने से आगमता और इनमे वर्णित क्रियाये मोक्ष की हेतु न होने से अनागम है।

इस प्रकार की उभयरूपता को बताने के लिये सूत्रकार ने नोआगम पद का प्रयोग किया है। तथा 'उपयोगो भावनिक्षेप —उपयोग ही भाव निक्षेप है' ऐसा शास्त्रवचन होने से इनमे सलग्न उपयोग की अपेक्षा भावरूपता जाननी चाहिये, किन्तु शब्दो के अचेतन होने से ये महाभारत आदि भावश्रुत नही है।

सूत्र मे प्रयुक्त बुद्धि और मति शब्दो मे से अवग्रह और ईहा रूप विचारधारा बुद्धि है और अवाय तथा धारणा रूप विचारधारा को मति कहते है।

अज्ञानिक पद मे नञ् समास अल्पार्थ का बोधक है, अत अज्ञानिक का तात्पर्य 'अल्पज्ञान वाले' जानना चाहिये तथा ऐसे अल्पज्ञानी सम्यग्दृष्टि भी होते हैं—अत' उनकी निवृत्ति के लिये मिथ्यादृष्टि पद दिया है।

सूत्रोक्त कतिपय ग्रन्थो के नाम तो सर्वविदित है और शेष अप्रसिद्ध ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है—

भीमासुरुक्कं—भीमासुरोक्त, एक जैनेतर प्राचीन शास्त्र। सभवत इसमे अगविद्या का वर्णन किया गया होगा।

कोडिल्लयं—कौटिल्यक—चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र। अथवा कोडिल्ल यानी मुग्दर। अत मुग्दर आदि शस्त्रो की निर्माणविधि सूचक शास्त्र।

घोडमुहं—घोटमुख, अश्वादि पशुओ का वर्णन करने वाला शास्त्र।

सगडभद्दिआ—शकटभद्रिका—शकटव्यूह आदि के रूप मे सैन्यरचना की विधि बताने वाला शास्त्र।

कप्पासिय—कार्पासिक—कपास आदि से सूत, कपडा आदि बनाने की विधि बताने वाला शास्त्र।

नागसुहुम—नागसूक्ष्म—एक जैनेतर शास्त्र। सभवत इसमे सर्प आदि विषैले जीव-जन्तुओ का वर्णन किया गया होगा।

कणगसत्तरी—कनकसप्तति—एक प्राचीन जैनेतर शास्त्र। सभव है इसमे सोने आदि धातुओ का अथवा सोने के तार से मिश्रित कपडा बनाने की विधि का वर्णन किया गया हो।

वइसेसिय—वैशेषिक, कणाद मुनि द्वारा प्ररूपित दर्शनविशेष—वैशेषिकदर्शन।

बुद्धवयण—बुद्धवचन, तथागत बुद्ध द्वारा प्ररूपित दर्शन—बौद्धदर्शन।

वेसिय—वैशिक—कामशास्त्र, व्यापार-व्यवसाय का शास्त्र।

काविल—कापिल, कपिलऋषिरचित दर्शन—साख्यदर्शन।

लोयायय—लोकायत, बृहस्पतिरचित शास्त्र—चार्वाकदर्शन।

सट्ठितंत—षष्ठितत्र—साख्यदर्शन अथवा धूर्तता सिखाने वाला शास्त्रविशेष।

माढर—माठर, शास्त्रविशेष।

बहत्तर कलाओ के नाम समवायाग आदि सूत्रों से जान लेना चाहिये। सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ये चार वेद प्रसिद्ध है तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, ये वेदों के छह अंग और इनकी व्याख्या रूप ग्रन्थ उपांग हैं।

लोकोत्तरिक भावश्रुत

५०. से किं तं लोगोत्तरियं भावसुयं ?

लोगोत्तरियं भावसुयं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पन्ननाण-दंसणधरेहिं तीत-पडुप्पन्न-मणागयजाणएहिं सव्वन्नूहिं सव्वदरिसीहिं तेलोक्कवहिय-महिय-पूइएहिं अप्पडिहयवरनाण-दंसणधरेहिं पणीतं दुवालसंगं गणिपिडगं। तं जहा—आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ वियाहपण्णत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ १२ य। से तं लोगोत्तरियं भावसुयं। से तं नोआगमतो भावसुयं। से तं भावसुयं।

[५० प्र] भगवन् ! लोकोत्तरिक (नोआगम) भावश्रुत का क्या स्वरूप है ?

[५० उ] आयुष्मन् ! (ज्ञान-दर्शनावरण कर्म के क्षय से) उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालिक पदार्थों को जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा अवलोकित, महित—पूजित, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहंत भगवन्तों द्वारा प्रणीत १ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृधर्मकथा, ७ उपासकदशांग, ८ अन्तकृद्दशांग, ९ अनुत्तरोपपातिकदशांग, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद रूप द्वादशांग, गणिपिटक लोकोत्तरिक नोआगम भावश्रुत है।

इस प्रकार से नोआगम भावश्रुत का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—सूत्र में नोआगम की अपेक्षा लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप बतलाया है। अर्हत् भगवन्तों द्वारा प्रणीत गणिपिटक में उपयोगरूप परिणाम होने से भावश्रुतता है और यह उपयोग रूप परिणाम चरणगुण—चारित्रगुण से युक्त है तो वह नोआगम से भावश्रुत है। क्योंकि चरणगुण क्रिया रूप है और क्रिया आगम नहीं होती है। इस प्रकार यहाँ 'नो' शब्द एकदेशनिषेधक रूप में प्रयुक्त हुआ है।

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा अर्थतः प्ररूपित आचार आदि द्वादश अंग गणिपिटक लोकोत्तरिक भावश्रुत है।

श्रुत के नामान्तर

५१. तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति। तं जहा—

सुय सुत्त गंथ सिद्धंत सासणे आण वयण उवदेसे।
पण्णवण आगमे या एगट्ठा पज्जवा सुत्ते ॥ ४ ॥

से तं सुयं।

[५१] उदात्तादि विविध स्वरों तथा ककारादि अनेक व्यंजनों से युक्त उस श्रुत के एकार्थवाचक (पर्यायवाची) नाम इस प्रकार हैं—

१. श्रुत, २. सूत्र, ३. ग्रन्थ, ४ सिद्धान्त, ५. शासन, ६. आज्ञा, ७. वचन, ८ उपदेश, ९ प्रज्ञापना, १० आगम, ये सभी श्रुत के एकार्थक पर्याय है।

इस प्रकार से श्रुत की वक्तव्यता समाप्त हुई।

विवेचन—यहाँ श्रुत के पर्यायवाची नामो को गिनाया है, जिनमे शब्दभेद होने पर भी अर्थभेद नही है। क्योकि—

१ गुरु के समीप सुने जाने के कारण यह श्रुत है।

२ अर्थों की सूचना मिलने के कारण इसका नाम सूत्र है।

३ तीर्थंकर रूप कल्पवृक्ष के वचन रूप पुष्पो का ग्रथन होने मे इनका नाम ग्रथ है।

४ प्रमाणसिद्ध अर्थ को प्रकट करने वाला—बताने वाला होने से यह सिद्धान्त है।

५ मिथ्यात्वादि से दूर रहने की शिक्षा—सीख देने के कारण अथवा मिथ्यात्वी को शासित, सयमित करने वाला होने से यह शासन है।[1]

६ मुक्ति के लिये आज्ञा देने वाला होने से अथवा मोक्षमार्गप्रदर्शक होने से इसे आज्ञा कहते हैं।

७ वाणी द्वारा प्रकट किये जाने से यह वचन है।

८ उपादेय मे प्रवृत्ति और हेय से निवृत्ति का उपदेश (शिक्षा) देने वाला होने से इसे उपदेश कहते हैं।

९ जीवादिक पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्ररूपण करने वाला होने से यह प्रज्ञापना है।

१० आचार्य परपरा से आने अथवा आप्तवचन रूप होने से यह आगम है।

इस प्रकार श्रुताधिकार के अधिकृत विषयो का विवेचन समाप्त हुआ।

स्कन्ध-निरूपण के प्रकार

५२. से किं त खंधे ?

खंधे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—नामखंधे १ ठवणाखंधे २ दव्वखंधे ३ भावखंधे ४।

[५२ प्र] भगवन्! स्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[५२ उ] आयुष्मन्! स्कन्ध के चार प्रकार है। वे इस तरह—१. नामस्कन्ध, २ स्थापना-स्कन्ध, ३ द्रव्यस्कन्ध, ४ भावस्कन्ध।

विवेचन—'खंध निक्खिविस्सामि' स्कन्ध का निक्षेप करूगा—इस प्रतिज्ञा के अनुसार सूत्र मे निक्षेपविधि से स्कन्ध की प्ररूपणा आरम्भ की गई है।

---

१. हारिभद्रीया और मलधारियावृत्ति मे शासन के स्थान पर पाठान्तर के रूप के प्रवचन शब्द है। जिसका अर्थ यह है कि प्रशस्त-प्रधान-श्रेष्ठ-प्रथम वचन होने से इसका नाम प्रवचन है—'प्रशस्त प्रथम वा वचन प्रवचनम्।'

खंधं (स्कन्ध) का अर्थ है पुद्गलप्रचय—पुद्गलों का पिंड। समूह-समुदाय, कंधा, वृक्ष धड़ (जहाँ से शाखायें निकलती है) के लिये भी स्कन्ध शब्द का प्रयोग होता है।

नाम-स्थापनास्कन्ध

५३. से किं तं नामखंधे ?
नामखंधे जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव खंधे त्ति णाम कज्जति। से तं णामखं

[५३ प्र] भगवन् ! नामस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५३ उ] आयुष्मन् ! जिस किसी जीव या अजीव का यावत् स्कन्ध यह नाम रखा ज है, उसे नामस्कन्ध कहते हैं।

५४. से किं तं ठवणाखंधे ?
ठवणाखंधे जण्णं कट्ठकम्मे वा जाव खंधे इ ठवणा ठविज्जति। से तं ठवणाखंधे।

[५४ प्र] भगवन् ! स्थापनास्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५४ उ] आयुष्मन् ! काष्ठादि मे 'यह स्कन्ध है' इस प्रकार का जो आरोप किया ज है, वह स्थापनास्कन्ध है।

५५. णाम-ठवणाणं को पतिविसेसो ?
नामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा।

[५५ प्र] भगवन् ! नाम और स्थापना मे क्या अन्तर है ?

[५५ उ] आयुष्मन् ! नाम यावत्कथिक (वस्तु के अस्तित्व रहने तक) होता है पर स्थापना इत्वरिक—स्वल्पकालिक और यावत्कथिक दोनो प्रकार की होती है।

विवेचन—ऊपर नाम और स्थापना स्कन्ध का स्वरूप बतलाया है। उनकी विशेष व्यार नाम स्थापना आवश्यक के अनुरूप समझ लेनी चाहिये।

द्रव्यस्कन्ध

५६. से किं तं दव्वखंधे ?
दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—आगमतो य १ नोआगमतो य २।

[५६ प्र] भगवन् ! द्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५६ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यस्कन्ध दो प्रकार का है। यथा—१ आगमद्रव्यस्कन्ध औ २. नोआगमद्रव्यस्कन्ध।

५७. (१) से किं तं आगमओ दव्वखंधे ?

आगमओ दव्वखंधे जस्स णं खंधे इ पयं सिक्खियं ठियं जियं मियं जाव णेगमस्स एगे अणुवउत्ते आगमओ एगे दव्वखंधे, दो अणुवउत्ता आगमओ दो (ण्णि) दव्वखंधाइं, तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वखंधाइं, एवं जावइया अणुवउत्ता तावइयाइं ताइं दव्वखंधाइं ।

[५७ प्र १] भगवन् ! आगमद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५७ उ १] आयुष्मन् ! जिसने स्कन्धपद को गुरु से सीखा है, स्थित किया है, जित, मित किया है यावत् नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा आगम से एक द्रव्यस्कन्ध है, दो अनुपयुक्त आत्मायें दो, तीन अनुपयुक्त आत्मायें तीन आगमद्रव्यस्कन्ध है, इस प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्मायें हैं, उतने ही आगमद्रव्यस्कन्ध जानना चाहिये ।

(२) एवमेव ववहारस्स वि ।

२ इसी तरह (नैगमनय की तरह) व्यवहारनय भी आगमद्रव्यस्कन्ध के भेद स्वीकार करता है ।

(३) संगहस्स एगो वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा दव्वखंधे वा दव्वखंधाणि वा से एगे दव्वखंधे ।

३ सामान्यमात्र को ग्रहण करने वाला सग्रहनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्यस्कन्ध और अनेक अनुपयुक्त आत्माये अनेक आगमद्रव्यस्कन्ध ऐसा स्वीकार नही करता, किन्तु सभी को एक ही आगमद्रव्यस्कन्ध मानता है ।

(४) उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगे दव्वखधे, पुहत्तं णेच्छति ।

४ ऋजुसूत्रनय मे एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यस्कन्ध है । वह भेदो को स्वीकार नही करता है ।

(५) तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू । कम्हा ? जइ जाणए कहं अणुवउत्ते भवति ? से तं आगमओ दव्वखंधे ।

५ तीनों शब्दनय ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो उसे अवस्तु—असत् मानते है । क्योकि जो ज्ञायक है वह अनुपयुक्त नही होता है ।

यह आगमद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है ।

विवेचन—यहाँ आगमद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप एव तद्विषयक नय-विवक्षाओं का उल्लेख किया है । इन सबका वर्णन पूर्वोक्त आवश्यक के स्थान पर स्कन्ध पद रखकर आगमद्रव्यावश्यक की तरह जानना चाहिये ।

नोआगमद्रव्यस्कन्ध

५८. से किं त णोआगमतो दव्वखंधे ?

णोआगमतो दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते । त जहा—जाणगसरीरदव्वखंधे १ भवियसरीरदव्वखंधे २ जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे ३ ।

[५८ प्र] भगवन् ! नोआगमद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५८ उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्यस्कन्ध तीन प्रकार का है। यथा—१ ज्ञायकशरीर-द्रव्यस्कन्ध, २. भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध और ३ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध ।

ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध

५९. से किं तं जाणगसरीरदव्वखंधे ?

जाणगसरीरदव्वखंधे खंधे इ पयत्थाहिगार-जाणगस्स जाव खंधे इ पयं आघवियं पण्णविय परूविय जाव से तं जाणगसरीरदव्वखंधे ।

[५९ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[५९ उ] आयुष्मन् ! स्कन्धपद के अर्थाधिकार को जानने वाले यावत् जिसने स्कन्ध पद का (गुरु से) अध्ययन किया था, प्रतिपादन किया था, प्ररूपित किया था, आदि पूर्ववत् समझना चाहिए । यह ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है ।

विवेचन—सूत्र मे नोआगम ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप बताया है । जिसका विशद अर्थ पूर्वोक्त ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक के सदृश जानना चाहिये । मात्र आवश्यक के स्थान पर स्कन्ध शब्द का प्रयोग किया जाए ।

सूत्रगत दो 'जाव' पदो द्वारा सूत्र १७ मे उल्लिखित पदो को ग्रहण करना चाहिये ।

नोआगम-भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध

६०. से किं तं भवियसरीरदव्वखंधे ?

भवियसरीरदव्वखंधे जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खते जाव खंधे इ पय सेकाले सिक्खिस्सइ । जहा को दिट्ठंतो ? अय महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सति । से तं भवियसरीरदव्वखंधे ।

[६० प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[६० उ] आयुष्मन् ! समय पूर्ण होने पर यथाकाल कोई योनिस्थान से बाहर निकला और वह यावत् भविष्य मे 'स्कन्ध' इस पद के अर्थ को सीखेगा (किन्तु अभी नही सीख रहा है), उस जीव का शरीर भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध है ।

शिष्य—इसका दृष्टान्त ?

आचार्य—दृष्टान्त इस प्रकार है—वर्तमान में मधु या घी नही भरा है किन्तु भविष्य मे भरा जायेगा ऐसे घडे के लिये कहना—यह मधुकुभ है, यह घृतकुभ है।

इस प्रकार भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—ज्ञायकशरीर एव भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध की व्याख्या द्रव्यावश्यक की व्याख्या के समान होने से तदनुरूप जानना चाहिये।

ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध

६१. से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे ?

जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३।

[६१ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[६१ उ] आयुष्मन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध के तीन प्रकार हैं। वे प्रकार ये है—१ सचित्त, २ अचित्त और ३ मिश्र।

विवेचन—सूत्र मे उभयव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध के एक अपेक्षा से तीन भेद बतलाये है।

सचित्तद्रव्यस्कन्ध

६२. से किं तं सचित्तदव्वखंधे ?

सचित्तदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—हयखंधे गयखंधे किन्नरखंधे किंपुरिसखंधे महोरगखंधे उसभखंधे। से त सचित्तदव्वखंधे।

[६२ प्र] भगवन्! सचित्तद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[६२ उ] आयुष्मन्! सचित्तद्रव्यस्कन्ध के अनेक प्रकार हैं। वे इस तरह—हय (अश्व) स्कन्ध, गज (हाथी) स्कन्ध, किन्नरस्कन्ध, किंपुरुषस्कन्ध, महोरगस्कन्ध, वृषभ (बैल) स्कन्ध। इस प्रकार यह सचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

विवेचन—चेतना, सज्ञान, उपयोग, मन और विज्ञान ये सब चित्त के पर्यायवाची नाम है। इस चित्त से जो युक्त हो वह सचित्त है। स्कन्ध का अर्थ पूर्व मे बताया जा चुका है। यह सचित्त-स्कन्ध व्यक्तिभेद की अपेक्षा अनेक प्रकार का है। जो उदाहरण के रूप मे दिये गये हयस्कन्ध आदि नामो से स्पष्ट है।

अपौद्गलिक होने से यद्यपि जीव मे स्कन्धता घटित नही होती है, परन्तु यह ऐकान्तिक नियम नही कि पुद्गलप्रचय मे ही स्कन्धता मानी जाए। प्रत्येक जीव असख्यातप्रदेशी है। अत उन प्रदेशो की समुदाय रूप स्कन्धता उसमे सुप्रतीत ही है। अर्थात् जीव पुद्गलप्रचय रूप नही, किन्तु असख्यात प्रदेशो का समुदाय रूप स्कन्ध है।

इसके अतिरिक्त जीव का गृहीत शरीर के साथ अमुक अपेक्षा से अभेद है और सचित्त-द्रव्यस्कन्ध का अधिकार होने से यहाँ उन-उन शरीरो मे रहे जीवो मे परमार्थत सचेतनता होने से हयादिको को स्कन्ध रूप मे ग्रहण किया है।

यद्यपि सचित्तद्रव्यस्कन्ध की सिद्धि हयस्कन्ध आदि मे से किसी एक उदाहरण से हो सकती थी तथापि आत्माद्वैतवाद का निराकरण करने एव जीवो के भिन्न-भिन्न स्वरूप तथा उनकी अनेकता बताने के लिये उदाहरण रूप मे हय आदि पृथक्-पृथक् जीवो के नाम दिये है। अद्वैतवाद को स्वीकार करने पर भेदव्यवहार नही बनता है।

अचित्तद्रव्यस्कन्ध

६३. से किं तं अचित्तदव्वखंधे ?

अचित्तदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। त जहा—दुपएसिए खंधे तिपएसिए खंधे जाव दसपएसिए खंधे संखेज्जपएसिए खंधे असखेज्जपएसिए खंधे अणंतपएसिए खधे। से त अचित्तदव्वखंधे।

[६३ प्र] भगवन्! अचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप क्या है?

[६३ उ] आयुष्मन्! अचित्तद्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार का प्ररूपित किया है। वह इस तरह—द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दसप्रदेशिक स्कन्ध, सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध। यह अचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

विवेचन—यहाँ सूत्रकार ने अचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप बताया है। दो प्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जो और जितने भी पुद्गलस्कन्ध है वे सब अचित्तद्रव्यस्कन्ध है। प्रकृष्ट (पुद्गलास्तिकाय—) देश प्रदेश, इस व्युत्पत्ति के अनुसार सबसे अल्प परिमाण वाले पुद्गलास्तिकाय का नाम प्रदेश-परमाणु है। दो आदि अनेक परमाणुओ के मेल से बनने वाले स्कन्धो का मूल परमाणु है। परमाणु मे अस्तिकायता इसलिये है कि वह स्कन्धो का उत्पादक है।

मिश्रद्रव्यस्कन्ध

६४. से किं तं मीसदव्वखंधे ?

मीसदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—सेणाए अग्गिमखंधे सेणाए मज्झिमखंधे सेणाए पच्छिमखधे। से त मीसदव्वखधे।

[६४ प्र] भगवन्! मिश्रद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[६४ उ] आयुष्मन्! मिश्रद्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार का कहा है। यथा—सेना का अग्रिम स्कन्ध, सेना का मध्य स्कन्ध, सेना का अंतिम स्कन्ध। यह मिश्रद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्रकार ने मिश्रद्रव्यस्कन्ध के उदाहरण के रूप मे सेना का उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि सेना सचेतन और अचेतन इन दोनो का मिश्रण (सयोग) रूप अवस्था है। हाथी, घोडे, मनुष्य आदि सचेतन तथा तलवार, धनुष, कवच, भाला आदि अचेतन वस्तुओ के समुदाय का नाम सेना है। इसीलिये इसे मिश्रद्रव्यस्कन्ध कहा है।

ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध का प्रकारान्तर से प्ररूपण

६५. अहवा जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—कसिणखंधे १ अकसिणखधे २ अणेगदवियखंधे ३।

[६५] अथवा ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध के तीन प्रकार हैं। जैसे—१ कृत्स्नस्कन्ध, २ अकृत्स्नस्कन्ध, ३ अनेकद्रव्यस्कन्ध।

विवेचन—यहाँ उभयव्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध के प्रकारान्तर से कृत्स्न (सपूर्ण), अकृत्स्न (अपूर्ण) और अनेक (एक से अधिक द्रव्यो का समुदाय), इन तीन भेदो के नाम बताये है। अब क्रम से उनका स्पष्टीकरण करते हैं।

कृत्स्नस्कन्ध

६६. से किं तं कसिणखंधे ?

कसिणखंधे से चेव हयक्खंधे गयक्खंधे जाव उसभक्खंधे। से तं कसिणखंधे।

[६६ प्र.] भगवन्! कृत्स्नस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[६६ उ] आयुष्मन्! हयस्कन्ध, गजस्कन्ध यावत् वृषभस्कन्ध जो पूर्व मे कहे, वही कृत्स्नस्कन्ध है। यही कृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप है।

विवेचन—यहाँ कृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप बतलाया गया है।

यद्यपि इस कृत्स्नस्कन्ध के उदाहरणो मे भी सचित्तद्रव्यस्कन्ध के उदाहरण हयस्कन्ध आदि का उल्लेख किया है, लेकिन दोनो मे अन्तर यह है कि सचित्तद्रव्यस्कन्ध मे तो हय (अश्व) आदि जीवो की विवक्षा की है, उनके शरीर की नही और कृत्स्नस्कन्ध के प्रसग मे जीव और जीवाधिष्ठित शरीरावयव इन दोनो के समुदाय की विवक्षा है। इस तरह अभिधेय-भिन्नता से सचित्तद्रव्यस्कन्ध और कृत्स्नस्कन्ध मे भेद (अन्तर) है। अर्थात् कृत्स्नस्कन्ध मे जीव और जीवाधिष्ठित शरीरावयवो के समुदाय को और सचित्तद्रव्यस्कन्ध मे मात्र असख्यातप्रदेशी जीव को ग्रहण किया है। इस प्रकार उदाहरण एक होने पर भी दोनो मे अन्तर है।

हयस्कन्ध, गजस्कन्ध आदि के आकार-प्रकार मे जो छोटापन, बडापन है, वह पौद्गलिक प्रदेशो की अपेक्षा है, लेकिन प्रत्येक जीव असख्यातप्रदेशी है और उस शरीर मे सभी प्रदेशो के सर्वात्मना तदाकार रूप से रहने के कारण असख्यात प्रदेश सर्वत्र तुल्य है, हीनाधिकता नही है। पुद्गल प्रदेशो मे वृद्धि-हानि होने पर भी आत्मप्रदेशो मे वृद्धि-हानि नही होती है।

अकृत्स्नस्कन्ध

६७. से किं तं अकसिणखंधे ?

अकसिणखंधे से चेव दुपएसियादी खंधे जाव अणंतपदेसिए खंधे। से तं अकसिणखंधे।

[६७ प्र.] भगवन्! अकृत्स्नस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[६७ उ] आयुष्मन्! अकृत्स्नस्कन्ध पूर्व मे कहे गये द्विप्रदेशिक स्कन्ध आदि यावत् अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध है। इस प्रकार अकृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे अकृत्स्नस्कन्ध की व्याख्या की है। अकृत्स्न यानि अपरिपूर्ण। अतएव जिस स्कन्ध से अन्य कोई दूसरा बडा स्कन्ध होता है, वह अपरिपूर्ण होने के कारण अकृत्स्नस्कन्ध है। द्विप्रदेशिक आदि स्कन्ध अपूर्ण है और इनमे अपरिपूर्णता इस प्रकार है कि द्विप्रदेशिक स्कन्ध त्रिप्रदेशिक

स्कन्ध से न्यून होने के कारण अपरिपूर्ण है। इसी तरह उत्तरोत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व का स्कन्ध अकृत्स्नस्कन्ध जानना चाहिये। यह अकृत्स्नता कृत्स्नता प्राप्त होने के पूर्व तक होती है।

पूर्व मे द्विप्रदेशिक आदि से लेकर अनन्त प्रदेश वाले स्कन्ध सामान्य रूप से अचित्त कहे है। परन्तु अकृत्स्नद्रव्यस्कन्ध के प्रकरण मे सर्वोत्कृष्ट स्कन्ध मे नीचे के स्कन्ध ही उत्तरोत्तर की अपेक्षा अकृत्स्नस्कन्ध रूप मे ग्रहण किये है। यही इन दोनो मे भेद है।

अनेकद्रव्यस्कन्ध

६८. से किं तं अणेगदवियखंधे ?

अणेगदवियखंधे तस्सेव देसे अवचिते तस्सेव देसे उवचिए। से तं अणेगदवियखंधे। से तं जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वखंधे। से त नोआगमतो दव्वखंधे। से तं दव्वखंधे।

[६८ प्र] भगवन् ! अनेकद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[६८ उ] आयुष्मन् ! एकदेश अपचित और एकदेश उपचित भाग मिलकर उनका जो समुदाय बनता है, वह अनेकद्रव्यस्कन्ध है।

इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध का निरूपण समाप्त हुआ और इसकी समाप्ति के साथ नोआगम द्रव्यस्कन्ध का और साथ ही द्रव्यस्कन्ध का वर्णन भी पूर्ण हुआ जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट है। इसमे विशेष कथनीय यह है कि एक देश अपचित भाग अर्थात् जीवप्रदेशो से रहित (अचेतन) नख केशादि रूप भाग एव एकदेश उपचित—जीवप्रदेशो मे व्याप्त पीठ, उदर आदि भाग के सयोग से एक विशिष्ट आकार वाला जो देह रूप समुदाय बनता है, वह अनेकद्रव्यस्कन्ध है। जैसे हयस्कन्ध, गजस्कन्ध आदि।

यद्यपि यह अनेकद्रव्यस्कन्ध भी कृत्स्नस्कन्ध की तरह हयादि स्कन्ध रूप मे प्रतीत होता है, फिर भी दोनो मे यह अतर है कि कृत्स्नस्कन्ध मे तो मात्र जीव के प्रदशो से व्याप्त शरीरावयव रूप देश को ही विवक्षित किया है, जीव-प्रदेशो मे अव्याप्त नखादि प्रदेशो को नही, किन्तु अनेक-द्रव्यस्कन्ध मे पूर्वोक्त के साथ नखादि रूप अचेतन देश भी विवक्षित है।

मिश्रद्रव्यस्कन्ध से भी यह अनेकद्रव्यस्कन्ध भिन्न है। क्योकि मिश्रद्रव्यस्कन्ध मे तो पृथक्-पृथक् रूप मे अवस्थित हस्ती, तलवार आदि को मिश्रस्कन्ध रूप मे कहा है, परन्तु इस अनेकद्रव्य-स्कन्ध मे विशिष्ट परिणाम रूप से परिणत हुए सचेतन-अचेतन द्रव्यो के एक समुदाय को अनेक द्रव्यस्कन्ध कहा है।

भावस्कन्ध निरूपण

६९. से किं त भावखंधे ?

भावखधे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—आगमतो य १ नोआगमतो य २।

[६९ प्र] भगवन् ! भावस्कन्ध का क्या स्वरूप है ?

[६९ उ] आयुष्मन्! भावस्कन्ध दो प्रकार का कहा है। वह इस तरह—१. आगमभावस्कन्ध २. नोआगमभावस्कन्ध।

७०. से किं तं आगमतो भावखंधे ?

आगमतो भावखंधे जाणए उवउत्ते। से तं आगमतो भावखंधे।

[७० प्र] भगवन्! आगमभावस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[७० उ] आयुष्मन्! स्कन्ध पद के अर्थ का उपयोग युक्त ज्ञाता आगमभावस्कन्ध है।

७१. से किं तं नोआगमओ भावखंधे ?

नोआगमओ भावखंधे एएसिं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइसमागमेण निप्फन्ने आवस्सगसुयक्खंधे भावखंधे त्ति लब्भइ। से तं नोआगमतो भावखंधे। से तं भावखंधे।

[७१ प्र] भगवन्! नोआगमभावस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

[७१ उ] आयुष्मन्! परस्पर-संबन्धित सामायिक आदि छह अध्ययनों के समुदाय के मिलने से निष्पन्न आवश्यकश्रुतस्कन्ध नोआगमभावस्कन्ध कहलाता है।

इस प्रकार से भावस्कन्ध की वक्तव्यता जानना चाहिए।

विवेचन—इन सूत्रों में भावस्कन्ध का स्वरूप स्पष्ट किया है। इनमें से आगमभावस्कन्ध की व्याख्या तो आगमभावावश्यक प्रतिपादक सूत्र की जैसी जानना चाहिए।

नोआगमभावस्कन्ध की स्वरूपव्याख्या में 'समुदयसमिइसमागमेण' पद मुख्य है। इसमें 'समुदयसमिइ' का अर्थ है सामायिक आदि छह अध्ययनों के समूह का अव्यवहित मिलना तथा समागम यानि षट्प्रदेशी स्कन्ध की तरह छह अधिकार वाले आवश्यकश्रुतस्कन्ध का आत्मा में एक रूप होना। अर्थात् लोहशलाकाओं की तरह परस्पर निरपेक्ष सामायिक आदि षट् आवश्यकों के समुदाय-समिति-समागम से निष्पन्न आवश्यकश्रुतस्कन्ध का नाम भावस्कन्ध है। यही भावस्कन्ध जब मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि की व्यापार रूप क्रिया में विवक्षित किया जाता है तब वह नोआगमभावस्कन्ध है।

यहाँ नोआगम में प्रयुक्त 'नो' शब्द सर्वथा आगमभाव का निषेधक नहीं है किन्तु एकदेश का निषेधक है। स्कन्धपदार्थ का ज्ञान आगम, उसमें ज्ञाता का उपयोग भाव और रजोहरण आदि द्वारा की जाने वाली प्रमार्जना आदि क्रियायें नोआगम है।

स्कन्ध के पर्यायवाची नाम

७२. तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति। तं जहा—

गण काय निकाय खंध वग्ग रासी पुंजे य पिंड नियरे य।
संघाय आकुल समूह भावखंधस्स पज्जाया॥ ५॥

से तं खंधे।

[७२.] उस भावस्कन्ध के विविध घोषों एवं व्यंजनों वाले एकार्थक (पर्यायवाची) नाम इस प्रकार हैं—

(गाथार्थ) गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुज, पिड, निकर, सघात, आकुल और समूह, ये सभी भावस्कन्ध के पर्याय है।

विवेचन—पर्यायवाची शब्दो की व्याख्या इस प्रकार है—

१. **गण**—मल्ल आदि गणो की तरह स्कन्ध अनेक परमाणुओ का सश्लिष्ट परिणाम होने से गण कहलाता है।
२. **काय**—स्कन्ध भी पृथ्वीकायादि की तरह होने से उसे काय कहते है।
३. **निकाय**—षट्जीवनिकाय की तरह यह स्कन्ध भी निकाय रूप है।
४. **स्कन्ध**—द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि रूप सश्लिष्ट परिणाम वाला होने से स्कन्ध कहलाता है।
५. **वर्ग**—गोवर्ग की तरह स्कन्ध वर्ग है।
६. **राशि**—चावल, गेहू आदि धान्य राशिवत् होने से स्कन्ध का नाम राशि भी है।
७. **पुंज**—एकत्रित किये गये धान्यपुजवत् होने से इसे पुज कहते है।
८. **पिंड**—गुड आदि के पिंडवत् होने से पिंड है।
९. **निकर**—चादी आदि के समूह की तरह होने से यह निकर है।
१०. **संघात**—महोत्सव आदि मे एकत्रित जनसमुदाय की तरह होने से इसका नाम सघात है।
११. **आकुल**—आगन आदि मे एकत्रित (व्याप्त) जनसमूह जैसा होने से स्कन्ध को आकुल कहते है।
१२. **समूह**—नगरादि के जनसमूह की तरह वह समूह है।

इस प्रकार स्कन्धाधिकार का समग्र वर्णन जानना चाहिये।

आवश्यक के अर्थाधिकार और अध्ययन

७३. आवस्सगस्स णं इमे अत्थाहिगारा भवंति। त जहा—

सावज्जजोगविरती १ उक्कित्तण २ गुणवओ य पडिवत्ती ३।
खलियस्स निंदणा ४ वणतिगिच्छ ५ गुणधारणा ६ चेव॥ ६॥

[७३] आवश्यक के अर्थाधिकारो के नाम इस प्रकार है—

(गाथार्थ) १ सावद्ययोगविरति, २ उत्कीर्तन, ३ गुणवत्प्रतिपत्ति, ४ स्खलितनिन्दा, ५ व्रणचिकित्सा और ६ गुणधारणा।

विवेचन—यहाँ आवश्यक के छह अर्थाधिकारो के नाम बताये है। ये अर्थाधिकार इसलिये है कि आवश्यक की साधना, आराधना द्वारा जो उपलब्धि होती है अथवा जो करणीय है उसका बोध इनके द्वारा होता है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सावद्ययोगविरति—हिंसा, असत्य आदि सावद्य योगो का त्याग करना। अर्थात् हिंसा आदि निन्दनीय कार्यो से विरत होना अथवा हिंसा आदि के कारण होने वाली मलिन मानसिक आदि वृत्तियो के प्रति उन्मुख न होना सावद्ययोगविरति (सामायिक) अर्थाधिकार है।

उत्कीर्तन—सावद्ययोग की विरति से जो स्वय सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए एव दूसरों को भी आत्मशुद्धि के लिये इसी सावद्ययोग-प्रवृत्ति के त्याग का जिन्होने उपदेश दिया ऐसे उपकारियों के गुणों की स्तुति करना उत्कीर्तन (चतुर्विंशतिस्तव) अर्थाधिकार है।

गुणवत्प्रतिपत्ति—सावद्ययोगविरति की साधना मे तत्पर गुणवान् अर्थात् मूल एव उत्तर गुणो के धारक सयमी निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग की प्रतिपत्ति—आदर-सम्मान करना गुणवत्प्रतिपत्ति (वदना) अर्थाधिकार है।

स्खलितनिन्दा—सयमसाधना करते हुए प्रमादवश होने वाली स्खलना—अतिचार—दोष की शुद्ध बुद्धि से सवेगभावनापूर्वक निन्दा—गर्हा करना स्खलितनिन्दा (प्रतिक्रमण) अर्थाधिकार है।

व्रणचिकित्सा—स्वीकृत साधना मे कायोत्सर्ग करके—शरीर पर ममत्व-रागभाव त्याग करके—अतिचारजन्य भावव्रण (घाव-दोष) का प्रायश्चित्त रूप औषधोपचार द्वारा निराकरण करना व्रणचिकित्सा (कायोत्सर्ग) अर्थाधिकार है।

गुणधारणा—प्रायश्चित्त द्वारा दोषो का प्रमार्जन करके मूल और उत्तर गुणो को अतिचार रहित—निर्दोष धारण—पालन करना गुणधारणा (प्रत्याख्यान) अर्थाधिकार है।

गाथोक्त 'च' और 'एव' शब्दो द्वारा यह स्पष्ट किया है कि मूल मे आवश्यक के यही छह अर्थाधिकार है और इनसे सम्बन्धित आचार-विचार आदि सभी का इन्ही मे समावेश हो जाता है।

७४. आवस्सगस्स एसो पिंडत्थो वण्णितो समासेण।
एत्तो एक्केक्कं पुण अज्झयण कित्तइस्सामि॥ ७॥

त जहा—सामाइयं १ चउवीसत्थओ २ वदणं ३ पडिक्कमणं ४ काउस्सग्गो ५ पच्चक्खाण ६।

[७४] इस प्रकार से आवश्यकशास्त्र के समुदायार्थ का सक्षेप मे कथन करके अब एक-एक अध्ययन का वर्णन करूगा। उनके नाम यह है—

१ सामायिक २ चतुर्विशतिस्तव ३ वदना ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान।

विवेचन—यह प्रतिज्ञावाक्य है। पिडार्थ के रूप मे आवश्यकशास्त्र के जिस अर्थ का पूर्व मे सकेत किया है उसी का विशद वर्णन करने के लिये यहाँ पृथक्-पृथक् अध्ययनो के नाम बताये है। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सामायिक अध्ययन सर्वसावद्ययोग की विरति का प्रतिपादक है।

चतुर्विशतिस्तव अध्ययन चौबीस तीर्थंकरो का स्तवन—गुणानुवाद किये जाने से उत्कीर्तन रूप है।

वदना अध्ययन मूलगुणो एव उत्तरगुणो से सपन्न मुनियो का बहुमान करने रूप होने से गुणवत्प्रतिपत्ति अर्थाधिकार है।

प्रतिक्रमण अध्ययन मूलगुणो और उत्तरगुणों से स्खलित होने पर लगे अतिचारो का निराकरण करने वाला होने से स्खलितनिन्दा अर्थाधिकार रूप है।

कायोत्सर्ग नामक पाचवां अध्ययन चारित्रपुरुष के अतिचाररूपी भावव्रण की प्रायश्चित्त रूप चिकित्सा करने के कारण व्रणचिकित्सा अर्थाधिकार है।

प्रत्याख्यान अध्ययन मूल और उत्तर गुणो को निरतिचार धारण करने रूप होने से गुण-धारणा अर्थाधिकारात्मक है।

यद्यपि कृत प्रतिज्ञानुसार आवश्यक, श्रुत और स्कन्ध के अनन्तर अध्ययन का निक्षेप किया जाना चाहिये था, किन्तु वक्ष्यमाण 'निक्षेप-अनुयोगद्वार' मे निक्षेप किये जाने से यहाँ मात्र अध्ययनों के नामों का उल्लेख किया है।

अनुयोगद्वार-नामनिर्देश

७५. तत्थ पढमज्झयणं सामाइयं। तस्स णं इमे चत्तारि अणुओगद्दारा भवंति।

तं जहा—उवक्कमे १ णिक्खेवे २ अणुगमे ३ णए ४।

७५ इन (छह अध्ययनो) मे से प्रथम सामायिक अध्ययन के यह चार अनुयोगद्वार है—

१ उपक्रम २ निक्षेप ३ अनुगम ४ नय।

विवेचन—'एक्केक्क पुण अज्झयण कित्तइस्सामि' के निर्देशानुसार सूत्रकार ने सामायिक सम्बन्धी विचारणा प्रारम्भ की है।

सामायिक के प्रथम उपन्यास का कारण—यह है कि सामायिक समस्त चारित्रगुणो का आधार और मानसिक, शारीरिक दु खो के नाश तथा मुक्ति का प्रधान हेतु है।

सामायिक की निर्युक्ति—समस्य आय —समाय प्रयोजनमस्येति सामायिकम्—सर्वभूतो मे आत्मवत् दृष्टि से सपन्न राग-द्वेष रहित आत्मा के (समभाव रूप) परिणाम को सम और इस सम की आय—प्राप्ति या ज्ञानादि गुणोत्कर्ष के साथ लाभ को समाय कहते है। यह समाय ही जिसका प्रयोजन है, उसका नाम सामायिक है।

अनुयोग—अध्ययन के अर्थ का कथन करने की विधि का नाम अनुयोग है। अथवा सूत्र के साथ उसका अनुकूल अर्थ स्थापित करना अनुयोग है।

उपक्रम—निक्षेप करने योग्य बनाने की रीति से दूरस्थ वस्तु का समीप लाना—प्रतिपादन करना। अथवा गुरु के जिस वचन-व्यापार द्वारा अथवा विनीत शिष्य के विनयादि गुणो से वस्तु निक्षेपयोग्य की जाती है उसे उपक्रम कहते हैं।

निक्षेप—नाम, स्थापना आदि के भेद से सूत्रगत पदो का न्यास—व्यवस्थापन करना।

अनुगम—सूत्र का अनुकूल अर्थ कहना।

नय—अनन्त धर्मात्मक वस्तु के शेष धर्मों को अपेक्षादृष्टि से गौण मानकर मुख्य रूप से एक अश को ग्रहण करने वाला बोध।

उपक्रम आदि का क्रमविन्यास—निक्षेपयोग्यताप्राप्त वस्तु निक्षिप्त होती है और इस योग्य बनाने का कार्य उपक्रम द्वारा होता है। अतः सर्वप्रथम उपक्रम और तदनन्तर निक्षेप का निर्देश किया है। नाम आदि के रूप मे निक्षिप्त वस्तु ही अनुगम की विषयभूत बनती है, इसलिये निक्षेप के अनन्तर अनुगम का तथा अनुगम से युक्त (ज्ञात) हुई वस्तु नयो द्वारा विचारकोटि मे आती है, अतएव अनुगम के बाद नय का कथन किया गया है।

उपक्रम के भेद और नाम—स्थापना उपक्रम

७६. से किं तं उवक्कमे ?

उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—नामोवक्कमे १ ठवणोवक्कमे २ दव्वोवक्कमे ३ खेत्तोवक्कमे ४ कालोवक्कमे ५ भावोवक्कमे ६।

[७६ प्र] भगवन्! उपक्रम का स्वरूप क्या है ?

[७६ उ] आयुष्मन्! उपक्रम के छह भेद हैं। वे इस प्रकार—१ नाम-उपक्रम, २ स्थापना-उपक्रम, ३ द्रव्य-उपक्रम, ४ क्षेत्र-उपक्रम, ५ काल-उपक्रम, ६ भाव-उपक्रम।

७७. नाम-ठवणाओ गयाओ।

[७७] नाम-उपक्रम और स्थापना-उपक्रम का स्वरूप नाम-आवश्यक एवं स्थापना-आवश्यक के समान जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्रकार ने इन दो सूत्रो मे उपक्रम के भेदो के साथ नाम और स्थापना उपक्रम का स्वरूप बतलाया है।

किसी चेतन या अचेतन पदार्थ का 'उपक्रम' ऐसा नाम रख लेना नाम-उपक्रम है और किसी पदार्थ मे उपक्रम का आरोप करना—उपक्रम रूप से उसे मान लेना स्थापना-उपक्रम कहलाता है।

द्रव्य-उपक्रम

७८. से किं तं दव्वोवक्कमे ?

दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—आगमओ य १ नोआगमओ य २ जाव जाणयसरीर-भवियसरीरवतिरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३।

[७८ प्र] भगवन्! द्रव्य-उपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[७८ उ.] आयुष्मन्! द्रव्य-उपक्रम दो प्रकार का है—१ आगमद्रव्य-उपक्रम, २ नोआगम-द्रव्य-उपक्रम इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिये यावत् ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्य-उपक्रम के तीन प्रकार है। वे इस तरह—१ सचित्तद्रव्य-उपक्रम, २ अचित्तद्रव्य-उपक्रम, ३ मिश्रशरीरद्रव्य-उपक्रम।

विवेचन—सूत्र में द्रव्य-उपक्रम की व्याख्या तो की है, लेकिन कतिपय विषयो के लिये संकेत मात्र किया है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार जानना चाहिये—

भूतकालीन अथवा भविष्यत्कालीन उपक्रम की पर्याय को वर्तमान मे उपक्रम रूप से कहना द्रव्य-उपक्रम है। इसके भी द्रव्यावश्यक के भेदो की तरह आगम और नोआगम को आश्रित करके दो भेद है। उनमे से उपक्रम के अर्थ का अनुपयुक्त ज्ञाता आगम की अपेक्षा द्रव्योपक्रम है और नोआगम को आश्रित करके ज्ञायकशरीर, भव्यशरीर तथा दोनो से व्यतिरिक्त, ये तीन भेद होते हैं। उनमे उपक्रम के अनुपयुक्त ज्ञाता का निर्जीव शरीर नोआगमज्ञायकशरीरद्रव्योपक्रम तथा जिस प्राप्त शरीर से जीव आगे उपक्रम के अर्थ को सीखेगा वह भव्यशरीरद्रव्योपक्रम है और इन दोनो से व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्योपक्रम का सूत्र मे इस प्रकार से सकेत किया है--

जिस उपक्रम का विषय सचित्तद्रव्य है, अचित्तद्रव्य है और सचित्त-अचित्त दोनो प्रकार का द्रव्य है, उसे अनुक्रम से उभय-व्यतिरिक्त सचित्तद्रव्योपक्रम, अचित्तद्रव्योपक्रम और मिश्रद्रव्योपक्रम जानना चाहिये। इनका विशेषता के साथ स्पष्टीकरण आगे किया जा रहा है।

सचित्तद्रव्योपक्रम

७९. से किं तं सचित्तदव्वोवक्कमे ?

सचित्तदव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते। त जहा—दुपयाण १ चउप्पयाण २ अपयाण ३। एक्केक्के दुविहे—परिकम्मे य १ वत्थुविणासे य २।

[७९ प्र] भगवन् ! सचित्तद्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[७९ उ] आयुष्मन् ! सचित्तद्रव्योपक्रम तीन प्रकार का कहा है। यथा--१ द्विपद—मनुष्यादि दो पैर वाले द्रव्यो का उपक्रम, २ चतुष्पद -चार पैर वाले पशु आदि का उपक्रम, ३ अपद—बिना पैर वाले वृक्षादि द्रव्यो का उपक्रम। ये प्रत्येक उपक्रम भी दो-दो प्रकार के है - १ परिकर्मद्रव्योपक्रम २ वस्तुविनाशद्रव्योपक्रम।

८०. से किं तं दुपए उवक्कमे ?

दुपए उवक्कमे दुपयाण नडाण नट्टाण जल्लाण मल्लाण मुट्ठियाण वेलबगाणं कहगाण पवगाणं लासगाण आइक्खगाण लंखाण मखाणं तूणइल्लाण तुबवीणियाण कायाणं मागहाण। से त दुपए उवक्कमे।

[८० प्र] भगवन् ! द्विपद-उपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८० उ] आयुष्मन् ! नटो, नर्तको, जल्लो (रस्सी पर खेल करने वालो), मल्लो, मौष्टिको (मुट्ठी से प्रहार करने वालो, पजा लडाने वालो), वेलबको (विदूषको, बहुरुपियो), कथको (कथा-कहानी कहने वालो), प्लवको (छलाग लगाने वालो, तैरने वालो), लासको (हास्योत्पादक क्रियाये करने वालो, भाडो), आख्यायको (शुभाशुभ बताने वालो), लखो (बास आदि पर चढकर खेल दिखाने वालो), मखो (चित्रपट दिखाने वाले भिक्षुओ), तूणिको (ततवाद्य-वादको) तबवीणको (तुम्बे की वीणा-वादको), कावडियाओ तथा मागधो (मगलपाठको) आदि दो पैर वालो का परिकर्म और विनाश करने रूप उपक्रम—आयोजन द्विपदद्रव्योपक्रम है।

८१. से किं तं चउप्पए उवक्कमे ?

चउप्पए उवक्कमे चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं इच्चाइ । से तं चउप्पए उवक्कमे ।

[८१ प्र.] भगवन् ! चतुष्पदोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८१ उ.] आयुष्मन् ! चार पैर वाले अश्व, हाथी आदि पशुओ के उपक्रम को चतुष्पदोपक्रम कहते है ।

८२. से किं तं अपए उवक्कमे ?

अपए उवक्कमे अपयाणं अबाणं अंबाडगाणं इच्चाइ । से तं अपए उवक्कमे । से तं सचित्त-दव्वोवक्कमे ।

[८२ प्र] भगवन् ! अपद-द्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८२ उ] आयुष्मन् ! आम, आम्रातक आदि बिना पैर वालो से संबन्धित उपक्रम को अपद-उपक्रम कहते है ।

इस प्रकार से सचित्तद्रव्योपक्रम का स्वरूप जानना चाहिये ।

विवेचन —इन तीन सूत्रो मे सचित्तद्रव्योपक्रम का स्वरूप बतलाया गया है ।

सचेतन होने से द्विपद, चतुष्पद और अपद इन तीन में समस्त शरीरधारी जीवो का ग्रहण हो जाने से सचित्तद्रव्योपक्रम के तीन भेद बताये है ।

द्विपदो, चतुष्पदो और अपदो के रूप मे क्रमश नट आदि मनुष्यो, हाथी आदि चौपायो और आम आदि अपदो (वृक्षो) के नाम सुगमता से बोध कराने के लिये उदाहरण रूप मे प्रयुक्त किये हैं ।

वस्तु के गुण, शक्तिविशेष की वृद्धि करने के प्रयत्न या उपाय को परिकर्म और वस्तु के विनाश के साधनो—तलवार आदि के द्वारा उनको विनष्ट किये जाने के प्रयत्न को वस्तुविनाश उपक्रम कहते है ।

नट, नर्तक आदि द्विपदो की शारीरिक शक्ति बढाने वाले घृतादि पदार्थों का सेवन रूप प्रयत्नविशेष द्विपद परिकर्म-उपक्रम है और तलवार आदि के द्वारा इन्ही का विनाश—घात करने रूप प्रयत्न—आयोजन वस्तुविनाशोपक्रम कहलाता है ।

इसी प्रकार चतुष्पदो और अपदो सबन्धी परिकर्म और विनाश विषयक उपक्रमो के लिये भी समझ लेना चाहिये ।

अचित्तद्रव्योपक्रम

८३. से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे ?

अचित्तदव्वोवक्कमे खंडाईणं गुडादीणं मत्स्यंडीणं । से तं अचित्तदव्वोवक्कमे ।

[८३ प्र.] भगवन् ! अचित्तद्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८३ उ] आयुष्मन्! खाड (शक्कर), गुड, मिश्री अथवा राब आदि पदार्थों में उपाय-विशेष से मधुरता की वृद्धि करने और इनके विनाश करने रूप उपक्रम को अचित्तद्रव्योपक्रम कहते हैं।

मिश्रद्रव्योपक्रम

८४. से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे ?

मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासग-आयंसगाइमंडिते आसादी। से त मीसए दव्वोवक्कमे। से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वोवक्कमे। से तं नोआगमओ दव्वोवक्कमे। से त दव्वोवक्कमे।

[८४ प्र] भगवन्! मिश्रद्रव्योपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८४ उ] आयुष्मन्! स्थासक, दर्पण आदि से विभूषित एव (कुकुम आदि से) मडित अश्वादि सम्बन्धी उपक्रम को मिश्रद्रव्योपक्रम कहते है।

इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम का स्वरूप जानना चाहिये और इसके साथ ही नोआगमद्रव्योपक्रम एव द्रव्योपक्रम की वक्तव्यता पूर्ण हुई।

विवेचन—अचित्तद्रव्योपक्रम की व्याख्या सुगम है, अचित्त पदार्थो मे गुणात्मक वृद्धि अथवा उनको नष्ट करने के लिये किया जाने वाला प्रयत्न अचित्तद्रव्योपक्रम कहलाता है।

मिश्रद्रव्योपक्रम के विषय मे यह जानना चाहिये--अश्व, बैल आदि सचित्त है और स्थासक, आदर्श, कुकुम आदि अचित्त है। मिश्र शब्द द्वारा इन दोनो का बोध कराया है। ऐसे विभूषित, मडित अश्वादि को शिक्षण देकर विशेष गुणो मे युक्त करना तो परिकर्मरूप द्रव्योपक्रम है एव तलवार आदि के द्वारा उनका प्राणनाश करना आदि वस्तुविनाशरूप द्रव्योपक्रम है।

शब्दार्थ—थासग (स्थासक)— अश्व को विभूषित करने वाला आभूषण। **आयसग** (आदर्श)— बैल आदि के गले का दर्पण जैसा चमकीला आभूषण विशेष।

क्षेत्रोपक्रम

८५. से किं तं खेत्तोवक्कमे ?

खेत्तोवक्कमे जण्ण हल-कुलियादीहिं खेत्ताइ उवक्कामिज्जंति। से त खेत्तोवक्कमे।

[८५ प्र] भगवन्! क्षेत्रोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८५ उ] आयुष्मन्! हल, कुलिक आदि के द्वारा जो क्षेत्र को उपक्रान्त किया जाता है, वह क्षेत्रोपक्रम है।

विवेचन—यहाँ सक्षेप मे क्षेत्रोपक्रम का स्वरूप बतलाया है और क्षेत्र शब्द से गेहूं आदि अन्न को उत्पन्न करने वाले स्थान—खेत को ग्रहण किया है। अतएव हल और कुलिक—खेत में से तृणादि को हटाने के काम मे आने वाला एक प्रकार का हल (देशी भाषा मे इसे 'बखर' कहते हैं।) से जोतकर खेत को बीजोत्पादन योग्य बनाना परिकर्म विषयक क्षेत्रोपक्रम है और उसी क्षेत्र को हाथी आदि

बाध कर बीजोत्पादन के अयोग्य (बजर) बना देना विनाश-विषयक क्षेत्रोपक्रम है। क्योंकि हाथी के मल-मूत्र से खेत की बीजोत्पादन शक्ति का नाश हो जाता है।

यद्यपि परिकर्म और विनाश क्षेत्रगत पृथ्वी आदि द्रव्यो के होने की अपेक्षा इसे द्रव्योपक्रम कहा जा सकता है, फिर भी क्षेत्रोपक्रम को पृथक् मानने का कारण यह है कि क्षेत्र का अर्थ है आकाश और आकाश अमूर्त है, अत उसका तो उपक्रम नही होता है। किन्तु आधेय रूप मे वर्तमान पृथ्वी आदि द्रव्यों का उपक्रम हो सकने से उनका उपक्रम—आधार रूप आकाश में उपचरित कर लिये जाने से उसे क्षेत्रोपक्रम कहते हैं। जैसे कि मञ्चा क्रोशन्ति—मच बोलते है, ऐसा जो कहा जाता है वह आधेय रूप पुरुषो आदि को मच रूप आधार मे उपचरित करके कहा जाता है।

कालोपक्रम

८६. से किं तं कालोवक्कमे ?

कालोवक्कमे ज ण नालियादीहिं कालस्सोवक्कमण कीरति। से त कालोवक्कमे।

[८६ प्र] भगवन् ! कालोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८६ उ] आयुष्मन् ! नालिका आदि के द्वारा जो काल का यथावत् ज्ञान होता है, वह कालोपक्रम है।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट है। नालिका (तावे का बना पेदे मे एक छिद्र सहित पात्र-विशेष, जलघडी, रेतघडी आदि) अथवा कील आदि की छाया द्वारा काल का जो यथार्थ परिज्ञान किया जाता है वह परिकर्मरूप तथा नक्षत्रो आदि की चाल से जो कालविनाश होता है वह वस्तुविनाश रूप कालोपक्रम है।

काल द्रव्य का पर्याय है और द्रव्य-पर्याय का मेचकमणिवत् सवलित रूप होने से द्रव्योपक्रम के वर्णन मे कालोपक्रम का भी कथन किया जा चुका मानना चाहिये। तथापि समय, आवलिका, मुहूर्त इत्यादि रूप से काल का स्वतत्र अस्तित्व बताने के लिये कालोपक्रम का पृथक् निर्देश किया है।

भावोपक्रम

८७. से किं तं भावोवक्कमे ?

भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—आगमतो य १ नोआगमतो य २।

[८७ प्र] भगवन् ! भावोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८७ उ] आयुष्मन् ! भावोपक्रम के दो प्रकार हैं। वे इस तरह—१ आगमभावोपक्रम, २ नोआगमभावोपक्रम।

८८. से किं तं आगमओ भावोवक्कमे ?

आगमओ भावोवक्कमे जाणए उवउत्ते। से तं आगमओ भावोवक्कमे।

[८८ प्र.] भगवन् ! आगमभावोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[८८ उ.] आयुष्मन् ! उपक्रम के अर्थ को जानने के साथ जो उसके उपयोग से भी युक्त हो, वह आगमभावोपक्रम है।

८९. से किं तं नोआगमतो भावोवक्कमे ?

नोआगमतो भावोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—पसत्थे य १ अपसत्थे य २।

[८९ प्र] भगवन् ! नोआगमभावोपक्रम का स्वरूप क्या है ?

[८९ उ] आयुष्मन् ! नोआगमभावोपक्रम दो प्रकार का कहा है। यथा—१ प्रशस्त और २ अप्रशस्त।

९०. से किं तं अपसत्थे भावोवक्कमे ?

अपसत्थे भावोवक्कमे डोडिणि-गणियाऽमच्चाईण से त अपसत्थे भावोवक्कमे।

[९० प्र] भगवन् ! अप्रशस्त भावोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[९० उ] आयुष्मन् ! डोडणी ब्राह्मणी, गणिका और अमात्यादि का अन्य के भावो को जानने रूप उपक्रम अप्रशस्त नोआगमभावोपक्रम है।[1]

९१. से किं तं पसत्थे भावोवक्कमे ?

पसत्थे भावोवक्कमे गुरुमादीण। से तं पसत्थे भावोवक्कमे। से त नोआगमतो भावोवक्कमे। से त भावोवक्कमे।

[९१ प्र] भगवन् ! प्रशस्त भावोपक्रम का क्या स्वरूप है ?

[९१ उ] आयुष्मन् ! गुरु आदि के अभिप्राय को यथावत् जानना प्रशस्त नोआगमभावोपक्रम है।

इस प्रकार से नोआगमभावोपक्रम का और इसके साथ ही भावोपक्रम का वर्णन पूर्ण हुआ जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्रकार ने यहाँ सप्रभेद भावोपक्रम का स्वरूप निर्देश करने के साथ भावोपक्रम की वक्तव्यता की समाप्ति का सकेत किया है।

भावोपक्रम -स्वभाव, सत्ता, आत्मा, योनि और अभिप्राय ये भाव शब्द के पाच अर्थ है। इनमे से यहाँ अभिप्राय अर्थ ग्रहण किया गया है। अतएव अर्थ यह हुआ कि भाव---अभिप्राय के यथावत् परिज्ञान को भावोपक्रम कहते है और उपक्रम शब्द के अर्थ के ज्ञान के साथ उसके उपयोग से युक्त जीव आगमभावोपक्रम कहलाता है।

नोआगमभावोपक्रम के अप्रशस्त और प्रशस्त यह दो भेद होने का कारण यह है कि डोडिणी, ब्राह्मणी आदि ने परकीय अभिप्राय को जाना तो अवश्य किन्तु वह सासारिक फलजनक होने से अप्रशस्त है। गुरु आदि का अभिप्राय मोक्ष का कारण होने से प्रशस्त है।

---

१ इन दृष्टान्तो क कथानक परिशिष्ट मे देखिये।

लौकिक दृष्टि की अपेक्षा यह उपक्रम का वर्णन जानना चाहिये। अब शास्त्रीय पद्धति से उपक्रम का निरूपण करते हैं।

उपक्रम वर्णन की शास्त्रीय दृष्टि

९२. अहवा उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—आणुपुव्वी १ नाम २ पमाणं ३ वत्तव्वया ४ अत्थाहिगारे ५ समोयारे ६।

[९२] अथवा उपक्रम के छह प्रकार है। यथा—१ आनुपूर्वी, २ नाम, ३. प्रमाण, ४ वक्तव्यता, ५ अर्थाधिकार और ६ समवतार।

विवेचन—प्रकारान्तर से उपक्रम के इन भेदो का निर्देश करने का कारण यह है कि पूर्व मे जिस प्रशस्त भावोपक्रम का वर्णन किया है, वह गुरुभावोपक्रम रूप है। पूर्व मे आदि शब्द से ग्रहण किये गये शास्त्रीय भावोपक्रम का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। आनुपूर्वी आदि प्रकारो द्वारा किये जाने से उसके छह भेद हो जाते है।

आनुपूर्वी निरूपण

९३. से किं तं आणुपुव्वी ?

आणुपुव्वी दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—नामाणुपुव्वी १ ठवणाणुपुव्वी २ दव्वाणुपुव्वी ३ खेत्ताणुपुव्वी ४ कालाणुपुव्वी ५ उक्कित्तणाणुपुव्वी ६ गणणाणुपुव्वी ७ संठाणाणुपुव्वी ८ सामायारियाणुपुव्वी ९ भावाणुपुव्वी १०।

[९३ प्र] भगवन् ! आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[९३ उ] आयुष्मन् ! आनुपूर्वी दस प्रकार की है। वह इस प्रकार—१ नामानुपूर्वी, २ स्थापनानुपूर्वी, ३ द्रव्यानुपूर्वी, ४ क्षेत्रानुपूर्वी, ५ कालानुपूर्वी, ६ उत्कीर्तनानुपूर्वी, ७ गणनानुपूर्वी, ८ सस्थानानुपूर्वी, ९ समाचार्यनुपूर्वी, १० भावानुपूर्वी।

विवेचन—सूत्र मे शास्त्रोपक्रम के प्रथम भेद आनुपूर्वी के दस नामो को गिनाया है। जिनका यथाक्रम विवेचन आगे किया जाएगा।

आनुपूर्वी—आनुपूर्वी, अनुक्रम एव परिपाटी, ये आनुपूर्वी के पर्यायवाची शब्द है। अत अर्थ यह हुआ कि अनुक्रम—एक के पीछे दूसरा ऐसी परिपाटी को आनुपूर्वी कहते है—पूर्वस्य अनु—पश्चादनुपूर्व तस्य भाव आनुपूर्वी।

नाम-स्थापना आनुपूर्वी

९४. से किं तं णामाणुपुव्वी ?

नाम-ठवणाओ तहेव।

[९४ प्र] भगवन् ! नाम (स्थापना) आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[९४ उ] आयुष्मन् ! नाम और स्थापना आनुपूर्वी का स्वरूप नाम और स्थापना आवश्यक जैसा जानना चाहिये।

द्रव्यानुपूर्वी

९५. दव्वाणुपुव्वी जाव से किं त जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी ?

जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवणिहिया य १ अणोवणिहिया य २।

[९५] द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप भी ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी के पहले तक सभेद द्रव्यावश्यक के समान जानना चाहिये।

प्र भगवन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उ आयुष्मन्! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की कही है। यथा—१ औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी और २ अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी।

९६. तत्थ णं जा सा उवणिहिया सा ठप्पा।

[९६] इनमे से औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी स्थाप्य है। तथा—

९७. तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पन्नत्ता। त जहा— णेगम-ववहाराण १ सगहस्स य २।

[९७] अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के दो प्रकार है—१ नेगम-व्यवहारनयसमत, २ सग्रहनयसमत।

विवेचन—सूत्र सख्या ९४-९५ मे नाम, स्थापना आनुपूर्वी तथा द्रव्यानुपूर्वी के कतिपय भेदो का स्वरूप सदृश नाम वाले आवश्यक के भेदो के जैसा समझने का अतिदेश किया है। इसके अतिरिक्त विशेष कथनीय इस प्रकार है—

औपनिधिकी आनुपूर्वी - इसका मूल शब्द उपनिधि है। जिसमे 'उप' का अर्थ है समीप तथा 'निधि' का अर्थ है रखना। अतएव किसी एक विवक्षित पदार्थ को पहले व्यवस्थापित करके फिर उसके पास ही पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से अन्यान्य पदार्थो को रखे जाने को उपनिधि कहते है और यह उपनिधि जिस आनुपूर्वी का प्रयोजन है, उसे औपनिधिकी आनुपूर्वी कहते है।

अनौपनिधिकी आनुपूर्वी— अनुपनिधि—पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रमानुसार पदार्थ की स्थापना, व्यवस्था नही करना अनौपनिधिकी आनुपूर्वी कहलाती है।

इन दोनो मे अल्पविषय वाली होने से औपनिधिकी आनुपूर्वी को गौण मानकर पहले बहुविषय वाली अनौपनिधिकी आनुपूर्वी का वर्णन प्रारभ किया है। औपनिधिकी आनुपूर्वी का कथन आगे किया जाएगा।

अनौपनिधिकी आनुपूर्वी की द्विविधता—नैगम, सग्रह, व्यवहार आदि सात नयो का द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयो मे अन्तर्भाव हो जाता है। द्रव्यार्थिकनय द्रव्य ही परमार्थ है, इस प्रकार पर्यायो को गौण करके द्रव्य को स्वीकार करता है और पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से पर्याये ही मुख्य है—सत् है। नैगम, सग्रह और व्यवहार ये तीन नय द्रव्य को ही विषय करने वाले

ो द्रव्यार्थिकनय है तथा ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये चार नय पर्यायों को विषय वाले होने से पर्यायार्थिकनय है।

सामान्य से द्रव्यार्थिकनय दो प्रकार का है—१ विशुद्ध, २ अविशुद्ध। नैगम और व्यवहार नय परमाणु, अनन्त द्व्यणुक आदि अनेक व्यक्ति स्वरूप और कृष्णादि अनेक गुणो के आधारभूत लवर्ती द्रव्य को विषय करने वाले होने से अविशुद्ध है और सग्रहनय स्वजाति की अपेक्षा परमाणु एक सामान्य रूप द्रव्य को ही विषय करता है। यह द्रव्यगत पूर्वापर विभाग को नही मानता सकी दृष्टि मे अनेक भिन्न-भिन्न परमाणु आदि भी परमाणुत्व आदि रूप से समानता वाले के कारण एक है, अत उनमे भी भेद नही है। इन सब कारणो से सग्रहनय विशुद्ध है। द्रव्यार्थिकनय के मत से द्रव्यानुपूर्वी का शुद्ध-अशुद्ध स्वरूप बताने के लिये अनौपनिधिकी र्वी के दो भेद हो जाते है।

स्कन्ध मे अनौपनिधिकी आनुपूर्वी कैसे? जिज्ञासु का प्रश्न है कि स्कन्ध अनन्तप्रदेशी क होते है। उनमे कोई त्रिप्रदेशी, कोई चतु प्रदेशी इस प्रकार उत्तरोत्तर समस्त स्कन्ध क होने से उनमे पूर्वानुपूर्वी के क्रम से स्थापना की व्यवस्था होने के कारण औपनिधिकित्व है, अनौपनिधिकरूपता कैसे ? इसका उत्तर यह है कि स्कन्धगत त्रिप्रदेशिकता आदि के द्वारा क्रम मे रखकर नही बनाई गई है। वह तो स्वभाव से ही है। सभी स्कन्ध ाविक परिणाम से परिणत होते रहते है। अतएव स्कन्ध मे अनौपनिधिकीपन है। जहाँ र आदि के द्वारा पूर्वानुपूर्वी के क्रम से वस्तुओ की व्यवस्था होती है, वहाँ पर औपनिधिकी र्वी होती है। जैसे धर्म, अधर्म आदि छह द्रव्यो मे अथवा सामायिक आदि छह अध्ययनो मे।

अनौपनिधिकी मे आनुपूर्वित्व कैसे?—यद्यपि अनौपनिधिकी मे पूर्वानुपूर्वी के क्रम से थापन नही होता है, फिर भी तीन आदि परमाणुओ मे आदि, मध्य और अन्त रूप नियत क्रम स्थापन की योग्यता ही आनुपूर्वित्व का कारण है।

पाठभेद—अत्रोक्त सूत्र ९४-९५ के स्थान पर किसी-किसी प्रति मे निम्न प्रकार से र पाठ है—

नामठवणाओ गयाओ, से किं त दव्वाणुपुव्वी ? २ दुविहा पण्णत्ता, त जहा—आगमओ अ ामओ अ। से किं त आगमओ दव्वाणुपुव्वी ? २ जस्स ण आणुपुव्वित्ति पय सिक्खिय ठिय मिय परिजिय जाव नो अणुप्पेहाए, कम्हा ? अणुवओगो दव्वमितिकट्टु, णेगमस्स ण एगो उत्तो आगमओ एगा दव्वाणुपुव्वी जाव कम्हा ? जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ से त आगमओ ाुपुव्वी। से किं त नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी ? २ तिविहा पण्णत्ता, त जहा—जाणयसरीरदव्वाणु- भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी, जाणयसरीर-भविअसरीरवइरित्तादव्वाणुपुव्वी। से किं त जाणयसरीर- ाुपुव्वी ? २ पयत्थाहिगारजाणयस्स ज सरीरय ववगयचुयचावियचत्तदेह सेस जहा दव्वावस्सए ाणिअव्व जाव से त जाणयसरीरदव्वाणुपुव्वी। से किं त भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी ? २ जे जोणीजम्मणनिक्खते सेस जहा दव्वावस्सए जाव से त भविअसरीरदव्वाणुपुव्वी।

सूत्रपाठ का आशय स्पष्ट है।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के भेद

९८. से किं तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?

णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा - अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५ ।

[९८ प्र] भगवन् ! नैगमनय और व्यवहारनय द्वारा मान्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[९८ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत द्रव्यानुपूर्वी के पाच प्रकार है। वे इस प्रकार—१ अर्थपदप्ररूपणा, २ भगसमुत्कीर्तनता, ३ भगोपदर्शनता, ४ समवतार और ५ अनुगम ।

विवेचन—नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का जिन पाच प्रकारो द्वारा विचार किया जाना है, उनके लक्षण इस प्रकार है--

अर्थपदप्ररूपणा—त्र्यणुक स्कन्ध आदि रूप अर्थ को विषय करने वाले पद की प्ररूपणा करना। अर्थात् सर्वप्रथम सज्ञा-सज्ञी के सम्बन्ध मात्र का कथन करना अर्थपदप्ररूपणा है ।

भगसमुत्कीर्तनता—आनुपूर्वी आदि के पदो से निष्पन्न हुए पृथक्-पृथक् भगो का और सयोगज दो आदि भगो का सक्षेप रूप मे कथन करना भगसमुत्कीर्तनता है ।

भगोपदर्शनता—सूत्र रूप मे उच्चारित हुए उन्ही भगो मे से प्रत्येक भग का अपने अभिधेय रूप त्र्यणुकादि अर्थ के साथ उपदर्शन—कथन करना । अर्थात् भगसमुत्कीर्तन मे तो मात्र भगविषयक सूत्र का ही उच्चारण होता है और भगोपदर्शन मे वही सूत्र अपने विषयभूत अर्थ के साथ कहा जाता है । यही दोनो मे अन्तर है ।

समवतार—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का स्वस्थान और परस्थान मे अन्तर्भाव होने के विचारो के प्रकार का नाम समवतार है ।

अनुगम—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का सत्पदप्ररूपणा आदि अनुयोगद्वारो मे विचार करना अनुगम है ।

नैगम-व्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणा और प्रयोजन

९९. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?

णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया तिपएसिए आणुपुव्वी, चउपएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी, संखेज्जपदेसिए आणुपुव्वी, असंखेज्जपदेसिए आणुपुव्वी, अणंतपएसिए आणुपुव्वी । परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी । दुपएसिए अवत्तव्वए । तिपएसिया आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसिया आणुपुव्वीओ । परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ । दुपएसिया अवत्तव्वगाइं । से तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ।

[९९ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपद की प्ररूपणा का क्या स्वरूप है ?

[९९ उ] आयुष्मन् ! (तीन प्रदेश वाला) त्र्यणुकस्कन्ध आनुपूर्वी है। इसी प्रकार चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी यावत् दसप्रदेशिक, सख्यातप्रदेशिक, असख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक

स्कन्ध आनुपूर्वी है। किन्तु परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी रूप है। द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है। अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनेक अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ—अनेक आनुपूर्वी रूप हैं। अनेक पृथक्-पृथक् पुद्गल परमाणु अनेक अनानुपूर्वी रूप हैं। अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक अवक्तव्य हैं। इस प्रकार नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणा का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणा की व्याख्या की गई है। यहाँ यह समझना चाहिये कि आनुपूर्वी परिपाटी को कहते है और परिपाटी रूप आनुपूर्वी वही होती है जहाँ आदि, मध्य और अन्त रूप गणना का व्यवस्थित क्रम होता है। ये आदि, मध्य और अन्त त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध एव स्कन्धो मे होते है। इसलिये इनमे प्रत्येक स्कन्ध आनुपूर्वी रूप होता है।

परमाणु अनानुपूर्वी रूप क्यो?—एक परमाणु अथवा पृथक्-पृथक् स्वतत्र सत्ता वाले अनेक परमाणुओ मे आदि, मध्य और अतरूपता नही होने से वे अनानुपूर्वी है। आनुपूर्वीरूपता उनमे सभव नही है।

द्विप्रदेशिक स्कन्ध की अवक्तव्यता का कारण—यद्यपि द्विप्रदेशिक स्कन्ध मे दो परमाणु सश्लिष्ट रहते है, इसलिये यहाँ अन्योन्यापेक्षा पूर्वस्य अनु-पश्चात्—अर्थात् एक के बाद दूसरा, इस प्रकार की अनुपूर्वरूपता- आनुपूर्वी है। किन्तु मध्य के अभाव मे सपूर्ण गणनानुक्रम नही बन पाने मे द्विप्रदेशिक स्कन्ध मे गणनानुक्रमात्मक आनुपूर्वी रूप मे कथन किया जाना अशक्य है और द्विप्रदेशी स्कन्ध मे परस्पर की अपेक्षा पूर्व-पश्चाद्भाव का सद्भाव होने से पुद्गल परमाणु की तरह अनानुपूर्वी रूप से भी उसे नही कह सकते है। इस प्रकार आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी रूप से कहा जाना शक्य नही होने से यह द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है।

आदि, मध्य, अन्त का वाच्यार्थ—आदि अर्थात् जिससे पर (अगला) है किन्तु पूर्व नहीं। जिससे पूर्व भी है और पर भी है, यह मध्य और जिसमे पूर्व तो है किन्तु पर नहीं, वह अन्त कहलाता है।

बहुवचनान्त पदों का निर्देश क्यों?—त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी है इत्यादि एक वचनान्त से सज्ञा-सज्ञी सम्बन्ध का कथन सिद्ध हो जाने पर भी आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का हरएक भेद अनन्त व्यक्ति रूप है तथा नैगम एव व्यवहारनय का ऐसा सिद्धान्त है, इस बात को प्रदर्शित करने के लिये 'त्रिप्रदेशा आनुपूर्व्य' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग किया है। अर्थात् त्रिप्रदेशिक एकद्रव्यरूप एक ही आनुपूर्वी नही किन्तु त्रिप्रदेशिकद्रव्य अनन्त है, अत उतनी ही अनन्त आनुपूर्वियों की सत्ता है।

क्रमविन्यास में हेतु—सूत्रकार ने एक परमाणु से निष्पन्न अनानुपूर्वी द्रव्य, परमाणुद्वय के सबन्ध से निष्पन्न अवक्तव्य द्रव्य और फिर परमाणुत्रय के सश्लेष से निष्पन्न आनुपूर्वी द्रव्य, इस प्रकार द्रव्य की वृद्धिरूप पूर्वानुपूर्वी क्रम का तथा इसी प्रकार परमाणुत्रयनिष्पन्न आनुपूर्वी, परमाणुद्वय-निष्पन्न अवक्तव्य और एक परमाणुनिष्पन्न अनानुपूर्वी रूप पश्चानुपूर्वी का उल्लघन करके पहले आनुपूर्वी द्रव्य का, तदनन्तर अनानुपूर्वी द्रव्य का और सबसे अत मे अवक्तव्य द्रव्य का निर्देश यह स्पष्ट करने के लिये किया है कि आनुपूर्वी द्रव्यो की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य अल्प हैं और अनानुपूर्वी

द्रव्यों की अपेक्षा अवक्तव्य द्रव्य और भी अल्प हैं। इस प्रकार से द्रव्य की अल्पता-न्यूनता का निर्देश करने के लिये सूत्र मे यह क्रमविन्यास किया है।

१००. एयाए ण णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणयाए कि पओयण ?

एयाए णं णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कीरइ।

[१०० प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत इस अर्थपदप्ररूपणा रूप आनुपूर्वी से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

[१०० उ] आयुष्मन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणा द्वारा भगमसुत्कीर्तना की जाती है अर्थात् भगो का कथन किया जाता है।

विवेचन—सूत्र मे यह स्पष्ट किया है कि अर्थपदप्ररूपणा का प्रयोजन यह है कि उसके बाद भगसमुत्कीर्तन रूप कार्य होता है। तात्पर्य यह है कि अर्थपदप्ररूपणा मे आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्य सज्ञाये निश्चित होने के बाद ही भगो का समुत्कीर्तन (कथन) हो सकता है, अन्यथा नही।

नैगम-व्यवहारनयसमत भंगसमुत्कीर्तन और उसका प्रयोजन

१०१ से कि त णेगम-ववहाराण भंगसमुक्कित्तणया ?

णेगम-ववहाराणं भगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ अत्थि आणुपुव्वीओ ४ अत्थि अणाणुपुव्वीओ ५ अत्थि अवत्तव्वयाइ ६। अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य २ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य ट्क[1], अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइ च २ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा अत्थि अणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइ च ट्क, अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइ च २ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइ च ट्क। अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइ च २ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ट्क अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइ च ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइ च ८, एए अट्ठ भगा। एव सव्वे वि छव्वीसं भगा २६। से तं णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया।

[१०१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत भगसमुत्कीर्तन का क्या स्वरूप है ?

[१०१ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगसमुत्कीर्तन का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—

१ 'ट्क' चार (४) सख्या का द्योतक अक्षराक है।

१ आनुपूर्वी है, २ अनानुपूर्वी है, ३ अवक्तव्य है, ४ आनुपूर्वियां है, ५ अनानुपूर्वियां है, ६ (अनेक) अवक्तव्य हैं। अथवा—

१ आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है, २ आनुपूर्वी और अनानुपूर्वियां है, ३ आनुपूर्वियां और अनानुपूर्वी है, ४ आनुपूर्वियां और अनानुपूर्वियां है। अथवा—

१. आनुपूर्वी और अवक्तव्यक है, २ आनुपूर्वी और (अनेक) अवक्तव्य है, ३. आनुपूर्वियां और अवक्तव्य है ४ आनुपूर्वियां और (अनेक) अवक्तव्य है। अथवा-

१ अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, २ अनानुपूर्वी और (अनेक) अवक्तव्य है, ३ अनानुपूर्वियां और (एक) अवक्तव्य है, ४ अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य है। अथवा—

१ आनपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, २ आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य है, ३. आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य है, ४ आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य है, ५. आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, ६ आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य है, ७. आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य है, ८ आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य है, इस प्रकार यह आठ भंग है।

ये सब मिलकर छब्बीस भंग होते है। यह नैगम-व्यवहारनयसम्मतभंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे नैगम-व्यवहारनयसम्मत छब्बीस भंगो का समुत्कीर्तन (कथन) किया है। जो परस्पर संयोग और असंयोग की अपेक्षा से बनते है। इन छब्बीस भंगो के मूल आधार आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य यह तीन पदार्थ है। इनके असंयोग पक्ष मे एकवचनान्त तीन और बहुवचनान्त तीन इस प्रकार छह भंग होते है।

संयोगपक्ष मे इन तीन पदो के द्विकसंयोगी भंग तीन चतुर्भंगी रूप होने से कुल बारह है। उन एक-एक भंग मे दो-दो का संयोग होने पर एकवचन और बहुवचन को लेकर चार-चार भंग होते है। इसलिये तीन चतुर्भंगी और उनके कुल बारह भंग हो जाते है।

त्रिकसंयोग मे एकवचन और बहुवचन को लेकर आठ भंग बनते है। इस प्रकार छह, बारह और आठ भंगो को मिलाने से कुल छब्बीस भंग हो जाते है। सुगमता से बोध के लिये उनका प्रारूप इस प्रकार है—

असंयोगी भंग ६	**द्विकसंयोगी भंग १२** (प्रथम चतुर्भंगी)	**त्रिकसंयोगी भंग ८**
१. आनुपूर्वी	१ आनुपूर्वी—अनानुपूर्वी,	१ आनुपूर्वी—अनानुपूर्वी—अवक्तव्य,
२. अनानुपूर्वी	२ आनुपूर्वी—अनानुपूर्वियां,	२ आनुपूर्वी—अनानुपूर्वी—अनेक अवक्तव्यक,
३ अवक्तव्यक	३ आनुपूर्वियां—अनानुपूर्वी,	३ आनुपूर्वी—अनानुपूर्वियां—अवक्तव्यक,
४ आनुपूर्वियां	४ आनुपूर्वियां—अनानुपूर्वियां।	
५ अनानुपूर्वियां		
६ अनेक अवक्तव्यक		

(द्वितीय चतुर्भंगी)

१. आनुपूर्वी—अवक्तव्यक,
२ आनुपूर्वी—अनेक अवक्तव्यक,
३ आनुपूर्विया—अवक्तव्यक,
४ आनुपूर्विया—अनेक अवक्तव्य।

(तृतीय चतुर्भंगी)

१ अनानुपूर्वी—अवक्तव्यक,
२ अनानुपूर्वी—अनेक अवक्तव्यक
३ अनानुपूर्विया—अवक्तव्यक,
४. अनानुपूर्विया—अनेक अवक्तव्यक।

४ आनुपूर्वी—अनानुपूर्विया—अनेक अवक्तव्यक,
५ आनुपूर्विया—अनानुपूर्वी—अवक्तव्यक,
६ आनुपूर्विया—अनानुपूर्वी, अनेक अवक्तव्यक,
७ आनुपूर्विया—अनानुपूर्विया—अवक्तव्यक
८ आनुपूर्विया—अनानुपूर्विया—अनेक अवक्तव्यक।

कुल मिलाकर बारह भग होते है।

इन भगो का समुत्कीर्तन—वर्णन इसलिये किया जाता है कि असयोगी छह और सयोगज बीस भगो मे से वक्ता जिस भग से द्रव्य की विवक्षा करना चाहता है, वह उस भग से विवक्षित द्रव्य को कहे। इसी कारण यहाँ नैगम-व्यवहारनयसमत समस्त भगो का कथन करने के लिये इन भगो का समुत्कीर्तन किया है।

१०२. एयाए ण णेगम-ववहाराण भंगसमुक्कित्तणयाए कि पओयण ?

एयाए ण णेगम-ववहाराण भंगसमुक्कित्तणयाए भगोवदसणया कीरइ।

[१०२ प्र] भगवन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

[१०२ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगसमुत्कीर्तनता का प्रयोजन यह है कि उसके द्वारा भगोपदर्शन—भगो का कथन किया जाता है।

विवेचन—सूत्र मे समुत्कीर्तन का प्रयोजन बताया है। यद्यपि भगसमुत्कीर्तन और भगोपदर्शन का आशय स्थूल दृष्टि से एक जैसा प्रतीत होता है, लेकिन शब्दभेद से अर्थभेद होने के न्यायानुसार दोनो मे अतर है। वह इस प्रकार—भगसमुत्कीर्तन मे तो भगो का नाम और वे कितने होते है, यह बतलाते है और भगोपदर्शन मे उनका त्र्यणुक आदि वाच्यार्थ कहा जाता है। क्योकि वाचकसूत्र के कथन के बिना वाच्य रूप अर्थ का कथन करना असभव है। इसलिये भगोपदर्शनता, भगसमुत्कीर्तनता का फल जानना चाहिये। अर्थात् भगसमुत्कीर्तनता कारण है और भगोपदर्शन उसका कार्य है।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगोपदर्शनता

१०३ से किं तं णेगम-ववहाराण भगोवदसणया ?

णेगम-ववहाराण भगोवदसणया तिपदेसिए आणुपुव्वी १ परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी २ दुपदेसिए अवत्तव्वए ३ तिपदेसिया आणुपुव्वीओ ४ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ ५ दुपदेसिया

अवत्तव्वयाइं ६। अहवा तिपदेसिए य परमाणुपोग्गले य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य १ अहवा तिपदेसिए य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य २ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गले य आणपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य ३ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य ४, अहवा तिपदेसिए य दुपदेसिए य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा तिपदेसिए य दुपदेसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च २ अहवा तिपदेसिया य दुपदेसिए य आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा तिपदेसिया य दुपदेसिया य आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ४, अहवा परमाणुपोग्गले य दुपदेसिए य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा परमाणुपोग्गले य दुपदेसिया य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च २ अहवा परमाणुपोग्गला य दुपदेसिए य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा परमाणुपोग्गला य दुपदेसिया य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ४। अहवा तिपदेसिए य परमाणुपोग्गले य दुपदेसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य १ अहवा तिपदेसिए य परमाणुपोग्गले य दुपदेसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च २ अहवा तिपदेसिए य परमाणुपोग्गला य दुपदेसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ३ अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गला य दुपदेसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीयो य अवत्तव्वयाइं च ४ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गले य दुपदेसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गले य दुपदेसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च ६ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गला य दुपदेसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य ७ अहवा तिपदेसिया य परमाणुपोग्गला य दुपदेसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च ८। से तं नेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया।

[१०३ प्र.] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है ?

[१०३ उ.] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता का स्वरूप इस प्रकार है -

१ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, २ परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है, ३ द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है, ४ त्रिप्रदेशिक अनेक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ है, ५ अनेक परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वियां है, ६ अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक है। (इस प्रकार से असंयोगी छह भंगो का अर्थ जानना चाहिये।) अथवा—

१ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी रूप है, २ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी और अनानुपूर्वियो का वाच्यार्थ है, ३ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियां और अनानुपूर्वी है, ४ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियो और अनानुपूर्वियो का रूप है। अथवा--

१. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अवक्तव्य रूप है, २ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अवक्तव्यक रूप है, ३ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ और अवक्तव्य रूप है, ४ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियो और अवक्तव्यको रूप है। अथवा—

१. परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी अवक्तव्यक रूप है, २ परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी अवक्तव्यकों रूप है, ३ अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियो और अवक्तव्य रूप है, ४ अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यकों रूप है। अथवा

१ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक रूप है, २ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यको रूप है, ३ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियो और अवक्तव्यक रूप है, ४ त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यको रूप है, ५ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिकस्कन्ध आनुपूर्वियो, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप है, ६ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियो, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यको रूप है, ७ अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियो, अनानुपूर्वियो और अवक्तव्यक रूप है, ८ अनेक त्रिप्रदेशिकस्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिकस्कन्ध अनुपूर्वियो—अनानुपूर्वियो—अवक्तव्यको रूप है।

इस प्रकार से नैगम-व्यवहारनयसमत भगोपदर्शनता का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—पूर्व मे भगसमुत्कीर्तन के द्वारा जो सक्षेप रूप मे सकेत किया था, उसी का यहाँ विस्तार से वाच्यार्थ स्पष्ट किया है कि किस भग के द्वारा किसके लिये सकेत किया है। जैसे कि त्रिप्रदेशी स्कन्ध आनुपूर्वी शब्द का, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी का और द्विप्रदेशीस्कन्ध अवक्तव्य शब्द का वाच्य है। अतएव एकवचन व बहुवचन के रूप मे जिस प्रकार से आनुपूर्वी आदि शब्द का प्रयोग किया गया हो, उसका उसी रूप मे वाच्यार्थ निर्धारित कर लेना चाहिए।

अर्थपदप्ररूपणा और भगोपदर्शनता मे यह अन्तर है कि अर्थपदप्ररूपणा मे तो केवल अर्थपद रूप पदार्थ का कथन और भगोपदर्शनता मे भिन्न-भिन्न रूप से कथित भगो का अर्थ स्पष्ट किया जाता है। इसलिये यहाँ पुनरुक्ति की कल्पना नही करनी चाहिये।

समवतार-प्ररूपणा

१०४. (१) से किं त समोयारे? समोयारे णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

[१०४-१ प्र] भगवन्! समवतार का क्या स्वरूप है? नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी-द्रव्य कहाँ समवतरित (समाविष्ट) होते है? क्या आनुपूर्वीद्रव्यो मे समवतरित होते है, अनानुपूर्वी-द्रव्यों मे अथवा अवक्तव्यकद्रव्यो मे समवतरित होते हैं?

[१०४-१ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों मे समवतरित होते हैं, किन्तु अनानुपूर्वीद्रव्यो में या अवक्तव्यद्रव्यो मे समवतरित नही होते है।

[२] णेगम-ववहाराण अणाणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइ णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

[१०४-२ प्र] नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं? क्या आनुपूर्वी द्रव्यो मे समवतरित होते है? अनानुपूर्वीद्रव्यो मे या अवक्तव्यकद्रव्यो मे समवतरित होते हैं?

[१०४-२ उ] आयुष्मन् ! अनानुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे और अवक्तव्यकद्रव्यो मे समवतरित नही होते है किन्तु अनानुपूर्वीद्रव्यो मे समवतरित होते है।

[३] णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कहिं समोयरंति? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

णेगम-ववहाराण अवत्तव्वयदव्वाइं णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। से तं समोयारे।

[१०४-३ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयमान्य अवक्तव्यद्रव्य कहाँ समवतरित होते है? क्या आनुपूर्वीद्रव्यो मे अथवा अनानुपूर्वीद्रव्यो मे या अवक्तव्यकद्रव्यो मे समवतरित होते है?

[१०४-३ उ] आयुष्मन् ! अवक्तव्यकद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे और अनानुपूर्वीद्रव्यो मे समवतरित नही होते है किन्तु अवक्तव्यकद्रव्यो मे समवतरित होते है। यह समवतार की वक्तव्यता है।

विवेचन—सूत्रकार ने सूत्र मे कौन द्रव्य किसमे समवतरित होता है, यह स्पष्ट किया है।

समवतार का तात्पर्य है समावेश अर्थात् आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का बिना किसी विरोध के अपनी जाति मे रहना, जात्यन्तर मे नही रहने का और कार्य मे कारण का उपचार करके 'आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का अन्तर्भाव स्वस्थान मे होता है, या परस्थान मे, इस प्रकार के चिन्तनप्रकार—विचार के उत्तर को भी समवतार कहते है। यह विचार किस प्रकार से किया जाता है? उसको सूत्र मे स्पष्ट किया है। अविरुद्ध रूप से आनुपूर्वीद्रव्य—त्रिप्रदेशिक आदि स्कन्ध—आनुपूर्वीद्रव्य मे, अनानुपूर्वी द्रव्य—परमाणुपुद्गल—अनानुपूर्वीद्रव्य मे और अवक्तव्यद्रव्य—द्विप्रदेशिकस्कन्ध—अवक्तव्यद्रव्य मे अविरोध रूप से—अपनी जाति मे विना विरोध के रहते है। इस प्रकार की अविरोधवृत्तिता स्वजातीय पदार्थ मे ही हो सकती है, इतर जाति मे नहीं। आनुपूर्वीद्रव्यों का समवतार यदि पर-जाति मे भी माना जाए तो परजाति मे रहने पर उसमे स्वजाति मे रहने की अविरोधवृत्तिता नही बन सकेगी। इससे यह सिद्धान्त प्रतिफलित हुआ कि नाना देशवर्ती समस्त आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे रहते है, परजाति मे नही। इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो के लिये भी समझ लेना चाहिये।

अनुगमप्ररूपणा

१०५. से किं तं अणुगमे ?

अणुगमे णवविहे पण्णत्ते । तं जहा—

संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खेत्त ३ फुसणा य ४ ।
कालो य ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं ९ चेव ॥ ८ ॥

[१०५ प्र.] भगवन् ! अनुगम का क्या स्वरूप है ?

[१०५ उ.] आयुष्मन् ! अनुगम नौ प्रकार कहा गया है, जैसे—१ सत्पदप्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अन्तर, ७ भाग, ८ भाव और ९ अल्पबहुत्व ।

विवेचन—सूत्र मे नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के अन्तिम भेद अनुगम की वक्तव्यता प्रारम्भ की है ।

अनुगम—सूत्र के अनुकूल अथवा अनुरूप व्याख्यान करने की विधि को अनुगम कहते है । अथवा सूत्र पढने के पश्चात् उसका व्याख्यान करना अनुगम है । इस अनुगम के सत्पदप्ररूपणा आदि नौ भेद है, जिनके लक्षण इस प्रकार है--

सत्पदप्ररूपणा— विद्यमान पदार्थविषयक पद की प्ररूपणा को कहते है । जैसे आनुपूर्वी आदि द्रव्य सत् पदार्थ के वाचक है, असत् पदार्थ के वाचक नही, ऐसी प्ररूपणा करना । अनुगम करते समय यह प्रथम करने योग्य होने से सर्वप्रथम इसका विन्यास किया है ।

द्रव्यप्रमाण—आनुपूर्वी आदि पदो के द्वारा जिन द्रव्यों को कहा जाता है उनकी संख्या का विचार करने को कहते है ।

क्षेत्र-- आनुपूर्वी आदि पदो द्वारा कथित द्रव्यो के आधारभूत क्षेत्र का विचार करना ।

स्पर्शन - आनुपूर्वी आदि द्रव्यो द्वारा स्पर्शित क्षेत्र की पर्यालोचना करना ।

क्षेत्र मे केवल आधारभूत आकाश का ही ग्रहण है, जबकि स्पर्शना मे आधारभूत क्षेत्र के चारो तरफ के और ऊपर-नीचे के वे आकाशप्रदेश भी ग्रहण किये जाते है जो आधेय द्वारा स्पर्शित होते है, यही क्षेत्र और स्पर्शन मे अन्तर है ।

काल—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो की स्थिति की मर्यादा का विचार करना ।

अन्तर—विरहकाल । अर्थात् विवक्षित पर्याय का परित्याग हो जाने के बाद पुन उसी पर्याय की प्राप्ति मे होने वाले विरहकाल को अन्तर कहते है ।

भाग—आनुपूर्वी आदि द्रव्य दूसरे द्रव्यो के कितनेवे भाग मे रहते है, ऐसा विचार करना ।

भाव—विवक्षित आनुपूर्वी आदि द्रव्य किस भाव मे है, ऐसा विचार करना ।

अल्पबहुत्व— अर्थात् न्यूनाधिकता । द्रव्यार्थिक, प्रदेशार्थिक और तदुभय के आश्रय से इन आनुपूर्वी आदि द्रव्यो मे अल्पाधिकता का विचार किया जाना अल्पबहुत्व कहलाता है ।

इनका विस्तृत विचार क्रम से आगे के सूत्रो मे किया जा रहा है ।

सत्पद प्ररूपणा

१०६. (१) नेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?
णियमा अत्थि ।

[१०६-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य है अथवा नही है ?
[१०६-१ उ] आयुष्मन् ! नियम से--अवश्य है ।

(२) नेगम-ववहाराण अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?
णियमा अत्थि ।

[१०६-२ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वी द्रव्य है अथवा नही है ?
[१०६-२ उ] आयुष्मन् ! अवश्य है ।

(३) नेगम-ववहाराण अवत्तव्वगदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?
नियमा अत्थि ।

[१०६-३ प्र] भगवन् ! क्या नैगम-व्यवहारनयसमत अवक्तव्यक द्रव्य है या नही हैं ?
[१०६-३ उ] आयुष्मन् ! अवश्य है ।

(इस प्रकार से सत्पदप्ररूपणा रूप प्रथम भेद की वक्तव्यता जानना चाहिये ।)

विवेचन सूत्र मे नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का निश्चितरूपेण अस्तित्व प्रकट किया है । वे असत् रूप नही है और न उनका कभी अभाव हो सकता है । यही सत्पदप्ररूपणा का हार्द है ।

द्रव्यप्रमाण

१०७. (१) नेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणताइं ?
नो संखेज्जाइं नो असंखेज्जाइं अणताइं ।

[१०७-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, असंख्यात है, अथवा अनन्त है ?

[१०७-१ उ] आयुष्मन् ! वे संख्यात नही, असंख्यात भी नही किन्तु अनन्त है ।

[२] एवं दोण्णि वि ।

[१०७-२] इसी प्रकार शेष दोनो (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्य) भी अनन्त हैं ।

इस प्रकार से अनुगम के द्रव्यप्रमाण नामक दूसरे भेद की वक्तव्यता जानना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे अनुगम के दूसरे भेद का हार्द स्पष्ट किया है कि आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्य अनन्त है और इनके अनन्त होने का कारण यह है कि ये प्रत्येक आकाश के एक-एक प्रदेश मे अनन्त-अनन्त भी पाये जाते है ।

असख्यातप्रदेशी आकाश रूप क्षेत्र मे अनन्त आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का अवस्थान कैसे सभव है ? इसका उत्तर यह है कि क्योंकि पुद्‌गल का परिणमन अचिन्त्य है और आकाश मे अवगाहन शक्ति है। जैसे एक प्रदीप की प्रभा से व्याप्त एक गृहान्तर्वर्ती आकाश प्रदेशो मे दूसरे और भी अनेक प्रदीपो की प्रभा का अवस्थान होता है, इसी प्रकार आनुपूर्वी आदि अनन्त द्रव्यो की असख्यातप्रदेशी आकाश मे उसकी अवगाहनशक्ति के योग से एव पुद्‌गल परिणमन की विचित्रता से अवस्थिति होने मे और आनुपूर्वी आदि द्रव्यों को अनन्त मानने मे किसी प्रकार की बाधा नही है।

प्रस्तुत मे प्रयुक्त 'एव दोण्णि वि' के स्थान पर किसी-किसी प्रति मे निम्नलिखित पाठ है—

'एव अणाणुपुव्वीदव्वाइ अवत्तव्वगदव्वाइ च अणताइ भाणिअव्वाइ।'

जिसमे सक्षेप और विस्तार की अपेक्षा शब्दो मे अन्तर है, लेकिन दोनो का आशय समान है।

क्षेत्रप्ररूपणा

१०८. [१] णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ लोगस्स कतिभागे होज्जा? कि संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ? सखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? सव्वलोए होज्जा ?

एगदव्वं पडुच्च लोगस्स सखेज्जइभागे वा होज्जा असखेज्जइभागे वा होज्जा सखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु वा होज्जा सव्वलोए वा होज्जा, नाणादव्वाइ पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

[१०८-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी द्रव्य (क्षेत्र के) कितने भाग मे अवगाढ हैं ? क्या लोक के सख्यातवे भाग मे अवगाढ है ? असख्यातवे भाग मे अवगाढ है ? क्या सख्यात भागो मे अवगाढ है ? असख्यात भागो मे अवगाढ है ? अथवा समस्त लोक मे अवगाढ है ?

[१०८-१ उ] आयुष्मन् ! किसी एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा कोई लोक के सख्यातवे भाग मे अवगाढ है, कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के असख्यातवे भाग मे रहता है तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के सख्यात भागो मे रहता है और कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य असख्यात भागो मे रहता है और कोई एक द्रव्य समस्त लोक मे अवगाढ होकर रहता है। किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा तो वे नियमत समस्त लोक मे अवगाढ है।

[२] नेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइ कि लोगस्स सखेज्जइभागे होज्जा ? असखेज्जइ-भागे होज्जा ? सखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? सव्वलोए वा होज्जा ?

एगदव्वं पडुच्च नो सखेज्जइभागे होज्जा असखेज्जइभागे होज्जा नो सखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो सव्वलोए होज्जा, णाणादव्वाइ पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

[१०८-२ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के सख्यात भाग मे अवगाढ है ? असख्यात भाग मे अवगाढ है ? सख्यात भागो मे है या असख्यात भागो मे हैं अथवा समस्त लोक मे अवगाढ है ?

[१०८-२ उ] आयुष्मन् ! एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा वह लोक के सख्यातवे भाग मे अवगाढ नही है, असख्यातवें भाग मे अवगाढ है, न सख्यात भागों मे, न असख्यात भागो मे और न सर्वलोक में अवगाढ है, किन्तु अनेक अनानुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा नियमत सर्वलोक मे अवगाढ है।

[३] एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि।

[१०८-३] इसी प्रकार अवक्तव्यद्रव्य के विषय मे भी जानना चाहिये।

(यह क्षेत्र प्ररूपणा का आशय है।)

विवेचन—सूत्र मे आनुपूर्वी आदि द्रव्यो के क्षेत्र विषयक पाच प्रश्नो के उत्तर दिये है। वे पाच प्रश्न इस प्रकार है—

१ आनुपूर्वी आदि द्रव्य क्या लोक के सख्यातवे भाग मे रहते है ? अथवा
२ असख्यातवे भाग मे रहते है ? अथवा
३ लोक के सख्यात भागो मे रहते है ? अथवा
४ असख्यात भागो मे रहते है ? अथवा
५ समस्त लोक मे रहते है ?

यह पूर्व मे बताया जा चुका है कि कम से कम त्र्यणुक स्कन्ध आनुपूर्वीद्रव्य है तथा द्वयणुक स्कन्ध और परमाणु क्रमश अवक्तव्य एव अनानुपूर्वी द्रव्य है। यह त्र्यणुक आदि का व्यवहार पुद्‌गलद्रव्य मे ही होता है। अतएव पुद्‌गलद्रव्य का आधार यद्यपि सामान्य से तो लोकाकाश रूप क्षेत्र नियत है। परन्तु विशेष रूप मे भिन्न-भिन्न पुद्‌गलद्रव्यो के आधारक्षेत्र के परिमाण मे अतर होता है। अर्थात् आधारभूत क्षेत्र के प्रदेशो की सख्या आधेयभूत पुद्‌गलद्रव्य के परमाणुओ की सख्या से न्यून या उसके बराबर हो सकती है, अधिक नही। इसलिये एक परमाणु रूप अनानुपूर्वीद्रव्य आकाश के एक ही प्रदेश मे स्थित रहता है परन्तु द्वयणुक एक प्रदेश मे भी रह सकता है और दो प्रदेशो मे भी। इसी प्रकार उत्तरोत्तर सख्या बढते-बढते त्र्यणुक, चतुरणुक यावत् सख्याताणुक स्कन्ध एक प्रदेश, दो प्रदेश, तीन प्रदेश यावत् सख्यात प्रदेशरूप क्षेत्र मे ठहर सकते है। सख्याताणुक द्रव्य की स्थिति के लिये असख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र की आवश्यकता नही है। इसी प्रकार असख्याताणुक स्कन्ध एक प्रदेश से लेकर अधिक से अधिक अपने बराबर के असख्यात सख्या वाले प्रदेशो के क्षेत्र मे ठहर सकता है। किन्तु अनन्ताणुक और अनन्तानताणुक स्कन्ध के विषय मे यह जानना चाहिये कि वह एक प्रदेश, दो प्रदेश इत्यादि क्रम से बढते-बढते सख्यात प्रदेश और असख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र मे ठहर सकते है। उनकी स्थिति के लिये अनन्त प्रदेशात्मक क्षेत्र की जरूरत नही है। पुद्‌गलद्रव्य का सबसे बडा स्कन्ध, जिसे अचित्त महास्कन्ध कहते है और जो अनन्तानन्त अणुओ का बना होता है, वह भी असख्यातप्रदेशी लोकाकाश मे ही ठहर जाता है। लोकाकाश के प्रदेश असख्यात ही हैं और उससे बाहर पुद्‌गल की अवगाहना सभव नही है।

उपर्युक्त समग्र कथन आनुपूर्वी आदि एक-एक द्रव्य की अपेक्षा से समझना चाहिए। किन्तु अनेक की अपेक्षा इन समस्त द्रव्यो का अवगाहन समस्त लोकाकाश मे है। जिसका स्पष्टीकरण 'नाणादव्वाइ पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा' पद द्वारा किया गया है।

अनन्तानन्त पुद्‌गलपरमाणुओ से निष्पन्न अचित्त महास्कन्धरूप आनुपर्वीद्रव्य के एक समय

मे समस्त लोक मे अवगाढ रहने को केवलीसमुद्घात के चतुर्थ समयवर्ती आत्मप्रदेशो के सर्वलोक मे व्याप्त होने की तरह जानना चाहिये।

स्पर्शना प्ररूपणा

१०९.[१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसंति ? असंखेज्जइभागं फुसंति ? संखेज्जे भागे फुसंति ? असंखेज्जे भागे फुसंति ? सव्वलोयं फुसंति ?

एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागं वा फुसंति, असंखेज्जइभागं वा फुसंति संखेज्जे वा भागे फुसंति असंखेज्जे वा भागे फुसंति सव्वलोगं वा फुसंति, णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति।

[१०९-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श करते है ? अथवा असंख्यातवे भाग का स्पर्श करते है ? संख्यात भागो का स्पर्श करते है ? अथवा असंख्यात भागो का स्पर्श करते है ? अथवा समस्त लोक का स्पर्श करते है ?

[१०९-१ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श करता है, असंख्यातवे भाग का स्पर्श करता है, संख्यात भागो का स्पर्श करता है, असंख्यात भागो का स्पर्श करता है अथवा सर्वलोक का स्पर्श करता है, किन्तु अनेक (आनुपूर्वी) द्रव्य तो नियमत सर्वलोक का स्पर्श करते है।

(२) णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं पुच्छा, एगं दव्वं पडुच्च नो संखेज्जइभागं फुसति असंखेज्जइभागं फुसति नो संखेज्जे भागे फुसति नो असंखेज्जेभागे फुसति नो सव्वलोगं फुसति, नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोगं फुसंति।

[१०९-२ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श करते है ? इत्यादि प्रश्न है।

[१०९-२ प्र] आयुष्मन् ! एक एक अनानुपूर्वी की अपेक्षा लोक के संख्यातवे भाग का स्पर्श नही करते है किन्तु असंख्यातवे भाग का स्पर्श करते है, संख्यात भागो का, असंख्यात भागो का या सर्वलोक का स्पर्श नही करते है। किन्तु अनेक अनानुपूर्वी द्रव्यो की अपेक्षा तो नियमत सर्वलोक का स्पर्श करते हैं।

(३) एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि।

[१०९-३] अवक्तव्य द्रव्यो की स्पर्शना भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो की एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा स्पर्शना का विचार किया है। सूत्रार्थ सुगम है और प्रश्नोत्तर का प्रकार क्षेत्रप्ररूपणा के समान ही जानना चाहिए। लेकिन क्षेत्र और स्पर्शना मे यह अन्तर है कि परमाणुद्रव्य की जो अवगाहना एक आकाश प्रदेश मे होती है, वह क्षेत्र है तथा परमाणु के द्वारा अपने निवासस्थानरूप एक आकाश-प्रदेश के अतिरिक्त चारो ओर तथा ऊपर-नीचे के प्रदेशो के स्पर्श को स्पर्शना कहते है। परमाणु

की स्पर्शना आकाश के सात प्रदेशों की इस प्रकार है—चारों दिशाओं के चार प्रदेश, ऊपर-नीचे के दो प्रदेश एव एक वह प्रदेश जहाँ स्वय उसकी अवगाहना है। इस प्रकार अनानुपूर्वी द्रव्य की कुल मिलाकर सात प्रदेशो की स्पर्शना होती है। यद्यपि परमाणु निरश है, एक है, तथापि सात प्रदेशो के साथ उसकी स्पर्शना होती है।

कालप्ररूपणा

११०. [१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होंति ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एग समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा।

[११०-१ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा कितने काल तक (आनुपूर्वीद्रव्य रूप मे) रहते है?

[११०-१ उ] आयुष्मन्! एक आनुपूर्वीद्रव्य जघन्य एक समय एव उत्कृष्ट असख्यात काल तक उसी स्वरूप मे रहता है और विविध आनुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा नियमत स्थिति सार्वकालिक है।

[२] एवं दोन्नि वि।

[२] इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भ. जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का एक और अनेक की अपेक्षा से उन्ही आनुपूर्वी आदि द्रव्यो के रूप मे रहने के काल का कथन किया गया है।

आनुपूर्वीद्रव्य का आनुपूर्वीद्रव्य के रूप मे रहने का जघन्य एक समयरूप और उत्कृष्ट असख्यात काल इस प्रकार घटित होता है कि परमाणुद्वय आदि मे दूसरे एक आदि परमाणुओ के मिलने पर एक अपूर्व आनुपूर्वीद्रव्य उत्पन्न हो जाता है और एक समय के बाद ही उसमे से एक आदि परमाणु के छूट जाने पर वह आनुपूर्वीद्रव्य उस रूप से विनष्ट हो जाता है। इस अपेक्षा आनुपूर्वीद्रव्य का आनुपूर्वी के रूप मे रहने का काल जघन्य एक समय होता है और जब वही एक आनुपूर्वीद्रव्य असख्यात काल तक उसी आनुपूर्वीद्रव्य के रूप मे रहकर एक आदि परमाणु से वियुक्त होता है तब उसकी अवस्थिति का उत्कृष्ट असख्यात काल जानना चाहिये।

अनेक आनुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा तो इन आनुपूर्वीद्रव्यो की स्थिति नियमत सार्वकालिक है। क्योकि ऐसा कोई काल नही कि जिसमे ये आनुपूर्वीद्रव्य न हो।

किसी भी एक आनुपूर्वीद्रव्य का आनुपूर्वी रूप मे रहने का काल अनन्त नही है। क्योकि पुद्गलसयोग की उत्कृष्ट स्थिति असख्यात काल की ही होती है, इससे अधिक नही।

अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो का भी एक और अनेक की अपेक्षा उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति काल आनुपूर्वीद्रव्यवत् जानना चाहिये।

यहाँ प्रयुक्त 'एव दोन्नि वि' सूत्र के स्थान पर किसी-किसी प्रति मे 'अणाणुपुव्वी दव्वाइ अवत्तव्वगदव्वाइ च एव चेव भाणिअव्वाइ' पाठ है और तदनुरूप उसकी व्याख्या की है। लेकिन शब्दभेद होने पर भी दोनों के आशय मे अतर नही है, मात्र सक्षेप और विस्तार की अपेक्षा है।

अन्तरप्ररूपणा

१११. [१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमतर कालतो केवचिरं होति ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेण अणतं काल, नाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अंतरं।

[१११-१ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्यो का कालापेक्षया अतर—व्यवधान कितना होता है ?

[१११-१ उ,] आयुष्मन्! एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक ममय और उत्कृष्ट अनन्त काल का अतर होना है, किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अतर—विरहकाल नही है।

[२] णेगम-ववहाराण अणाणुपुव्वीदव्वाणं अतरं कालतो केवचिर होइ ?

एगं दव्व पडुच्च जहण्णेण एगं समय उक्कोसेण असखेज्ज काल, नाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अंतरं।

[१११-२ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वीद्रव्यो का काल की अपेक्षा अतर कितना होता है ?

[१११-२ उ] आयुष्मन्! एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा अन्तरकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल प्रमाण है तथा अनेक अनानुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा अतर नही है।

[३] णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाण अंतरं कालतो केवचिर होति ?

एग दव्व पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणतं काल, नाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अतर।

[१११-३ प्र] भगवन्! नेगम-व्यवहारनयसमत अवक्तव्यद्रव्यों का कालापेक्षया अन्तर कितना है ?

[१११-३ उ] आयुष्मन्! एक अवक्तव्यद्रव्य की अपेक्षा अतर जघन्य एक ममय और उत्कृष्ट अनन्त काल है, किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही है।

विवेचन—सूत्र के तीन विभागो मे क्रमश आनुपूर्वीद्रव्यो, अनानुपूर्वीद्रव्यो और अवक्तव्यद्रव्यो का एक और अनेक की अपेक्षा से कालापेक्षया अतर बताया है कि आनुपूर्वी आदि द्रव्य आनुपूर्वी आदि स्वरूप का परित्याग करके पुन उसी आनुपूर्वी स्वरूप को कितने काल के व्यवधान से प्राप्त करते है। वह इस प्रकार है।

एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य अतर एक समय का, उत्कृष्ट अतर अनन्तकाल का है। नाना द्रव्यो की अपेक्षा अतर नही होने का भाव इस प्रकार जानना चाहिये कि त्र्यणुक, चतुरणुक आदि आनुपूर्वीद्रव्यो मे से कोई एक आनुपूर्वीद्रव्य स्वाभाविक अथवा प्रायोगिक परिणमन से खड-खड होकर आनुपूर्वी पर्याय से रहित हो जाए और पुन वही द्रव्य एक ममय के बाद स्वाभाविक आदि

परिणाम के निमित्त से उन्ही परमाणुओ के सयोग से विवक्षित आनुपूर्वी रूप बन जाए तो इस प्रकार एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा आनुपूर्वी स्वरूप के परित्याग और पुन उसी स्वरूप मे आने के बीच मे एक समय का जघन्य अतर पडा । इसीलिये एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य अतरकाल एक समय का बताया है ।

उत्कृष्ट अतरकाल अनन्त काल इस प्रकार है—कोई एक विवक्षित आनुपूर्वीद्रव्य पूर्वोक्त रीति से आनुपूर्वीपर्याय से रहित हो गया और निर्गत वे परमाणु अन्य द्वयणुक, त्र्यणुक आदि से लेकर अनन्तप्रदेशीस्कन्ध पर्यन्त रूप अनन्त स्थानो मे प्रत्येक उत्कृष्ट काल की स्थिति का अनुभव करते हुए सश्लिष्ट रहे । इस प्रकार प्रत्येक द्वयणुक आदि अनन्त स्थानो मे अनन्त काल तक सश्लिष्ट होते-होते अनन्त काल समाप्त होने पर जब उन्ही परमाणुओ द्वारा वही विवक्षित आनुपूर्वीद्रव्य पुन निष्पन्न हो तब यह अनन्त काल का उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

नाना आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा काल का अन्तर नही बताने का कारण यह है कि लोक मे अनन्तानन्त आनुपूर्वीद्रव्य सर्वदा विद्यमान रहते है । इसलिये ऐसा कोई समय नही है कि जिसमे समस्त आनुपूर्वीद्रव्य अपनी आनुपूर्वीरूपता का एक साथ परित्याग कर देते हो ।

एक अनानुपूर्वीद्रव्य का जघन्य अन्तर एक समय होने का और अनेक की अपेक्षा अन्तर नही होने का कथन तथा अवक्तव्यद्रव्यो का एक—अनेकापेक्षया जघन्य—उत्कृष्ट अन्तर आनुपूर्वी द्रव्यवत् है । लेकिन एक अनानुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर असख्यात काल प्रमाण बताने का कारण यह है कि परमाणु रूप अनानुपूर्वीद्रव्य किसी भी स्कन्ध के साथ अधिक से अधिक असख्यात काल तक सयुक्त अवस्था मे रहता है । इसीलिये असख्यात काल का उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये । असख्यात काल तक सयुक्त रहने मे पुद्गलस्वभाव कारण है ।

काल की तरह क्षेत्र की अपेक्षा भी अन्तर होता है । जैसे कि इस पृथ्वी से सूर्य का अन्तर आठ सौ योजन है । इसीलिये सूत्र मे क्षेत्रगत अन्तर के परिहारार्थ काल पद का प्रयोग किया है कि यहा कालापेक्षया अन्तर का विचार करना अभीष्ट है, क्षेत्रकृत अन्तर का नही ।

भागप्ररूपणा

११२. [१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

नो संखेज्जइभागे होज्जा नो असंखेज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ।

[११२-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के कितनेवे भाग है ? क्या संख्यात भाग हैं ? असख्यात भाग है अथवा सख्यात भागो या असख्यात भागो रूप हैं ?

[११२-१ उ] आयुष्मन् ! आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के सख्यात भाग, असंख्यात भाग अथवा सख्यात भागो रूप नही है, परन्तु नियमत असख्यात भागो रूप है ।

[२] णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ? किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

नो संखेज्जइभागे होज्जा असंखेज्जइभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ।

[११२-२ प्र.] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के कितनेवे भाग होते हैं ? क्या सख्यात भाग होते है ? असख्यात भाग होते है ? सख्यात भागो रूप होते है ? अथवा असंख्यात भागों रूप होते है ?

[११२-२ उ] आयुष्मन् ! अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के सख्यात भाग नही होते है, संख्यात भागो अथवा असख्यात भागो रूप नही होते है । किन्तु असख्यात भाग होते है ।

[३] एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि ।

[३] अवक्तव्य द्रव्यो सबन्धी कथन भी उपर्युक्तानुरूप असख्यात भाग समझना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे यह स्पष्ट किया है कि आनुपूर्वीद्रव्य (त्र्यणुकादि स्कन्ध) अनानुपूर्वीद्रव्य (परमाणु) और अवक्तव्यद्रव्य (द्वयणुकस्कन्ध) कितनवे भाग होते है ? इसका अभिप्राय यह है कि आनुपूर्वीद्रव्य, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो से अधिक है या कम ? इसके उत्तर के लिये सूत्र मे पद दिया—नियमा असखेज्जेसु भागेसु होज्जा । अर्थात् ये शेष द्रव्यो के असख्यात भागो रूप अधिक है ।

शेष द्रव्यो की अपेक्षा समस्त आनुपूर्वीद्रव्य अधिक इसलिये है कि अनानुपूर्वी द्रव्य परमाणु रूप है और अवक्तव्यद्रव्य द्वयणुक रूप है तथा आनुपूर्वीद्रव्य त्र्यणुक आदि स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुकस्कन्ध पर्यन्त है । इसीलिये ये आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो की अपेक्षा असख्यात भागो से अधिक हैं । यही कथन निम्नलिखित आगमिक उद्धरण से स्पष्ट है—

'एएसि ण भते ! परमाणुपोग्गलाण सखिज्जपएसियाण असखेज्जपएसियाण अणतपए-सियाण य खधाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणतपएसिया खधा, परमाणुपोग्गला अणतगुणा सखिज्जपएसिआ खधा सखिज्जगुणा असखेज्जपएसिया खधा असखेज्जगुणा ।' [अनुयोग वृत्ति प ६६]

इस सूत्र मे समस्त पुद्गल जाति की अपेक्षा से उसके असख्यातप्रदेशीस्कन्ध असख्यातगुणे कहे हैं और ये असख्यातप्रदेशीस्कन्ध आनुपूर्वी मे ही अन्तर्भूत होते है । अतएव जब सब आनुपूर्वीद्रव्य शेष समस्त द्रव्यो से भी असख्यातगुणे है तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो की अपेक्षा असख्यातगुणे तो स्वयमेव सिद्ध है ।

अनानुपूर्वीद्रव्य (परमाणु) आनुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो की अपेक्षा असंख्यातवे भाग हैं तथा अवक्तव्यद्रव्य आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा असख्यातवे भाग जानना चाहिये, जिसके लिये सूत्र मे सकेत किया है—असखेज्जइभागे होज्जा ।

भावप्ररूपणा

११३. [१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा? किं उदइए भावे होज्जा? उवसमिए भावे होज्जा? खाइए भावे होज्जा? खाओवसमिए भावे होज्जा? पारिणामिए भावे होज्जा? सन्निवाइए भावे होज्जा?

णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा।

[११३-१ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव मे वर्तते हैं? क्या औदयिक भाव मे, औपशमिक भाव मे, क्षायिक भाव मे, क्षयोपशमिक भाव मे, पारिणामिक भाव मे अथवा सान्निपातिक भाव मे वर्तते है?

[११३ उ] आयुष्मन्! समस्त आनुपूर्वीद्रव्य सादि पारिणामिक भाव मे होते है।

[२] अणाणुपुव्वीदव्वाणि अवत्तव्वयदव्वाणि य एवं चेव भाणियव्वाणि।

[२] अनानुपूर्वीद्रव्यो और अवक्तव्यद्रव्यो के लिये भी इसी प्रकार जानना चाहिये। अर्थात् वे भी सादिपारिणामिक भाव मे हैं।

विवेचन—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो मे सादिपारिणामिक भाव होता है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

द्रव्य का विभिन्न रूपो मे होने वाले परिणमन—परिवर्तन को परिणाम कहते है और यह परिणाम ही पारिणामिक है। अथवा परिणमन या उससे जो निष्पन्न हो उसे पारिणामिक कहते है।

यह पारिणामिकभाव सादि और अनादि के भेद से दो प्रकार का है। अनादि परिणमन तो लोकनियामक रूपी और अरूपी द्रव्यो मे से धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्यो का होता है और वह उनका स्वभावत उस रूप मे अनादि काल से होता चला आ रहा है और अनन्तकाल तक होता रहेगा। लेकिन रूपी पुद्गलद्रव्य मे जो परिणमन होता है, वह सादि-परिणाम है। मेघपटल, इन्द्र-धनुष आदि पौद्गलिक द्रव्यो के परिणमन मे अनादिता का अभाव है। क्योकि पुद्गलों का जो विशिष्ट रूप मे परिणमन होता है वह उत्कृष्ट रूप से भी असख्यात काल तक ही स्थायी रहता है। इसलिये समस्त आनुपूर्वीद्रव्य सादिपारिणामिक भाव वाले है।

इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो मे भी सादिपारिणामिक भाव जानना चाहिए।

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

११४. [१] एएसि णं भंते! णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वयदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोतमा! सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराण अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।

[११४-१ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वीद्रव्यों, अनानुपूर्वीद्रव्यों और

अवक्तव्यद्रव्यो मे से द्रव्य, प्रदेश और द्रव्यप्रदश की अपेक्षा कौन द्रव्य किन द्रव्यो की अपेक्षा अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११४-१ उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्य सबसे स्तोक (अल्प) है, अवक्तव्यद्रव्यों की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य, द्रव्य की अपेक्षा विशेषाधिक है और द्रव्यापेक्षा आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यो से असख्यातगुणे होते है।

[२] पएसट्ठयाए णेगम-ववहाराणं सव्वत्थोवाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए, अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं।

[२] प्रदेश की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वीद्रव्य अप्रदेशी होने से सर्वस्तोक है, प्रदेशों की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यो से विशेषाधिक और आनुपूर्वीद्रव्य अवक्तव्य द्रव्यो से अनन्तगुणे है।

[३] दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराण अवत्तव्वगदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, अवत्तव्वगदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं। से तं अणुगमे। से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।

[३] द्रव्य और प्रदेश से अल्पबहुत्व नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्य—द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प है। द्रव्य और अप्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य विशेषाधिक हे, प्रदेश की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य विशेषाधिक है, आनुपूर्वीद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा असख्यातगुण और वही प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुण है।

इस प्रकार से अनुगम का वर्णन पूर्ण हुआ एव साथ ही नैगम-व्यवहारनयसमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की वक्तव्यता भी पूर्ण हुई।

विवेचन—सूत्रकार ने नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का द्रव्य, प्रदेश और उभय की अपेक्षा अल्पबहुत्व बतलाया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

द्रव्यार्थ से अवक्तव्यद्रव्य सर्वस्तोक, उनसे अनानुपूर्वीद्रव्य विशेपाधिक और उनसे आनुपूर्वीद्रव्य असख्यातगुण होने मे वस्तुस्वभाव कारण है। दूसरी बात यह है कि अनानुपूर्वी द्रव्य-परमाणु मे एक ही और अवक्तव्यद्रव्य मे द्विप्रदेशीस्कन्ध रूप एक स्थान ही लभ्य है, परन्तु आनुपूर्वीद्रव्य मे त्र्यणुकस्कन्ध से लगाकर एकोत्तर वृद्धि से—एक-एक प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से अनन्ताणुक स्कन्ध पर्यन्त अनन्त स्थान है। इसीलिये आनुपूर्वीद्रव्य, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यों की अपेक्षा असख्यातगुणे बताये है।

प्रदेशो की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य को सबसे कम बताने का कारण यह है कि यदि परमाणु रूप इन अनानुपूर्वी द्रव्यो मे भी द्वितीय आदि प्रदेश मान लिये जाये तो प्रदेशार्थता से भी अनानुपूर्वीद्रव्यो की अवक्तव्यद्रव्यो से अधिकता मानी जा सकती है, परन्तु परमाणु अप्रदेशी है और यहाँ

प्रदेशार्थता की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया है। अत: अनानुपूर्वीद्रव्य सर्वस्तोक है, यही सिद्धान्त युक्तियुक्त है।

यद्यपि अनानुपूर्वी द्रव्यो के अप्रदेशी होने से प्रदेशार्थता नही है, तथापि 'प्रकृष्ट देश प्रदेश' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वसूक्ष्म देश अर्थात् पुद्गलास्तिकाय के निरश भाग को प्रदेश कहते है और ऐसा प्रदेशत्व परमाणुद्रव्य मे है। इसीलिये प्रदेशार्थता की अपेक्षा यहाँ अनानुपूर्वीद्रव्यो का विचार किया है।

अवक्तव्यद्रव्यो को अनानुपूर्वीद्रव्यो से प्रदेशार्थता की अपेक्षा विशेषाधिक कहने का कारण यह है कि अनानुपूर्वीद्रव्य एकप्रदेशी (अप्रदेशी) है जबकि अवक्तव्यद्रव्य द्विप्रदेशी है। इसीलिये अवक्तव्यद्रव्यो को प्रदेशापेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्यों से विशेषाधिक कहा है।

आनुपूर्वीद्रव्य अवक्तव्यद्रव्यो की अपेक्षा प्रदेशार्थता से अनन्तगुणे इसलिये है कि इनके प्रदेश अवक्तव्यद्रव्यों के प्रदेशो से अनन्तगुणे तक हैं।

द्रव्य और प्रदेशरूप उभयार्थता की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्यो को सर्वस्तोक बताने का कारण यह है कि पूर्व मे अवक्तव्यद्रव्यो मे द्रव्यार्थता की अपेक्षा सर्वस्तोकता कही है और अनानुपूर्वीद्रव्यो को अवक्तव्यद्रव्यो से उभयार्थ की अपेक्षा जो कुछ अधिकता कही है वह द्रव्यार्थता से जानना चाहिये किन्तु अनानुपूर्वीद्रव्यो से अवक्तव्यद्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा विशेषाधिक है और यह अधिकता उनके द्विप्रदेशी होने के कारण जानना चाहिये।

आनुपूर्वीद्रव्यो के विषय मे द्रव्य और प्रदेशार्थता की अपेक्षा जो पृथक्-पृथक् निर्देश किया है, वही उभयरूपता के लिये भी समझ लेना चाहिये कि द्रव्यार्थता की अपेक्षा असख्यात गुणे और प्रदेशार्थता की अपेक्षा अनन्तगुण है।

इस प्रकार ये नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी विषयक विवेचनीय का कथन करने के बाद अब सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का विवेचन प्रारम्भ करते है।

संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी प्ररूपणा

११५. से किं तं सगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?

सगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पचविहा पण्णत्ता। त जहा—अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भगोवदसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

[११५ प्र] भगवन्! सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[११५ उ] आयुष्मन्! सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पाच प्रकार की कही है। वे प्रकार है—१ अर्थपदप्ररूपणता, २ भगसमुत्कीर्तनता, ३. भगोपदर्शनता, ४ समवतार, ५ अनुगम।

विवेचन—सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की प्ररूपणा भी पूर्वोक्त नैगमव्यवहार-नयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की तरह पाच प्रकारों द्वारा करने का कथन सूत्र मे किया है। इन अर्थपदप्ररूपणता आदि के लक्षण पूर्वोक्त अनुसार ही जानना चाहिये।

संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता एवं प्रयोजन

११६. से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ?

संगहस्स अट्ठपयपरूवणया तिपएसिया आणुपुव्वी चउप्पएसिया आणुपुव्वी जाव दसपएसिया आणुपुव्वी संखिज्जपएसिया आणुपुव्वी असंखिज्जपएसिया आणुपुव्वी अणंतपदेसिया आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी, दुपदेसिया अवत्तव्वए । से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ।

[११६ प्र] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

[११६ उ] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार है त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् दसप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है । परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक है ।

संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का यह स्वरूप है ।

विवेचन—संग्रहनय की दृष्टि से यह अर्थपदप्ररूपणता है । इसमे और पूर्व की नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता मे यह अन्तर है कि नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एक आनुपूर्वीद्रव्य है और अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक आनुपूर्वीद्रव्य है । इस प्रकार एकत्व और अनेकत्व दोनो का निर्देश किया है । यह कथन अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिये । किन्तु संग्रहनय सामान्यवादी है और उसके अविशुद्ध एव विशुद्ध यह दो प्रकार है । अतएव सामान्यवादी होने से अविशुद्ध संग्रहनय के मतानुसार समस्त त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एक ही आनुपूर्वी है, क्योकि सभी त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यदि वे अपने त्रिप्रदेशित्व रूप सामान्य से भिन्न है तो द्विप्रदेशिक आदि स्कन्ध की तरह वे त्रिप्रदेशिक स्कन्ध नही कहला सकते है और यदि त्रिप्रदेशिकत्व रूप सामान्य से वे अभिन्न है तो वे सभी त्रिप्रदेशी स्कन्ध एक रूप ही है । इसी कारण सभी त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एक ही आनुपूर्वी है, अनेक आनुपूर्वीद्रव्य नही है ।

इसी प्रकार चतु प्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक सब स्वतन्त्र, स्वतन्त्र भिन्न भिन्न चतुष्प्रदेशी आदि आनुपूर्वी है ।

उक्त दृष्टि अविशुद्ध संग्रहनय की है । परन्तु विशुद्ध संग्रहनय के मतानुसार त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त के स्कन्धो की जितनी भी आनुपूर्विया है, वे सब आनुपूर्वित्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण एक ही आनुपूर्वी रूप है ।

इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक के लिये समझना चाहिये कि अनानुपूर्वित्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण समस्त परमाणुपुद्गल रूप अनानुपूर्विया एक ही अनानुपूर्वी हैं । अवक्तव्यकत्व रूप सामान्य से अभिन्न होने के कारण समस्त द्विप्रदेशिक स्कन्ध भी एक अवक्तव्यक रूप हैं ।

११७. एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?

एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कीरइ ।

[११७ प्र.] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ?

[११७ उ.] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता द्वारा संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता (भंगों का निर्देश) की जाती है ।

विवेचन—इस सूत्र द्वारा संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का प्रयोजन स्पष्ट किया है कि इससे भंगसमुत्कीर्तनता रूप प्रयोजन सिद्ध होता है । इस भंगसमुत्कीर्तनता की व्याख्या निम्न प्रकार है—

संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता एवं प्रयोजन

११८. से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ?

संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य ४ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ६ अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ७ । एवं एए सत्त भंगा । से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ।

[११८ प्र.] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है ?

[११८ उ.] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप इस प्रकार है—

१ आनुपूर्वी है, २ अनानुपूर्वी है, ३ अवक्तव्यक है । अथवा—४ आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है, ५ आनुपूर्वी और अवक्तव्यक है, ६ अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक है । अथवा—७ आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक है ।

इस प्रकार ये सात भंग होते है । यह प्ररूपणा संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप है ।

११९. एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ?

एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जति ।

[११९ प्र.] भगवन् ! इस संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

[११९ उ.] आयुष्मन् ! इस संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता के द्वारा भंगोपदर्शन किया जाता है ।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे भंगसमुत्कीर्तनता का आशय और प्रयोजन स्पष्ट किया है ।

भंगसमुत्कीर्तनता मे मूल तीन पद हैं—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य । इनके वाच्यार्थ पूर्व में स्पष्ट किये जा चुके हैं । इन तीनो पदो के पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र तीन भंग, दो-दो पदो के संयोग से तीन भंग और तीनों पदो के संयोग से एक भंग बनता है । इस प्रकार तीनो पदो के स्वतन्त्र और संयोगज कुल सात भंग होते है ।

इन भंगों के कथन द्वारा भंगोपदर्शनता रूप प्रयोजन सिद्ध होता है, अतएव अब भंगोपदर्शनता को स्पष्ट करते हैं ।

संग्रहनयसम्मत भंगोपदर्शनता

१२०. से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?

भंगोवदंसणया तिपएसिया आणुपुव्वी १ परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी २ दुपएसिया अवत्त ३ अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य ४ अहवा तिपएसिय दुपएसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य ५ अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वं अवत्तव्वए य ६, अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वं अवत्तव्वए य ७। से तं संगहस्स भंगोवदसणया।

[१२० प्र] भगवन्! सग्रहनयसम्मत भगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है ?

[१२० उ] आयुष्मन्! सग्रहनयसम्मत भगोपदर्शनता का स्वरूप इस प्रकार है—त्रिप्रदेशि स्कन्ध आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप मे, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप मे अ द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप मे विवक्षित होते है। अथवा—

त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप त्रिप्रदेशिक और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप मे तथा परमाणुपुद् और द्विप्रदेशिक स्कन्ध, अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप मे विवक्षित होते है। अथवा—

त्रिप्रदेशिक स्कन्ध-परमाणुपुद्गल-द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक श के वाच्यार्थ रूप मे विवक्षित होते है।

इस प्रकार से सग्रहनयसम्मत भगोपदर्शनता का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे भगसमुत्कीर्तन के रूप मे जिन सज्ञाओ का उल्लेख किया था, सज्ञाओ का वाच्यार्थ इस सूत्र मे स्पष्ट किया है कि आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक शब्द द्वारा यावन्मात्र त्रिप्रदेशिक आदि स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध ग्रहण किये ज हैं। अर्थात् यही इनके वाच्यार्थ है। इसी प्रकार द्विकसयोगी और त्रिकसयोगी पदो का वाच्य समझ लेना चाहिये।

समवतारप्ररूपणा

१२१. से किं त समोयारे ? समोयारे संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति ? आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति ?

सगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयर नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति। एवं दोण्णि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति। से त समोयारे।

[१२१ प्र] भगवन्! समवतार का क्या स्वरूप है ? क्या सग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्र आनुपूर्वीद्रव्यो मे समाविष्ट होते है ? अथवा अनानुपूर्वीद्रव्यो मे समाविष्ट होते है ? या अवक्तव्य द्रव्यो मे समाविष्ट होते हैं ?

[१२१ उ] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे समवतरित होते है, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो मे नही। इसी प्रकार दोनो भी—अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यकद्रव्य भी—स्वस्थान मे ही समवतरित होते है।

यह समवतार का स्वरूप है।

विवेचन—समवतार सम्बन्धी स्पष्टीकरण नैगमव्यवहारनयसम्मत समवतार के प्रसग में किया जा चुका है। तदनुरूप यहाँ भी समझ लेना चाहिये कि सजातीय का सजातीय में ही समावेश होता है। समावेश होना ही समवतार की परिभाषा है।

संग्रहनयसम्मत अनुगमप्ररूपणा

१२२. से किं तं अणुगमे ?

अणुगमे अट्ठविहे पन्नत्ते। तं जहा—

संतपयपरूवणया १ द ब्वपमाणं २ च खेत्त ३ फुसणा ४ य।
कालो ५ य अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं नत्थि ॥ ६ ॥

[१२२ प्र] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत अनुगम का क्या स्वरूप है ?

[१२२ उ] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत अनुगम आठ प्रकार का है। वह इस प्रकार—

(गाथार्थ) १ सत्पदप्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अन्तर, ७ भाग और ८ भाव। (किन्तु संग्रहनय सामान्यग्राही होने से) इसमे अल्पबहुत्व नही होता है।

विवेचन—सूत्र मे अनुगम के आठ प्रकारो के नाम गिनाये है। इनकी व्याख्या इस प्रकार है—

सत्पदप्ररूपणा

१२३. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?

नियमा अत्थि। एवं दोण्णि वि।

[१२३ प्र] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य हैं अथवा नही हैं ?

[१२३ उ] आयुष्मन् ! नियमत (निश्चित रूप से) है। इसी प्रकार दोनो (अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक) द्रव्यो के लिये भी समझना चाहिये।

विवेचन—इस सत्पदप्ररूपणा द्वारा यह प्ररूपित किया है कि ये आनुपूर्वी आदि पद असदर्थ-विषयक नही है। किन्तु जैसे स्तम्भ आदि पद स्तम्भ आदि रूप अपने वास्तविक अर्थ को विषय करते हैं, उसी प्रकार आनुपूर्वी आदि पद भी वास्तविक रूप मे विद्यमान पदार्थ के वाचक है। इसी तथ्य को बताने के लिये सूत्र मे कहा है—'नियमा अत्थि।'

द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा

१२४. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं ?

नो संखेज्जाइं नो असंखेज्जाइं नो अणंताइं, नियमा एगो रासी। एवं दोण्णि वि।

[१२४ प्र.] भगवन् ! सग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य सख्यात है, असख्यात हैं या अनन्त है ?

[१२४ उ.] आयुष्मन् ! सग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य सख्यात नही हैं, असख्यात नही है और अनन्त भी नही है, परन्तु नियमत एक राशि रूप है। इसी प्रकार दोनो—(अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक) द्रव्यों के लिये भी जानना चाहिये।

विवेचन—द्रव्यप्रमाणप्ररूपणा मे आनुपूर्वी आदि पदो द्वारा कहे गये द्रव्यो की सख्या का निर्धारण होता है। यही बात सूत्र मे स्पष्ट की है। सग्रहनय सामान्य को विषय करने वाला होने से उसके मत से सख्यात आदि भेद सभव नही हैं। किन्तु एक-एक राशि ही है। इसी बात का सकेत करने के लिये सूत्र मे पद दिया है—नियमा एगो रासी। जिसका अर्थ यह है कि जैसे विशिष्ट एक परिणाम से परिणत एक स्कन्ध मे तदारभक परमाणुओ की बहुलता होने पर भी एकता की ही मुख्य रूप से विवक्षा होती है। उसी प्रकार आनुपूर्वीद्रव्य अनेक होने पर भी उनमे आनुपूर्वीत्व सामान्य एक होने से उन्हे सग्रहनय एक मानता है।

संग्रहनयसम्मत क्षेत्रप्ररूपणा

१२५. **संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स कतिभागे होज्जा ? किं संखेज्जतिभागे होज्जा ? असंखेज्जतिभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? सव्वलोए होज्जा ?**

नो संखेज्जतिभागे होज्जा नो असंखेज्जतिभागे होज्जा नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा सव्वलोए होज्जा ? एवं दोण्णि वि।

[१२५ प्र.] भगवन् ! सग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य लोक के कितने भाग मे है ? क्या सख्यात भाग मे है ? असख्यात भाग मे है ? सख्यात भागो मे है ? असख्यात भागो मे है ? अथवा सर्वलोक मे हैं ?

[१२५ उ.] आयुष्मन् ! समस्त आनुपूर्वीद्रव्य लोक के सख्यात भाग, असख्यात भाग, सख्यात भागो या असख्यात भागो मे नही है किन्तु नियमत सर्वलोक मे है।

इसी प्रकार का कथन दोनो (अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक) द्रव्यो के लिए भी समझना चाहिये। अर्थात् ये दोनो भी समस्त लोक मे है ?

विवेचन—सग्रहनय की अपेक्षा आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का क्षेत्र सर्वलोक बताया है। उसका कारण यह है कि आनुपूर्वित्व आदि रूप सामान्य एक है और वह सर्वलोकव्यापी है। इसीलिये आनुपूर्वी आदि द्रव्यो की सत्ता सर्वलोक मे है।

संग्रहनयसंमत स्पर्शनाप्ररूपणा

१२६. **संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जतिभागं फुसंति ? असंखेज्जतिभागं फुसंति ? संखेज्जे भागे फुसंति ? असंखेज्जे भागे फुसंति ? सव्वलोगं फुसंति ?**

नो संखेज्जतिभागं फुसंति नो असंखेज्जतिभागं फुसंति नो संखेज्जे भागे फुसंति नो असंखेज्जे भागे फुसंति, नियमा सव्वलोगं फुसंति। एवं दोन्नि वि।

[१२६ प्र] भगवन् ! सग्रहनयसमत आनुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के सख्यात भाग का, असंख्यात भाग का, सख्यात भागों या असख्यात भागो या सर्वलोक का स्पर्श करते है ?

[१२६ उ.] आयुष्मन् ! आनुपूर्वीद्रव्य लोक के सख्यात भाग का स्पर्श नही करते हैं, असख्यात भाग का स्पर्श नही करते है, सख्यात भागों और असख्यात भागो का भी स्पर्श नही करते है, किन्तु नियम से सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ।

इसी प्रकार का कथन अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप दोनो द्रव्यो के लिये भी समझना चाहिये ।

विवेचन—आनुपूर्वी आदि द्रव्यो की स्पर्शना का कारण पूर्वोक्त क्षेत्रप्ररूपणा के समान समझ लेना चाहिये । ये आनुपूर्वी आदि द्रव्य आनुपूर्वित्व आदि रूप सामान्य के सर्वव्यापी होने से सर्वलोक-व्यापी हैं, उनकी सत्ता सर्वलोक मे है । अतएव ये सभी नियमत सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ।

संग्रहनयसम्मत काल और अंतर की प्ररूपणा

१२७. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होंति ?

सव्वद्धा । एवं दोण्णि वि ।

[१२७ प्र] भगवन् ! सग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा कितने काल तक (आनुपूर्वी रूप मे) रहते है ?

[१२७ उ] आयुष्मन् ! आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वी रूप मे सर्वकाल रहते है । इसी प्रकार का कथन शेष दोनो द्रव्यों के लिये भी समझना चाहिये ।

१२८. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालतो केवचिरं अंतरं होति ?

नत्थि अंतरं । एवं दोण्णि वि ।

[१२८ प्र] भगवन् ! सग्रहनयसमत आनुपूर्वीद्रव्यो का कालापेक्षया कितना अतर-विरहकाल होता है ?

[१२८ उ] आयुष्मन् ! कालापेक्षया आनुपूर्वीद्रव्यो में अतर नहीं होता है । इसी प्रकार शेष दोनों द्रव्यो के लिये समझना चाहिये ।

विवेचन—इन दोनो सूत्रो मे सग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का काल की अपेक्षा अवस्थान और अतर का निरूपण किया है । जिसका आशय यह है—

आनुपूर्वित्व, अनानुपूर्वित्व और अवक्तव्यकत्व सामान्य का विच्छेद नही होने से इनका अवस्थान सर्वाद्धा-सार्वकालिक है और इसीलिये काल की अपेक्षा इनका विरहकाल भी नही है । इन दोनों बातों का निरूपण करने के लिये पद दिये हैं—'सव्वद्धा' और 'नत्थि अंतर' । सारांश यह कि आनुपूर्वित्व आदि का कालत्रय मे सत्त्व रहने के कारण विच्छेद न होने से उनका अवस्थान सार्व-कालिक है और इसीलिये उनमे कालिक अतर-विरहकाल भी सभव नहीं है ।

संग्रहनयसम्मत भागप्ररूपणा

१२९. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कतिभागे होज्जा ? किं संखेज्जतिभागे होज्जा ? असंखेज्जतिभागे होज्जा ? संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

नो संखेज्जतिभागे होज्जा नो असंखेज्जतिभागे होज्जा णो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा णो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नियमा तिभागे होज्जा । एवं दोण्णि वि ।

[१२९ प्र] भगवन् ! संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के कितनेवे भाग प्रमाण होते है ? क्या संख्यात भाग प्रमाण होते है या असंख्यात भाग प्रमाण होते है ? संख्यात भागो प्रमाण अथवा असंख्यात भागो प्रमाण होते है ?

[१२९ उ] आयुष्मन् ! संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो के संख्यात भाग, असंख्यात भाग, संख्यात भागो या असंख्यात भागो प्रमाण नही है, किन्तु नियमत तीसरे भाग प्रमाण होते है ।

इसी प्रकार दोनो (अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक) द्रव्यो के विषय मे भी समझना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे भागप्ररूपणा का प्ररूपण किया । आशय यह है कि संग्रहनयमान्य समस्त आनुपूर्वी आदि द्रव्यो मे से आनुपूर्वीद्रव्य नियम से शेष द्रव्यो के त्रिभाग प्रमाण है । क्योंकि अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो को मिलाकर जो राशि उत्पन्न होती है, उस राशि के तीन भाग करने पर जो तृतीय भाग आये तत्प्रमाण आनुपूर्वीद्रव्य है । क्योकि यह तीन राशियो मे से एक राशि है । इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के लिये जानना कि वे भी तीसरे-तीसरे भाग प्रमाण है ।

संग्रहनयसम्मत भावप्ररूपणा

१३०. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा ?

नियमा सादिपारिणामिए भावे होज्जा । एवं दोण्णि वि । अप्पाबहुं नत्थि । से तं अणुगमे । से तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी । से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ।

[१३० प्र] भगवन् ! संग्रहनयसमत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव मे होते है ?

[१३० उ] आयुष्मन् ! आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सादिपारिणामिक भाव मे होते है ।

यही कथन शेष दोनो (अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक) द्रव्यो के लिये भी समझना चाहिये ।

राशिगत द्रव्यो मे अल्पबहुत्व नही है । यह अनुगम का वर्णन है ।

इस प्रकार से संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन पूर्ण हुआ और साथ ही अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की वक्तव्यता भी पूर्ण हुई ।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट है । संबन्धित विशेष वक्तव्य इस प्रकार है—

आनुपूर्वी आदि राशिगत द्रव्यो मे अल्पबहुत्व नही है । क्योकि संग्रहनय की दृष्टि से आनुपूर्वी आदि द्रव्यों मे अनेकत्व नही है, सभी एक-एक द्रव्य है । जब अनेकत्व नही, सभी एक-एक है तो उनमें अल्पबहुत्व कैसे संभव होगा ?

अल्पबहुत्व नही होने पर भी सग्रहनयमान्य अनुगम के प्रकरण में जो 'सगहस्य आणुपुव्वी-दव्वाइं किं संखिज्जाइं " · ·' आदि बहुवचनान्त पदो का प्रयोग किया गया है उसका कारण यह है कि सग्रहनय की अपेक्षा तो ये द्रव्य एक-एक है, परन्तु व्यवहारनय से बहुत भी है।

इस प्रकार से अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का निरूपण समाप्त हुआ। अब पूर्व मे जिस औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी को स्थाप्य मानकर वर्णन नही किया था, उसका कथन आगे किया जाता है।

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वीनिरूपण

१३१. से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?

ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३ य।

[१३१ प्र] भगवन् ! औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१३१ उ] आयुष्मन् ! औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के तीन प्रकार कहे है, यथा—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी और ३. अनानुपूर्वी।

विवेचन—सूत्र मे औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के तीन भेद बताये है।

'उपनिधिर्निक्षेपो विरचन प्रयोजनमस्या इत्यौपनिधिकी' अर्थात् किसी एक वस्तु को स्थापित करके उसके समीप पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से अन्य वस्तुओ को स्थापित करना उपनिधि का अर्थ है। यह प्रयोजन जिसका हो, उसका नाम औपनिधिकी है। यह द्रव्यविषयक द्रव्यानुपूर्वी पूर्वानुपूर्वी आदि रूपो से तीन प्रकार की है।

पूर्वानुपूर्वी—विवक्षित धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यविशेष के समुदाय मे जो पूर्व—प्रथम द्रव्य है, उससे प्रारभ कर अनुक्रम से आगे-आगे के द्रव्यो की स्थापना अथवा गणना की जाती है उसे पूर्वानुपूर्वी कहते है। यथा—धर्मास्तिकाय से प्रारभ कर क्रमानुसार कालद्रव्य तक गणना करना।

पश्चानुपूर्वी—उस द्रव्यविशेष के समुदाय मे से अतिम द्रव्य से लेकर विलोमक्रम से प्रथम द्रव्य तक जो आनुपूर्वी, परिपाटी निक्षिप्त की जाती है वह पश्चानुपूर्वी है।

अनानुपूर्वी—पूर्वानुपूर्वी एव पश्चानुपूर्वी इन दोनो से भिन्न स्वरूप वाली आनुपूर्वी को अनानुपूर्वी कहते है।

अब यथाक्रम इन तीनो भेदो का निरूपण करते है।

पूर्वानुपूर्वी

१३२. से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी धम्मत्थिकाए १ अधम्मत्थिकाए २ आगासत्थिकाए ३ जीवत्थिकाए ४ पोग्गलत्थिकाए ५ अद्धासमए ६। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१३२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१३२ उ.] आयुष्मन् ! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—१. धर्मास्तिका २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय, ५ पुद्‌गलास्तिकाय, ६ अद्धाकाल। प्रकार अनुक्रम से निक्षेप करने को पूर्वानुपूर्वी कहते है।

पश्चानुपूर्वी

१३३. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी अद्धासमए ६ पोग्गलत्थिकाए ५ जीवत्थिकाए ४ आगासत्थिकाए ३ अधम्मत्थिकाए २ धम्मत्थिकाए १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१३३ प्र.] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१३३ उ] आयुष्मन् ! पश्चानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है कि ६ अद्धासम ५. पुद्‌गलास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, और १ धर्मास्ति काय। इस प्रकार के विलोमक्रम से निक्षेपण करने को पश्चानुपूर्वी कहते हैं।

अनानुपूर्वी

१३४. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी।

[१३४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१३४ उ] आयुष्मन् ! एक से प्रारभ कर एक-एक की वृद्धि करने पर छह पर्यन्त स्थापि श्रेणी के अको मे परस्पर गुणाकार करने से जो राशि आये, उसमे से आदि और अत के दो रू (भगो) को कम करने पर अनानुपूर्वी बनती है।

विवेचन—इन तीन सूत्रो (१३२, १३३, १३४) मे औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के एक अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेदो का स्वरूप बतलाया है।

धर्मास्तिकाय आदि के लक्षण प्राय सुगम है कि गमन करते हुए जीवो और पुद्‌गलो की ग मे सहायक द्रव्य को धर्मास्तिकाय और उनकी स्थिति मे सहायक द्रव्य को अधर्मास्किाय, सभी द्रव को अवस्थान-अवकाश देने मे सहयोगी द्रव्य को आकाशास्तिकाय, चेतनापरिणाम युक्त द्रव्य जीवास्तिकाय, पूरण-गलन स्वभाव वाले द्रव्य को पुद्‌गलास्तिकाय और पूर्वापर कोटि-विप्रमु वर्तमान एक समय को अद्धासमय कहते हैं।

षड्द्रव्यों की विशेषता—धर्मास्तिकाय आदि इन षड्द्रव्यो मे से अद्धासमय एक समयात्म होने से अस्ति रूप है किन्तु 'काय' नही है। शेष पाच द्रव्य प्रदेशो के सघात रूप होने से अस्तिक कहलाते है। जीवास्तिकाय सचेतन और शेष पाच अचेतन है। पुद्‌गलास्तिकाय रूपी-मूर्त और शे पांच द्रव्य अमूर्तिक-अरूपी है।

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन अस्तिकाय द्रव्य द्रव्यापेक्षा एक-एक द्रव्य है। जीवास्तिक और पुद्‌गलास्तिकाय अनन्तद्रव्य है तथा काल अप्रदेशीद्रव्य है। जीव, धर्म, अधर्म ये तीन असख्या

प्रदेशी हैं। आकाशास्तिकाय सामान्य से अनन्तप्रदेशी द्रव्य है। लोकाकाशरूप आकाश असख्यात-प्रदेशी और अलोकाकाश अनन्तप्रदेशी है। पुद्गलास्तिकाय के सख्यात, असख्यात अनन्त प्रदेश होते है। अणुरूप पुद्गल तो एक प्रदेशी है और स्कन्धात्मक पुद्गल दो प्रदेशो के सघात से लेकर अनन्तानन्त प्रदेशो तक का समुदाय रूप हो सकता है।

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन अस्तिकाय नित्य, अवस्थित एव निष्क्रिय है और जीव, पुद्गल सक्रिय अस्तिकाय द्रव्य है।

षड् द्रव्यो का क्रमविन्यास— धर्म पद मागलिक होने से सर्वप्रथम धर्मास्तिकाय का और तत्पश्चात् उसके प्रतिपक्षी अधर्मास्तिकाय का उपन्यास किया गया है। इनका आधार आकाश है, अत इन दोनो के अनन्तर आकाशास्तिकाय का उल्लेख किया है, तत्पश्चात् आकाश की तरह अमूर्तिक होने से जीवास्तिकाय का न्यास किया है। जीव के भोगोपभोग मे आने वाला होने से जीव के अनन्तर पुद्गलास्तिकाय का विन्यास किया है तथा जीव और अजीव का पर्याय रूप होने से सबसे अत मे अद्धासमय का उपन्यास किया है।

क्रमविन्यास की उक्त दृष्टि पूर्वानुपूर्वित्व मे हेतु है। इसी क्रम को प्रतिलोम क्रम से—सबसे अतिम अद्धासमय से प्रारभ करके क्रमानुसार उल्लेख किये जाने पर पश्चानुपूर्वी कहलाती है। किन्तु अनानुपूर्वी मे विवक्षित पदो के उक्त दोनो क्रमो की उपेक्षा करके सभवित भगो से इन पदो की विरचना की जाती है। उसमे सबसे पहले एक का अक रखकर एक-एक की उत्तरोत्तर वृद्धि छह सख्या तक होती है, जैसे १-२-३-४-५-६। फिर इनमे परस्पर गुणा करने पर बनने वाली अन्योन्याभ्यस्त राशि (१×२×३×४×५×६=७२०) मे आदि एव अत्य भगो को कम करने से अनानुपूर्वी बनती है, क्योकि आद्य भग पूर्वानुपूर्वी का और अतिम भग पश्चानुपूर्वी का है।

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का दूसरा प्रकार

१३५. अहवा ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पन्नत्ता। त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[१३५] अथवा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही है। यथा—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी और ३ अनानुपूर्वी।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे सामान्य से धर्मास्तिकाय आदि षड् द्रव्यो की पूर्वानुपूर्वी आदि का कथन किया है। अब उसी को पुद्गलास्तिकाय पर घटित करने के लिये पुन औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के तीन भेदो का यहाँ उल्लेख किया है।

पूर्वानुपूर्वी आदि तीनो के लक्षण सामान्यतया पूर्ववत् है। लेकिन पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा क्रम से पुन उनका निरूपण करते हैं—

पूर्वानुपूर्वी

१३६. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी परमाणुपोग्गले दुपएसिए तिपएसिए जाव दसपएसिए जाव संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए। से त पुव्वाणुपुव्वी।

[१३६ प्र.] भगवन्! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१३६ उ.] आयुष्मन्! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध, सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध रूप क्रमात्मक आनुपूर्वी को पूर्वानुपूर्वी कहते है।

पश्चानुपूर्वी

१३७. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी अणंतपएसिए असंखिज्जपएसिए संखिज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिपएसिए दुपएसिए परमाणुपोग्गले। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१३७ प्र.] भगवन्! पश्चानुपूर्वी का स्वरूप क्या है?

[१३७ उ.] आयुष्मन्! पश्चानुपूर्वी का स्वरूप यह है—अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध, असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध यावत् त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल। इस प्रकार का विपरीत क्रम से किया जाने वाला न्यास पश्चानुपूर्वी है।

अनानुपूर्वी

१३८. से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी। से तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी। से तं नोआगमओ दव्वाणुपुव्वी। से तं दव्वाणुपुव्वी।

[१३८ प्र.] भगवन्! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१३८ उ.] आयुष्मन्! एक से प्रारभ करके एक-एक की वृद्धि करने के द्वारा निर्मित अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त की श्रेणी की सख्या को परस्पर गुणित करने से निष्पन्न अन्योन्याभ्यस्त राशि मे से आदि और अत रूप दो भगो को कम करने पर अनानुपूर्वी बनती है।

यह औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का वर्णन जानना चाहिये।

इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी का और साथ ही नोआगम द्रव्यानुपूर्वी तथा द्रव्यानुपूर्वी का भी वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—यहाँ पूर्वानुपूर्वी आदि रूप मे पुद्गलास्तिकाय को उदाहृत करने का कारण यह है कि पूर्वानुपूर्वी आदि के विचार मे परमाणु आदि द्रव्यो का परिपाटी रूप क्रम पुद्गल द्रव्यो की बहुलता के कारण सभव है। एक-एक द्रव्य रूप माने जाने से धर्म, अधर्म, आकाश इन तीनो अस्तिकाय द्रव्यो मे पुद्गलास्तिकाय की तरह द्रव्यबाहुल्य नही है तथा जीवास्तिकाय मे अनन्त जीवद्रव्यो की सत्ता होने के कारण यद्यपि द्रव्यबाहुल्य है, फिर भी परमाणु, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी स्कन्ध यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध मे जैसा पूर्वानुपूर्वी आदि रूप पूर्व-पश्चाद्भाव है, वैसा जीवद्रव्य मे नही है। क्योंकि प्रत्येक जीव असख्यात प्रदेश वाला होने से समस्त जीवों मे तुल्यप्रदेशता है। परमाणु, द्विप्रदेशिक स्कन्ध आदि द्रव्यों मे विषम प्रदेशता है, जिससे वहाँ पूर्व-पश्चाद्भाव है। अद्धासमय एक समय प्रमाण रूप है। इसीलिये उसमे भी पूर्वानुपूर्वी आदि सभव नही है।

इन सब कारणो से धर्मास्तिकाय आदि अन्य द्रव्यो को छोडकर पुद्‌गलास्तिकाय को ही पूर्वानुपूर्वी आदि रूप से उदाहृत किया गया है।

इस प्रकार पूर्व मे बताये गये द्रव्यानुपूर्वी के दो प्रकारो का पूर्ण रूप से कथन किया जा चुका है। अत अब क्रमप्राप्त क्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन प्रारभ करते है।

क्षेत्रानुपूर्वी के प्रकार

१३९. से किं त खेत्ताणुपुव्वी ?

खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। त जहा-- ओवणिहिया य अणोवणिहिया य।

[१३९ प्र] भगवन् ! क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१३९ उ.] आयुष्मन् ! क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की है। यथा—१ औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी और २ अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी।

१४०. तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा।

[१४०] इन दो भेदो मे से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी (अल्प विषय वाली होने से पश्चात् वर्णन किये जाने के कारण) स्थाप्य है।

१४१. तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—णेगम-ववहाराण १ संगहस्स य २।

[१४१] अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है। यथा—१ नैगम-व्यवहारनयसमत और २ सग्रहनयसमत।

विवेचन—यह तीन सूत्र क्षेत्रानुपूर्वी के वर्णन की भूमिका रूप है। सूत्रोक्त क्रमानुसार इनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी

१४२. से किं त णेगम-ववहाराण अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?

णेगम-ववहाराण अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पचविहा पण्णत्ता। तं जहा—अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भगोवदसणया ३ समोयारे ४ अणुगमे ५।

[१४२ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१४२ उ] आयुष्मन् ! इस उभयनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की प्ररूपणा के पाच प्रकार हैं। यथा—१ अर्थपदप्ररूपणता, २ भगसमुत्कीर्तनता, ३ भगोपदर्शनता, ४ समवतार, ५ अनुगम।

विवेचन—सूत्रोक्त अर्थपदप्ररूपणता आदि की लक्षण-व्याख्या द्रव्यानुपूर्वी के प्रसग मे किये गये वर्णन के समान जाननी चाहिये।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणा और प्रयोजन

१४३. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?

णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया तिपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वं जाव संखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी असखेज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुपए सोगाढे अवत्तव्वए, तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव सखेज्जपए सोगाढा आणुपुव्वीओ असखिज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ, दुपए सोगाढा अवत्तव्वगाइं । से तं णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणया ।

[१४३ प्र.] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

[१४३ उ] आयुष्मन् ! उक्त नयद्वय-सम्मत अर्थपदप्ररूपणा का स्वरूप इस प्रकार जानन चाहिये—तीन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् दस प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन आनुपूर्वी है यावत् सख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है, असख्यात प्रदेशो अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है ।

आकाश के एक प्रदेश मे अवगाढ द्रव्य (पुद्गलपरमाणु) से लेकर यावत् असख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक क्षेत्रापेक्षया अनानुपूर्वी कहलाता है ।

दो आकाशप्रदेशो मे अवगाढ द्रव्य (दो, तीन या असख्यातप्रदेशी स्कन्ध भी) क्षेत्रापेक्षय अवक्तव्यक है ।

तीन आकाशप्रदेशावगाही अनेक-बहुत द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्विया है यावत् दसप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्विया है यावत् सख्यातप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्विया है, असख्यात प्रदेशावगा द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्विया है ।

एक प्रदेशावगाही पुद्गलपरमाणु आदि (अनेक) द्रव्य अनानुपूर्विया है ।

दो आकाशप्रदेशावगाही द्वयणुकादि द्रव्यस्कन्ध अवक्तव्यक है ।

यह नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप जानना चाहिये ।

१४४. एयाए णं णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयण ?

एयाए णं णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणयाए णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया कीरति

[१४४ प्र] भगवन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ?

[१४४ उ] आयुष्मन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता द्वारा नैगम-व्यवहार नयसम्मत भगसमुत्कीर्तनता की जाती है ।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे क्रमश नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी प्रथम भेद अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप एव प्रयोजन बतलाया है । सूत्रार्थ स्पष्ट है । सबन्धित विशे वक्तव्य इस प्रकार है—

क्षेत्रानुपूर्वी मे क्षेत्र की प्रधानता है। द्व्यणुकादि रूप पुद्‌गलस्कन्धों के साथ उसका सीधा सम्बन्ध नहीं है। अतएव त्रिप्रदेशावगाही द्रव्यस्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक पर्यन्त स्कन्ध यदि वे एक आकाशप्रदेश मे स्थित है तो उनमे क्षेत्रानुपूर्वीरूपता नही है। फिर भी यहाँ जो त्रिप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध को आनुपूर्वी कहा गया है, उसका तात्पर्य आकाश के तीन प्रदेशो मे अवगाह रूप पर्याय से विशिष्ट द्रव्यस्कन्ध है। क्योकि तीन पुद्‌गलपरमाणु वाले द्रव्यस्कन्ध आकाश रूप क्षेत्र के तीन प्रदेशो को भी रोककर रहते है। इसीलिये आकाश के तीन प्रदेशो मे अवगाही द्रव्यस्कन्ध भी आनुपूर्वी कहे जाते है।

वैसे तो क्षेत्रानुपूर्वी का अधिकार होने से यहाँ क्षेत्र की मुख्यता है। परन्तु तदवगाढद्रव्य को क्षेत्रानुपूर्वीरूपता क्षेत्रावगाह रूप पर्याय की प्रधानता विवक्षित होने की अपेक्षा से है।

प्रसग होने पर भी क्षेत्र की मुख्यता का परित्याग करके उपचार को प्रधानता देकर तदवगाही द्रव्य मे क्षेत्रानुपूर्वी का विचार इसलिये किया गया है कि सत्पदप्ररूपणता आदि रूप वक्ष्यमाण विचार का विषय द्रव्य है और इसी के माध्यम से जिज्ञासुओ को समझाया जा सकता है तथा क्षेत्र नित्य, अवस्थित, अचल होने से प्राय उसमे आनुपूर्वी आदि की कल्पना किया जाना सुगम नही है, इसीलिये क्षेत्रावगाही द्रव्य के माध्यम से क्षेत्रानुपूर्वी का विचार किया है।

सूत्रोक्त 'असखेज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी—'असख्येयप्रदेशावगाढ आनुपूर्वी' इस पद का अर्थ आकाश के असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ असख्यात अणुओ वाला अथवा अनन्त अणुओ वाला द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है, ऐसा जानना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि एक पुद्‌गलपरमाणु आकाश के एक ही प्रदेश मे अवगाढ होता है। परन्तु दो प्रदेश वाले स्कन्ध से लेकर असख्यात प्रदेश वाले पुद्‌गलस्कन्धो मे से प्रत्येक पुद्‌गलस्कन्ध कम से कम एक आकाशप्रदेश मे और अधिक से अधिक जिस स्कन्ध मे जितने प्रदेश-परमाणु है उतने ही आकाश के प्रदेशो मे अवगाढ होता है, अनन्त आकाशप्रदेशो मे नही। क्योकि द्रव्यो का अवगाह लोकाकाश मे है और लोकाकाश के असख्यात ही प्रदेश है।

अनानुपूर्वी और अवक्तव्य सबन्धी विवरण का आशय यह है कि एक आकाशप्रदेश मे स्थित परमाणु और स्कन्ध क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी है तथा द्विप्रदेशावगाढ द्विप्रदेशिक आदि स्कन्ध क्षेत्र की अपेक्षा अवक्तव्यक है।

इस अर्थपदप्ररूपणा का प्रयोजन भगसमुत्कीर्तनता है। अत अब भगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप और प्रयोजन स्पष्ट करते है।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी-भंगसमुत्कीर्तनता एवं प्रयोजन

१४५. से किं तं णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया ?

णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी १ अत्थि अणाणुपुव्वी २ अत्थि अवत्तव्वए ३ एवं दव्वाणुपुव्वीगमेण खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा, जाव से तं णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया।

[१४५ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है ?

[१४५ उ] आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप इस प्रकार है—१ आनुपूर्वी है, २ अनानुपूर्वी है, ३ अवक्तव्यक है इत्यादि द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह क्षेत्रानुपूर्वी के भी वही छब्बीस भंग हैं, यावत् इस प्रकार नैगमव्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप जानना चाहिये।

१४६. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ?

एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जति ।

[१४६ प्र] भगवन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

[१४६ उ] आयुष्मन् ! इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा नैगम-व्यवहार-नयसम्मत भंगोपदर्शनता की जाती है।

विवेचन—सूत्र में नैगम-व्यवहारनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी के छब्बीस भंग द्रव्यानुपूर्वी के भंगों के नामानुरूप होने का उल्लेख किया है। द्रव्यानुपूर्वी संबन्धी छब्बीस भंगों के नाम सूत्र १०१, १०३ में बताये गये हैं।

नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता

१४७. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया ?

णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया तिपएसोगाढे आणुपुव्वी एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी दुपए-सोगाढे अवत्तव्वए, तिपएसोगाढाओ आणुपुव्वीओ एगपएसोगाढाओ अणाणुपुव्वीओ दुपएसोगाढाइं अवत्तव्वयाइं, अहवा तिपएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य, एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्वीगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया ।

[१४७ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है ?

[१४७ उ] आयुष्मन् ! तीन आकाशप्रदेशावगाढ त्र्यणुकादि स्कन्ध आनुपूर्वी पद का वाच्य हैं—आनुपूर्वी हैं। एक आकाशप्रदेशावगाही परमाणुसंघात अनानुपूर्वी तथा दो आकाशप्रदेशावगाही द्व्यणुकादि स्कन्ध क्षेत्रापेक्षा अवक्तव्यक कहलाता है।

तीन आकाशप्रदेशावगाही अनेक स्कन्ध 'आनुपूर्विया' इस बहुवचनान्त पद के वाच्य हैं, एक एक आकाशप्रदेशावगाही अनेक परमाणुसंघात 'अनानुपूर्विया' पद के तथा द्वि आकाशप्रदेशावगाही द्व्यणुक आदि अनेक द्रव्यस्कन्ध 'अवक्तव्यक' पद के वाच्य हैं।

अथवा त्रिप्रदेशावगाढस्कन्ध और एक प्रदेशावगाढस्कन्ध एक आनुपूर्वी और एक अनानुपूर्वी है। इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह छब्बीस भंग यहाँ भी जानने चाहिये यावत् यह नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र में भंगोपदर्शनता का स्वरूप स्पष्ट किया है। यहाँ बताये गये छब्बीस भंगों का वर्णन द्रव्यानुपूर्वी के अनुरूप है। लेकिन दोनों के वर्णन में यह भिन्नता है कि द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरणगत आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक पदों के वाच्यार्थ त्रिप्रदेशिक आदि स्कन्ध, एक-प्रदेशी पुद्गलपरमाणु और द्विप्रदेशीस्कन्ध हैं जबकि इस क्षेत्रानुपूर्वी के प्रकरणगत भंगोपदर्शनता

में आकाश के तीन प्रदेशों में स्थित त्रिप्रदेशिक आदि स्कन्ध ही आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ माने है किन्तु एक या दो आकाशप्रदेशो मे स्थित त्रिप्रदेशिक आदि स्कन्ध आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ नही हैं। क्योकि यह पूर्व में कहा जा चुका है कि त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश मे भी, दो प्रदेशो मे भी और तीन प्रदेशों में भी अवगाढ हो सकता है। इसलिये क्षेत्रानुपूर्वी मे यदि त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ है तो वह क्षेत्र की अपेक्षा अनानुपूर्वी और यदि दो प्रदेशो मे अवगाढ है तो अवक्तव्यक शब्द का वाच्य होगा।

इसी तरह असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आकाश के एक, दो, तीन आदि प्रदेशों मे और असख्यात प्रदेशो मे भी ठहर सकता है। अत क्षेत्र की अपेक्षा यह असख्याताणुक स्कन्ध भी एक प्रदेश मे स्थित होने पर अनानुपूर्वी माना जाएगा और दो प्रदेशो मे अवगाढ होने पर अवक्तव्यक तथा तीन से लेकर असख्यात प्रदेशो तक मे स्थित होने पर आनुपूर्वी माना जायेगा।

इस दृष्टि को ध्यान मे रखकर क्षेत्र की अपेक्षा आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक इन एकवचनान्त एव बहुवचनान्त पदो के असयोग और सयोग से बनने वाले छब्बीस भगो का वाच्यार्थ भगोपदर्शनता मे समझ लेना चाहिये।

नैगम-व्यवहारनयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी की समवतारप्ररूपणा

१४८. [१] से किं त समोयारे ? समोयारे णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ कहिं समोयरति ? किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरति ? अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति ?

आणुपुव्वीदव्वाइ आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरति, नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरति नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

[१४८-१ प्र] भगवन्! समवतार का क्या स्वरूप है? नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी द्रव्यो का समावेश कहाँ होता है? क्या आनुपूर्वी द्रव्यो मे, अनानुपूर्वी द्रव्यो मे अथवा अवक्तव्यक द्रव्यो मे समावेश होता है?

[१४८-१ उ] आयुष्मन्! आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यो मे समाविष्ट होते है, किन्तु अनानुपूर्वी द्रव्यो और अवक्तव्यक द्रव्यो मे समाविष्ट नही होते है।

[२] एव तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरति त्ति भाणियव्व। से तं समोयारे।

[२] इस प्रकार तीनो स्व-स्व स्थान मे ही समाविष्ट होते है। यह समवतार का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे समवतार का स्वरूप बताया है। समवतार का अर्थ है समाविष्ट होना, एक का दूसरे में मिल जाना। यह समवतार स्वजाति रूप द्रव्यो मे होता है, परजाति रूप मे नही। यही समवतार का स्वरूप है।

नैगम-व्यवहारनयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी-अनुगमप्ररूपणा

१४९. से किं तं अणुगमे ?

अणुगमे णवविहे पण्णत्ते । त जहा—

संतपयपरूवणया १ दव्वपमाण २ च खेत्त ३ फुसणा ४ य ।
कालो ५ य अंतर ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं ९ चेव ॥ १० ॥

[१४९ प्र] भगवन् ! अनुगम का क्या स्वरूप है ?

[१४९ उ] आयुष्मन् ! अनुगम नौ प्रकार का कहा है । यथा—(गाथार्थ) १ सत्पदप्ररूपणता, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अनर, ७ भाग ८ भाव और ९ अल्पबहुत्व ।

विवेचन—सूत्र मे अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी सबन्धी अनुगम के भेदो के नाम गिनाये है । इन नौ भेदो के लक्षण पूर्वोक्त अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी-अनुगम के अनुरूप समझ लेना चाहिये । अब यथाक्रम इन नौ भेदो की वक्तव्यता का आशय स्पष्ट करते है ।

अनुगमसंबन्धी सत्पदप्ररूपणता

१५०. से किं त सतपयपरूवणया ? णेगम-ववहाराण खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइ कि अत्थि णत्थि ?

णियमा अत्थि । एवं दोण्णि वि ।

[१५० प्र] भगवन् ! सत्पदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ? नैगम-व्यवहारनयसमत क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्य (सत्-अस्तित्व-रूप) है या नही ?

[१५० उ] आयुष्मन् ! नियमत है । इसी प्रकार दोनो—अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के लिये भी समझना चाहिये कि वे भी नियमत —निश्चित रूप से है ।

अनुगमसंबन्धी द्रव्यप्रमाण

१५१. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइ कि सखेज्जाइ असखेज्जाइ अणताइ ?

नो संखेज्जाइ नो अणताइ, नियमा असखेज्जाइ । एव दोण्णि वि ।

[१५१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या सख्यात है, असख्यात है, अथवा अनन्त है ?

[१५१ उ] आयुष्मन् ! नेगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य न तो सख्यात है और न अनन्त हैं किन्तु नियमत असख्यात है । इसी प्रकार दोनो—अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के लिये भी समझना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे क्षेत्र की अपेक्षा आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का प्रमाण असख्यात बतलाया है । क्योकि आकाश के तीन प्रदेशो मे स्थित द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा आनुपूर्वी रूप है और तीन आदि प्रदेश वाले स्कन्धो के आधारभूत क्षेत्रविभाग असख्यातप्रदेशी लोक मे असख्यात है । इसलिये द्रव्य की अपेक्षा बहुत आनुपूर्वी द्रव्य भी आकाश रूप क्षेत्र के तीन प्रदेशो मे तीन, चार, पाच, छह आदि से लेकर अनन्तप्रदेश(परमाणु)वाले अनेक आनुपूर्वीद्रव्य अवगाढ होकर रहते है । अत. ये सब द्रव्य तुल्य-

प्रदेशावगाही होने के कारण एक है। क्षेत्रानुपूर्वी मे लोक के ऐसे त्रिप्रदेशात्मक विभाग असख्यात हैं। इसलिये आनुपूर्वी द्रव्य भी तत्तुल्य सख्या वाले होने के कारण असख्यात होते है।

इसी प्रकार आनुपूर्वी द्रव्य की तरह अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य भी असख्यात हैं। तात्पर्य यह है कि लोक के एक-एक प्रदेश मे अवगाही अनेक द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा एक ही अनानुपूर्वी रूप है और असख्यात इसलिये है कि लोक असख्यातप्रदेशी है और लोक के एक-एक प्रदेश मे ये एक-एक रहते है तथा दो प्रदेशो मे स्थित बहुत भी द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्य है। क्योंकि आकाश के दो प्रदेश रूप विभाग असख्यात होते हैं, इसलिये आधार की अपेक्षा तदवगाही द्रव्य भी असख्यात है।

क्षेत्रानुपूर्वी की अनुगमान्तर्वर्ती क्षेत्रप्ररूपणा

१५२. [१] णेगम-ववहाराण खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइ लोगस्स कतिभागे होज्जा ? किं सखिज्जइभागे वा होज्जा ? असखेज्जइभागे वा होज्जा ? जाव सव्वलोए वा होज्जा ?

एगदव्व पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागे वा होज्जा असखेज्जइभागे वा होज्जा सखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा असखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोए होज्जा।

[१५२-१ प्र] भगवन् ! नेगम-व्यवहारनयसमत क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्य लोक के कितनेवे भाग मे रहते है ? क्या सख्यातवे भाग मे, असख्यातवे भाग मे यावत् सर्वलोक मे रहते है ?

[१५२-१ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के सख्यातवे भाग मे, असख्यातवे भाग मे, सख्यातभागो मे, असख्यातभागो मे अथवा देशोन लोक मे रहते है, किन्तु विविध द्रव्यो की अपेक्षा नियमत सर्वलोकव्यापी है।

[२] अणाणुपुव्वीदव्वाण पुच्छा, एग दव्व पडुच्च नो सखिज्जतिभागे होज्जा असंखिज्जतिभागे होज्जा नो सखेज्जेसु० नो असखेज्जेसु० नो सव्वलोए होज्जा, नाणादव्वाइ पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

[१५२-२ प्र] नेगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वी द्रव्य के विषय मे भी यही प्रश्न है।

[१५२-२ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा सख्यातवे भाग मे, सख्यात भागो मे, असख्यात भागो मे अथवा सर्वलोक मे अवगाढ नही है किन्तु असख्यातवे भाग मे है तथा अनेक द्रव्यो की अपेक्षा सर्वलोक मे व्याप्त है।

[३] एव अवत्तव्वगदव्वाणि वि भाणियव्वाणि।

[३] अवक्तव्यक द्रव्यो के लिये भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे एक और अनेक द्रव्यो की अपेक्षा क्षेत्रानुपूर्वी के द्रव्यो की क्षेत्रप्ररूपणा की है। उसका आशय यह है—एक आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्य की अपेक्षा तो लोक के सख्यातवे या असख्यातवे भाग मे, सख्यात भागो या असख्यात भागो मे रहता है और देशोन लोक मे भी रहता है। इसका कारण

यह है कि स्कन्ध द्रव्यों की परिणमनशक्ति विचित्र प्रकार की होती है। अत विचित्र प्रकार की परिणमनशक्ति वाले होने के कारण स्कन्ध द्रव्यो का अवगाह लोक के सख्यात आदि भागो में होता है। क्योंकि विशिष्ट क्षेत्र मे अवगाह से उपलक्षित हुए स्कन्ध द्रव्यो को ही क्षेत्रानुपूर्वी रूप से कहा गया है।

प्रश्न—क्षेत्रानुपूर्वी के प्रसग मे एक द्रव्य की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य को देशोन लोक मे अवगाढ होना बताया है किन्तु द्रव्यानुपूर्वी मे अनन्तानन्त परमाणुओ से निष्पन्न एव पुद्गलद्रव्य के सबसे बड़े स्कन्ध रूप अचित्त महास्कन्ध को सर्वलोकव्यापी कहा है। इस प्रकार अचित्त महास्कन्ध की अपेक्षा एक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक मे व्याप्त होता है। अत यहाँ (क्षेत्रानुपूर्वी मे) जो एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा देशोन लोक मे अवगाहना कही है, वह युक्तियुक्त कैसे है ?

उत्तर—इस जिज्ञासा के समाधान के लिये यह समझना चाहिये कि यह लोक आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो से सदा व्याप्त है, अशून्य है। अतएव यदि आनुपूर्वी द्रव्य को सर्वलोकव्यापी माना जाये तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के ठहरने के लिये स्थान न होने के कारण उनका अभाव मानना पडेगा। किन्तु जब देशोन लोक मे एक आनुपूर्वी द्रव्य व्याप्त होकर रहता है, ऐसा मानते है तब अचित्त महास्कन्ध से पूरित हुए लोक मे कम-से-कम एक प्रदेश और द्विप्रदेश ऐसे भी रह जाते है जो क्रमश अनानुपूर्वी द्रव्य के विषयरूप से तथा अवक्तव्यक द्रव्य के विषयरूप से विवक्षित हो जाते हैं। इन एक और दो प्रदेशो मे आनुपूर्वी द्रव्य का सद्भाव रहता है तो भी अप्रधान होने से उसकी नही किन्तु अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो की प्रधानता होने से विवक्षा की जाती है। इसीलिये एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा से देशोन लोक मे अवगाहित कहा गया है।

साराश यह है कि क्षेत्रानुपूर्वी मे यदि लोक के समस्त प्रदेश आनुपूर्वी रूप मान लिये जाये तो उस स्थिति में अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक प्रदेश कौन से होगे जिनमे अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य ठहर सके ? अत यह मानना चाहिये कि क्षेत्रानुपूर्वी मे एक प्रदेश अनानुपूर्वी का विषय है और दो प्रदेश अवक्तव्यक के विषय है। अत अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के विषयभूत प्रदेश को छोडकर शेष समस्त प्रदेश आनुपूर्वी रूप हैं। इस प्रकार क्षेत्रानुपूर्वी मे एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा देशोन समस्त लोक मे आनुपूर्वी द्रव्य अवगाढ है, यह जानना चाहिए।

एक अनानुपूर्वी द्रव्य लोक के असख्यातवे भाग मे अवगाही इसलिये माना है कि अनानुपूर्वी रूप से वही द्रव्य विवक्षित हुआ है जो लोक के एक प्रदेश मे अवगाढ हो और लोक का एक प्रदेश लोक का असख्यातवाँ भाग है।

नाना अनानुपूर्वी द्रव्य सर्वलोकव्यापी इसलिये माने है कि एक-एक प्रदेश मे अवगाढ अनानुपूर्वी द्रव्यो के भेद समस्त लोक को व्याप्त किये हुए है।

अवक्तव्यक द्रव्यो की वक्तव्यता भी अनानुपूर्वी द्रव्यो के समान कथन करने का आशय यह है कि एक अवक्तव्यक द्रव्य लोक के असख्यातवे भाग मे अवगाहित रहता है। क्योंकि लोक के प्रदेशद्वय मे अवगाढ हुए द्रव्य को अवक्तव्यक द्रव्य रूप से कहा गया है और ये दो प्रदेश लोक के असख्यात प्रदेशो की अपेक्षा असख्यातवे भाग रूप है तथा जितने भी अवक्तव्यक द्रव्य है वे सभी लोक के दो-दो प्रदेशो मे रहने के कारण सर्वलोकव्यापी माने गये है।

एक ही क्षेत्र में परस्पर विरुद्ध आनुपूर्वी आदि व्यपदेश कैसे संगत ?—अनानुपूर्वी आदि द्रव्यो के सर्वलोकव्यापी होने पर भी एक ही क्षेत्र मे आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनो पृथक्-पृथक् विषय वाले होने पर भी इनकी सगति इस प्रकार है कि त्र्यादि प्रदेशो मे अवगाढ आनुपूर्वी द्रव्य से एक प्रदेशावगाढ द्रव्य भिन्न है और इन दोनो से द्विप्रदेशावगाढ भिन्न है। इस प्रकार आधेय रूप अवगाहक द्रव्य के भेद से आधार रूप अवगाह्य क्षेत्र मे व्यपदेशभेद होना युक्त ही है। क्योकि भिन्न-भिन्न सहकारियो के सयोग से तत्तद् धर्म की अभिव्यक्ति होने पर अनन्त धर्मात्मक एक ही वस्तु मे युगपत् व्यपदेशभेद होना देखा जाता है। जैसे खड्ग, कुन्त, कवच आदि से युक्त एक ही व्यक्ति को खड्गी, कुन्ती, कवची आदि कहते हैं।

अनुगमगत स्पर्शनाप्ररूपणा

१५३. [१] णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ लोगस्स किं संखेज्जइभाग फुसति ? असखेज्जति० २ जाव सव्वलोग फुसति ?

एग दव्व पडुच्च सखेज्जतिभाग वा फुसति असखेज्जतिभाग वा संखेज्जे वा भागे असंखेज्जे वा भागे देसूण वा लोगं फुसति, णाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वलोग फुसंति।

[१५३-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या (लोक के) सख्यातवे भाग का स्पर्श करते है ? या असख्यातवे भाग का, सख्यातवे भागो का अथवा असख्यातवे भागो का अथवा सर्वलोक का स्पर्श करते है ?

[१५३-१ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा सख्यातवे भाग का, असख्यावे भाग का, सख्यातवे भागो का, असख्यावे भागो का अथवा देशोन सर्व लोक का स्पर्श करते है किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा तो नियमत सर्वलोक का स्पर्श करते है।

[२] अणाणुपुव्वीदव्वाइं अवत्तव्वयदव्वाणि य जहा खेत्तं, नवरं फुसणा भाणियव्वा।

[२] अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो की स्पर्शना का कथन पूर्वोक्त क्षेत्र द्वार के अनुरूप समझना चाहिये, विशेषता इतनी है कि क्षेत्र के बदले यहाँ स्पर्शना (स्पर्श करता है) कहना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी आदि द्रव्यो की स्पर्शना का निर्देश किया है। एक आनुर्वी आदि द्रव्य लोक के सख्यात आदि भाग से लेकर देशोन लोक का स्पर्श करते है। एक आनुपूर्वी द्रव्य की देशोन लोक की स्पर्शना कहने का कारण यह है कि यदि एक आनुपूर्वी द्रव्य समस्त लोक का स्पर्श करे तो अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो को रहने का अवकाश प्राप्त नही हो सकेगा और तब उन दोनो का अभाव मानना पडेगा। अत इन दोनो द्रव्यो का सद्भाव बताने और इन्हे भी अवकाश प्राप्त होने के लिए एक आनुपूर्वी द्रव्य की स्पर्शना देशोन सर्व लोक बताई है।

शेष वर्णन पूर्वोक्त क्षेत्र प्ररूपणावत् है।

अनुगमगत कालप्ररूपणा

१५४. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालतो केवचिरं होंति ?

एगदव्वं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा। एव दोण्णि वि।

[१५४ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा कितने समय तक (आनुपूर्वी द्रव्य के रूप में) रहते है।

[१५४ उ] आयुष्मन्! एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल तक रहते है। विविध द्रव्यो की अपेक्षा नियमत (आनुपूर्वी द्रव्यो की स्थिति) सार्वकालिक है। इसी प्रकार दोनो—अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो की भी स्थिति जानना चाहिये।

विवेचन— प्रश्न किया गया है कि आनुपूर्वी आदि द्रव्य अपने-अपने रूप मे कब तक रहते है? इसका उत्तर एक और अनेक द्रव्य को आश्रित करके दिया है। जिसका निष्कर्ष यह है एक द्रव्य की अपेक्षा तो कम से कम एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल तक एक आनुपूर्वी द्रव्य क्षेत्र मे अवगाढ रहता है। यानी द्विप्रदेश या एक प्रदेश में अवगाहित हुआ द्रव्य परिणमन की विचित्रता से जब प्रदेशत्रय आदि मे अवगाहित होता है, उस समय उसमे आनुपूर्वी ऐसा व्यपदेश हो जाता है। अब यदि वह द्रव्य एक समय तक वहाँ अवगाहित रहकर बाद मे पहले की तरह दो प्रदेशो मे या एक प्रदेश मे अवगाहित हो जाए तब वह क्षेत्रापेक्षया आनुपूर्वी द्रव्य नही रहता, अत उसकी स्थिति एक समय की है। लेकिन जब वही आनुपूर्वी द्रव्य असख्यात काल तक तीन आदि आकाशप्रदेशो मे अवगाढ रहकर पुन द्विप्रदेशावगाढ या एकप्रदेशावगाही बनता है तब उस आनुपूर्वी द्रव्य की उत्कृष्ट स्थिति असख्यात काल की होती है।

इसी प्रकार एक अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के विषय मे समझना चाहिये।

एक आनुपूर्वी आदि द्रव्यो की उत्कृष्ट स्थिति अनन्त काल इसलिये नही है कि एक द्रव्य अधिक से अधिक असख्यात काल तक ही एक रूप मे अवगाढ रह सकता है।

अनेक आनुपूर्वी आदि तीनो द्रव्यो का अवस्थान सार्वकालिक मानने का कारण यह है कि ऐसा कोई भी समय नही है कि जिसमे कोई न कोई आनुपूर्वी आदि द्रव्य अवगाहित न हो।

अनुगमगत अन्तरप्ररूपणा

१५५. णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाणमंतर कालतो केवचिर होति?

तिण्णि वि एगं दव्व पडुच्च जहण्णेण एग समय उक्कोसेणं असखेज्ज कालं, णाणादव्वाइ पडुच्च णत्थि अतर।

[१५५ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यो का काल की अपेक्षा अन्तर कितने समय का है?

[१५५ उ] आयुष्मन्! तीनो (आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों) का अन्तर एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल का है किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही है।

विवेचन—सूत्र मे एक और अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तरप्ररूपणा की गई है।

प्रश्नोत्तर में भिन्नता क्यों ?—यद्यपि प्रश्न तो आनुपूर्वी द्रव्यों को आश्रित करके किया है लेकिन उत्तर मे 'तिण्ण वि' तीनो को ग्रहण इसलिये किया है कि इन तीनो द्रव्यो का अन्तर समान है। जिसका भाव यह है कि जिस समय कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य किसी एक विवक्षित क्षेत्र मे एक समय तक अवगाढ रह कर किसी दूसरे क्षेत्र मे अवगाहित हो जाता है और फिर पुन अकेला या किसी दूसरे द्रव्य से सयुक्त होकर उसी विवक्षित आकाशप्रदेश में अवगाढ होता है तो उस समय उस एक आनुपूर्वी द्रव्य का अन्तरकाल-विरहकाल जघन्य एक समय है तथा जब वही द्रव्य अन्य क्षेत्र-प्रदेशो मे असख्यात काल तक अवगाढ रह कर मात्र उसी अथवा अन्य द्रव्यो से सयुक्त होकर पूर्व के ही अवगाहित क्षेत्रप्रदेश मे अवगाहित होता है तब उत्कृष्ट विरहकाल असख्यात काल होता है। अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के लिये भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

विरहकाल अनन्तकालिक क्यो नही ?– यद्यपि द्रव्यानुपूर्वी मे एक द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट विहरकाल अनन्तकाल का बताया है। परन्तु क्षेत्रानुपूर्वी मे असख्यात काल का इसलिये माना गया है कि द्रव्यानुपूर्वी मे तो विवक्षितद्रव्य मे दूसरे द्रव्य अनन्त है। अत उनके साथ क्रम-क्रम से सयोग होने पर पुन. अपने स्वरूप की प्राप्ति मे उसे अनन्त काल लग जाता है। परन्तु यहाँ (क्षेत्रानुपूर्वी मे) विवक्षित अवगाहक्षेत्र से अन्य क्षेत्र असख्यात प्रदेश प्रमाण ही है। इसलिये प्रतिस्थान मे अवगाहना की अपेक्षा उसकी सयोगस्थिति असख्यात काल है। जिससे विवक्षित प्रदेश से अन्य असख्यात क्षेत्र मे परिभ्रमण करता हुआ द्रव्य पुन उसी विवक्षित प्रदेश मे अन्य द्रव्य से सयुक्त होकर या अकेला ही असख्यात काल के बाद अवगाहित होता है।

नाना द्रव्यो की अपेक्षा अतर क्यों नहीं ?– सभी आनुपूर्वी द्रव्य एक साथ अपने स्वभाव को छोडते नही है। क्योकि असख्यात आनुपूर्वी द्रव्य सदैव विद्यमान रहते है। अतएव नाना द्रव्यो की अपेक्षा अतर नही है। अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो के अतर का विचार भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

अनुगमगत भागप्ररूपणा

१५६. णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कतिभागे होज्जा ?

तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए।

[१५६ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यो के कितनेवे भाग प्रमाण होते है?

[१५६ उ] आयुष्मन्! द्रव्यानुपूर्वी जैसा ही कथन तीनो द्रव्यो के लिये यहाँ भी समझना चाहिये।

विवेचन–सूत्र मे द्रव्यानुपूर्वी के अतिदेश द्वारा क्षेत्रानुपूर्वी के द्रव्यो की भागप्ररूपणा का कथन किया है। इसका भाव यह है कि अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य असख्यात भागो से अधिक है तथा शेष द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यो के असख्यातवे भागप्रमाण है।

आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात भागाधिक कैसे ?—आनुपूर्वी द्रव्य को असख्यात भागो से अधिक मानने पर जिज्ञासु का प्रश्न है—

यह पूर्व मे कहा है कि तीन आदि प्रदेशों मे स्थित द्रव्य आनुपूर्वी है, एक-एक प्रदेश मे स्थित अनानुपूर्वी और दो-दो प्रदेशों में स्थित द्रव्य अवक्तव्यक है और ये तीनो द्रव्य सर्वलोकव्यापी है । अत विचार करने पर आनुपूर्वी द्रव्य सबसे अल्प सिद्ध होते हैं । वह इस प्रकार – लोक असख्यातप्रदेशी है । लेकिन उन असख्यात प्रदेशो को असत्कल्पना मे ३० मानकर उन प्रदेशो के स्थान पर ३० रखे । इन तीस प्रदेशो मे एक-एक अनानुपूर्वी द्रव्य अवगाहित है, अत अनानुपूर्वी द्रव्यो की सख्या ३० तथा एक-एक अवक्तव्यक द्रव्य लोक के दो-दो प्रदेशो मे अवगाढ होने के कारण उनकी सख्या १५ तथा आनुपूर्वी द्रव्य लोक के तीन-तीन प्रदेशो मे अवगाढ होने से उनकी सख्या १० आती है । बहुत से आनुपूर्वी द्रव्य तीन से लेकर असख्यात प्रदेशो मे अवगाढ है, अत उनकी सख्या और भी कम होनी चाहिए । इस प्रकार विचार करने पर वे कम ही प्राप्त होते है ।

उत्तर यह है कि जो आकाशप्रदेश एक आनुपूर्वी द्रव्य से अवगाढ होते है, वे ही यदि अन्य आनुपूर्वी द्रव्यो से अवगाढ नही हो तो पूर्वोक्त कथन युक्तिसगत माना जा सकता है, परन्तु ऐसा है नही । क्योकि एक आनुपूर्वी द्रव्य मे जो तीन आकाशप्रदेश उपयुक्त होते है, वे ही तीन प्रदेश अन्य-अन्य आनुपूर्वी द्रव्यो द्वारा भी अवगाढ होते है । इसलिये लोक का एक-एक प्रदेश अनेक त्रिकसयोगी आनुपूर्वी द्रव्यो का आधार होता है । इसी प्रकार से चतु सयोगी यावत् असख्यात सयोगी आनुपूर्वी द्रव्यो के विषयो मे भी जानना चाहिये ।

इस प्रकार एक-एक आकाशप्रदेश अनेकानेक त्रि-अणुकादि आनुपूर्वी द्रव्यो से सयुक्त होता है । आनुपूर्वी द्रव्य रूप आधेय के भेद से प्रत्येक प्रदेश रूप आधार का भी भेद हो जाता है । क्योकि आकाशप्रदेश जिस स्वरूप से एक आधेय से उपयुक्त होते है, उसी स्वरूप से वे दूसरे आधेय से उपयुक्त नही होते है । यदि ऐसा ही माना जाये कि आकाशप्रदेश जिस स्वरूप मे एक आधेय से सयुक्त होते है, उसी स्वरूप से वे अन्य आधेय से भी सयुक्त होते है तो एक आधार मे उनकी अवगाहना होने से उन अनेक आधेयो मे घट मे घट के स्वरूप की तरह एकता प्रसक्त होगी । इसलिये अपने स्वरूप की अपेक्षा से असख्यातप्रदेशी लोक मे जितने भी त्रिक्सयोगादि से लेकर असख्यात सयोग पर्यन्त के सयोग है, उतने ही आनुपूर्वी द्रव्य है । ये आनुपूर्वी द्रव्य तीन आदि सयोगो के बहुत होने के कारण बहुसख्या वाले है और अवक्तव्यक द्रव्य द्विक सयोगो के कम होने के कारण कम है तथा अनानुपूर्वीद्रव्य लोकप्रदेशो की सख्या के बराबर होने के कारण उनसे भी कम ही है ।

अनुगमगत भावप्ररूपणा

१५७. णेगम-ववहाराण आणुपुव्वीदव्वाइ कयरम्मि भावे होज्जा ?

तिन्नि वि णियमा सादिपारिणामिए भावे होज्जा ।

[१५७ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव मे वर्तते है ?

[१५७ उ.] आयुष्मन् ! तीनो ही (आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्यक) द्रव्य नियमत सादि पारिणामिक भाव मे वर्तते हैं ।

विवेचन—सूत्रार्थ सुगम है । इस भावप्ररूपणा का तात्पर्य यह है कि तीन आदि प्रदेशो मे आनुपूर्वी द्रव्यो का अवगाहपरिणाम, एक प्रदेश मे अनानुपूर्वी द्रव्यो का अवगाहपरिणाम और द्विप्रदेशो

में अवक्तव्यक द्रव्यों का अवगाहपरिणाम सादि है। इसलिये ये सब द्रव्य सादिपारिणामिक भाववर्ती है।[1]

अनुगमगत अल्पबहुत्वप्ररूपणा

१५८. [१] एएसि णं भंते ! णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वयदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।

[१५८-१ प्र] भगवन् ! इन नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्यक द्रव्यों मे कौन द्रव्य किन द्रव्यों से द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[१५८-१ उ] गौतम ! नैगम-व्यवहारनयसमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा सब से अल्प है। द्रव्यार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों से विशेषाधिक है और आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों से असख्यातगुण है।

[२] पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए, अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।

[२] प्रदेशार्थता की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वीद्रव्य अप्रदेशी होने के कारण सर्वस्तोक है। प्रदेशार्थता की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों मे विशेषाधिक है और आनुपूर्वी द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्यों से असख्यातगुण है।

[३] दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए, अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं, आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं, ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं। से तं अणुगमे। से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।

[३] द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा मे नैगम-व्यवहारनयसमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थ से सबसे अल्प है, (क्योंकि पूर्व मे द्रव्यार्थता से अवक्तव्यक द्रव्यों मे सर्वस्तोकता बताई है।) द्रव्यार्थता और अप्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों से विशेषाधिक है। अवक्तव्यक द्रव्य

---

१ किन्हीं किन्हीं प्रतियों मे 'तिन्निवि णियमा सादिपारिणामिए भावे होज्जा' के स्थान पर 'णियमा साइ-पारिणामिए भावे होज्जा। एव दोण्णिवि' पाठ है।

प्रदेशार्थता की अपेक्षा विशेषाधिक है। आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा असख्यातगुण है और उसी प्रकार प्रदेशार्थता की अपेक्षा भी असख्यातगुण है।

इस प्रकार से अनुगम की वक्तव्यता जानना चाहिये तथा इसके साथ ही नैगम-व्यवहारनय-समत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—सूत्र मे क्षेत्रानुपूर्वी के अनुगमगत अल्पबहुत्व का निर्देश किया है। यहाँ यह जानना चाहिये—

द्रव्यो की गणना को द्रव्यार्थता तथा प्रदेशो की गणना को प्रदेशार्थता एव द्रव्यो तथा प्रदेशों दोनों की गणना को द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता या उभयार्थता कहते है।

आनुपूर्वी मे विशिष्ट द्रव्यो के अवगाह से उपलक्षित हुए नभ प्रदेशो मे यह तीन नभ प्रदेशो का समुदाय है, यह चार नभ प्रदेशो का समुदाय है, इत्यादि रूप नभ प्रदेशसमुदाय द्रव्य है और इन समुदायो के जो आरभक है वे प्रदेश है।

अनानुपूर्वी मे एक-एक प्रदेश-अवगाढ द्रव्य मे उपलक्षित सकल आकाशप्रदेश पृथक्-पृथक् प्रत्येक द्रव्य है। एक-एक प्रदेश रूप द्रव्य मे अन्य प्रदेशो का रहना असभव होने से यहा प्रदेश सभव नही है।

अवक्तव्यको मे लोक मे जितने-जितने दो-दो प्रदेशो के योग है उतने प्रत्येक द्रव्य है और इन द्विकयोगो को प्रारभ करने वाले प्रदेश है।

शेष अल्पबहुत्व का कथन सुगम है। इस वर्णन के साथ नैगम-व्यवहारनयसमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का कथन समाप्त हुआ।

अब क्रमप्राप्त सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन प्रारभ करते है।

संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वीप्ररूपणा

१५९. से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी?

जहेव दव्वाणुपुव्वी तहेव खेत्ताणुपुव्वी णेयव्वा। से त सगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।

[१५९ प्र] भगवन्! सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१५९ उ] आयुष्मन्! पूर्वोक्त सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की तरह इस क्षेत्रानुपूर्वी का भी स्वरूप जानना चाहिये।

इस प्रकार से सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की और साथ ही अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की वक्तव्यता समाप्त हुई।

विवेचन—सूत्र मे सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के अतिदेश द्वारा क्षेत्रानुपूर्वी के वर्णन करने का सकेत किया है। लेकिन किसी-किसी प्रति मे इस सक्षिप्त कथन से सम्बन्धित सूत्रपाठ इस प्रकार है—

से किं त सगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?

सगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पचविहा पण्णत्ता, त जहा—अत्थपयपरूवणया १, भगसमुक्कित्तणया २, भगोवदसणया ३, समोयारे ४, अणुगमे ५।

से किं त सगहस्स अत्थपयपरूवणया ?

सगहस्स अत्थपयपरूवणया तिपएसोगाढे आणुपुव्वी चउप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, जाव दसपए-सोगाढे आणुपुव्वी, सखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असखिज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए। से त सगहस्स अत्थपयपरूवणया।

एयाए ण सगहस्स अत्थपयपरूवणयाए किं पओयण ?

सगहस्स अत्थपयपरूवणयाए सगहस्स भगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

से किं त सगहस्स भगसमुक्कित्तणया ?

सगहस्स भगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए। अहवा अत्थि आणुपुव्वी अणाणुपुव्वी य, एव जहा दव्वाणुपुव्वीए सगहस्स तहा भाणियव्व जाव से त सगहस्स भगसमुक्कित्तणया। एयाए ण सगहस्स भगसमुक्कित्तणयाए किं पयोयण ?

एयाए ण सगहस्स भगसमुक्कित्तणयाए सगहस्स भगोवदसणया कज्जइ।

से किं त सगहस्स भगोवदसणया ?

सगहस्स भगोवदसणया तिप्पएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुप्पएसोगाढे अवत्तव्वए। अहवा तिप्पएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य, एव जहा दव्वाणु-पुव्वीए सगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्व जाव से त सगहस्स भगोवदसणया।

से किं त समोयारे ? समोयारे सगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइ कहि समोयरति ? किं आणुपुव्वी-दव्वेहिं समोयरति ? अणाणुपुव्वीदव्वेहि ? अवत्तव्वगदव्वेहि ? तिण्णिवि सट्ठाणे समोयरति। से त समोयारे।

से किं त अणुगमे ? अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते, त जहा—सतपयपरूवणया जाव अप्पाबहु नत्थि।

सगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइ किं अत्थि णत्थि ?

णियमा अत्थि। एव तिण्णि वि सेसगदाराइ जहा दव्वाणुपुव्वीए सगहस्स तहा खेत्ताणुपुव्वीए वि भाणियव्वाइ जाव से त अणुगमे। से त सगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।

इन सूत्रों का अर्थ—पूर्वोक्त द्रव्यानुपूर्वीगत पाठ की तरह जानना चाहिए।

अब क्षेत्रानुपूर्वी के दूसरे भेद औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की प्ररूपणा प्रारम्भ करते है। इसके दो प्रकार हैं—विशेष और सामान्य। बहुवक्तव्य होने से पहले विशेषापेक्षया वर्णन करते है।

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की विशेष प्ररूपणा

१६०. से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?

ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[१६० प्र.] भगवन्! औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६० उ.] आयुष्मन्! औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के तीन भेद है। वे इस प्रकार—१. पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी और ३ अनानुपूर्वी।

१६१. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी अहोलोए १ तिरियलोए २ उड्ढलोए ३। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१६१ प्र.] भगवन्! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६१ उ.] आयुष्मन्! १ अधोलोक, २ तिर्यक्लोक और ३ ऊर्ध्वलोक, इस क्रम से (क्षेत्र-लोक का) निर्देश करने को पूर्वानुपूर्वी कहते है।

१६२. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी उड्ढलोए ३ तिरियलोए २ अहोलोए १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१६२ प्र.] भगवन्! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६२ उ.] आयुष्मन्! पूर्वानुपूर्वी के क्रम के विपरीत १ ऊर्ध्वलोक, २ तिर्यक्लोक, ३ अधोलोक, इस प्रकार का क्रम पश्चानुपूर्वी है।

१६३. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए तिगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी।

[१६३ प्र.] भगवन्! अनानुपूर्वी किसे कहते है?

[१६३ उ.] आयुष्मन्! एक से प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा निर्मित तीन पर्यन्त की श्रेणी मे परस्पर गुणा करने पर निष्पन्न अन्योन्याभ्यस्त राशि मे से आद्य और अन्तिम दो भगो को छोडकर जो राशि उत्पन्न हो वह अनानुपूर्वी है।

विवेचन—इन तीन सूत्रो मे औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का स्वरूप बतलाया है।

औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के प्रकरण मे जैसे द्रव्यानुपूर्वी का अधिकार होने से धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों को पूर्वानुपूर्वी आदि रूप मे उदाहृत किया है, वैसे ही यहाँ क्षेत्रानुपूर्वी का प्रकरण होने से अधोलोक आदि क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी आदि के रूप मे उदाहृत हुए हैं।

अधोलोक आदि भेद का कारण—लोक के अधोलोक आदि तीन भेद होने का मुख्य आधार मध्यलोक के बीचोबीच स्थित सुमेरुपर्वत है। इसके नीचे का भाग अधोलोक और ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक तथा दोनो के बीच मे मध्यलोक है। मध्यलोक का तिर्छा विस्तार अधिक होने से इसे तिर्यक्लोक भी कहते है।

अधोलोक आदि का प्रारम्भ कहाँ से ?—जैन भूगोल के अनुसार लोक ऊपर से नीचे तक लम्बाई मे चौदह राजू है और विस्तार मे अनियत है। यह धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यों से व्याप्त है।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी पर बहु सम भूभाग वाले मेरुपर्वत के मध्य में आकाश के दो-दो प्रदेशों के वर्ग (प्रतर) मे आठ रुचक प्रदेश है। उनमे से एक अधस्तन प्रतर से लेकर नीचे के नौ सौ योजन गहराई को छोडकर उससे नीचे अधोलोक है। इसी प्रकार उपरितन प्रतर से लेकर ऊपर के नौ सौ योजन छोडकर ऊपर कुछ कम सात राजू लम्बा ऊर्ध्वलोक है। इन अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के बीच मे अठारह सौ योजन प्रमाण ऊँचाई वाला तिर्यग्लोक-मध्यलोक है।

अधोलोक आदि नामकरण का हेतु—सामान्य रूप से तो मेरुपर्वत से नीचे का भाग अधोलोक, ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक और बराबर समरेखा मे तिर्छा फैला क्षेत्र तिर्यग्लोक-मध्यलोक के नामकरण का हेतु है। लेकिन विशेषापेक्षया कारण यह है—'अध' शब्द अशुभ अर्थ का वाचक है। अतएव क्षेत्रस्वभाव से अधिकतर अशुभ द्रव्यो का परिणमन अधोलोक सज्ञा का हेतु है तथा 'ऊर्ध्व' शब्द शुभ अर्थ का वाचक है। अतएव ऊर्ध्वलोक मे क्षेत्र-प्रभाव से द्रव्यो का परिणमन प्राय शुभ हुआ करता है। अतएव शुभ परिणाम वाले द्रव्यो के सम्बन्ध से ऊर्ध्वलोक यह नाम है। तिर्यक् शब्द का एक अर्थ मध्यम भी होता है। अत इस मध्यलोक मे क्षेत्र-प्रभाव से प्राय मध्यम परिणाम वाले द्रव्य होते है। इसलिये इन मध्यम परिणाम रूप द्रव्यो के सयोग वाले लोक का नाम मध्यलोक या तिर्यक्लोक है। अथवा अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के मध्य मे स्थित होने से यह मध्यलोक कहलाता है।

अधोलोक आदि का क्रमविन्यास—सूत्र मे सर्वप्रथम अधोलोक के उपन्यास का कारण यह है कि वहाँ पर प्राय जघन्य परिणाम वाले द्रव्यों का ही सम्बन्ध रहा करता है। इसीलिए जिस प्रकार चौदह गुणस्थानो मे जघन्य होने से सर्वप्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान का उपन्यास किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ पर भी जघन्य होने से अधोलोक का सर्वप्रथम उपन्यास किया है तथा मध्यम परिणाम वाले द्रव्यो के सबन्ध के कारण तत्पश्चात् तिर्यक्लोक का और उत्कृष्ट परिणाम वाले द्रव्यो के सबन्ध के कारण अन्त मे ऊर्ध्वलोक का उपन्यास किया है।

यह कथन पूर्वानुपूर्वी की अपेक्षा जानना चाहिये। पश्चानुपूर्वी मे पूर्वानुपूर्वी का व्युत्क्रम (विपरीत क्रम) है। अनानुपूर्वी मे इन तीन पदो के छह भग होते है।

अनानुपूर्वी मे आदि और अत भग छोडने का कारण यह है कि आदि का भग पूर्वानुपूर्वी का और अंतिम भग पश्चानुपूर्वी का है।

अब पूर्वोक्त औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का लोकत्रयापेक्षा पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं।

अधोलोकक्षेत्रानुपूर्वी

१६४. अहोलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[१६४] अधोलोकक्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही है। यथा—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

१६५. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

पुव्वाणुपुव्वी रयणप्पभा १ सक्करप्पभा २ वालुयप्पभा ३ पंकप्पभा ४ धूमप्पभा ५ तमप्पभा ६ तमतमप्पभा ७। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१६५ प्र] भगवन्! अधोलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६५ उ] आयुष्मन्! १ रत्नप्रभा २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ तमस्तमःप्रभा, इस क्रम से (सात नरकभूमियों के) उपन्यास करने को अधोलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी कहते हैं।

१६६. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

पच्छाणुपुव्वी तमतमा ७ जाव रयणप्पभा १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१६६ प्र] भगवन्! अधोलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६६ उ] आयुष्मन्! तमस्तमःप्रभा से लेकर यावत् रत्नप्रभा पर्यन्त व्युत्क्रम से (नरकभूमियों का) उपन्यास करना अधोलोकपश्चानुपूर्वी कहलाती है।

१६७. से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए सत्तगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी।

[१६७ प्र] भगवन्! अधोलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६७ उ] आयुष्मन्! अधोलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—आदि में एक स्थापित कर सात पर्यन्त एकोत्तर वृद्धि द्वारा निर्मित श्रेणी में परस्पर गुणा करने से निष्पन्न राशि में से प्रथम और अन्तिम दो भंगों को कम करने पर यह अनानुपूर्वी बनती है।

विवेचन—प्रस्तुत चार सूत्रों में अधोलोकक्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन किया है। अधोलोक में रत्नप्रभा आदि सात नरकपृथ्वियां हैं।

रत्नप्रभा आदि नाम का कारण—पहली नरकपृथ्वी का नाम रत्नप्रभा इसलिये है कि वहाँ नारक जीवों के आवास स्थानों से अतिरिक्त स्थानों में इन्द्रनील आदि अनेक प्रकार के रत्नों की प्रभा—कान्ति का सद्भाव है। शर्कराप्रभा नामक द्वितीय पृथ्वी में शर्करा-पाषाणखंड जैसी प्रभा है। बालुकाप्रभा में बालू-रेती जैसी प्रभा है। चौथी पंकप्रभापृथ्वी में कीचड़ जैसी प्रभा है।

धूमप्रभा, तम प्रभा और तमस्तम प्रभा पृथ्वियों मे क्रमश धूम-धुआ, अधकार और गाढ अधकार जैसी प्रभा है। इसी कारण सातो नरकपृथ्वियां सार्थक नाम वाली हैं।

अनानुपूर्वी मे एक आदि सात पर्यन्त सात अको का परस्पर गुणा करने पर ५०४० भग होते हैं। इनमे से आदि का भग पूर्वानुपूर्वी और अतिम भग पश्चानुपूर्वी रूप होने से इन दो को छोडकर शेष ५०३८ भग अनानुपूर्वी के हैं।

तिर्यग् (मध्य) लोकक्षेत्रानुपूर्वी

१६८. तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[१६८] तिर्यग् (मध्य) लोकक्षेत्रानुपूर्वी के तीन भेद कहे गये है। वे इस प्रकार—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

१६९. से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी—

जंबुद्दीवे लवणे धायइ-कालोय-पुक्खरे वरुणे।
खीर-घय-खोय-नंदी-अरुणवरे कुंडले रुयगे॥ ११॥
जबुद्दीवाओ खलु निरंतरा, सेसया असखइमा।
भुयगवर-कुसवरा वि य कोंचवराऽऽभरणमाईया॥ १२॥
आभरण-वत्थ-गधे उप्पल-तिलये य पउम-निहि-रयणे।
वासहर-दह-णदीओ विजया वक्खार-कप्पिदा॥ १३॥
कुरु-मंदर-आवासा कूडा नक्खत्त-चंद सूरा य।
देवे नागे जक्खे भूये य सयभुरमणे य॥ १४॥

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१६९ प्र] भगवन्! मध्यलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१६९ उ] आयुष्मन्! मध्यलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखडद्वीप, कालोदधिसमुद्र, पुष्करद्वीप, (पुष्करोद) समुद्र, वरुणद्वीप, वरुणोदसमुद्र, क्षीरद्वीप, क्षीरोदसमुद्र, घृतद्वीप, घृतोदसमुद्र, इक्षुवरद्वीप, इक्षुवरसमुद्र, नन्दीद्वीप, नन्दीसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डलसमुद्र, रुचकद्वीप, रुचकसमुद्र। ११।

जम्बूद्वीप से लेकर ये सभी द्वीप-समुद्र बिना किसी अन्तर के एक दूसरे को घेरे हुए स्थित है। इनके आगे असख्यात-असंख्यात द्वीप-समुद्रो के अनन्तर भुजगवर तथा इसके अनन्तर असंख्यात द्वीप-समुद्रो के पश्चात् कुशवरद्वीप समुद्र है और इसके बाद भी असख्यात द्वीप-समुद्रो के पश्चात् क्रौंचवर द्वीप है। पुन असख्यात द्वीप-समुद्रो के पश्चात् आभरणो आदि के सदृश शुभ नाम वाले द्वीप-समुद्र है। १२। यथा—

आभरण, वस्त्र, गध, उत्पल, तिलक, पद्म, निधि, रत्न, वर्षधर, ह्रद, नदी, विजय, वक्षस्कार, कल्पेन्द्र । १३ ।

कुरु, मंदर, आवास, कूट, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्यदेव, नाग, यक्ष, भूत आदि के पर्यायवाचक नामों वाले द्वीप-समुद्र असख्यात है और अन्त मे स्वयभूरमणद्वीप एव स्वयभूरमणसमुद्र है। यह मध्य-लोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी की वक्तव्यता है ।

१७०. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी सयंभुरमणे य भूए य जाव जंबुद्दीवे । से तं पच्छाणुपुव्वी ।

[१७० प्र] भगवन् ! मध्यलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१७० उ] आयुष्मन् ! स्वयभूरमणसमुद्र, भूतद्वीप आदि से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त व्युत्क्रम से द्वीप-समुद्रो के उपन्यास करने को मध्यलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी कहते है ।

१७१. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए असखेज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो । से तं अणाणुपुव्वी ।

[१७१ प्र] भगवन् ! मध्यलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१७१ उ] आयुष्मन् ! मध्यलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी की वक्तव्यता इस प्रकार है—एक से प्रारम्भ कर असख्यात पर्यन्त की श्रेणी स्थापित कर उनका परस्पर गुणाकार करने पर निष्पन्न राशि मे से आद्य और अन्तिम इन दो भगो को छोडकर मध्य के समस्त भग मध्यलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी कहलाते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे मध्यलोकक्षेत्रानुपूर्वी का निरूपण किया है ।

मध्यलोकवर्ती असख्यात द्वीप-समुद्रो के मध्य मे पहला द्वीप जम्बूद्वीप है और उसके बाद यथाक्रम से आगे-आगे समुद्र और द्वीप है । उनमे प्रथम द्वीप का नाम जम्बूवृक्ष से उपलक्षित होने से जम्बूद्वीप है और असख्यात द्वीप-समुद्रो के अन्त मे स्वयभूरमण नामक समुद्र है । ये सभी द्वीप-समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले, पूर्व-पूर्व द्वीप समुद्र को वेष्टित किये हुए और चूडी के आकार वाले है । लेकिन जम्बूद्वीप लवणसमुद्र से घिरा हुआ थाली के आकार का है । इसके द्वारा अन्य कोई समुद्र वेष्टित नही है । इन असख्यात द्वीप-समुद्रो की निश्चित सख्या अढाई उद्धार सागरोपम के समयो की सख्या के बराबर है । मध्यलोक का भी मध्य यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा-चौडा है और इसके भी मध्य मे एक लाख योजन ऊचा सुमेरुपर्वत है जो अधो, मध्य एवं ऊर्ध्व लोक के विभाग का कारण है ।

गाथोक्त पुष्कर से लेकर स्वयभूरमण तक के शब्द क्रमश उस-उस नाम वाले द्वीप और समुद्र दोनो के वाचक जानना चाहिए ।

गाथोक्त द्वीप संख्या में भिन्नता—गाथा मे नन्दीश्वरद्वीप के अनन्तर अरुणवर, कुडल और रुचक इन तीन नामो का उल्लेख है, लेकिन अनुयोगद्वारचूर्णि मे अरुणवर, अरुणावास, कुण्डलवर

शखवर, रुचकवर इन पांच नामो को गिनाया है। इस प्रकार चूर्णि के मत से रुचकवर का क्रम तेरहवा और गाथानुसार ग्यारहवां है।

समुद्रीय जलों का स्वाद—लवणसमुद्र लवण के समान रस वाले जल से पूरित है। कालोद एव पुष्करोद का जल शुद्धोदक के रस-समान रस वाला है। वारुणोद वारुणीरसवत्, क्षीरोद क्षीर-रस जैसे, घृतोद घृत जैसे तथा इक्षुरससमुद्र इक्षुरस जैसे स्वाद से युक्त जल वाला है। इसके बाद के अन्तिम स्वयभूरमणसमुद्र को छोडकर शेष सभी समुद्र इक्षुरस जैसे स्वाद वाले जल से युक्त है। स्वयभूरमणसमुद्र के जल का स्वाद शुद्ध जल जैसा है।

सभी द्वीप-समुद्रों का नामोल्लेख क्यो नहीं—सूत्रकार ने असख्यात द्वीप-समुद्रो के नामो मे से कतिपय का तो उल्लेख किया किन्तु उनके अतिरिक्त अतरालवर्ती शेष द्वीप-समुद्रो का नामोल्लेख इसलिये नही किया है कि वे असख्यात है किन्तु लोक मे शख, ध्वज, कलश, स्वस्तिक, श्रीवत्स, रूप, रस, गध, स्पर्श आदि जितने भी पदार्थों के शुभ नाम हो सकते है, उन सबसे उपलक्षित अन्तरालवर्ती द्वीप-समुद्रो के नाम जान लेना चाहिये।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी

१७२. उड्ढलोगखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[१७२] ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की है। वह इस रूप से—१ पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

१७३. से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी सोहम्मे १ ईसाणे २ सणकुमारे ३ माहिंदे ४ बंभलोए ५ लंतए ६ महासुक्के ७ सहस्सारे ८ आणते ९ पाणते १० आरणे ११ अच्चुते १२ गेवेज्जविमाणा १३ अणुत्तरविमाणा १४ ईसिपब्भारा १५। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१७३ प्र] भगवन्! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रविषयक पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१७३ उ] आयुष्मन्! १ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७. महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत, १३ ग्रैवेयक-विमान, १४ अनुत्तरविमान, १५ ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, इस क्रम से ऊर्ध्वलोक के क्षेत्रो का उपन्यास करने को ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी कहते है।

१७४. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी ईसिपब्भारा १५ जाव सोहम्मे १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१७४ प्र] भगवन्! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१७४ उ] आयुष्मन्! ईषत्प्राग्भाराभूमि से सौधर्म कल्प तक के क्षेत्रो का व्युत्क्रम से उपन्यास करने को ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी कहते है।

१७५. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादिगाए एगुत्तरियाए पण्णरसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो । से तं अणाणुपुव्वी ।

[१७५ प्र] भगवन् ! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी किसे कहते है ?

[१७५ उ] आयुष्मन् ! आदि मे एक रखकर एकोत्तरवृद्धि द्वारा निर्मित्त पन्द्रह पर्यन्त की श्रेणी मे परस्पर गुणा करने पर प्राप्त राशि मे से आदि और अत के दो भगो को कम करने पर शेष भगो को ऊर्ध्वलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी कहते हैं ।

विवेचन—यहाँ ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी का स्वरूप स्पष्ट किया है ।

सर्वप्रथम सौधर्मकल्प का उपन्यास इसलिये किया है कि वह प्ररूपणकर्त्ता से सर्वाधिक निकट है । सौधर्मनाम का कारण यह है कि उस क्षेत्र सम्बन्धी (बत्तीस लाख) विमानो मे सौधर्मावतसक-विमान सर्वश्रेष्ठ है और वह इस विमान से युक्त है । इसी प्रकार से ईशान से लेकर अच्युत तक के कल्पो के ईशानावतसक आदि विमानो के लिये भी समझना चाहिये कि उन-उन कल्पो मे वे-वे विमान सर्वश्रेष्ठ है, अतएव ये कल्प उन्ही नामो वाले है ।

सौधर्म से लेकर अच्युत पर्यन्त के बारह देवलोको मे इन्द्र, सामानिक आदि वर्गात्मक भेद होने से वे कल्पोपपन्न कहलाते है ।

ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान कल्पातीत सज्ञक है । इनमे इन्द्र आदि भेदरूप कल्प नही पाया जाता है ।

लोक रूप पुरुष की ग्रीवा के स्थानापन्न विमानो की ग्रैवेयक सज्ञा है । इनकी कुल सख्या नौ है और अधो, मध्य और ऊर्ध्व इन तीन वर्गो मे ये तीन-तीन की सख्या मे स्थित है ।

अनुत्तरविमान अन्य देवविमानो से अनुत्तर-श्रेष्ठतम होने से अनुत्तर कहलाते है । यह अनुत्तर विमान कुल पाच है, जिनके नाम विजय, वेजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध है । ये विजयादि अपराजित पर्यन्त चार विमान पूर्वादि चार दिशाओ मे एक-एक स्थित है और इनके बीच मे सर्वार्थसिद्ध विमान है । विजयादि पाचो विमानो मे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है और निश्चित रूप से वे मुक्तिपद प्राप्ति के अधिकारी होते है ।

नव ग्रैवेयक तक विमानो मे मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो तरह के जीव उत्पन्न हो सकते है ।

ईषत्प्राग्भारापृथ्वी अपने प्रान्तभाग मे भाराक्रान्त पुरुष की तरह कुछ झुकी हुई होने से ईषत्प्राग्भारा कहलाती है । इसे सिद्धशिला भी कहते है ।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्र सबन्धी पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी सबन्धी विशेष वक्तव्यता अन्य आगमो से समझ लेनी चाहिये ।

अब प्रकारान्तर से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का वर्णन है ।

औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के वर्णन का द्वितीय प्रकार

१७६. अहवा ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता । त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३ ।

[१७६] अथवा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। यथा—१ पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी और ३ अनानुपूर्वी।

१७७. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी एगपएसोगाढे दुपएसोगाढे जाव दसपएसोगाढे जाव असंखेज्जपएसोगाढे। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[१७७ प्र.] भगवन्! (औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी सबन्धी) पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१७७ उ] आयुष्मन्! एकप्रदेशावगाढ, द्विप्रदेशावगाढ यावत् दसप्रदेशावगाढ यावत् असख्यातप्रदेशावगाढ के क्रम मे क्षेत्र के उपन्यास को पूर्वानुपूर्वी कहते है।

१७८. से किं त पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी असंखेज्जपएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[१७८ प्र] भगवन्! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१७८ उ] आयुष्मन्! असख्यातप्रदेशावगाढ यावत् एकप्रदेशावगाढ रूप मे व्युत्क्रम से क्षेत्र का उपन्यास पश्चानुपूर्वी है।

१७९. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए असखेज्जगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से त अणाणुपुव्वी। से त ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से त खेत्ताणुपुव्वी।

[१७९ प्र] भगवन्! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१७९ उ] आयुष्मन्! एक से प्रारभ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा असख्यात प्रदेश पर्यन्त की स्थापित श्रेणी का परस्पर गुणा करने से निष्पन्न राशि मे से आद्य और अतिम इन दो रूपो को कम करने पर क्षेत्रविषयक अनानुपूर्वी बनती है।

इस प्रकार से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की एव साथ ही क्षेत्रानुपूर्वी की वक्तव्यता समाप्त हुई जानना चाहिये।

विवेचन—इन चार सूत्रो मे सामान्य से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी का विवेचन करके क्षेत्रानुपूर्वी की वक्तव्यता का उपसहार किया है।

लोकाकाश असख्यात प्रदेशप्रमाण है। अत एकप्रदेश रूप क्षेत्र से प्रारभ करके क्रमश. असख्यात प्रदेश पर्यन्त के क्षेत्र का पूर्वानुपूर्वी आदि के रूप मे उल्लेख किया है।

अब क्षेत्रानुपूर्वी के अनन्तर क्रमप्राप्त कालानुपूर्वी का वर्णन प्रारभ करते है।

कालानुपूर्वीप्ररूपणा

१८०. से किं तं कालाणुपुव्वी ?

कालाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता। त जहा—ओवणिहिया य १ अणोवणिहिया य २।

[१८० प्र] भगवन्! कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१८० उ] आयुष्मन्! कालानुपूर्वी के दो प्रकार है, यथा—१ औपनिधिकी और २ अनोपनिधिकी।

१८१. तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा।

[१८१] इनमे से (अल्प विषय वाली होने से अभी विवेचन न करने के कारण) औपनिधिकी कालानुपूर्वी स्थाप्य है। तथा—

१८२. तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—णेगम-ववहाराणं १ संगहस्स य २।

[१८२] अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी दो प्रकार का कही गई है—१ नैगम-व्यवहारनयसमत और २ सग्रहनयसम्मत।

विवेचन—यह सूत्रत्रय कालानुपूर्वी के वर्णन करने की भूमिका रूप है। अब सूत्रगत सकेतानुसार प्रथम नैगम-व्यवहारनयसमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का विवेचन प्रारभ करते है।

नैगम-व्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी

१८३. से किं तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?

णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा— अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भंगोवदंसणया ३ समोतारे ४ अणुगमे ५।

[१८३ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[१८३ उ] आयुष्मन्! (नैगम-व्यवहारनयसमत) अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के पाच प्रकार कहे गये हैं। वे इस प्रकार है—अर्थपदप्ररूपणता, २ भगसमुत्कीर्तनता, ३ भगोपदर्शनता, ४ समवतार, ५ अनुगम।

विवेचन—सूत्रोक्त अर्थपदप्ररूपणता आदि के लक्षण पूर्व मे बतलाये जा चुके है। अतएव प्रसगानुरूप अब उनका मतव्य स्पष्ट करते है।

(क) अर्थपदप्ररूपणता

१८४. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपदपरूवणया ?

णेगम-ववहाराणं अट्ठपदपरूवणया तिसमयट्ठिईए आणुपुव्वी जाव दससमयट्ठिईए आणुपुव्वी संखेज्जसमयट्ठिईए आणुपुव्वी असंखेज्जसमयट्ठितीए आणुपुव्वी।

एगसमयट्ठितीए अणाणुपुव्वी।

दुसमयट्ठिईए अवत्तव्वए।

तिसमयट्ठितीयाओ आणुपुव्वीओ जाव संखेज्जसमयट्ठितीयाओ आणुपुव्वीओ असंखेज्जसमयट्ठितीयाओ आणुपुव्वीओ।

एगसमयट्ठितीयाओ अणाणुपुव्वीओ। दुसमयट्ठिईयाइं अवत्तव्वयाइं। से तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

[१८४ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

[१८४ उ] आयुष्मन्! (नैगम-व्यवहारनयसमत) अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार है—तीन समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है यावत् दस समय, सख्यात समय, असख्यात समय की स्थितिवाला द्रव्य आनुपूर्वी है।

एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है।

दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्यक है।

तीन समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य आनुपूर्वियां है यावत् सख्यातसमयस्थितिक, असख्यातसमयस्थितिक द्रव्य आनुपूर्वियां है।

एक समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य अनेक अनानुपूर्वियां है।

दो समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य अनेक अवक्तव्यक रूप है।

इस प्रकार से नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप जानना चाहिये।

१८५. एयाए ण णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए जाव भंगसमुक्कित्तणया कज्जति।

[१८५] इस नैगम-व्यवहारनयसमत अर्थपदप्ररूपणता के द्वारा यावत् भगसमुत्कीर्तनता की जाती है।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के पहले भेद अर्थपदप्ररूपणता का आशय और प्रयोजन बताया है।

अर्थपदप्ररूपणता के प्रसग मे प्रयुक्त आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एव अवक्तव्यक शब्द के अर्थ पूर्व मे स्पष्ट किये जा चुके है। अतएव काल के वर्णन के प्रसग मे जिस द्रव्य की स्थिति कम से कम तीन समय की है, वह त्रिसमयस्थितिक द्रव्य आनुपूर्वी है। ऐसा द्रव्य परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् सख्यात, असख्यात और अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध भी हो सकता है। परन्तु उसकी स्थिति कम से कम तीन समय की होनी चाहिये। अधिक-से-अधिक असख्यात समय की स्थिति वाला द्रव्य भी आनुपूर्वी रूप कहा जाएगा।

यद्यपि क्षेत्रानुपूर्वी की तरह कालानुपूर्वी के प्रसग मे भी उल्लेख तो द्रव्यविशेष का है, परन्तु यहाँ समयत्रय आदि रूप कालपर्याय से युक्त द्रव्य ग्रहण किये है। इस प्रकार काल की तीन आदि समय रूप पर्याय और उन पर्यायो वाले द्रव्य मे अभेद का उपचार करके एव कालपर्याय को प्रधान मानकर कालपर्यायविशिष्ट द्रव्य मे कालानुपूर्वी जानना चाहिये।

अनन्तसामयिक कालानुपूर्वी क्यो नही?—सूत्र मे तीन समय से लेकर असख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्य को कालापेक्षया आनुपूर्वी रूप मे ग्रहण किया है, क्योकि स्वभाव से ही किसी भी द्रव्य की अनन्त समय की स्थिति नही होती है। अर्थात् ऐसा कोई भी द्रव्य नही जिसकी स्थिति अनन्त समय की हो। इसीलिये अनन्त समय की स्थिति वाली कालानुपूर्वी का यहाँ उल्लेख नही किया गया है।

अनानुपूर्वी और अवक्तव्य विषयक विशेषता—आनुपूर्वी मे तो त्रिसमयस्थितिक से लेकर असख्यातसमयस्थितिक पर्यन्त परमाणु आदि द्रव्यो को आनुपूर्वी के रूप मे ग्रहण किया है। अर्थात्

आनुपूर्वी मे आद्य इकाई तीन समय है और चरम असंख्यात समय है। लेकिन अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक मे यह विशेषता है—

अनानुपूर्वी मे द्रव्य चाहे परमाणु से लेकर अनन्ताणुक रूप हो, लेकिन उसकी स्थिति यदि एक समय की है तो वह कालापेक्षया अनानुपूर्वी है। इसी प्रकार यदि उसकी स्थिति दो समय प्रमाण है—वह दो समय की स्थिति वाला है तो वह अवक्तव्यक द्रव्य है।

एक-बहुवचनान्तता का कारण—सूत्रकार ने एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा आनुपूर्वी आदि का निर्देश किया है। उसका कारण यह है कि तीन आदि समयो की स्थिति वाले आनुपूर्वी द्रव्य एक-एक व्यक्ति रूप भी है और अनेक—अनन्त व्यक्ति रूप भी है। इसीलिये तीन आदि समय की स्थिति वाले एक द्रव्य को एक आनुपूर्वी, एक समय की स्थिति वाले एक द्रव्य को एक अनानुपूर्वी और द्विसमय की स्थिति वाले एक द्रव्य को एक अवक्तव्यक कहा है। लेकिन जब वही आनुपूर्वी आदि द्रव्य विशेष-भेद की विवक्षा से अनेक-व्यक्ति रूप होते हैं तब बहुवचन की अपेक्षा आनुपूर्वियो, अनानुपूर्वियो और अवक्तव्यकों रूप कहलाते है।[1]

सूत्र मे अर्थपदप्ररूपणता के प्रयोजन रूप मे भगसमुत्कीर्तनता का सकेत किया है, अत अब भगसमुत्कीर्तनता का निर्देश करते है।

(ख) भंगसमुत्कीर्तनता

१८६. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ?

णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया अत्थि आणुपुव्वी अत्थि अणाणुपुव्वी अत्थि अवत्तव्वए, एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं कालाणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव से तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

[१८६ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत भगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है?

[१८६ उ] आयुष्मन्! आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्यक है, इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वीवत् कालानुपूर्वी के भी २६ भग जानना चाहिये यावत् यह नैगम-व्यवहारनयसमत भगसत्कीर्तनता का स्वरूप है।

१८७. एयाए णं णेगम-ववहाराणं जाव किं पओयणं ?

एयाए णं णेगम-ववहाराणं जाव भंगोवदंसणया कज्जति।

[१८७ प्र] भगवन्! इस नैगम-व्यवहारनयसमत यावत् (भगसमुत्कीर्तनता का) क्या प्रयोजन है?

[१८७ उ] आयुष्मन्! इस नैगम-व्यवहारनयसमत यावत् (भगसमुत्कीर्तनता) से भगोपदर्शनता की जाती है।

---

१ सूत्र सख्या १८५ के स्थान पर किसी-किसी प्रति मे निम्नलिखित सूत्र पाठ है—
एआए ण नेगम-व्यवहाराण अट्ठपयपरूवणयाए कि पओअण? एआए ण णेगम-ववहाराण अट्ठपयपरूवणयाए णेगम-ववहाराण भगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

विवेचन—इस सूत्रपाठ की व्याख्या स्पष्ट है। द्रव्यानुपूर्वी की तरह कालानुपूर्वी के प्रसग मे भी छब्बीस भग जानना चाहिये। वे छब्बीस भग इस प्रकार हैं—

आनुपूर्वी आदि एकवचनान्त तीन पद के असयोगी तीन भग हैं और इसी प्रकार बहुवचनान्त पद के तीन भग बनते है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् छह भग हो जाते है और सयोगपक्ष मे इन तीनो पदो के द्विसयोगी भग तीन होते हैं। इनमे एक-एक भग मे दो-दो का सयोग होने पर एकवचन और बहुवचन को लेकर चार-चार भग हो जाते है। इस प्रकार तीनो भगो के द्विकसयोगी कुल भग बारह बनते है तथा त्रिकसयोग मे एकवचन और बहुवचन को लेकर आठ भग बनते है। इस प्रकार सब भग मिलाकर (६+१२+८=२६) छब्बीम होते है। द्रव्यानुपूर्वी के प्रसग मे इनके नाम बताये जा चुके है। तदनुसार यहाँ भी वही नाम समझ लेना चाहिये।

अब प्रयोजनरूप मे सकेतित भगोपदर्शनता का निरूपण करते है।

(ग) भंगोपदर्शनता

१८८. से किं त णेगम-ववहाराण भंगोवदसणया ?

णेगम-ववहाराण भगोवदसणया तिसमयट्ठितीए आणुपुव्वी एगसमयट्ठितीए अणाणुपुव्वी दुसमयट्ठितीए अवत्तव्वए, तिसमयट्ठितीयाओ आणुपुव्वीओ एगसमयट्ठितीयाओ अणाणुपुव्वीओ दुसमयट्ठितीयाइं अवत्तव्वयाइ। एवं दव्वाणुगमेणं ते चेव छव्वीस भंगा भाणियव्वा, जाव से त णेगम-ववहाराण भगोवदसणया।

[१८८ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है ?

[१८८ उ] आयुष्मन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत भगोपदर्शनता का स्वरूप इस प्रकार है—त्रिसमयस्थितिक एक-एक परमाणु आदि द्रव्य आनुपूर्वी है, एक समय की स्थिति वाला एक-एक परमाणु आदि द्रव्य अनानुपूर्वी है और दो समय की स्थिति वाला परमाणु आदि द्रव्य अवक्तव्यक है। तीन समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य 'आनुपूर्विया' इस पद के वाच्य हैं। एक समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य 'अनानुपूर्विया' तथा दो समय की स्थिति वाले द्रव्य 'अवक्तव्य' पद के वाच्य हैं। इस प्रकार यहाँ भी द्रव्यानुपूर्वी के पाठानुरूप छब्बीम भगो के नाम जानने चाहिए, यावत् यह भगोपदर्शनता का आशय है।

विवेचन—सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

तीन समय की स्थिति वाला, एक समय की स्थिति वाला और दो समय की स्थिति वाला एक-एक व्यक्ति रूप परमाणु आदि अनन्ताणुक पर्यन्त द्रव्य क्रमश आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक है। यह तो हुआ एकवचनापेक्षा आनुपूर्वी आदि पद का वाच्यार्थ, लेकिन जब यही तीन समय आदि की स्थिति वाले पूर्वोक्त द्रव्यव्यक्ति अनेक रूप में विवक्षित होते है तब वे 'आनुपूर्विया' आदि बहुवचनान्त पद के वाच्य हो जाते है।

यह असयोग पक्ष मे एकवचन के तीन और बहुवचन के तीन, कुल छह भगों का कथन है।

लेकिन प्रस्तुत सूत्र मे सयोगज भगो की वाच्यार्थरूपता का उल्लेख नही किया है। उन भगो को द्रव्यानुपूर्वी के समान समझ लेना चाहिए।

यह भगोपदर्शनता की वक्तव्यता है। अब समवतार का कथन करते है।

(घ) समवतार

१८९. से किं तं समोयारे ? समोयारे णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइ कहिं समोयरंति ? जाव तिण्णि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति त्ति भाणियव्वं । से तं समोयारे ।

[१८९ प्र] भगवन् ! समवतार का क्या स्वरूप है ? नैगम-व्यवहारनयसमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्यो का कहाँ समवतार (अन्तर्भाव) होता है ? यावत्—

[१८९ उ] तीनो ही स्व-स्व स्थान मे समवतरित होते है। इस प्रकार समवतार का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे समवतार सबन्धी आशय का सकेत मात्र किया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

समवतार अर्थात् उन-उन द्रव्यो का स्व-स्व जातीय द्रव्यो मे अन्तर्भूत होना। इस अपेक्षा पूर्वपक्ष के रूप मे निम्नलिखित प्रश्न है—

क्या नैगम-व्यवहारनयसमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे या अनानुपूर्वीद्रव्यो मे या अवक्तव्यकद्रव्यो मे अन्तर्भूत होते है ?

इसी प्रकार के तीन-तीन प्रश्न अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य-विषयक भी जानना चाहिये। इस तरह कुल नौ प्रश्न है। जिनका उत्तर इस प्रकार है—

१ नैगम-व्यवहारनयसमत सभी आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यो मे ही समाविष्ट होते है। किन्तु अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यो मे समाविष्ट नही होते है।

२ नैगम-व्यवहारनयमान्य समस्त अनानुपूर्वीद्रव्य अपनी जाति (अनानुपूर्वीद्रव्य) मे अन्तर्भूत होते है। उनका विजातीय आनुपूर्वी या अवक्तव्य द्रव्यो मे अन्तर्भाव नही होता है।

३ नैगम-व्यवहारनयसमत अवक्तव्यद्रव्य अवक्तव्यकद्रव्यो मे ही अन्तर्भूत होते है, अन्य आनुपूर्वी आदि द्रव्यो मे नही।

साराश यह कि आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनो ही प्रकार के द्रव्य अपने-अपने स्थान (जाति) मे ही अन्तर्भूत होते है।

(ङ) अनुगम

१९०. से किं तं अणुगमे ?

अणुगमे णवविहे पण्णत्ते । त जहा-
संतपयपरूवणया १ जाव अप्पाबहुं चेव ९ ॥ १५ ॥

[१९० प्र] भगवन् ! अनुगम का क्या स्वरूप है ?

[१९० उ] आयुष्मन् ! अनुगम नौ प्रकार का कहा है। वे प्रकार हैं—१ सत्पदप्ररूपणा यावत् ९ अल्पबहुत्व।

विवेचन—सूत्र मे अनुगम के नौ प्रकारो मे से पहले सत्पदप्ररूपणता और अतिम अल्पबहुत्व का नामोल्लेख द्वारा और शेष का ग्रहण जाव—यावत् पद द्वारा किया है। उन सभी नौ प्रकारो के नाम अनुक्रम से इस प्रकार हैं—

१ सत्पदप्ररूपणता, २. द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अतर, ७ भाग, ८ भाव, ९ अल्पबहुत्व। इन नौ प्रकारो के लक्षण पूर्व कथनानुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिये। इनकी वक्तव्यता इस प्रकार है—

(ङ १) सत्पदप्ररूपणता

१९१. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?

नियमा तिण्णि वि अत्थि।

[१९१ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी द्रव्य है या नही है?

[१९१ उ] आयुष्मन्! नियमत ये तीनो द्रव्य है।

विवेचन—सूत्र मे अनुगम के प्रथम भेद सत्पदप्ररूपणता का आशय स्पष्ट किया है।

विद्यमान पदार्थविषयक पद की प्ररूपणा को सत्पदप्ररूपणता कहते है। अतएव जब ऐसा प्रश्न किया जाता है कि नैगम-व्यवहारनयसमत आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी एव अवक्तव्य द्रव्य है या नही? तब इसका उत्तर दिया जाता है—नियमा तिण्णि वि अत्थि—ये तीनो द्रव्य सदैव अस्ति रूप है—नियमत ये तीनो द्रव्य है।

यही सत्पदप्ररूणता की वक्तव्यता का आशय है।

(ङ २) द्रव्यप्रमाण

१९२. णेगम-ववहाराण आणुपुव्विदव्वाइ किं संखेज्जाइं असखेज्जाइ अणताइ ?

तिण्णि वि नो संखेज्जाइ, असखेज्जाइ, नो अणंताइं।

[१९२ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी आदि द्रव्य सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है?

[१९२ उ] आयुष्मन्! तीनो द्रव्य सख्यात और अनन्त नही है, परन्तु असखयात है।

विवेचन—सूत्र मे आनुपूर्वी आदि द्रव्यो को असख्यात बताया है। इसका कारण यह है कि लोक मे द्रव्य तो अनन्त है, किन्तु तीन समय आदि की स्थिति वाले प्रत्येक परमाणु आदि की समयत्रयादि रूप स्थिति एक ही है। क्योकि यहाँ काल की प्रधानता है और द्रव्यबहुत्व की गौणता। इसलिये तीन समय, चार समय आदि की, एक समय की और दो समय की स्थिति वाले जितने भी परमाणु आदि अनन्त द्रव्य है वे सब अपनी-अपनी स्थिति की अपेक्षा से एक ही आनुपूर्वी आदि द्रव्य रूप है अर्थात् तीन समय की स्थिति वाले अनन्त द्रव्य एक ही आनुपूर्वी है। इसी प्रकार चार समय की स्थिति वाले अनन्त द्रव्य एक आनुपूर्वी है यावत् दस समय की स्थिति वाले एक आनुपूर्वी है, इत्यादि।

अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्य असंख्यात कैसे ?—यद्यपि एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले द्रव्यो मे प्रत्येक द्रव्य अनन्त हैं। लेकिन लोक के असखयात प्रदेश है, अत उनके अवगाह भेद असख्यात है। इसलिये एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले जितने भी द्रव्य है, उनमे से एक-एक द्रव्य मे अवगाहना के भेद से भिन्नता है। अतएव इस भिन्नता की

विवक्षा की वजह से प्रत्येक द्रव्य असख्यात हैं। तात्पर्य यह है कि लोक असख्यातप्रदेशी है, अत लोक मे एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले द्रव्यो के रहने के स्थान असख्यात है। अत: उन असख्यात आधार रूप स्थानो मे ये द्रव्य रहते है। इसलिये एक समय की और दो समय की स्थिति वाले प्रत्येक द्रव्य मे असख्यातता सिद्ध है।

(ङ ३, ४) क्षेत्र और स्पर्शना प्ररूपणा

१९३. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा ?० पुच्छा।

एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जतिभागे वा होज्जा जाव असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा देसूणे वा लोए होज्जा, णाणादव्वाइं पडुच्च नियमा-सव्वलोए होज्जा। एवं अणाणुपुव्वि-अवत्तव्वयदव्वाणि भाणियव्वाणि जहा णेगम-ववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीए।

[१९३ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के सख्यात भाग मे रहते है? इत्यादि प्रश्न है।

[१९३ उ] आयुष्मन्! एक द्रव्य की अपेक्षा (समस्त आनुपूर्वीद्रव्य) लोक के सख्यात भाग मे रहते हैं यावत् असख्यात भागो रहते है अथवा देशोन लोक मे रहते है। किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा नियमत सर्वलोक मे रहते है।

समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यो और अवक्तव्य द्रव्यो की वक्तव्यता भी नैगम-व्यवहारनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी के समान है।

१९४. एवं फुसणा कालाणुपुव्वीए वि तहा चेव भाणितव्वा।

[१९४] इस कालानुपूर्वी मे स्पर्शनाद्वार का कथन तथैव (क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही) जानना चाहिये।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे अनुगम के क्षेत्र और स्पर्शना इन दो द्वारो का निरूपण किया है।

क्षेत्रद्वार मे आनुपूर्वी-त्र्यादि समय की स्थिति वाले द्रव्य का लोक के सख्यात आदि भागो मे रहना उन-उन भागो मे उनका अवगाह सम्भवित होने की अपेक्षा जानना चाहिये तथा तीन आदि समय की स्थिति वाले सूक्ष्म परिणामयुक्त स्कन्ध के देशोन लोक मे अवगाहित होने पर एक आनुपूर्वी द्रव्य देशोन लोकवर्ती होता है।

आनुपूर्वी द्रव्य सर्वलोकव्यापी इसलिये नही कि सर्वलोकव्यापी तो अचित्त महास्कन्ध ही होता है और वह अचित्त महास्कन्ध एक समय तक ही सर्वलोकव्यापी रहता है। तदनन्तर उसका सकोच—उपसहार हो जाता है। उसे काल की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य नही कहा जा सकता, क्योकि आनुपूर्वी द्रव्य कम से कम तीन समय की स्थिति वाला ही होता है।

यदि अचित्त महास्कन्ध को सर्वलोकव्यापी माना जाये तो फिर अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यो के ठहरने का स्थान न होने के कारण उनका अभाव मानना पडेगा। लेकिन देशोन लोक मे उसकी स्थिति मानने पर लोक मे कम से कम एक प्रदेश ऐसा भी रहेगा जिसमे अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य के ठहरने के लिये स्थान मिल जाता है।

इसी प्रकार से एक अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य के लिये समझना चाहिये कि वे लोक के असंख्यात भाग मे रहते है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

क्षेत्रानुपूर्वी की तरह कालानुपूर्वी मे भी एक अनानुपूर्वी और एक अवक्तव्य द्रव्य लोक के असख्यातवे भाग मे रहता है। काल की अपेक्षा क्रमश जिसकी एक समय और दो समय की स्थिति है, वह क्षेत्र की अपेक्षा भी एक और दो प्रदेश मे स्थित होता है और वे प्रदेश लोक के असख्यातवे भाग है।

दो आदेश मलधारीयावृत्ति मे निम्नलिखित दो आदेशान्तरो का उल्लेख है—१ आएसतरेण वा सव्वपुच्छासु होज्जा। २ महाखधवज्जमन्नदव्वेसु आइल्ला चउपुच्छासु होज्जा।

प्रथम आदेश का सकेत अनानुपूर्वी के अवगाढ होने के प्रसग मे किया है। वह प्रकारान्तर से सूत्रोक्त सख्येय आदि पाचो पृच्छाओ मे लभ्य है। तात्पर्य यह हुआ कि एक समय की स्थिति वाले अनानुपूर्वीद्रव्य मे से कोई एक द्रव्य लोक के सख्यात भाग मे, कोई एक असख्यात भाग मे, कोई एक सख्यात भागो मे कोई एक असख्यात भागो मे और कोई एक सर्वलोक मे रहता है तथा नाना अनानुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा वे सर्वलोक मे भी रहते है। क्योकि एक समय की स्थिति वाले अनानुपूर्वी द्रव्यो का सर्वत्र सत्त्व है।

एक अनानुपूर्वीद्रव्य का सर्वलोक मे रहना अचित्त महास्कन्ध की दड, कपाट आदि अवस्थाओ की अपेक्षा जानना चाहिए। क्योकि ये दडादि अवस्थाये आकार भेद से परस्पर भिन्न-भिन्न है और एक-एक समयवर्ती है। अत एक-एक समयवर्ती होने के कारण वे पृथक्-पृथक् अनानुपूर्वीद्रव्य है।

दूसरे आदेश का सम्बन्ध अवक्तव्यद्रव्य से है। दो समय की स्थिति वाला कोई एक अवक्तव्यकद्रव्य लोक के सख्यातवे भाग मे, कोई असख्यातवे भाग मे, कोई सख्यात भागो मे और कोई असख्यात भागो मे अवगाढ होता है, किन्तु सर्वलोक मे अवगाढ नही होता है। क्योकि सर्वलोक मे अवगाढ तो महास्कन्ध होता है और वह दो समयो की स्थिति वाला नही है। इसी कारण अवक्तव्यकद्रव्य के विषय मे पाचवाँ विकल्प सम्भव नही है। नाना अवक्तव्यकद्रव्यो की सर्वलोकव्यापिता स्वत सिद्ध ही है।

स्पर्शना के लिये क्षेत्रानुपूर्वीवत् समझने के सकेत का तात्पर्य यह है कि क्षेत्रानुपूर्वी की तरह कालानुपूर्वी मे भी एक-एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के सख्यातवे भाग, असख्यातवे भाग, सख्यात भागो, असख्यात भागो अथवा देशोन लोक का और अनेक द्रव्यो की अपेक्षा सर्वलोक का स्पर्श करते हैं। तथा—

एक-एक अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य लोक के मात्र असख्यातवे भाग का स्पर्श करते है। किन्तु सख्यातवे भाग, सख्यातवे भागों, असख्यातवे भागो और देशोन लोक का स्पर्श नही करते हैं। विविध द्रव्यो की अपेक्षा नियमत सर्वलोक का स्पर्श जानना चाहिये।

(ङ ५) कालप्ररूपणा

१९५. [१] णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं कालतो केवचिरं होंति ?

एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं तिण्णि समया उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

[१९५-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य कालापेक्षा (आनुपूर्वी रूप मे) कितने काल तक रहते हैं।

[१९५-१ उ] आयुष्मन् ! एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य स्थिति तीन समय की और उत्कृष्ट स्थिति असख्यात काल की है। अनेक आनुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा स्थिति सर्वकालिक है।

[२] णेगम-ववहाराण अणाणुपुव्विदव्वाइं कालओ केवचिरं होंति ?

एगदव्व पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेण एक्कं समयं, नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

[१९५-२ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसमत अनानुपूर्वीद्रव्य कालापेक्षा (अनानुपूर्वी रूप मे) कितने काल तक रहते है ?

[१९५-२ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्यापेक्षया तो अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय की तथा अनेक द्रव्यो की अपेक्षा सर्वकालिक है।

[३] णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइ कालतो केवचिरं होंति ?

एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेण दो समया, नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

[१९५-३ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यकद्रव्य कालापेक्षया (अवक्तव्यक रूप मे) कितने काल रहते हैं ?

[१९५-३ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति दो समय की है और अनेक द्रव्यो की अपेक्षा स्थिति सर्वकालिक है।

विवेचन—यहाँ अनुगम के पाचवे कालद्वार की प्ररूपणा की है।

एक आनुपूर्वीद्रव्य की जघन्य स्थिति तीन समय और उत्कृष्ट स्थिति असख्यात समय की बताने का कारण यह है कि आनुपूर्वीद्रव्यो मे तीन समय की स्थिति वाले द्रव्य सबसे कम है और वे तीन समय तक ही आनुपूर्वी के रूप मे रहते है। इसलिये एकवचनान्त आनुपूर्वी द्रव्यो की जघन्य स्थिति तीन समय प्रमाण कही है और असख्यात समय की स्थिति कहने का कारण यह है कि वह द्रव्य असख्यात काल के बाद आनुपूर्वी रूप मे रहता ही नही है।

नाना आनुपूर्वीद्रव्यो की अपेक्षा स्थिति सर्वकालिक इसलिये है कि नाना आनुपूर्वी द्रव्यो का सदैव सद्भाव रहता है।

एक-एक अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य की स्थिति मात्र क्रमश एक समय और दो समय प्रमाण होने से इन दोनो के विषय मे जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा विचार किया जाना सम्भव नही होने से अजघन्य और अनुत्कृष्ट काल स्थिति एक और दो समय की बतलाई है। क्योकि एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी और दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्यक है। नाना अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्य सर्वकाल मे सम्भव होने से उनकी स्थिति सर्वाद्धा प्रमाण है।

(ङ ६.) अन्तरप्ररूपणा

१९६. [१] णेगम-ववहाराण आणुपुव्विदव्वाणमतर कालतो केवचिर होंति ?

एगदव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं दो समया, नाणादव्वाइ पडुच्च नत्थि अंतर।

[१९६-१ प्र] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यो का कालापेक्षया अन्तर कितने समय का होता है ?

[१९६-१ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। किन्तु अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही है।

[२] णेगम-ववहाराण अणाणुपुव्विदव्वाणं अंतर कालतो केवचिरं होति ?

एगदव्वं पडुच्च जहण्णेण दो समया उक्कोसेण असखेज्ज कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

[१९६-२ प्र] भगवन् ! कालापेक्षया नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यो का अन्तर कितने समय का होता है ?

[१९६-२ उ] आयुष्मन् ! एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर दो समय का और उत्कृष्ट असख्यात काल का है। अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही है।

[३] णेगम-ववहाराण अवत्तव्वगदव्वाणं पुच्छा।

एगदव्व पडुच्च जहण्णेण एग समय उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अतर।

[१९६-३] अनानुपूर्वीद्रव्यो की तरह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यकद्रव्यो के विषय मे भी प्रश्न है।

एक द्रव्य की अपेक्षा अवक्तव्यकद्रव्यो का अन्तर एक समय का और उत्कृष्ट असख्यात काल प्रमाण है। अनेक द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही है।

विवेचन—यहाँ आनुपूर्वी आदि द्रव्यो का अन्तर-विरहकाल बतलाया है। वे अपने आनुपूर्वी आदि रूपो को छोडकर अन्य परिमाण से परिणत होकर पुन उसी रूप मे कितने समय बाद परिणत हो जाते हैं ?

एक आनुपूर्वीद्रव्य का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमश एक और दो समय बताने का कारण यह है कि यदि तीन समय की स्थिति वाला कोई विवक्षित एक आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वी रूप अपने परिणाम को छोडकर किसी दूसरे परिणाम से एक समय तक परिणत रहकर पुन उसी परिणाम से तीन समय की स्थिति वाला बन जाता है तब जघन्य अन्तर एक समय का होता है और जिस समय वही द्रव्य दो समय तक परिणामान्तर से परिणत बना रहकर बाद मे तीन समय की स्थिति वाला बनता है तो उस दशा मे उत्कृष्ट दो समय का अन्तर होता है। यदि परिणामान्तर से परिणत बना हुआ वह द्रव्य क्षेत्रादि सबन्ध के भेद से दो समय से अधिक समय तक भी रहता है तो उस समय भी वह उस स्थिति मे भी आनुपूर्वित्व का अनुभवन करता है और तब वह अन्तर ही नही होता है।

नाना द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर नही कहने का कारण यह है कि तीन समय की स्थिति वाले कोई न कोई द्रव्य लोक मे सर्वदा रहते है।

अनानुपूर्वी द्रव्यो मे एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असख्यात काल का अन्तर बताने का कारण यह है कि एक समय की स्थिति वाला एक अनानुपूर्वी द्रव्य जिस समय किसी अन्य रूप में दो समय तक परिणत रहकर बाद मे पुन उसी अपनी स्थिति मे आ जाता है तब जघन्य से दो समय का अन्तर माना जाता है और यदि परिणामान्तर से परिणत हुआ एक समय तक रहता है तो वह अन्तर ही नही होता है। क्योकि उस स्थिति मे भी वह एक समय की स्थिति वाला होने मे अनानुपूर्वी रूप ही है और यदि दो समय के बाद भी परिणामान्तर से परिणत बना रहता है तो जघन्यता नही है। जब वही द्रव्य असख्यात काल तक परिणामान्तर से परिणत रहकर पुन एक समय की स्थिति वाले परिणाम को प्राप्त करता है तब उत्कृष्ट असख्यात काल का अन्तर होता है।

नाना द्रव्यो की अपेक्षा अन्तर न कहने का कारण यह है कि लोक मे सर्वदा उनका सद्भाव रहा करता है।

एकवचनान्त अवक्तव्यद्रव्य के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर के लिये यह समझना चाहिये कि दो समय की स्थिति वाला कोई अवक्तव्यकद्रव्य परिणामान्तर मे परिणत हुआ एक समय तक रहता है और बाद मे पुन वह दो समय की स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब विरहकाल जघन्य रूप मे एक समय है और जब दो समय की स्थिति वाला कोई अवक्तव्यद्रव्य असख्यात काल तक परिणामान्तर से परिणत रहकर पुन दो समय की अपनी पूर्व स्थिति मे आता है तब उसका अन्तर असख्यात काल का माना जाता है।

नाना अवक्तव्यद्रव्यो का लोक मे सर्वदा सद्भाव पाये जाने से अन्तर नही है।

(ङ ७) भागद्वार

१९७. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइ सेसदव्वाण कइभागे होज्जा ? पुच्छा।

जहेव खेत्ताणुपुव्वीए।

[१९७ प्र] भगवन्! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यो के कितनेवे भाग प्रमाण है ?

[१९७ उ] आयुष्मन्! यहाँ कालानुपूर्वी के प्रसग मे तीनो द्रव्यो के लिये क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही कथन समझना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे कालानुपूर्वी के भागद्वार का वर्णन करने लिये क्षेत्रानुपूर्वी के भागद्वार का अतिदेश किया है और क्षेत्रानुपूर्वी के प्रसग मे द्रव्यानुपूर्वी का अतिदेश किया है। आशय यह हुआ कि द्रव्यानुपूर्वी के भागद्वार की तरह इस कालानुपूर्वी के भागद्वार की भी वक्तव्यता जाननी चाहिये। सक्षेप मे वह इस प्रकार है—

समस्त आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो की अपेक्षा असख्यातभागो से अधिक—असख्यातगुणित है और शेष द्रव्य- अनानुपूर्वी एव अवक्तव्यक द्रव्य—इनकी अपेक्षा असख्यातभाग न्यून है, इसका कारण यह है कि अनानुपूर्वी एक समय की स्थिति रूप एक स्थान को और अवक्तव्यकद्रव्य द्विसमय की स्थिति रूप एक स्थान को ही प्राप्त है, किन्तु आनुपूर्वीद्रव्य तीन-चार-पाच आदि समय की स्थिति रूप स्थानो से लेकर असख्यात समय तक की स्थिति रूप स्थानो को प्राप्त करता है। इस प्रकार आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यो की अपेक्षा असख्यातभागो मे अधिक और शेष दो द्रव्य उसकी अपेक्षा असख्यातभाग न्यून होते हैं।

(ङ ८,९) भाव और अल्पबहुत्व द्वार

१९८. भावो वि तहेव । अप्पाबहुं पि तहेव नेयव्वं जाव से तं अणुगमे । से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ।

[१९८] भावद्वार और अल्पबहुत्व का भी कथन क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही समझना चाहिये यावत् अनुगम का यह स्वरूप है।

इस प्रकार नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—सूत्र मे क्षेत्रानुपूर्वी की भाव और अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की तरह कालानुपूर्वी के भी इन दोनो द्वारो का कथन करने का उल्लेख करते हुए अनुगम और नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी के वर्णन की समाप्ति की सूचना दी गई है।

भाव और अल्पबहुत्व प्ररूपणा का साराश इस प्रकार है—

आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक ये तीनो द्रव्य सादि पारिणामिक भाव वाले है।

इनका अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना चाहिये—समस्त अवक्तव्यद्रव्य स्वभाव से ही कम होने से शेष दो द्रव्यो की अपेक्षा अल्प है। अनानुपूर्वीद्रव्य अवक्तव्यकद्रव्यो की अपेक्षा विशेषाधिक तथा आनुपूर्वीद्रव्य इन दोनो द्रव्यो की अपेक्षा असख्यातगुण अधिक है। यह असख्यातगुणाधिकता पूर्वोक्त भागद्वार की तरह यहाँ जानना चाहिये।

इस प्रकार नैगम-व्यवहारनयसमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन करने के पश्चात् अब सग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का विचार किया जाता है।

संग्रहनयमान्य अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी

१९९. से किं त संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?

सगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी पचविहा पण्णत्ता। त जहा—अट्ठपयपरूवणया १ भंगसमुक्कित्तणया २ भगोवदसणया ३ समोतारे ४ अणुगमे ५ ।

[१९९ प्र] भगवन् ! सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[१९९ उ] आयुष्मन् ! सग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पाच प्रकार की है। वे प्रकार है—१ अर्थपदप्ररूपणता, २ भगसमुत्कीर्तनता, ३ भगोपदर्शनता, ४ समवतार और ५ अनुगम।

विवेचन—अर्थपदप्ररूपणता आदि के लक्षण पूर्व मे कहे जा चुके है। आगे उनके आशय का निर्देश करते है।

संग्रहनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता आदि

२००. से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया ?

संगहस्स अट्ठपयपरूवणया एयाइ पच वि दाराइं जहा खेत्ताणुपुव्वीए संगहस्स तहा कालाणुपुव्वीए वि भाणियव्वाणि, णवर ठितीअभिलावो जाव से तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी । से तं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ।

[२०० प्र] भगवन् ! सग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

[२०० उ] आयुष्मन् ! इन पाचो द्वारो का कथन सग्रहनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी की तर समझ लेना चाहिये । विशेष यह कि 'प्रदेशावगाढ' के बदले 'स्थिति' कहना चाहिये यावत् इस प्रका से सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी और अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन हुआ ।

विवेचन—सूत्र मे सग्रहनयसमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के अतिदेश द्वारा कालानुपूर्वी पाच पदो का वर्णन किया है । क्षेत्रानुपूर्वी सबन्धी इन पाच पदो का विस्तार से वर्णन पूर्व मे किय गया है । तदनुसार प्रदेशावगाढता के स्थान पर 'समयस्थितिक' पद का प्रयोग करके जैसा-का-तैस वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिये ।

इस प्रकार से समस्त अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन करने के अनन्तर अब अल्प वक्तव्य होने से स्थाप्य मानी गई औपनिधिकी कालानुपूर्वी की व्याख्या करते है ।

औपनिधिकी कालानुपूर्वी : प्रथम प्रकार

२०१. [१] से किं तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी ?

ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता । त जहा--पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी अणाणुपुव्वी ३ ।

[२०१-१ प्र] भगवन् ! औपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०१-१ उ] आयुष्मन् ! औपनिधिकी कालानुपूर्वी के तीन प्रकार है—१ पूर्वानुपूर्वी २ पश्चानुपूर्वी और ३ अनानुपूर्वी ।

[२] से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी एगसमयठितीए दुसमयठितीए तिसमयठितीए जाव दससमयठितीए जाव सखेज्ज समयठितीए असंखेज्जसमयठितीए । से तं पुव्वाणुपुव्वी ।

[२०१-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०१-२ उ] आयुष्मन् ! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—एक समय की स्थिति वाले दो समय की स्थिति वाले, तीन समय की स्थिति वाले यावत् दस समय की स्थिति वाले यावत् सख्या समय की स्थिति वाले, असख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यो का अनुक्रम से उपन्यास करने क (औपनिधिकी) पूर्वानुपूर्वी कहते है ।

[३] से किं त पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी असंखेज्जसमयठितीए जाव एक्कसमयठितीए । से तं पच्छाणुपुव्वी ।

[२०१-३ प्र] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०१-३ उ] आयुष्मन् ! असख्यात समय की स्थिति वाले से लेकर एक समय पर्यन्त क स्थिति वाले द्रव्यो का—व्युत्क्रम से उपन्यास करना पश्चानुपूर्वी है ।

[४] से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए असंखेज्जगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी।

[२०१-४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०१-४ उ] आयुष्मन् ! अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार जानना कि एक से लेकर असंख्यात पर्यन्त एक-एक की वृद्धि द्वारा निष्पन्न श्रेणी मे परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त महाराशि मे से आदि और अंत के दो भंगो से न्यून भंग अनानुपूर्वी है।

विवेचन—सूत्र मे औपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन किया गया है। सूत्र का आशय स्पष्ट है कि आदि से प्रारंभ कर अंत तक का क्रम पूर्वानुपूर्वी, व्युत्क्रम से—अन्त से प्रारंभ कर आदि तक का क्रम पश्चानुपूर्वी तथा अनुक्रम एवं व्युत्क्रम से आदि और अंत के दो स्थानो को छोडकर शेष सभी बीच के भंग अनानुपूर्वी रूप है। आदि भंग पूर्वानुपूर्वी और अंतिम भंग पश्चानुपूर्वी रूप होने से इनको ग्रहण न करने का कथन किया है।

अब प्रकारान्तर से औपनिधिकी कालानुपूर्वी का वर्णन करते है।

औपनिधिकी कालानुपूर्वी : द्वितीय प्रकार

२०२. **[१] अहवा ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।**

[२०२-१] अथवा औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है। जैसे—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

[२] से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी समए आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते दिवसे अहोरत्ते पक्खे मासे उडू अयणे संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससतसहस्से पुव्वंगे पुव्वे तुडियंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हूहुयंगे हूहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे अउयंगे अउए नउयंगे नउए पउयंगे पउए चूलियंगे चूलिए सीसपहेलियंगे सीसपहेलिया पलिओवमे सागरोवमे ओसप्पिणी उस्सप्पिणी पोग्गलपरियट्टे तीतद्धा अणागतद्धा सव्वद्धा। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[२०२-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०२-२ उ] आयुष्मन् ! समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अडडांग, अडड, अववांग, अवव, हुहुकांग, हुहुक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपुरांग, अर्थनिपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्त, अतीताद्धा, अनागताद्धा, सर्वाद्धा रूप क्रम से पदो का उपन्यास करना काल संबन्धी पूर्वानुपूर्वी है।

[३] से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी सव्वद्धा अणागतद्धा जाव समए । से तं पच्छाणुपुव्वी ।

[२०२-३ प्र] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०२-३ उ] आयुष्मन् ! सर्वाद्धा, अनागताद्धा यावत् समय पर्यन्त व्युत्क्रम से पदो की स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है ।

[४] से किं त अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए अणतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणे । से तं अणाणुपुव्वी । से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी । से तं कालाणुपुव्वी ।

[२०२-४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का स्वरूप क्या है ?

[२०२-४ उ] आयुष्मन् ! इन्ही की (समयादि की) एक से प्रारभ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा सर्वाद्धा पर्यन्त की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार से निष्पन्न राशि मे से आद्य और अतिम दो भगो को कम करने के बाद बचे शेष भग अनानुपूर्वी है ।

इस प्रकार से औपनिधिकी कालानुपूर्वी और साथ ही कालानुपूर्वी का वर्णन पूर्ण हुआ ।

विवेचन—सूत्र मे प्रकारान्तर से औपनिधिकी कालानुपूर्वी का स्वरूप बताया है और अत मे कालानुपूर्वी के वर्णन की समाप्ति का सकेत किया है ।

सूत्रोक्त औपनिधिकी कालानुपूर्वी की वक्तव्यता का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

औपनिधिकी कालानुपूर्वी के दोनो प्रकारो के अवान्तर भेदो के नाम समान है । प्रथम प्रकार मे काल और द्रव्य का अभेदोपचार करके समयनिष्ठ द्रव्य का कालानुपूर्वी के रूप मे और दूसरे प्रकार मे कालगणना के क्रम का कथन किया है ।

समय काल का सबसे सूक्ष्म अश और काल गणना की आद्य इकाई है । इससे समस्त आवलिका आदि रूप काल सज्ञाओ की निष्पत्ति होती है । इसीलिये सूत्रकार ने सर्वप्रथम इसका उपन्यास किया है । समय आदि का वर्णन आगे किया जाएगा ।

समय से लेकर सर्वाद्धा पर्यन्त अनुक्रम से उपन्यास पूर्वानुपूर्वी, व्युत्क्रम से उपन्यास पश्चानुपूर्वी एव पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी गणना के आद्य भग को छोडकर यथेच्छ किसी भी भग से उपन्यास करना अनानुपूर्वी रूप है ।

इस प्रकार समग्र रूप से कालानुपूर्वी का वर्णन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त उत्कीर्तानुपूर्वी का निरूपण करते है ।

उत्कीर्तनानुपूर्वीनिरूपण

२०३. [१] **से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ?**

उक्कित्तणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता । त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३ ।

[२०३-१ प्र] भगवन् ! उत्कीर्तनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०३-१ उ] आयुष्मन् ! उत्कीर्तनानुपूर्वी के तीन प्रकार है। यथा—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

[२] से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी उसभे १ अजिए २ संभवे ३ अभिणंदणे ४ सुमती ५ पउमप्पभे ६ सुपासे ७ चंदप्पहे ८ सुविही ९ सीतले १० सेज्जंसे ११ वासुपुज्जे १२ विमले १३ अणंते १४ धम्मे १५ संती १६ कुंथू १७ अरे १८ मल्ली १९ मुणिसुव्वए २० णमी २१ अरिट्ठणेमी २२ पासे २३ वद्धमाणे २४। से त पुव्वाणुपुव्वी।

[२०३-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०३-२ उ] आयुष्मन् ! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—१ ऋषभ, २ अजित, ३ संभव, ४ अभिनन्दन, ५. सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ सुविधि, १० शीतल, ११ श्रेयांस, १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्त, १५ धर्म, १६ शान्ति, १७ कुन्थु, १८ अर, १९ मल्लि, २० मुनिसुव्रत, २१ नमि, २२ अरिष्टनेमि, २३ पार्श्व, २४ वर्धमान इस क्रम से नामोच्चारण करने को पूर्वानुपूर्वी कहते है।

[३] से किं त पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी वद्धमाणे २४ पासे २३ जाव उसभे १। से त पच्छाणुपुव्वी।

[२०३-३ प्र] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०३-३ उ] आयुष्मन् ! व्युत्क्रम से अर्थात् वर्धमान, पार्श्व से प्रारंभ करके प्रथम ऋषभ पर्यन्त नामोच्चारण करना पश्चानुपूर्वी है।

[४] से किं त अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए चउवीसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो। से त अणाणुपुव्वी। से तं उक्कित्तणाणुपुव्वी।

[२०३-४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०३-४ उ] आयुष्मन् ! इन्ही की (ऋषभ से वर्धमान पर्यन्त की) एक से लेकर एक-एक की वृद्धि करके चौवीस संख्या की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार करने से जो राशि बनती है उसमे से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष भंग अनानुपूर्वी है।

विवेचन—सूत्र मे उत्कीर्तनापूर्वी की व्याख्या की है।

नाम के उच्चारण करने को उत्कीर्तन कहते है और इस उत्कीर्तन की परिपाटी उत्कीर्तनानुपूर्वी कहलाती है।

ऋषभ, अजित आदि का क्रम से वर्धमान पर्यन्त परिपाटी रूप मे नामोच्चारण करना उत्कीर्तनानुपूर्वी का प्रथम भेद पूर्वानुपूर्वी है।

इन ऋषभ आदि के नामोच्चारण मे ऋषभनाथ सबसे प्रथम उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उनका प्रथम नामोच्चारण किया है। तदनन्तर जिस क्रम से अजित आदि हुए उसी क्रम से उनका उच्चारण किया है। पश्चानुपूर्वी मे वर्धमान को आदि करके ऋषभ पद को अत मे उच्चारित किया जाता है। एक से लेकर चौवीस अको का परस्पर गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो, उसमे आदि-अत के दो भगो को कम करने पर शेष रहे भग अनानुपूर्वी है।

ऋषभ आदि के उत्कीर्तन का कारण—इस शास्त्र मे आवश्यक का प्रकरण होने पर भी अनानुपूर्वी में सामायिक आदि का उत्कीतन न कहकर प्रकरणबाह्य ऋषभ आदि का उत्कीर्तन करने का कारण यह है कि यह शास्त्र सर्वव्यापक है। इसी बात का समर्थन करने के लिये ऋषभ आदि का उत्कीर्तन किया है और उनके नाम का उच्चारण करना इसलिये युक्त है कि वे तीर्थंकर्ता है। इनके नाम का उच्चारण करने वाला श्रेय को प्राप्त कर लेता है।

शेष सूत्रस्थ पदो की व्याख्या सुगम्य है।

गणनानुपूर्वी प्ररूपणा

२०४. [१] से किं तं गणणाणुपुव्वी ?

गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[२०४-१ प्र] भगवन् ! गणनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०४-१ उ] आयुष्मन् ! गणनानुपूर्वी के तीन प्रकार हैं। वे इस तरह—१ पूर्वानुपूर्वी २ पश्चानुपूर्वी ३ अनानुपूर्वी।

[२] से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी एक्को दस सयं सहस्सं दससहस्साइं सयसहस्स दससयसहस्साइ कोडी दस कोडीओ कोडीसयं दसकोडीसयाइं से त पुव्वाणुपुव्वी।

[२०४-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०४-२ उ] आयुष्मन् ! एक, दस, सौ, सहस्र (हजार), दस सहस्र, शतसहस्र (लाख), दसशतसहस्र, कोटि (करोड), दस कोटि, कोटिशत (अरब), दस कोटिशत (दस अरब), इस प्रकार से गिनती करना पूर्वानुपूर्वी है।

[३] से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी दसकोडिसयाइं जाव एक्को। से त पच्छाणुपुव्वी।

[२०४-३ प्र] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०४-३ उ] आयुष्मन् ! दस अरब से लेकर व्युत्क्रम से एक पर्यन्त की गिनती करना पश्चानुपूर्वी है।

[४] से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं गणणाणुपुव्वी।

[२०४-४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ।

[२०४-४ उ] आयुष्मन् ! इन्ही को एक से लेकर दस अरब पर्यन्त की एक-एक वृद्धि वाली श्रेणी मे स्थापित सख्या का परस्पर गुणा करने पर जो भग हो, उनमे से आदि और अत के दो भगों को कम करने पर शेष रहे भग अनानुपूर्वी है ।

विवेचन—प्रस्तुत मे सप्रभेद गणनानुपूर्वी का स्वरूप बतलाया है ।

गिनती करने की पद्धति को गणनानुपूर्वी कहते है । 'एक' यह गणना का आदि स्थान है और इसके बाद क्रमश पूर्व-पूर्व को दस गुणा करते जाने पर उत्तर-उत्तर की दस, सौ, हजार आदि की सख्याएँ प्राप्त होती है ।

इनमे पूर्वानुपूर्वी एक से प्रारभ होती है और पश्चानुपूर्वी इसके विपरीत उत्कृष्ट से प्रारभ कर जघन्यतम गणनास्थान मे पूर्ण होती है । अनानुपूर्वी मे जघन्य और उत्कृष्ट पद रूप अनुक्रम एव व्युत्क्रम छोड करके यथेच्छ क्रम का अनुसरण किया जाता है ।

अब क्रमप्राप्त सस्थानानुपूर्वी का स्वरूप बतलाते है ।

संस्थानानुपूर्वीप्ररूपणा

२०५. [१] से किं त संठाणाणुपुव्वी ?

संठाणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता । त जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३ ।

[२०५-१ प्र] भगवन् ! सस्थानापूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०५-१ उ] आयुष्मन् ! सस्थानापूर्वी के तीन प्रकार है—१ पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी ३ अनानुपूर्वी ।

[२] से किं त पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी समचउरंसे १ णग्गोहमडले २ सादी ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६ । से तं पुव्वाणुपुव्वी ।

[२०५-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी किसे कहते है ?

[२०५-२ उ] आयुष्मन् ! १ समचतुरस्रसस्थान, २ न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, ३. सादि-सस्थान, ४ कुब्जसस्थान, ५ वामनसस्थान, ६ हुडसस्थान के क्रम से सस्थानो के विन्यास करने को पूर्वानुपूर्वी कहते है ।

[३] से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी हुंडे ६ जाव समचउरंसे १ । से तं पच्छाणुपुव्वी ।

[२०५-३ प्र.] भगवन् ! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०५-३ उ.] आयुष्मन् ! हुडसस्थान से लेकर समचतुरस्रसस्थान तक व्युत्क्रम से संस्थानो का उपन्यास करना पश्चानुपूर्वी है ।

[४] से किं तं अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं संठाणाणुपुव्वी।

[२०५-४ प्र] भगवन् ! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०५-४ उ] आयुष्मन् ! एक से लेकर छह तक की एकोत्तर वृद्धि वाली श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने पर निष्पन्न राशि में से आदि और अन्त रूप दो भंगों को कम करने पर शेष भंग अनानुपूर्वी है।

इस प्रकार से संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप जानना चाहिए।

विवेचन—सूत्र में संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप बतलाया है।

संस्थान, आकार और आकृति, ये समानार्थक शब्द हैं। इन संस्थानों की परिपाटी संस्थानानुपूर्वी कहलाती है।

यद्यपि ये संस्थान जीव और अजीव सम्बन्धी होने से दो प्रकार के हैं, तथापि यहाँ जीव से संबद्ध और उसमें भी पंचेन्द्रिय जीव संबन्धी ग्रहण किये गये हैं।

ये संस्थान समचतुरस्र आदि के भेद से छह प्रकार के हैं। इनके लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. समचतुरस्रसंस्थान 'समा चतस्रोऽस्रयो यत्र तत् समचतुरस्रम्' यह इसकी व्युत्पत्ति है। तात्पर्य यह हुआ कि जिस संस्थान में नाभि से ऊपर के और नीचे के समस्त अवयव सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अपने-अपने प्रमाण से युक्त हों—हीनाधिक न हों, वह समचतुरस्रसंस्थान है। इस संस्थान में शरीर के नाभि से ऊपर और नीचे के सभी अंग-प्रत्यंग प्रमाणोपेत होते हैं। आरोह-परिणाह (उतार-चढाव) अनुरूप होता है। इस संस्थान वाला शरीर अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊंचाई वाला होता है, यह संस्थान सर्वोत्तम होता है।

समस्त संस्थानों में मुख्य, शुभ होने से इस संस्थान का प्रथम उपन्यास किया है।

२. न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान—न्यग्रोध के समान विशिष्ट प्रकार के शरीराकार को न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान कहते हैं। न्यग्रोध वटवृक्ष का नाम है। इसके समान जिसका मंडल (आकार) हो अर्थात् जैसे न्यग्रोध-वटवृक्ष ऊपर में संपूर्ण अवयवों वाला होता है और नीचे वैसा नहीं होता। इसी प्रकार यह संस्थान भी नाभि से ऊपर विस्तार वाला और नाभि से नीचे हीन प्रमाण वाला होता है। इस प्रकार का संस्थान न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान कहलाता है।

३. सादिसंस्थान - 'आदिना सह यद् वर्तते तत् सादि।' अर्थात् नाभि से नीचे का उत्सेध नाम का देहभाग यहाँ आदि शब्द से ग्रहण किया गया है। अतएव नाभि से नीचे का भाग जिस संस्थान में विस्तार वाला और नाभि से ऊपर का भाग हीन होता है, वह संस्थान सादि है। यद्यपि समस्त शरीर आदि सहित होते हैं, तो भी यहाँ सादि विशेषण यह बतलाने के लिए प्रयुक्त किया है इस संस्थान में नाभि के नीचे के अवयव आद्य संस्थान जैसे होते हैं, नाभि से ऊपर के अवयव वैसे नहीं होते।

४. कुब्जसंस्थान—जिस संस्थान में सिर, ग्रीवा, हाथ, पैर तो उचित प्रमाण वाले हों,

किन्तु हृदय, पीठ और उदर प्रमाण-विहीन हो, वह कुब्जसंस्थान है। अर्थात् पीठ, पेट आदि में कूबड हो ऐसा संस्थान कुब्जसंस्थान कहलाता है।

५. वामनसंस्थान—जिस संस्थान में वक्षस्थल, उदर और पीठ लक्षणयुक्त प्रमाणोपेत हो और बाकी के अवयव लक्षणहीन हो, उसका नाम वामनसंस्थान है। यह संस्थान कुब्ज से विपरीत होता है। सामान्य व्यवहार में ऐसे संस्थान वाले को बौना या वामनिया कहा जाता है।

६. हुंडसंस्थान—जिस संस्थान में समस्त शरीरावयव प्राय लक्षणविहीन हो।

किन्ही-किन्ही आचार्यों ने संस्थानो के क्रम मे वामन को चौथा और कुब्ज को पाचवां स्थान दिया है। समचतुरस्रसंस्थान समस्त लक्षणो से युक्त होने से मुख्य है और शेष मे यथाक्रम लक्षणो से हीनता होने के कारण अशुभता है।

इस प्रकार संस्थानानुपूर्वी की वक्तव्यता पूर्ण हुई। अब शेष रहे दो आनुपूर्वीभेदो मे से पहले समाचारी-आनुपूर्वी का विचार करते है।

समाचारी-आनुपूर्वीप्ररूपणा

२०६. [१] से किं तं सामायारीआणुपुव्वी ?

सामायारीआणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[२०६-१ प्र] भगवन् ! समाचारी-आनुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०६-१ उ] आयुष्मन् ! समाचारी-आनुपूर्वी तीन प्रकार की है—१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

[२] से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी—

इच्छा १ मिच्छा २ तहक्कारो ३ आवसिया ४ य निसीहिया ५।
आपुच्छणा ६ य पडिपुच्छा ७ छंदणा ८ य निमंतणा।
उवसंपया य काले १० सामायारी भवे दसविहा ३॥ १६॥

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[२०६-२ प्र] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

[२०६-२ उ] आयुष्मन् ! पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—

१ इच्छाकार, २ मिथ्याकार, ३ तथाकार, ४ आवश्यकी, ५ नैषेधिकी, ६ आप्रच्छना, ७ प्रतिप्रच्छना, ८ छंदना, ९ निमंत्रणा, १० उपसपद्। यह दस प्रकार की समाचारी है।

उक्त क्रम से इन पदो की स्थापना करना पूर्वानुपूर्वी है।

[३] से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी उवसंपया १० जाव इच्छा १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[२०६-३ प्र.] भगवन्! पश्चानुपूर्वी का स्वरूप क्या है?

[२०६-३ उ.] आयुष्मन्! उपसंपद् से लेकर इच्छाकार पर्यन्त व्युत्क्रम से स्थापना करना समाचारी-सम्बन्धी पश्चानुपूर्वी है।

[४] से किं तं अणाणुपुव्वी?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं सामायारीआणुपुव्वी।

[२०६-४ प्र.] भगवन्! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[२०६-४ उ.] आयुष्मन्! एक से लेकर दस पर्यन्त एक-एक की वृद्धि द्वारा श्रेणी रूप में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त राशि में से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी है।

इस प्रकार से समाचारी-आनुपूर्वी का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्रार्थ सुगम है। शिष्टजनों द्वारा आचरित क्रियाकलाप रूप आचार की परिपाटी समाचारी-आनुपूर्वी है और उस समाचारी का इच्छाकार आदि के क्रम से उपन्यास करना पूर्वानुपूर्वी आदि है। इच्छाकार आदि के लक्षण इस प्रकार हैं—

१. **इच्छाकार**—बिना किसी दबाव के आन्तरिक प्रेरणा से व्रतादि के आचरण करने की इच्छा करना इच्छाकार है।

२. **मिथ्याकार**—अकृत्य का सेवन हो जाने पर पश्चात्ताप द्वारा मैंने यह मिथ्या—असत् आचरण किया, ऐसा विचार करना मिथ्याकार कहलाता है।

३. **तथाकार**—गुरु के वचनों को 'तहत' कहकर स्वीकार करना—गुरु-आज्ञा को स्वीकार करना।

४. **आवश्यकी**—आवश्यक कार्य के लिए बाहर जाने पर गुरु से निवेदन करना।

५. **नैषेधिकी**—कार्य करके वापस आने पर अपने प्रवेश की सूचना देना।

६. **आपृच्छना**—किसी भी कार्य को करने के लिये गुरुदेव से आज्ञा लेना—पूछना।

७. **प्रतिपृच्छना**—कार्य को प्रारंभ करते समय पुनः गुरुदेव से पूछना अथवा किसी कार्य के लिये गुरुदेव ने मना कर दिया हो तब थोड़ी देर बाद कार्य की अनिवार्यता बताकर पुनः पूछना।

८. **छंदना**—अन्य सांभोगिक साधुओं से अपना लाया आहार आदि ग्रहण करने के लिये निवेदन करना।

९. **निमंत्रणा**—आहारादि लाकर आपको दूंगा, ऐसा कहकर अन्य साधुओं को निमंत्रित करना।

१०. **उपसंपत्**—श्रुतादि की प्राप्ति के अर्थ अन्य साधु की आधीनता स्वीकार करना।

इच्छाकारादि का उपन्यासक्रम—धर्म का आचरण स्वेच्छामूलक है। इसके लिये पर की आज्ञा कार्यकारी नहीं होती है। इसलिये इच्छा प्रधान होने से सर्वप्रथम इच्छाकार का उपन्यास किया है।

व्रतादिकों में स्खलना होने पर 'मिथ्या दुष्कृत' दिया जाता है। अतः इच्छाकार के बाद मिथ्याकार का पाठ रखा है।

इच्छाकार और मिथ्याकार ये दोनो गुरुवचनो पर विश्वास रखने पर शक्य हैं, अतः मिथ्याकार के बाद तथाकार का विन्यास किया है।

गुरुवचन को स्वीकार करके भी शिष्य का कर्तव्य है कि जब वह उपाश्रय से बाहर जाए तो आज्ञा लेकर जाए। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये तथाकार के बाद आवश्यकी का पाठ रखा है।

बाहर गया हुआ शिष्य नैषेधिकी पूर्वक ही उपाश्रय मे प्रवेश करे। यह सकेत करने के लिये आवश्यकी के बाद नैषेधिकी का उपन्यास किया है।

उपाश्रय मे प्रविष्ट शिष्य जो कुछ भी करे वह गुरु की आज्ञा लेकर करे। यह बताने के लिए नैषेधिकी के बाद आप्रच्छना का पाठ रखा है।

किसी कर्त्तव्य कार्य को करने के लिये शिष्य गुरु से आज्ञा ले और वे उस कार्य को न करने की आज्ञा दे और कार्य अत्यावश्यक हो तो कार्य प्रारभ करने के पूर्व पुन गुरु से आज्ञा ले, यह बताने के लिए आप्रच्छना के अनन्तर प्रतिप्रच्छना का विन्यास किया है।

गुरु की आज्ञा प्राप्त कर अशनादि लाने वाला शिष्य उसके परिभोग के लिये अन्य साधुओ को सादर आमत्रित करे, इस बात को बताने के लिये प्रतिप्रच्छना के बाद छंदना का पाठ रखा है।

गृहीत आहारादि मे ही छन्दना होती है, परन्तु अगृहीत आहारादि मे निमत्रणा होती है, इसीलिये छन्दना के बाद निमत्रणा का विन्यास किया है।

इच्छाकार से लेकर निमत्रणा तक की सभी समाचारी गुरुमहाराज की निकटता के बिना नही की जा सकती है। इसका सकेत करने के लिये सबसे अत मे उपसपत् का उपन्यास किया है।

समाचारी-आनुपूर्वी का यह स्वरूप है।

अब आनुपूर्वी के अतिम भेद भावानुपूर्वी का कथन करते है।

भावानुपूर्वीप्ररूपणा

२०७. [१] से किं तं भावाणुपुव्वी ?

भावाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी १ पच्छाणुपुव्वी २ अणाणुपुव्वी ३।

[२०७-१ प्र.] भगवन्! भावानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[२०७-१ उ] आयुष्मन्! भावानपूर्वी तीन प्रकार की है। यथा--१ पूर्वानुपूर्वी, २ पश्चानुपूर्वी, ३ अनानुपूर्वी।

[२] से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

पुव्वाणुपुव्वी उदइए १ उवसमिए २ खइए ३ खओवसमिए ४ पारिणामिए ५ सन्निवाइए ६। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

[२०७-२ प्र] भगवन्! पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[२०७-२ उ] आयुष्मन्! १ औदयिकभाव, २ औपशमिकभाव, ३ क्षायिकभाव, ४ क्षायोपशमिकभाव ५ पारिणामिकभाव, ६ सान्निपातिकभाव, इस क्रम से भावो का उपन्यास करना पूर्वानुपूर्वी है।

[३] से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

पच्छाणुपुव्वी सन्निवातिए ६ जाव उदइए १। से तं पच्छाणुपुव्वी।

[२०७-३ प्र] भगवन्! पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[२०७-३ उ] आयुष्मन्! सान्निपातिकभाव से लेकर औदयिकभाव पर्यन्त भावो की व्युत्क्रम से स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है।

[४] से किं त अणाणुपुव्वी ?

अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से त भावाणुपुव्वी। से त आणुपुव्वी त्ति पद समत्त।

[२०७-४ प्र] भगवन्! अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

[२०७-४ उ] आयुष्मन्! एक से लेकर एकोत्तर वृद्धि द्वारा छह पर्यन्त की श्रेणी में स्थापित सख्या का परस्पर गुणाकार करने पर प्राप्त राशि मे से प्रथम और अन्तिम भग को कम करने पर शेष रहे भग अनानुपूर्वी हैं।

इस प्रकार से भाव-अनानुपूर्वी का वर्णन पूर्ण हुआ और इसके साथ ही उपक्रम के आनुपूर्वी नामक प्रथम भेद की वक्तव्यता भी समाप्त हुई।

विवेचन—सूत्र मे भावानुपूर्वी का स्वरूप बतलाया है। वस्तु के परिणाम (पर्याय) को भाव कहते है। प्रस्तुत भाव अन्तःकरण की परिणतिविशेष रूप है। भाव जीव और अजीव दोनो मे पाये जाते हैं, परन्तु प्रसग होने से यहाँ जीव से सबद्ध भावो को ग्रहण किया है, अर्थात् ये औदयिक आदि भाव जीव के परिणामविशेष है। इन परिणाम रूप भावो की परिपाटी को भावानुपूर्वी कहते है।

भावो का क्रमविन्यास—इस शास्त्र मे नारकादि चारो गतिया औदयिकभाव रूप से कही जाने वाली है और औदयिकभाव रूप नरकादि गतियो के होने पर ही शेष औपशमिक आदि भाव यथासभव उत्पन्न होते है। इसी कारण उसका सर्वप्रथम उपन्यास किया है और इसके बाद अवशिष्ट पाच भावो का।

अवशिष्ट पाच भावो मे भी औपशमिक भाव अल्प विषय वाला है। इसलिये प्रथम औपशमिक भाव का और औपशमिक की अपेक्षा अधिक विषय वाला होने से औपशमिक के बाद क्षायिकभाव का विन्यास किया है। इसके अनन्तर विषयो की तरतमता का आश्रय करके क्रम से क्षायोपशमिक और पारिणामिक भाव का पाठ रखा है। इन पूर्वोक्त भावो के द्विकादि सयोगो से सान्निपातिकभाव उत्पन्न होता है। इसलिये सब से अत मे सान्निपातिकभाव का उपन्यास किया गया है।

इस प्रकार का क्रमविन्यास पूर्वानुपूर्वी रूप है और व्युत्क्रम पश्चानुपूर्वी है और आदि तथा अत भग को छोड़कर शेष भग अनानुपूर्वी हैं।

इस प्रकार से भावानुपूर्वी का वर्णन जानना चाहिये । पूर्व मे नामानुपूर्वी से लेकर भावानुपूर्वी तक जो दस आनुपूर्वियो के नाम गिनाये थे, उनका वर्णन समाप्त हो चुका है, यह सूचना सूत्र मे 'से त आणुपुव्वी' पद द्वारा दी गई है तथा 'आणुपुव्वि त्ति पद समत्त' पद द्वारा यह बतलाया है कि उपक्रम के प्रथम भेद आनुपूर्वी की वक्तव्यता भी समाप्त हुई। अब उपक्रम के दूसरे भेद नाम का वर्णन करते है।

नामाधिकार की भूमिका

२०८. से किं त णामे ?

णामे दसविहे पण्णत्ते । त जहा—एगणामे १ दुणामे २ तिणामे ३ चउणामे ४ पंचणामे ५ छणामे ६ सत्तणामे ७ अट्ठणामे ८ नवणामे ९ दसणामे १० ।

[२०८ प्र] भगवन् ! नाम का क्या स्वरूप है ?

[२०८ उ] आयुष्मन् ! नाम के दस प्रकार हैं। वे इस तरह—१ एक नाम, २ दो नाम, ३ तीन नाम, ४ चार नाम, ५ पाच नाम, ६ छह नाम, ७ सात नाम, ८ आठ नाम, ९. नौ नाम, १० दस नाम ।

विवेचन उपक्रम के द्वितीय भेद नाम की प्ररूपणा की भूमिका रूप यह सूत्र है ।

नाम का लक्षण— जीव, अजाव रूप किसी भी वस्तु का अभिधायक—वाचक शब्द नाम कहलाता है ।[1]

इस नाम के एक, दो, तीन आदि प्रकारो मे दस भेद है । जिस एक नाम से समस्त पदार्थों का कथन हो जाए, वह एक नाम है । जैसे सत् । ऐसा कोई भी पदार्थ नही जो सत्ता से विहीन हो अत इस सत् नाम मे लोकवर्ती समस्त पदार्थो का युगपत् कथन हो जाने से सत् एक नाम का उदाहरण है ।

इसी प्रकार जिन दो, तीन, चार, यावत् दस नामो से समस्त विवक्षित पदार्थ कहने योग्य बनते है वे क्रमश दो मे लेकर दस नाम तक जानना चाहिए ।

अब क्रम से एक, दो आदि नामो के स्वरूप का निर्देश करते है ।

१. एकनाम

२०९. से किं त एगणामे ?

एगणामे—

> **णामाणि जाणि काणि वि दव्वाण गुणाण पज्जवाणं च ।**
> **तेसिं आगमनिहसे नाम ति परूविया सण्णा ।। १७ ।।**

से त एगणामे ।

---

१. ज वत्थुणोभिहाण पज्जयभेयाणुसारि त णाम ।
पइभेअं ज नमई पइभेअ जाइ जं भणिअ ।। अनुयोगवृत्ति, पत्र १०४

[२०९ प्र] भगवन् ! एकनाम का क्या स्वरूप है ?

[२०९ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यो, गुणो एव पर्यायों के जो कोई नाम लोक मे रूढ हैं, उन सबकी 'नाम' ऐसी एक सज्ञा आगम रूप निकष (कसौटी) मे कही गई है । १७ ।

यह एकनाम का स्वरूप है ।

विवेचन—सूत्र मे एकनाम का स्वरूप बतलाया है ।

जीव, अजीव भेद विशिष्ट द्रव्यो के जैसे जीव, जन्तु, आत्मा, प्राणी, आकाश, नभस्, तारापथ व्योम, अम्बर इत्यादि और गुणो के यथा ज्ञान, बुद्धि, बोध इत्यादि तथा रूप, रस, गध इत्यादि तथा नारकत्व आदि पर्यायो के जैसे नारक, तिर्यच, मनुष्य आदि, एक गुण कृष्ण, दो गुण कृष्ण इत्यादि लोक मे रूढ सभी नाम 'नामत्व' इस सामान्य पद मे गृहीत हो जाने से वे एक नाम कहलाते है ।

साराश यह है कि ससार मे द्रव्यो, गुणो, पर्यायो के सभी लोकरूढ नाम यद्यपि पृथक्-पृथक् है, किन्तु नामत्व सामान्य की अपेक्षा वे सब नाम एक ही है ।

आगम की निकषरूपता—जैसे सोना, चादी आदि के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान निकषपट्ट (कसौटी) से होना है, उसी प्रकार जीवादि पदार्थों के स्वरूप का परिज्ञान आगम—शास्त्र से । अत उनके स्वरूप के परिज्ञान का हेतु होने से सूत्रकार ने आगम को निकष की उपमा से उपमित किया है ।

२. द्विनाम

२१०. से किं तं दुणामे ?

दुणामे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—एगक्खरिए य १ अणेगक्खरिए य ।

[२१० प्र] भगवन् ! द्विनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१० उ] आयुष्मन् ! द्विनाम के दो प्रकार है—१ एकाक्षरिक और २ अनेकाक्षरिक ।

२११. से किं त एगक्खरिए ?

एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते । त जहा—ह्री· श्री· धीः स्त्री । से त एगक्खरिए ।

[२११ प्र] भगवन् ! एकाक्षरिक द्विनाम का क्या स्वरूप है ?

[२११ उ] आयुष्मन् ! एकाक्षरिक द्विनाम के अनेक प्रकार है । जैसे कि ह्री (लज्जा अथवा देवता विशेष), श्री (लक्ष्मी अथवा देवता विशेष), धी (बुद्धि), स्त्री आदि एकाक्षरिक नाम है ।

२१२. से किं त अणेगक्खरिए?

अणेगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते । तं जहा—कण्णा वीणा लता माला । से त अणेगक्खरिए ।

[२१२ प्र] भगवन् ! अनेकाक्षरिक द्विनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१२ उ] आयुष्मन् ! अनेकाक्षरिक नाम के भी अनेक प्रकार है । यथा—कन्या, वीणा, लता, माला आदि अनेकाक्षरिक द्विनाम है ।

विवेचन—सूत्र मे द्विनाम का स्वरूप उदाहरणो द्वारा स्पष्ट किया है ।

द्विनाम का तात्पर्य है दो अक्षरो से बना हुआ नाम । किसी भी वस्तु का उच्चारण अक्षरो के

माध्यम से होता हैं। अत एक अक्षर से निष्पन्न नाम को एकाक्षरिक और एक से अधिक-अनेक अक्षरो से निष्पन्न होने वाले नाम को अनेकाक्षरिक कहते है।

श्री, ह्री आदि नामो के अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य नामो को भी एकाक्षरिक नाम समझना चाहिये तथा वीणा, माला आदि दो अक्षरो के योग से निष्पन्न नामो की तरह बलाका, पताका आदि तीन अक्षरो या इनसे अधिक अक्षरो से निष्पन्न नामो को अनेकाक्षरिक नाम मे अन्तर्हित जानना चाहिए।

इन एकाक्षर और अनेकाक्षरो से निष्पन्न नाम से विवक्षित समस्त वस्तुसमूह का प्रतिपादन किये जाने से यह द्विनाम कहलाता है।

नाम के द्वारा वस्तु वाच्य होती है। अत अब प्रकारान्तर से वस्तुमुखेन द्विनाम का निरूपण करते है—

२१३ अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—जीवनामे य १ अजीवनामे य २।

[२१३] अथवा द्विनाम के दो प्रकार कहे गये है। यथा- १ जीवनाम और २ अजीवनाम।

२१४. से कि त जीवणामे ?

जीवणामे अणेगविहे पण्णत्ते। त जहा—देवदत्तो जण्णदत्तो विण्हुदत्तो सोमदत्तो। से त जीवनामे।

[२१४ प्र] भगवन् ! जीवनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१४ उ] आयुष्मन् ! जीवनाम के अनेक प्रकार कहे गये है। जैसे -देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त, सोमदत्त इत्यादि। यह जीवनाम का स्वरूप है।

२१५. से किं त अजीवनामे ?

अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—घडो पडो कडो रहो। से त अजीवनामे।

[२१५ प्र] भगवन् ! अजीवनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१५ उ] आयुष्मन् ! अजीवनाम भी अनेक प्रकार के है। यथा—घट, पट, कट, रथ इत्यादि। यह अजीवनाम है।

विवेचन—नाम के द्वारा वाच्य पदार्थ दो प्रकार के है— जीव और अजीव। जिसमे चेतना पाई जाती है उसे जीव कहते है। अथवा तीनो कालो मे इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास रूप द्रव्यप्राणो तथा ज्ञान, दर्शन आदि भावप्राणो से जो जीता था, जीता है और जीवित रहेगा वह जीव है। जिसमे जीव का गुण, धर्म, स्वभाव नही पाया जाता है उसे अजीव कहते है।

यह दोनो प्रकार के पदार्थ लोक मे सदैव पाये जाते है। अत लोकव्यवहार चलाने के लिये उनकी जो पृथक्-पृथक् सज्ञाए निर्धारित की जाती है, उनका द्विनाम मे अन्तर्भाव कर लिया जाता है।

किन्तु जीव और अजीव कहने मात्र से लोक-व्यवहार नही चलता है। क्योकि एक शब्द से इष्ट अर्थ का ग्रहण और अनिष्ट का परिहार नही किया जा सकता है। तथा ये जीव और अजीव

पदार्थ अनेक है। अत: उन सब का बोध कराने के लिये प्रकारान्तर से पुन: द्विनाम का निरूपण करते हैं।

२१६. [१] अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—विसेसिए य १ अविसेसिए य २।

[२१६-१] अथवा अपेक्षादृष्टि से द्विनाम के और भी दो प्रकार है। यथा—१ विशेषित और अविशेषित।

विवेचन—सूत्र मे द्विनाम का एक और रूप स्पष्ट किया है। अविशेषित-अभेद-सामान्य और विशेषित-भेद-विशिष्ट की अपेक्षा भी द्विनाम के दो प्रकार है। इन दो प्रकारो के होने का कारण यह है—उत्तरापेक्षया पूर्व अविशेष और भेदप्रधान होने से उत्तर विशेष है। जो निम्नलिखित सूत्रो से स्पष्ट है—

[२] अविसेसिए दव्वे, विसेसिए जीवदव्वे य अजीवदव्वे य।

[२१६-२] द्रव्य यह अविशेषित नाम है और जीवद्रव्य एव अजीवद्रव्य ये विशेषित नाम है।

[३] अविसेसिए जीवदव्वे, विसेसिए णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे।

[२१६-३] जीवद्रव्य को अविशेषित नाम माने जाने पर नारक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव ये विशेषित नाम है।

[४] अविसेसिए णेरइए, विसेसिए रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए पंकप्पभाए धूमप्पभाए तमाए तमतमाए। अविसेसिए रयणप्पभापुढविणेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य। एवं जाव अविसेसिए तमतमापुढविणेरइए, विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य।

[२१६-४] नारक अविशेषित नाम है और रत्नप्रभा का नारक, शर्कराप्रभा का नारक, वालुकाप्रभा का नारक, पकप्रभा का नारक, धूमप्रभा का नारक, तम प्रभा का नारक, तमस्तम प्रभा का नारक यह विशेषित द्विनाम है।

रत्नप्रभा का नारक, इस नाम को अविशेषित माना जाए तो रत्नप्रभा का पर्याप्त नारक और रत्नप्रभा का अपर्याप्त नारक विशेषित नाम होगे यावत् तमस्तम प्रभापृथ्वी के नारक को अविशेषित मानने पर उसके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम कहलाएँगे।

[५] अविसेसिए तिरिक्खजोणिए, विसेसिए एगिंदिए बेइंदिए तेइंदिए चउरिंदिए पंचिदिए।

[२१६-५] तिर्यंचयोनिक इस नाम को अविशेषित माना जाए तो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय ये पाच विशेषित नाम है।

[६] अविसेसिए एगिंदिए, विसेसिए पुढविकाइए आउकाइए तेउकाइए वाउकाइए वणस्सइकाइए।

अविसेसिए पुढविकाइए, विसेसिए सुहुमपुढविकाइए य बादरपुढविकाइए य।

अविसेसिए सुहुमपुढविकाइए, विसेसिए पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य अपज्जत्तयसुहुमपुढविकाइए य।

अविसेसिए बादरपुढविकाइए, विसेसिए पज्जत्तयबादरपुढविकाइए य अपज्जत्तयबादर-पुढविकाइए य।

एवं आउ. तेउ. वाउ. वणस्सती. य अविसेसिए य पज्जत्तय-अपज्जयभेदेहिं भाणियव्वा।

[२१६-६] एकेन्द्रिय को अविशेषित नाम माना जाये तो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय ये विशेषित नाम है।

यदि पृथ्वीकाय नाम को अविशेषित माना जाये तो सूक्ष्मपृथ्वीकाय और बादरपृथ्वीकाय यह विशेषित नाम है।

सूक्ष्मपृथ्वीकाय नाम को अविशेषित मानने पर पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकाय और अपर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकाय यह विशेषित नाम है।

बादरपृथ्वीकाय नाम अविशेषित है तो पर्याप्त बादरपृथ्वीकाय और अपर्याप्त बादरपृथ्वी-काय यह विशेषित नाम है।

इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इन नामों को अविशेषित नाम माने जाने पर अनुक्रम से उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम है।

[७] अविसेसिए बेइंदिए, विसेसिए पज्जत्तयबेइंदिए य अपज्जत्तयबेइंदिए य। एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि भाणियव्वा।

[२१६-७] यदि द्वीन्द्रिय को अविशेषित नाम माना जाये तो पर्याप्त द्वीन्द्रिय और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय विशेषित नाम है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के लिये भी जानना चाहिए।

[८] अविसेसिए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए थलयर-पचेंदियतिरिक्खजोणिए खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

[२१६-८] पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक को अविशेषित नाम मानने पर जलचर पचेन्द्रियतिर्यंच-योनिक, स्थलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, खेचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक विशेषित नाम है।

[९] अविसेसिए जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयर-पंचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसमुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कंतिय-जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

[२१६-९] जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक अविशेषित नाम है तो सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक और गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक यह विशेषित नाम है।

समूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक अविशेषित नाम है तो उसके पर्याप्त समूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, अपर्याप्त समूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक ये दो भेद विशेषित नाम है।

गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक यह नाम अविशेषित है और पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक तथा अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक नाम विशेषित है।

[१०] अविसेसिए थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए गब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

एवं सम्मुच्छिमा पज्जत्ता अपज्जत्ता य, गब्भवक्कतिया वि पज्जत्ता अपज्जत्ता य भाणियव्वा।

[२१६-१०] थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक को अविशेषित नाम माने जाने पर चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक, परिसर्प थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम है।

यदि चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक को अविशेषित माना जाये तो सम्मूच्छिम चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक और गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक ये भेद विशेषित नाम है।

सम्मूच्छिम चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक यह अविशेषित नाम हो तो पर्याप्त सम्मूच्छिम चतुष्पद थलचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और अपर्याप्त सम्मूच्छिम चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम है।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक नाम को अविशेषित माना जाये तो पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक और अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक ये विशेषित नाम है।

यदि परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक यह अविशेषित नाम है तो उसके भेद उरपरिसर्प थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक और भुजपरिसर्प थलचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक नाम विशेषित नाम है।

इसी प्रकार समूच्छिम पर्याप्त और अपर्याप्त तथा गर्भव्युत्क्रान्तिक पर्याप्त, अपर्याप्त का कथन कर लेना चाहिये।

[११] अविसेसिए खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए सम्मुच्छिमखहयरपचेंदिय-तिरिक्खजोणिए य गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयर-पचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयसमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

अविसेसिए गब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कं-तियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिए य अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिए य।

[२१६-११] खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक अविशेपित नाम है तो सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक विशेपित नाम रूप है।

यदि सम्मूर्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक नाम को अविशेपित नाम माना जाये तो पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक रूप उसके भेद विशेषित नाम है।

इसी प्रकार गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक नाम को अविशेषित माना जाये तो पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक ये नाम विशेपित नाम कहे जायेगे।

[१२] अविसेसिए मणुस्से, विसेसिए सम्मुच्छिममणूसे य गब्भवक्कतियमणुस्से य।

अविसेसिए सम्मुच्छिममणूसे, विसेसिए पज्जत्तयसम्मुच्छिममणूसे य अपज्जत्तग-सम्मुच्छिममणूसे य।

अविसेसिए गब्भवक्कतियमणूसे, विसेसिए पज्जत्तयगब्भवक्कतियमणूसे य अपज्जत्तयगब्भ-वक्कतियमणूसे य।

[२१६-१२] मनुष्य इस नाम को अविशेपित (सामान्य) नाम माना जाये तो सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य यह नाम विशेपित कहलायेगे।

सम्मूर्च्छिम मनुष्य को अविशेषित नाम मानने पर पर्याप्त सम्मूर्च्छिम मनुष्य और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम मनुष्य यह दो नाम विशेपित नाम है।

यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य को अविशेषित माना जाये तो पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य और अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य नाम विशेषित रूप हो जायेगे।

[१३] अविसेसिए देवे, विसेसिए भवणवासी वाणमंतरे जोइसिए वेमाणिए य।

अविसेसिए भवणवासी, विसेसिए असुरकुमारे एव नाग. सुवण्ण. विज्जु. अग्गि. दीव. उदधि. दिसा. वात. थणियकुमारे।

सव्वेसि पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेया भाणियव्वा।

[२१६-१३] देव नाम को अविशेषित मानने पर उसके अवान्तर भेद भवनवासी, वाणव्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिक यह देवनाम विशेषित कहलायेगे ।

यदि उक्त देवभेदो मे से भवनवासी नाम को अविशेषित माना जाये तो असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वायुकुमार, और स्तनितकुमार ये नाम विशेषित है ।

इन सब नामो मे से भी प्रत्येक को यदि अविशेषित माना जाये तो उन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद विशेषित नाम कहलाएँगे ।

[१४] अविसेसिए वाणमतरे, विसेसिए पिसाए भूते जक्खे रक्खसे किण्णरे किंपुरिसे महोरगे गंधव्वे ।

एतेसि पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेय भाणियव्वा ।

[२१६-१४] वाणव्यतर इस नाम को अविशेषित मानने पर पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गधर्व, ये नाम विशेषित नाम है ।

इन सबमे से भी प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त अपर्याप्त भेद विशेषित नाम कहलायेगे ।

[१५] अविसेसिए जोइसिए, विसेसिए चंदे सूरे गहे नक्खत्ते ताराख्वे ।

एतेसिं पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेया भाणियव्वा ।

[२१६-१५] यदि ज्योतिष्क नाम को अविशेषित माना जाये तो चद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप नाम विशेषित कहे जायेगे ।

इनमे से भी प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद विशेषित नाम है । जैसे कि पर्याप्त चन्द्र, अपर्याप्त चन्द्र आदि ।

[१६] अविसेसिए वेमाणिए, विसेसिए कप्पोवगे य कप्पातीतए य ।

अविसेसिए कप्पोवए, विसेसिए सोहम्मए ईसाणए सणकुमारए माहिंदए बंभलोगए लंतयए महासुक्कए सहस्सारए आणयए पाणयए आरणए अच्चुतए ।

एतेसिं पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेदा भाणियव्वा ।

[२१६-१६] यदि वैमानिक देवपद को अविशेषित नाम माना जाये तो उसके कल्पोपपन्न और कल्पातीत यह दो प्रकार विशेषित नाम है ।

कल्पोपपन्न को अविशेषित नाम मानने पर सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत विमानवासी देव नाम विशेषित नाम रूप है ।

यदि इनमे से प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त, अपर्याप्त रूप भेद विशेषित नाम कहलायेगे ।

[१७] अविसेसिए कप्पातीतए, विसेसिए गेवेज्जए य अणुत्तरोववाइए य।

अविसेसिए गेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमगेवेज्जए मज्झिमगेवेज्जए उवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए हेट्ठिमगेवेज्जए, विसेसिए हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जए हेट्ठिम-उवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए मज्झिमगेवेज्जए, विसेसिए मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए मज्झिममज्झिमगेवेज्जए मज्झिमउवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए उवरिमगेवेज्जए, विसेसिए उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जए उवरिममज्झिमगेवेज्जए उवरि-मउवरिमगेवेज्जए।

एतेसिं पि सव्वेसिं अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेदा भाणियव्वा।

[२१६-१७] यदि कल्पातीत को अविशेषित नाम माना जाये तो ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरोपपातिक देव विशेषित नाम हो जाएँगे।

ग्रैवयकवासी को अविशेषित नाम मानने पर अधस्तनग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक, उपरितनग्रैवेयक ये नाम विशेषित नाम रूप होंगे।

जब अधस्तनग्रैवेयक को अविशेषित नाम माना जायेगा तब अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक, अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक, अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक नाम विशेषित नाम कहलायेंगे।

अविशेषित नाम के रूप में मध्यमग्रैवेयक को मानने पर मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक, मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक नाम विशेषित नाम होंगे।

यदि उपरिम ग्रैवेयक को अविशेषित नाम माना जाए तो उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक, उपरिम-मध्यम ग्रैवयक, उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक ये नाम विशेषित नाम कहलायेंगे।

इन सबको भी अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम कहलायेंगे।

[१८] अविसेसिए अणुत्तरोववाइए, विसेसिए विजयए वेजयंतए जयंतए अपराजियए सव्वट्ठसिद्धए।

एतेसिं पि सव्वेसिं अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय-अपज्जत्तयभेदा भाणियव्वा।

[२१६-१८] यदि अनुत्तरोपपातिक देव इस नाम को अविशेषित नाम कहा जाये तो विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धविमानदेव विशेषित नाम कहलायेंगे।

इन सबको भी अविशेषित नाम की कोटि में ग्रहण किया जाए तो प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद विशेषित नाम रूप हैं।

[१९] अविसेसिए अजीवदव्वे, विसेसिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए य।

अविसेसिए पोग्गलत्थिकाए विसेसिए परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए। से तं दुनामे।

[२१६-१९] यदि अजीवद्रव्य को अविशेषित नाम माना जाये तो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और अद्धासमय, ये विशेषित नाम होंगे।

यदि पुद्‌गलस्तिकाय को भी अविशेषित नाम माना जाये तो परमाणुपुद्‌गल, द्विप्रदेशिक यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध, यह नाम विशेषित कहलायेंगे।

इस प्रकार से द्विनाम का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—इन सूत्रों मे अविशेषित और विशेषित इन दो अपेक्षाओं से द्विनाम का वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। संग्रहनय सामान्य अश को और व्यवहारनय विशेष को प्रधानता देकर स्वीकार करता है। सग्रहनय द्वारा गृहीत अविशेषित—सामान्य-एकत्व में व्यवहारनय विधिपूर्वक भेद करता है। इन दोनो नयो की दृष्टि से ये नाम अविशेषित और विशेषित बन जाते हैं। इनमे पूर्व-पूर्व अविशेषित—सामान्य और उत्तरोत्तर विशेषित—विशेष नाम है।

सूत्रार्थ सुगम है। सामान्य-विशेष नामो के द्वारा जीव और अजीव द्रव्यो के इस प्रकार भेद करना चाहिये।

कतिपय पारिभाषिक शब्द—सूत्र मे आगत प्राय सभी शब्द पारिभाषिक है। लेकिन उनमे से यहाँ कतिपय विशेष शब्दो के ही अर्थ प्रस्तुत करते है।

सम्मूर्च्छिम जीव वे है जो तथाविधकर्म के उदय से गर्भ के बिना ही उत्पन्न हो जाते है। व्युत्क्रान्ति का तात्पर्य उत्पत्ति है। अत जिन जीवो की उत्पत्ति गर्भजन्म से होती है वे गर्भव्युत्क्रान्तिक जीव हैं। जो सरकते है, वे परिसर्प कहलाते है। ये जीव भुजपरिसर्प और उरपरिसर्प के भेद से दो प्रकार के है। सर्पादिक जीव छाती से सरकने वाले होने से उरपरिसर्प कहलाते है और जो जीव भुजाओं से सरकते है, वे भुजपरिसर्प है। जैसे गोधा, नकुल आदि।

इस प्रकार से द्विनाम की वक्तव्यता जानना चाहिये।

त्रिनाम

२१७. से किं त तिनामे ?

तिनामे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—दव्वणामे १ गुणणामे २ पज्जवणामे य ३।

[२१७ प्र] भगवन्! त्रिनाम का क्या स्वरूप है?

[११७ उ] आयुष्मन्! त्रिनाम के तीन भेद है। वे इस प्रकार—१ द्रव्यनाम, २ गुणनाम और ३ पर्यायनाम।

विवेचन—तीन विकल्प वाला नाम त्रिनाम है। सूत्र मे द्रव्य, गुण और पर्याय को त्रिनाम का उदाहरण बतलाया है।

द्रव्य, गुण, पर्याय का लक्षण—उन-उन पर्यायो को जो प्राप्त करता है उसका नाम द्रव्य है। यह द्रव्य शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है। इस अर्थ के परिप्रेक्ष्य मे जैन दार्शनिको ने द्रव्य की व्याख्या दो प्रकार से की है—जो गुण और पर्याय का आधार हो तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव वाला हो, उसे द्रव्य कहते हैं। त्रिकाल स्थायी स्वभाव वाले असाधारण धर्म को गुण और प्रति समय पलटने वाली अवस्था को अथवा गुणो के विकार को पर्याय कहते है। गुण ध्रुव और पर्यायें

उत्पाद-व्यय रूप हैं। इन द्रव्य, गुण और पर्याय के नाम को क्रमश द्रव्यनाम, गुणनाम और पर्याय-नाम कहते है।

क्रम से अब इन तीनो का स्वरूप बतलाते हैं।

(क) द्रव्यनाम

२१८. से किं त दव्वणामे ?

दव्वणामे छव्विहे पण्णत्ते। त जहा— धम्मत्थिकाए १ अधम्मत्थिकाए २ आगासत्थिकाए ३ जीवत्थिकाए ४ पोग्गलत्थिकाए ५ अद्धासमए ६ अ। से त दव्वणामे।

[२१८ प्र] भगवन् ! द्रव्यनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१८ उ.] आयुष्मन् ! द्रव्यनाम छह प्रकार का है। यथा—१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय, ५ पुद्गलास्तिकाय, ६ अद्धासमय।

विवेचन—सूत्र मे द्रव्यनाम के रूप मे विश्व के मौलिक उपादानभूत छह द्रव्यो के नाम बताये है।

इन छह द्रव्यो मे धर्मास्तिकाय से लेकर पुद्गलास्तिकाय पर्यन्त पाच मुख्य द्रव्य हैं और अद्धासमय की अभिव्यक्ति प्राय पुद्गलो के माध्यम से होने के कारण उसकी विशेष स्थिति है। वर्तना, परिणमन, परत्व-अपरत्व आदि रूपो के द्वारा उसका बोध होता है।

धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यो मे पुद्गल द्रव्य ही मूर्त है। अर्थात् ऐन्द्रियिक अनुभूति योग्य होने के साथ रूप, रस, गध, स्पर्श गुणो से युक्त है, जबकि शेष द्रव्य अमूर्त्त-अरूपी होने से इन्द्रियगम्य नही है। इसी दृष्टि से प्रथम धर्म से लेकर जीव पर्यन्त अमूर्त्त द्रव्यो का और इनके बाद मूर्त पुद्गल का निर्देश किया है।

धर्म से लेकर पुद्गल पर्यन्त द्रव्यो के साथ अस्तिकाय विशेषण इसलिये दिया है कि ये द्रव्य अस्ति—त्रिकालावस्थायी होने के साथ-साथ काय—बहुप्रदेशी है। 'अस्ति' शब्द यहाँ प्रदेशो का वाचक है, अतएव प्रदेशो के काय-पिण्ड रूप द्रव्य अस्तिकाय कहलाते है। अद्धासमय का अस्तित्व वर्त्तमान समय रूप होने से उसके साथ 'काय' विशेषण नही लगाया है।

(ख) गुणनाम

२१९. से किं त गुणणामे ?

गुणणामे पचविहे पण्णत्ते। त जहा—वण्णणामे १ गधणामे २ रसणामे ३ फासणामे ४ संठाणणामे ५।

[२१९ प्र] भगवन् ! गुणनाम का क्या स्वरूप है ?

[२१९ उ.] आयुष्मन् ! गुणनाम के पाच प्रकार कहे है। जिनके नाम है—१ वर्णनाम, २ गधनाम, ३ रसनाम, ४ स्पर्शनाम, ५ सस्थाननाम।

विवेचन—सूत्र मे बताए गए गुणनाम के पाचो भेद पुद्गलद्रव्य मे पाये जाते है। यद्यपि धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो के अपने-अपने गुण है, परन्तु पुद्गलद्रव्य के सिवाय शेष द्रव्यो के अमूर्त होने से उनके गुण भी अमूर्त हैं। इस कारण सभवत उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

इन वर्णनाम आदि के लक्ष इस प्रकार है—

वर्णनाम—जिसके द्वारा वस्तु अलंकृत, अनुरंजित की जाये उसे वर्ण कहते है। इस वर्ण का नाम वर्णनाम है। वर्ण चक्षुरिन्द्रिय का विषय है।

गधनाम—जो सूंघा जाये वह गध है। यह घ्राणेन्द्रिय का विषय है। इस गध के नाम को गधनाम कहते है।

रसनाम—जो चखा जाता है वह रस है। यह रसनेन्द्रिय का विषय है। रस का जो नाम वह रसनाम है।

स्पर्शनाम—जो स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा स्पर्श करने पर जाना जाए वह स्पर्श है और इस स्पर्श का नाम स्पर्शनाम है।

सस्थाननाम—आकार, आकृति को सस्थान कहते है। इस सस्थान के नाम को सस्थाननाम कहते है।

गुणनाम के इन पाचो भेदो का वर्णन इस प्रकार है—

वर्णनाम

२२० से किं तं वण्णनामे ?

वण्णनामे पंचविहे पण्णत्ते। त जहा—कालवण्णनामे १ नीलवण्णनामे २ लोहियवण्णनामे ३ हालिद्दवण्णनामे ४ सुक्किलवण्णनामे ५। से त वण्णनामे।

[२२० प्र] भगवन्! वर्णनाम का क्या स्वरूप है?

[२२० उ] आयुष्मन्! वर्णनाम के पाच भेद है। वे इस प्रकार—१ कृष्णवर्णनाम २ नीलवर्णनाम ३ लोहित (रक्त) वर्णनाम ४ हारिद्र (पीत) वर्णनाम ५ शुक्लवर्णनाम। यह वर्णनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे वर्णनाम के पाच मूल भेदो के नाम बताये है। काले, पीले, नीले आदि वर्ण (रग) के स्वरूप को सभी जानते है। कत्थई, धूसर आदि और भी वर्ण के जो अनेक प्रकार के है, वे इन कृष्ण आदि पाँच मौलिक वर्णों के सयोग से निष्पन्न होने के कारण स्वतन्त्र वर्ण नही है। इसलिये उनका पृथक् उल्लेख नही किया है।

गंधनाम

२२१. से कि त गधनामे ?

गधनामे दुविहे पण्णत्ते। त जहा— सुरभिगंधनामे य १ दुरभिगधनामे य २। से त गधनामे।

[२२१ प्र] भगवन्! गधनाम का क्या स्वरूप है?

[२२१ उ] आयुष्मन्! गधनाम के दो प्रकार है। यथा—१ सुरभिगधनाम २ दुरभिगधनाम। यह गधनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे गधनाम के मूल दो भेदो का सकेत किया है। जो गध अपनी ओर आकृष्ट करती है, वह सुरभिगध और जो विमुख करती है, वह दुरभिगध है। इन दोनो के सयोगज और भी अनेक भेद हो सकते है, परन्तु इन दोनो की प्रधानता होने से उनका पृथक् निर्देश नही किया है।

रसनाम

२२२. से किं तं रसनामे ?

रसनामे पंचविहे पण्णत्ते। त जहा—तित्तरसणामे १ कडुयरसणामे २ कसायरसणामे ३ अंबिलरसणामे ४ महुररसणामे य ५। से तं रसनामे।

[२२२ प्र] भगवन्! रसनाम का क्या स्वरूप है ?

[२२२ उ] आयुष्मन्! रसनाम के पाच भेद है। जैसे—१ तिक्तरसनाम २. कटुकरसनाम ३ कषायरसनाम ४ आम्लरसनाम ५ मधुररसनाम।

इस प्रकार से रसनाम का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल और मधुर के भेद से रस के पाच प्रकार बतलाये है। इन रसो के गुण, धर्म, स्वभाव इस प्रकार है—

१. तिक्तरस कफ, अरुचि, पित्त, तृषा, कुष्ठ, विष, ज्वर आदि विकारो को नष्ट करने वाला है। यह रस प्राय नीम आदि मे पाया जाता है।

२ गले के रोग का उपशमक, काली मिर्च आदि मे पाया जाने वाला रस कटुकरस है।

३ जो रक्तदोष आदि का नाशक है, ऐसा आवला, बहेडा आदि मे पाया जाने वाला रस कषायरस है। यह स्वभावत रूक्ष, शीत एव रोचक होता है।

४ इमली आदि मे रहा हुआ रस आम्लरस है। यह जठराग्नि का उद्दीपक है। पित्त और कफ का नाश करता है, रुचिवर्धक है। लोकभाषा मे इसको खट्टा रस कहते है।

५ पित्तादि का शमन करने वाला रस मधुर रस है। यह रस बालक, वृद्ध और क्षीण शक्ति वालो को लाभदायक होता है तथा खाड, शक्कर आदि मीठे पदार्थों मे पाया जाता है।

स्पर्शनाम

२२३. से किं तं फासणामे ?

फासणामे अट्ठविहे पण्णत्ते। त जहा—कक्खडफासणामे १ मउयफासणामे २ गरुयफासणामे ३ लहुयफासणामे ४ सीतफासणामे ५ उसिणफासणामे ६ णिद्धफासणामे ७ लुक्खफासणामे ८। से तं फासणामे।

[२२३ प्र] भगवन्! स्पर्शनाम का क्या स्वरूप है ?

[२२३ उ] आयुष्मन्! स्पर्शनाम के आठ प्रकार कहे है। उनके नाम है—१. कर्कशस्पर्शनाम २. मृदुस्पर्शनाम ३ गुरुस्पर्शनाम ४ लघुस्पर्शनाम ५. शीतस्पर्शनाम ६. उष्णस्पर्शनाम ७. स्निग्धस्पर्शनाम ८ रूक्षस्पर्शनाम।

यह स्पर्शनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे स्पर्शनाम के आठ प्रकारो का उल्लेख किया है। इन आठ प्रकारों मे से

प्रत्येक के साथ नाम शब्द जोड देने पर पूरा नाम हो जाता है। जैसे कर्कशस्पर्शनाम, मृदुस्पर्शनाम यावत् रूक्षस्पर्शनाम।

पाषाण आदि मे कर्कश—खुरदरास्पर्श रहता है। कोमल स्पर्श मृदुस्पर्श कहलाता है। यह वेत्र आदि मे पाया जाता है। जो अध पतन का कारण हो और लोहे के गोलक आदि मे पाया जाता है, वह गुरुस्पर्श है। जो स्पर्श प्राय ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् गमन मे कारण हो और अर्कतूल (आक की रुई) आदि मे पाया जाता है, वह लघुस्पर्श है। शीतलता—ठडेपन का अनुभव कराने मे जो हेतु है तथा वर्फ आदि मे पाया जाता है, वह शीतस्पर्श है। जो उष्णता—गर्मी का बोधक, आहारादि के पकाने का कारण हो एव अग्नि आदि के रहता है वह उष्णस्पर्श है। परस्पर मिले हुए पुद्गलद्रव्यो के सश्लिष्ट होने का जो कारण हो और तैलादि पदार्थों मे पाया जाये वह स्निग्धस्पर्श है। जो पुद्गल द्रव्यो के परस्पर अबन्ध का कारण हो, ऐसा भस्मादि का स्पर्श रूक्षस्पर्श है। इन स्पर्शों का जो नाम वह तत्तत् नाम वाला स्पर्शनाम समझना चाहिए।

स्पर्श के उक्त आठ भेदो के सयोगज स्पर्शों का भी इन्ही मे अन्तर्भाव हो जाने से उनका पृथक् निर्देश नही किया है।

संस्थाननाम

२२४. से किं त सठाणणामे ?

संठाणणामे पचविहे पण्णत्ते। तं जहा—परिमडलसंठाणणामे १ वट्टसठाणणामे २ तससठाणणामे ३ चउरंससंठाणणामे ४ आयतसंठाणणामे ५। से तं सठाणणामे। से त गुणणामे।

[२२४ प्र] भगवन्! सस्थाननाम का क्या स्वरूप है ?

[२२४ उ] आयुष्मन्! सस्थाननाम के पाच प्रकार कहे गये है। यथा—१ परिमण्डलसस्थाननाम, २ वृत्तसस्थाननाम, ३ त्र्यस्रसस्थाननाम, ४ चतुरस्रसस्थाननाम, ५ आयतसस्थाननाम।

यह सस्थाननाम का स्वरूप है। इस प्रकार से यह गुणनाम की व्याख्या समाप्त हुई जानना चाहिए।

विवेचन—सूत्र मे सस्थाननाम के भेदो को बतलाकर गुणनाम की वक्तव्यता की समाप्ति की सूचना दी है।

सस्थान के पाच भेदो का स्वरूप प्रसिद्ध है। जो थाली, सूर्य या चन्द्रमण्डल के समान गोल हो, बीच मे किंचिन्मात्र भी खाली स्थान न हो, ऐसा सस्थान परिमण्डलसस्थान कहलाता है। जब कि वृत्तसस्थान चूडी के समान (बीच मे खाली) गोल होता है। तीन कोण (कोने) वाले सस्थान को त्र्यस्र—त्रिभुज या तिकोना सस्थान कहते है। तीनो भुजाओ की लम्बाई चौडाई की भिन्नता से यह सस्थान अनेक प्रकार का हो सकता है। चतुरस्रसस्थान मे चारो कोण एव लम्बाई-चौडाई समान होती है, जबकि आयतसस्थान मे चारो कोण समान होने पर भी लम्बाई अधिक और चौडाई कम होती है।

इस प्रकार आकारो की भिन्न-भिन्नरूपता से सस्थाननाम के मुख्य पाच भेद हैं। इनके सिवाय

और जो भी भिन्न-भिन्न आकृतियां सम्भव है, उनका इन्ही मे अन्तर्भाव हो जाने से पाच से अधिक मौलिक सस्थान सम्भव नही हैं।

इस प्रकार से गुणनाम की वक्तव्यता का आशय जानना चाहिये।

पर्यायनाम

२२५. से किं त पज्जवनामे ?

पज्जवनामे अणेगविहे पण्णत्ते। त जहा—एगगुणकालए दुगुणकालए जाव अणतगुणकालए, एगगुणनीलए दुगुणनीलए जाव अणतगुणनीलए, एवं लोहिय-हालिद्द-सुक्किला वि भाणियव्वा।

एगगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिगधे जाव अणतगुणसुरभिगधे एव दुरभिगधो वि भाणियव्वो।

एगगुणतित्ते दुगुणतित्ते जाव अणतगुणतित्ते, एव कडुय-कसाय-अबिल-महुरा वि भाणियव्वा।

एगगुणकक्खडे दुगुणकक्खडे जाव अणतगुणकक्खडे, एव मउय-गरुय-लहुय-सीत-उसिण-णिद्ध-लुक्खा वि भाणियव्वा। से त पज्जवणामे।

[२२५ प्र] भगवन्! पर्यायनाम का क्या स्वरूप है ?

[२२५ उ] आयुष्मन्! पर्यायनाम के अनेक प्रकार है। यथा—एकगुण (अश) काला, द्विगुणकाला यावत् अनन्तगुणकाला, एकगुणनीला, द्विगुणनीला यावत् अनन्तगुणनीला तथा इसी प्रकार लोहित (रक्त), हारिद्र (पीत) और शुक्लवर्ण की पर्यायो के नाम भी समझना चाहिए।

एकगुणसुरभिगध, द्विगुणसुरभिगध यावत् अनन्तगुणसुरभिगध, इसी प्रकार दुरभिगध के विषय मे भी कहना चाहिए।

एकगुणतिक्त, द्विगुणतिक्त यावत् अनन्तगुणतिक्त इसी प्रकार कटुक, कषाय, अम्ल एव मधुर रस की पर्यायो के लिये भी कहना चाहिए।

एकगुणकर्कश, द्विगुणकर्कश यावत् अनन्तगुणकर्कश, इसी प्रकार मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष स्पर्श की पर्यायो की वक्तव्यता है।

यह पर्यायनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे पर्यायनाम की व्याख्या की है। पर्याय का स्वरूप पहले बताया जा चुका है। पर्याय द्रव्य के समान सर्वदा स्थायी—ध्रुव रूप न होकर उत्पत्ति-विनाश रूपो के माध्यम से परिवर्तित होती रहती है।

प्रस्तुत प्रसग मे गुणो को माध्यम बनाकर पर्याय का स्वरूप बताया है। पर्याय एकगुण (अश) कृष्ण आदि रूप है। अर्थात् जिस परमाणु आदि द्रव्य मे कृष्णगुण का एक अश हो वह परमाणु आदि द्रव्य एकगुणकृष्णवर्ण आदि वाला है। इसी प्रकार दो आदि अश से लेकर अनन्त अशो तक के लिये जानना चाहिये। ये सभी अश पर्याय है।

पुद्गलास्तिकाय के दो भेद है—अणु और स्कन्ध। इनमे से स्कन्धो मे तो पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श कुल मिलाकर बीस गुण और परमाणुओ मे कर्कश, मृदु, गुरु, लघु ये चार स्पर्श नही होने से कुल सोलह गुण पाये जाते है तथा एक परमाणु मे शेष रहे शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष

इन चार स्पर्शों मे से भी एक समय मे अविरोधी दो स्पर्श तथा एक वर्ण, एक गध, एक रस, इस प्रकार कुल पाँच गुण और उनके पर्याय सम्भव है।

ये वर्ण आदि गुण मूर्त वस्तु—पुद्गल से कभी विलग नही होते है किन्तु इनके एक, दो आदि रूप अश रूपान्तरित होते रहते हैं। तभी द्रव्य के अवस्थान्तर होने का बोध होता है। जैसे—किसी परमाणु मे सर्वजघन्य (एकगुण) कृष्णादि गुण है, वे दो अश कृष्णादि गुणो के आने पर निवृत हो जाते हैं। इसीलिये कृष्णादि गुणो के ये एक, दो, तीन यावत् सख्यात, असंख्यात और अनन्त अश सब पर्याय हैं।

पुद्गलास्तिकाय के गुण-पर्यायो का उल्लेख क्यो ? जैसे ये वर्ण, गध आदि गुण और इनके अश रूप पर्याय पुद्गलास्तिकाय मे पाए जाते है, उसी प्रकार धर्मास्तिकाय आदि मे भी गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व आदि गुण और प्रत्येक मे अनन्त अगुरुलघु रूप पर्याय पाए जाते है। परन्तु अमूर्त होने से उनका उल्लेख नही करके इन्द्रिय-प्रत्यक्ष होने से पुद्गल की द्रव्य, गुण और पर्यायरूपता का ही यहाँ उल्लेख किया है।

इस प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय के भेद से त्रिनाम की व्याख्या करने के बाद अब प्रकारान्तर से पुन त्रिनाम की एक और व्याख्या करते है।

त्रिनाम की व्याख्या का दूसरा प्रकार

२२६. **त पुण णाम तिविह इत्थी १ पुरिस २ णपुसग ३ चेव।**
एएसि तिण्ह पि य अतम्मि परूवण वोच्छ ॥ १८ ॥
तत्थ पुरिसस्स अता आ ई ऊ ओ य होति चत्तारि।
ते चेव इत्थियाए हवति ओकारपरिहीणा ॥ १९ ॥
अ ति य इ ति य उ ति य अंता उ णपुंसगस्स बोद्धव्वा।
एतेसि तिण्ह पि य वोच्छामि निदसणे एत्तो ॥ २० ॥
आकारतो राया ईकारतो गिरी य सिहरी य।
ऊकारतो विण्हू दुमो ओअताओ पुरिसाण ॥ २१ ॥
आकारंता माला ईकारता सिरी य लच्छी य।
ऊकारता जबू वहू य अता उ इत्थीण ॥ २२ ॥
अकारतं धन्न इकारत नपुसक अच्छि।
उंकारत पीलुं महुं च अंता णपुसाण ॥ २३ ॥

से त तिणामे।

[२२६] उस त्रिनाम के पुन तीन प्रकार है। जैसे—१ स्त्रीनाम २ पुरुषनाम और ३ नपुसक-नाम। इन तीनो प्रकार के नामो का बोध उनके अन्त्याक्षरो द्वारा होता है। ॥१८॥

पुरुषनामो के अत मे 'आ, ई, ऊ, ओ' इन चार में से कोई एक वर्ण होता है तथा स्त्रीनामो के अत मे 'ओ' को छोडकर शेष तीन (आ, ई, ऊ) वर्ण होते हैं ॥१९॥

जिन शब्दो के अन्त मे अ, इ या उ वर्ण हो, उनको नपुसकलिंग वाला समझना चाहिये। अब इन तीनो के उदाहरण कहते है ॥२०॥

आकारान्त पुरुष नाम का उदाहरण राया (राजा) है। ईकारान्त का उदाहरण गिरी (गिरि) तथा सिहरी (शिखरी) है। ऊकारान्त का उदाहरण विण्हू (विष्णु) और ओकारान्त का दुमो (द्रुमो-वृक्ष) है ॥२१॥

स्त्रीनाम मे 'माला' यह पद आकारान्त का, सिरी (श्री) और लच्छी (लक्ष्मी) पद ईकारान्त, जम्बू (जामुन वृक्ष), वहू (वधू) ऊकारान्त नारी जाति के (नामो के) उदाहरण है ॥२२॥

धन्न (धान्य) यह प्राकृतपद अकारान्त नपुसक नाम का उदाहरण है। अच्छि (अक्षि) यह इकारान्त नपु सकनाम का तथा पीलु (पीलु-वृक्ष विशेष) महु (मधु) ये उकारान्त नपु सकनाम के पद है। २३

इस प्रकार यह त्रिनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे प्रकारान्तर से त्रिनाम का स्वरूप स्पष्ट किया है। द्रव्यादि सम्बन्धी नाम स्त्री, पुरुष और नपुसक लिंग के भेद मे तीन प्रकार के हैं और इन तीनो लिंगो का बोध उन-उन नामो के अन्त मे आगत आकारादि वर्णों द्वारा होता है।

प्राकृत भाषा की तरह सस्कृत मे भी लिंगापेक्षया शब्दो के तीन प्रकार है, लेकिन हिन्दी मे पुरुष और स्त्री लिंग शब्द ही माने गये है। अत हिन्दी मे त्रिनामता नही है।

इस प्रकार व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से लिंगानुसार यह त्रिनाम का स्वरूप जानना चाहिये।

चतुर्नाम

२२७. से किं तं चतुणामे ?

चतुणामे चउव्विहे पण्णत्ते। त जहा--आगमेण १ लोवेण २ पयईए ३ विगारेण ४।

[२२७ प्र] भगवन्! चतुर्नाम का क्या स्वरूप है?

[२२७ उ] आयुष्मन्! चतुर्नाम के चार प्रकार है। यथा—१ आगमनिष्पन्ननाम २ लोपनिष्पन्ननाम ३ प्रकृतिनिष्पन्ननाम ४ विकारनिष्पन्ननाम।

२२८. से किं त आगमेण ?

आगमेण पद्मानि पयांसि कुण्डानि। से त आगमेण।

[२२८ प्र] भगवन्! आगमनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है?

[२२८ उ] आयुष्मन्! पद्मानि, पयासि, कुण्डानि आदि ये सब आगमनिष्पन्ननाम हैं।

२२९. से किं त लोवेणं ?

लोवेणं ते अत्र तेऽत्र, पटो अत्र पटोऽत्र, घटो अत्र घटोऽत्र, रथो अत्र रथोऽत्र। से त लोवेण।

[२२९ प्र] भगवन्! लोपनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है?

[२२९ उ] आयुष्मन्! ते+अत्र—तेऽत्र, पटो+अत्र—पटोऽत्र, घटो+अत्र—घटोऽत्र, रथो+अत्र—रथोऽत्र, ये लोपनिष्पन्ननाम है।

२३०. से किं तं पगतीए ?

अग्नी एतौ, पटू इमौ, शाले एते, माले इमें। से तं पगतीए।

[२३० प्र] भगवन् ! प्रकृतिनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२३० उ] आयुष्मन् ! अग्नी एतौ, पटू इमौ, शाले एते, माले इमे इत्यादि प्रयोग प्रकृतिनिष्पन्न नाम हैं ।

२३१. से किं तं विकारेणं ?

विकारेण दण्डस्य अग्र दण्डाग्रम्, सा आगता साऽऽगता, दधि इद दधीदम्, नदी ईहते नदीहते, मधु उदकं मधूदकम्, बहु ऊहते बहूहते । से तं विकारेण । से तं चउणामे ।

[२३१ प्र] भगवन् ! विकारनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२३१ उ] आयुष्मन् ! दण्डस्स+अग्र—दण्डाग्रम्, सा+आगता- साऽऽगता, दधि+इद—दधीद, नदी+ईहते—नदीहते, मधु+उदक—मधूदक, बहु+ऊहते—बहूहते, ये सब विकारनिष्पन्न-नाम हैं ।

इस प्रकार से यह चतुर्नाम का स्वरूप है ।

विवेचन—सूत्र २२७ से २३१ तक पाच सूत्रो मे आपेक्षिक निष्पन्नताओ द्वारा चतुर्नाम का स्वरूप स्पष्ट किया गया है । आगम, लोप, प्रकृति और विकार इन चार कारणो से निष्पन्न होने से चतुर्नाम के चार प्रकार हैं । इन आगमनिष्पन्न आदि के लक्षण इस प्रकार हैं—

आगमनिष्पन्न—किसी वर्ण के आगम—प्राप्ति से निष्पन्न पद आगमनिष्पन्न कहलाते है । जैसे पद्मानि इत्यादि । इनमे 'धुट्स्वराद् घुटि नु (कातन्त्रव्याकरण सूत्र २४) सूत्र द्वारा आगम का विधान होने से पद्मानि आदि शब्द आगमनिष्पन्न के उदाहरण है । इसी प्रकार 'सस्कार' इत्यादि शब्दो के लिये जानना चाहिये कि इनमे सुट का आगम होने से 'सस्कार' यह आगमनिष्पन्न नाम है ।

लोपनिष्पन्न—किसी वर्ण के लोप-अपगम से जो शब्द निष्पन्न होते है उन्हे लोपनिष्पन्ननाम कहते है । जैसे ते+अत्र—तेऽत्र इत्यादि । इन शब्दो मे 'एदोत्पर पदान्ते' (कातन्त्रव्याकरण सूत्र ११५) सूत्र द्वारा अकार का लोप होने मे यह लोपनिष्पन्न नाम है । इसी प्रकार मनम्+ईषा—मनीषा (बुद्धि), भ्रमतीति भ्रू इत्यादि शब्द सकार, मकार आदि वर्णों के लोप से निष्पन्न होने के कारण लोपनिष्पन्ननाम है ।

प्रकृतिनिष्पन्न— जो प्रयोग जैसे है उनका वैसा ही रूप रहना प्रकृतिभाव है । अत जिन प्रयोगो मे प्रकृतिभाव होने से किसी प्रकार का विकार (परिवर्त्तन) न होकर मूल रूप मे ही रहते है, उन्हे प्रकृतिनिष्पन्ननाम कहते है । ये प्रयोग व्याकरणिक विभक्ति आदि से सयुक्त होते है । जैसे—'अग्नी एतौ' इत्यादि शब्द । यहाँ 'द्विवचनमनौ' (का सू ६२) सूत्र द्वारा प्रकृतिभाव का विधान किये जाने से सन्धि नही हुई । यह प्रकृतिनिष्पन्ननाम का उदाहरण है ।

विकारनिष्पन्न— किसी वर्ण का वर्णान्तर के रूप मे होने को विकार कहते है । विकार से निष्पन्न होने वाला नाम विकारनिष्पन्ननाम कहलाता है । अर्थात् जिस नाम मे किसी एक वर्ण के स्थान पर दूसरे वर्ण का प्रयोग होता है वह विकारनिष्पन्ननाम है । जैसे 'दडस्य+अग्रम्—दडाग्रम्' आदि । इन उदाहरणो मे, 'समान सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् (का २४) सूत्र द्वारा आकार रूप

दीर्घ वर्णात्मक विकार किये जाने से ये विकारनिष्पन्ननाम के उदाहरण है। इसी प्रकार अन्यान्य विकारनिष्पन्न नामो का विचार स्वय कर लेना चाहिये।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से सभी शब्द प्रकृति प्रत्यय आगम आदि किसी-न-किसी एक से निष्पन्न होते है। डित्थ, डवित्थ आदि अव्युत्पन्न माने गये शब्द भी शाकटायन के मत से व्युत्पन्न हैं और उनका इन आगम आदि चार नामो मे से किसी न किसी एक मे समावेश हो जाता है। यह चतुर्नाम की व्याख्या है।

पंचनाम

२३२. से किं त पचनामे ?

पचनामे पचविहे पण्णत्ते। तं जहा—नामिक १ नैपातिक २ आख्यातिकं ३ औपसर्गिकं ४ मिश्र ५ च। अश्व इति नामिकम्, खल्विति नैपातिकम्, धावतीत्याख्यातिकम्, परि इत्यौपसर्गिकम्, सयत इति मिश्रम्। से तं पचनामे।

[२३२ प्र] भगवन्! पचनाम का क्या स्वरूप है ?

[२३२ उ] आयुष्मन्! पचनाम पाच प्रकार का है। वे पाच प्रकार है—१ नामिक, २ नैपातिक, ३ आख्यातिक, ४ औपसर्गिक और ५ मिश्र। जैसे 'अश्व' यह नामिकनाम का, 'खलु' नैपातिकनाम का, 'धावति' आख्यातिकनाम का, 'परि' औपसर्गिक और 'सयत' यह मिश्रनाम का उदाहरण है।

यह पचनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे पचनाम के पाच प्रकारो का निर्देश किया है। इन नामिक आदि पाचो मे समस्त शब्दो का सग्रह हो जाने से ये पचनाम कहे जाते है। क्योकि शब्द या तो किसी वस्तु का वाचक होता है अथवा निपात से, क्रिया की मुख्यता से, उपसर्गों से, सज्ञा (नाम) के साथ उपसर्ग के सयोग से अपने अभिधेय-वाच्य का बोध कराता है। जैसे—'अश्व' शब्द वस्तु का वाचक होने से नामिक है। 'खलु' शब्द निपातो मे पठित होने से नैपातिक है। क्रिया-प्रधान होने से 'धावति' यह तिङन्त पद आख्यातिक है। 'परि' यह प्र, परा, अप्, सम् आदि उपसर्गों मे पठित होने से औपसर्गिक है तथा 'सयत' यह सुबन्त पद सम् उपसर्ग और यत् धातु—इन दोनो के सयोग से बना होने के कारण मिश्र है।

इस प्रकार से यह पचनाम का स्वरूप है।

छहनाम

२३३. से किं तं छनामे ?

छनामे छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—उदइए १ उवसमिए २ खइए ३ खओवसमिए ४ पारिणामिए ५ सन्निवातिए ६।

[२३३ प्र] भगवन्! छहनाम का क्या स्वरूप है ?

[२३३ उ] आयुष्मन्! छहनाम के छह प्रकार कहे हैं। वे ये हैं—१ औदयिक, २ औपशमिक, ३. क्षायिक, ४. क्षायोपशमिक, ५ पारिणामिक और ६ सान्निपातिक।

विवेचन—यहां छहनाम के प्रकरण मे नाम और नामवाले अर्थों मे अभेदोपचार करके छह भावो की प्ररूपणा की है।

सूत्रोक्त उदइए-औदयिक आदि से औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिक-भाव, पारिणामिकभाव और सान्निपातिकभाव इस प्रकार समग्र पद का ग्रहण किया गया है। इन औदयिकभाव आदि के लक्षण इस प्रकार है—

१. औदयिकभाव—ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के विपाक का अनुभव करने को उदय कहते है। इस उदय का अथवा उदय से निष्पन्नभाव (पर्याय) का नाम औदयिकभाव है।

२. औपशमिकभाव—सत्ता मे रहते हुए भी कर्मों का उदय मे नही रहना अर्थात् आत्मा मे कर्म की निज शक्ति का कारणवश प्रकट न होना या प्रदेश और विपाक दोनो प्रकार के कर्मोदय का रुक जाना उपशम है। जैसे भस्मराशि से आच्छादित अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार इस उपशम अवस्था मे कर्मों का उदय नही होता है, किन्तु वे सत्ता मे स्थित रहते है। इस उपशम का नाम ही औपशमिकभाव है। अथवा इस उपशम से निष्पन्न भाव को औपशमिकभाव कहते है। यह भाव सादि-सान्त है।

३. क्षायिकभाव—कर्म के आत्यन्तिक विनाश होने को क्षय कहते है। यह क्षय ही क्षायिक है। अथवा क्षय से जो भाव उत्पन्न होता है वह क्षायिकभाव है। सारांश यह कि कर्म के आत्यन्तिक क्षय से प्रकट होने वाला भाव क्षायिकभाव है। यह भाव सादि-अनन्त है।

४ क्षायोपशमिकभाव—कर्मो का क्षय और उपशम होना क्षयोपशम है। यह क्षयोपशम ही क्षायोपशमिकभाव है। अथवा क्षयोपशम से जो भाव उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिकभाव है। यह भाव कुछ बुझी हुई और कुछ नही बुझी हुई अग्नि के समान जानना चाहिये। तात्पर्य यह हुआ कि इस क्षयोपशम मे कितनेक सर्वघातिस्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और कितनेक सर्वघातिस्पर्धकों का सदवस्था रूप उपसम होता है और देशघाति प्रकृति का उदय रहता है। इसीलिये इस भाव को कुछ बुझी हुई और कुछ नही बुझी हुई अग्नि की उपमा दी है।

क्षयोपशम मे कर्म के उदयावलिप्रविष्ट मद रसस्पर्धकों का क्षय और अनुदीयमान रसस्पर्धकों की सर्वघातिनी विपाकशक्ति का निरोध या देशघाति रूप मे परिणमन होता है।

यद्यपि क्षयोपशम मे कुछ कर्मो का उदय रहता है किन्तु उनकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाने के कारण वे जीव के गुणो को घातने मे समर्थ नही होते है। पूर्णशक्ति के साथ कर्मो का उदय मे न आकर क्षीणशक्ति होकर उदय मे आना ही यहां क्षय या उदयाभावी क्षय और सत्तागत सर्वघाति कर्मो का उदय मे न आना ही सदवस्थारूप उपशम कहलाता है।

यद्यपि देशघाती कर्मो का उदय होने की अपेक्षा यहां औदयिक भाव भी माना जा सकता है किन्तु गुण के प्रकट होने वाले अश की अपेक्षा इसे क्षायोपशमिकभाव कहा है।

५. **पारिणामिकभाव**—अमुक-अमुक रूप से वस्तुओ का परिणमन होना परिणाम और यह परिणाम ही पारिणामिकभाव है । अथवा उस परिणाम से जो भाव उत्पन्न होता है वह पारिणामिकभाव है । अथवा जिसके कारण मूल वस्तु मे किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, वस्तु का स्वभाव में ही परिणत होते रहना पारिणामिकभाव है ।

६. **सान्निपातिकभाव**—इन पाचो भावो मे से दो-तीन आदि भावो का मिलना सन्निपात है, यह सन्निपात ही सान्निपातिकभाव है । अथवा इस सन्निपात से जो भाव उत्पन्न होता है, वह सान्निपातिकभाव कहलाता है ।

अब इन भावों का विस्तार से स्वरूप निरूपण करते है ।

औदयिकभाव

२३४. से किं तं उदइए ?

उदइए दुविहे पण्णत्ते । त जहा—उदए य १ उदयनिप्फण्णे य २ ।

[२३४ प्र] भगवन् ! औदयिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२३४ उ] आयुष्मन् ! औदयिकभाव दो प्रकार का है। जैसे—१ औदयिक और २ उदयनिष्पन्न ।

२३५. से किं त उदए ?

उदए अट्ठण्ह कम्मपगडीणं उदएणं । से तं उदए ।

[२३५ प्र] भगवन् ! औदयिक का क्या स्वरूप है ?

[२३५ उ] आयुष्मन् ! ज्ञानावरणादिक आठ कर्मप्रकृतियो के उदय से होने वाला औदयिकभाव है।

२३६. से किं तं उदयनिप्फण्णे ?

उदयनिप्फण्णे दुविहे पण्णत्ते । त जहा—जीवोदयनिप्फन्ने य १ अजीवोदयनिप्फन्ने य २ ।

[२३६ प्र] भगवन् ! उदयनिष्पन्न औदयिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२३६ उ] आयुष्मन् ! उदयनिष्पन्न औदयिकभाव के दो प्रकार है—१ जीवोदयनिष्पन्न, २ अजीवोदयनिष्पन्न ।

विवेचन—ये तीन सूत्र औदयिकभाव निरूपण की भूमिका हैं । ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का उदय और कर्मों के उदय से होने वाला भाव-पर्याय औदयिकभाव है । इन दोनो भेदो मे परस्पर कार्यकारणभाव है । ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का उदय होने पर तज्जन्य अवस्थाये उत्पन्न होने से कर्मोदय कारण है और तज्जन्य अवस्थाये कार्य है एव उन-उन अवस्थाओ के होने पर विपाकोन्मुखी कर्मों का उदय होता है, इस दृष्टि से अवस्थाये कारण है और विपाकोन्मुख कर्मोदय कार्य है ।

उदयनिष्पन्न के जीवोदयनिष्पन्न और अजीवोदयनिष्पन्न भेद मानने का कारण यह है कि कर्मोदय के जीव और अजीव यह दो माध्यम है । अत कर्मोदयजन्य जो अवस्थाये साक्षात् जीव को प्रभावित करती हैं अथवा कर्म के उदय से जो पर्याये जीव मे निष्पन्न होती है, वे जीवोदयनिष्पन्न और अजीव के माध्यम से जिन अवस्थाओ का उदय होता है, वे अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव हैं ।

जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव

२३७. से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने ?

जीवोदयनिप्फन्ने अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे, पुढविकाइए जाव वणस्सइकाइए, तसकाइए, कोहकसायी जाव लोहकसायी, इत्थीवेदए पुरिसवेदए णपुंसगवेदए, कण्हलेसे एवं नील० काउ० तेउ० पम्ह० सुक्कलेसे, मिच्छादिट्ठी अविरए अण्णाणी आहारए छउमत्थे सजोगी संसारत्थे असिद्धे। से तं जीवोदयनिप्फन्ने।

[२३७ प्र.] भगवन् ! जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२३७ उ.] आयुष्मन् ! जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव अनेक प्रकार का कहा गया है। यथा—नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, देव, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक, क्रोध-कषायी यावत् लोभकषायी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, कृष्णलेश्यी, नील-कापोत-तेज-पद्म-शुक्ललेश्यी, मिथ्यादृष्टि, अविरत, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी, संसारस्थ, असिद्ध।

यह जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव का स्वरूप है।

अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव

२३८. से किं तं अजीवोदयनिप्फन्ने ?

अजीवोदयनिप्फन्ने चोद्दसविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओरालियं वा सरीरं १ ओरालियसरीर-पयोगपरिणामियं वा दव्वं २ वेउव्वियं वा सरीरं ३ वेउव्वियसरीरपयोगपरिणामियं वा दव्वं ४ एवं आहारगं सरीरं ६ तेयगं सरीरं ८ कम्मगसरीरं च भाणियव्वं १० पयोगपरिणामिए वण्णे ११ गंधे १२ रसे १३ फासे १४। से तं अजीवोदयनिप्फण्णे। से तं उदयनिप्फण्णे। से तं उदए।

[२३८ प्र.] भगवन् ! अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२३८ उ.] आयुष्मन् ! अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव चौदह प्रकार का कहा है। यथा—१ औदारिकशरीर, २ औदारिकशरीर के व्यापार से परिणामितगृहीत द्रव्य, ३ वैक्रियशरीर, ४ वैक्रियशरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य, इसी प्रकार ५-६ आहारकशरीर और आहारकशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य, ७-८ तैजसशरीर और तैजसशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य, ९-१० कार्मणशरीर और कार्मणशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य तथा ११-१४ पांचों शरीरों के व्यापार से परिणामित वर्ण, गंध, रस, स्पर्श द्रव्य।

इस प्रकार से यह अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव तथा उदयनिष्पन्न और औदयिक दोनों प्रकार के औदयिकभावों की प्ररूपणा जानना चाहिये।

विवेचन—इन दो सूत्रों में जीवोदयनिष्पन्न और अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव का निरूपण किया है। कर्मों के उदय से जीव में उदित होने वाला भाव जीवोदयनिष्पन्न और अजीव के माध्यम से उदित होने वाला भाव अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव है।

जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव में नारक आदि चार गतियां, क्रोधादि चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, छह लेश्यायें, असंयम, संसारित्व, असिद्धत्व आदि परिगणित किये गये हैं, क्योंकि

ये सब भाव कर्म के उदय से जीव मे ही निष्पन्न होते है। जैसे कि गतिनामकर्म के उदय से मनुष्य-गति आदि गतिया उत्पन्न होती है और इन गतियो का उदय होने पर जीव मनुष्य, तिर्यंच आदि कहलाता है। इसी प्रकार क्रोधादि चारो कषायो का उदय कषायचारित्रमोहनीयकर्मजन्य है तथा नोकषायचारित्रमोहनीय का उदय होने पर स्त्री आदि वेदत्रिक, हास्यादि नोकषाय निष्पन्न होते हैं। मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से मिथ्यादर्शन और ज्ञानावरण के उदय से अज्ञान होना है। लेश्याए कषायानुरजित योगप्रवृत्ति रूप है और योग शरीरनामकर्म के उदय के फल है। चारित्रमोहनीय के सर्वघातिस्पर्धको के उदय से असयतभाव तथा किसी भी कर्म का उदय रहने तक असिद्धत्वभाव एव ससारस्थत्वभाव होता है। इसी प्रकार कर्मोदय से जीव मे जो भी अन्य पर्याय निष्पन्न हो, वे सब जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव रूप है।

सूत्रकार द्वारा सूत्र मे जीवोदयनिष्पन्न के रूप मे किये गये कतिपय नामो का उल्लेख उपलक्षण मात्र है। अत इनके समान ही निद्रा, निद्रानिद्रा आदि निद्रापचक प्रभृति जो भी जीव के स्वाभाविक गुणो के घातक कर्म है, उन सबके उदय से उत्पन्न पर्यायो को जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभावरूप समझना चाहिये।

अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव के भी अनेक प्रकार बताये है। जैसे औदारिक आदि शरीर। इन शरीरादि को अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव इसलिये कहा है कि यद्यपि नारकत्व आदि पर्यायो की तरह औदारिक आदि शरीर भी जीव के होते है, लेकिन औदारिक आदि शरीरनामकर्मों का विपाक मुख्यतया शरीर रूप परिणत पुद्गलो मे होने से इन्हे पुद्गलविपाकी प्रकृतियो मे परिगणित किया है और पुद्गल अजीव है। अत इनको अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव रूप माना जाता है।

औपशमिकभाव

२३९. से किं तं उवसमिए ?

उवसमिए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—उवसमे य १ उवसमनिप्फण्णे य २।

[२३९ प्र] भगवन्! औपशमिकभाव का क्या स्वरूप है?

[२३९ उ] आयुष्मन्! औपशमिकभाव दो प्रकार का है। वह इस प्रकार—१ उपशम और २ उपशमनिष्पन्न।

२४०. से किं त उवसमे ?

उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेण। से त उवसमे।

[२४० प्र] भगवन्! उपशम (औपशमिक) का क्या स्वरूप है?

[२४० उ] आयुष्मन्! मोहनीयकर्म के उपशम से होने वाले भाव को उपशम (औपशमिक) भाव कहते हैं।

२४१. से किं तं उवसमनिप्फण्णे ?

उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। त जहा—उवसतकोहे जाव उवसंतलोभे उवसंतपेज्जे उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिज्जे उवसतचरित्तमोहणिज्जे उवसतमोहणिज्जे उवसमिया सम्मत्तलद्धी उवसमिया चरित्तलद्धी उवसतकसायछउमत्थवीतरागे। से त उवसमनिप्फण्णे। से तं उवसमिए।

[२४१ प्र] भगवन् ! उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४१ उ] आयुष्मन् ! उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव के अनेक प्रकार हैं। जैसे कि उपशातक्रोध यावत् उपशातलोभ, उपशातराग, उपशातद्वेष, उपशातदर्शनमोहनीय, उपशातचारित्र-मोहनीय, उपशातमोहनीय, औपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, औपशमिक चारित्रलब्धि, उपशातकषाय छद्मस्थवीतराग आदि उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव है।

इस प्रकार से औपशमिकभाव का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्रकार ने इन तीन सूत्रो मे औपशमिकभाव का स्वरूप बतलाया है। उपशम से होने वाला औपशमिक भाव दो प्रकार का है। एक प्रकार का औपशमिक भाव तो वह है जो मोहनीयकर्म के उपशम से होता है।

मोहनीयकर्म दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के भेद से दो प्रकार का है। दर्शनमोहनीय के उदय से जीव आत्मस्वरूप का दर्शन, श्रद्धान करने मे असमर्थ रहता है। उसकी श्रद्धा-प्रतीति यथार्थ नही होती है और चारित्रमोहनीय के उदय रहते जीव आत्मस्वरूप मे स्थिर नही हो पाता है। दर्शनमोहनीय के तीन भेदो और चारित्रमोहनीय के २५ भेदो को मिलाने से मोहनीयकर्म के अट्ठाईस भेद है। मोहनीयकर्म का पूर्ण उपशम ग्यारहवे गुणस्थान मे होता है।

दर्शनमोहनीय के उपशम से सम्यक्त्वलब्धि की और चारित्रमोहनीय के उपशम से चारित्र-लब्धि की प्राप्ति होती है। यह बतलाने के लिये सूत्र मे उवसमिया सम्मत्तलद्धी, उवसमिया चारित्तलद्धी यह दो पद दिये है।

दूसरे उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव के अनेक भेद दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के अनेक प्रभेदो के उपशात होने की अपेक्षा से जानना चाहिये। इसीलिये उपशातक्रोध आदि का निर्देश किया है।

उपशातकषायछद्मस्थवीतराग—इसमे उपशातकषाय, छद्मस्थ और वीतराग, यह तीन शब्द है। अर्थात् कषाय के उपशात हो जाने से राग-द्वेष का सर्वथा उदय नही है, किन्तु छद्म (ज्ञानावरण आदि आवरणभूत घातिकर्म) अभी शेष है। इस प्रकार की स्थिति उपशातकषायछद्-मस्थवीतराग कहलाती है। इसमे मोहनीयकर्म की सत्ता तो है, किन्तु उदय नही होने से शरद् ऋतु मे होने वाले सरोवर के जल की तरह मोहनीयकर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले जीव के निर्मल परिणाम होते है।

क्षायिकभाव

२४२. से किं तं खइए ?

खइए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा - खए य १ खयनिप्फण्णे य २।

[२४२ प्र] भगवन् ! क्षायिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४२ उ] आयुष्मन् ! क्षायिकभाव दो प्रकार का कहा गया है। यथा—१ क्षय और २ क्षयनिष्पन्न।

२४३. से किं तं खए ?

खए अट्ठण्हं कम्मपगडीणं खएणं। से तं खए।

[२४३ प्र] भगवन् ! क्षय-क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

[२४३ उ] आयुष्मन् ! आठ कर्मप्रकृतियों के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक है।

२४४. से किं तं खयनिप्फण्णे ?

खयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—उप्पण्णणाणदंसणधरे-अरहा जिणे केवली खीण-आभिणिबोहियणाणावरणे खीणसुयणाणावरणे खीणओहिणाणावरणे खीणमणपज्जवणाणावरणे खीणकेवलणाणावरणे अणावरणे णिरावरणे खीणावरणे णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, केवलदंसी सव्वदंसी खीणनिद्दे खीणनिद्दानिद्दे खीणपयले खीणपयलापयले खीणथीणगिद्धे खीणचक्खुदंसणावरणे खीणअचक्खुदंसणावरणे खीणओहिदंसणावरणे खीणकेवलदंसणावरणे अणावरणे निरावरणे खीणावरणे दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणसायवेयणिज्जे खीणअसायवेयणिज्जे अवेयणे निव्वेयणे खीणवेयणे सुभाऽसुभवेयणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणकोहे जाव खीणलोभे खीणपेज्जे खीणदोसे खीणदंसणमोहणिज्जे खीणचरित्तमोहणिज्जे अमोहे निम्मोहे खीणमोहे मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के, खीणणेरइयाउए खीणतिरिक्खजोणियाउए खीणमणुस्साउए खीणदेवाउए अणाउए निराउए खीणाउए आउयकम्मविप्पमुक्के, गति-जाति-सरीरंगोवंग-बंधण-संघात-संघयण-अणेगबोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के, खीणसुभनामे खीणासुभणामे अणामे निण्णामे खीणनामे सुभाऽसुभणामकम्मविप्पमुक्के, खीणउच्चागोए, खीणणीयागोए अगोए निग्गोए खीणगोए सुभाऽसुभगोत्तकम्मविप्पमुक्के, खीणदाणंतराए खीणलाभंतराए खीणभोगंतराए खीणुवभोगंतराए खीणविरियंतराए अणंतराए णिरंतराए खीणंतराए अंतराइयकम्म-विप्पमुक्के, सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुए अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे। से तं खयनिप्फण्णे। से तं खइए।

[२४४ प्र] भगवन् ! क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४४ उ] आयुष्मन् ! क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव अनेक प्रकार का कहा है। यथा—उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी, अर्हत्, जिन, केवली, क्षीणआभिनिबोधिकज्ञानावरण वाला, क्षीणश्रुतज्ञानावरण-वाला, क्षीणअवधिज्ञानावरण वाला, क्षीणमनःपर्यायज्ञानावरण वाला, क्षीणकेवलज्ञानावरण वाला, अविद्यमान आवरण वाला, निरावरण वाला, क्षीणावरण वाला, ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्त, केवलदर्शी, सर्वदर्शी, क्षीणनिद्र, क्षीणनिद्रानिद्र, क्षीणप्रचल, क्षीणप्रचलाप्रचल, क्षीणस्त्यानगृद्धि, क्षीणचक्षुदर्श-नावरण वाला, क्षीणअचक्षुदर्शनावरण वाला, क्षीणअवधिदर्शनावरण वाला, क्षीणकेवलदर्शनावरण वाला, अनावरण, निरावरण, क्षीणावरण, दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणसातावेदनीय, क्षीण-असातावेदनीय, अवेदन, निर्वेदन, क्षीणवेदन, शुभाशुभ-वेदनीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणक्रोध यावत् क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणद्वेष, क्षीणदर्शनमोहनीय, क्षीणचारित्रमोहनीय, अमोह, निर्मोह, क्षीणमोह, मोहनीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणनरकायुष्क, क्षीणतिर्यंचायुष्क, क्षीणमनुष्यायुष्क, क्षीणदेवायुष्क, अनायुष्क, निरायुष्क, क्षीणायुष्क, आयुकर्मविप्रमुक्त, गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-बंधन-संघात-संहनन-अनेक-शरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्त, क्षीण-शुभनाम, क्षीण-सुभगनाम, अनाम, निर्नाम, क्षीणनाम, शुभाशुभ-

नामकर्मविप्रमुक्त, क्षीण-उच्चगोत्र, क्षीण-नीचगोत्र, अगोत्र, निर्गोत्र, क्षीणगोत्र, शुभाशुभगोत्रकर्म-विप्रमुक्त, क्षीण-दानान्तराय, क्षीण-लाभान्तराय, क्षीण-भोगान्तराय, क्षीण-उपभोगान्तराय, क्षीण-वीर्यान्तराय, अनन्तराय, निरतराय, क्षीणान्तराय, अतरायकर्मविप्रमुक्त, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त, अतकृत, सर्वदु खप्रहीण ।

यह क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव का स्वरूप है। इस प्रकार से क्षायिकभाव की वक्तव्यता जानना चाहिये ।

विवेचन—यहाँ क्षय और क्षयनिष्पन्न भावो का स्वरूप निरूपण किया है।

क्षायिकभाव अपने-अपने उत्तरभेदो सहित ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के सर्वथा अपगम रूप है और क्षयनिष्पन्न क्षायिक भावो के रूप मे जो नाम गिनाये है, वे क्षय से उत्पन्न हुई आत्मा की निज स्वाभाविक अवस्थाएँ है। कर्मों के नष्ट होने पर आत्मा का जो मौलिक रूप प्रकट होता है, उसी के ये वाचक है। जैसे केवलज्ञानावरण के नष्ट होने पर आत्मा मे केवलज्ञानगुण प्रकट हो जाता है और मतिज्ञान आदि चार क्षायोपशमिक ज्ञान क्षायिक रूप हो जाते है—केवलज्ञान मे अन्तर्हित हो जाते हैं, तब क्षीणकेवलज्ञानावरण ऐसा जो नाम होता है वह नाम, स्थापना या द्रव्यनिक्षेप रूप नही होता किन्तु भावनिक्षेप रूप होता है। इसी प्रकार शेष नामो के लिये भी जानना चाहिये ।

यद्यपि सूत्रोक्त नामो का वर्गीकरण आवश्यक नही है, सभी नाम निष्कर्मा आत्मा के बोधक है। तथापि सुगमबोध के लिये उन नामो के तीन वर्ग इस प्रकार हो सकते है—

१ प्रथम वर्ग उन नामो का है जिनसे कर्मों के सर्वथा क्षीण होने पर आत्मा को सबोधित किया जाता है। ये नाम है--उत्पन्नज्ञान-दर्शनधारी, अर्हत्, जिन, केवली ।

२ दूसरे वर्ग मे वे नाम है जो पाच प्रकार के ज्ञानावरणकर्म, नौ प्रकार के दर्शनावरणकर्म, दो प्रकार के वेदनीयकर्म, अट्ठाईस प्रकार के मोहनीयकर्म, चार प्रकार के आयुष्यकर्म, बयालीस प्रकार के नामकर्म, दो प्रकार के गोत्रकर्म और पाच प्रकार के अतरायकर्म के क्षय से निष्पन्न है। इन नामो का उल्लेख क्षीण-आभिनिबोधिकज्ञानावरण से अन्तरायकर्मविप्रमुक्त पद तक किया है तथा सर्वथा कर्मप्रकृतियो के क्षय से सिद्धावस्था प्राप्त होने से यह कथन सिद्ध भगवान् की अपेक्षा जानना चाहिये ।

३ तीसरे वर्ग के नामो मे सर्वथा कर्मक्षय होने पर सम्भव आत्मा की अवस्था का निरूपण किया है। इसके द्योतक शब्द सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त, अतकृत और सर्वदु खप्रहीण है।

पदसार्थक्य- सूत्रगत सभी पद पारिभाषिक है। इनमे से अधिकाश के लक्षण पचसग्रह, कर्मप्रकृति आदि कर्मग्रन्थो से जानकर और उनके साथ क्षीण शब्द जोडने पर ज्ञात हो सकते है। किन्तु कुछ पद ऐसे है कि पर्यायवाची होने से उनमे शब्दनय की अपेक्षा भेद नही है किन्तु समभिरूढ-नय की अपेक्षा उनके वाच्यार्थ मे भेद हो जाता है। ऐसे पदो का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

अणावरणे निरावरणे खीणावरणे—वर्तमान मे आत्मा अविद्यमान आवरणवाला होने से अनावरण रूप है, किन्तु भविष्य मे पुन कर्मसयोग होने की सम्भावना का निराकरण करने के लिए

निरावरण पद दिया है और कर्मसयोग न होना तभी सम्भव है जब कर्म निःसत्ताक हो जाएं। यह बताने के लिये क्षीणावरण पद दिया है।

अवेयणे निव्वेयणे खीणवेयणे—अवेदन का अर्थ है वेदना (अनुभूति) रहित किन्तु 'अ' उपसर्ग अल्प, ईषद् अर्थ मे भी प्रयुक्त होने से अवेदन का अर्थ अल्पवेदन भी हो सकता है। अत इस प्रसगत अर्थ का निराकरण करने के लिये 'निर्वेदन' पद प्रयुक्त किया है। आशय यह कि सर्वथा वेदनारहित को निर्वेदन समझना चाहिये और वर्तमान की यह निर्वेदन रूप अवस्था कालान्तरस्थायी भी है, इसका बोधक 'क्षीणवेदन' पद है।

अमोहे निम्मोहे खीणमोहे—अमोह अर्थात् अपगत मोहनीयकर्म वाला। परन्तु अमोह का एक अर्थ अल्प मोह वाला भी सभव होने से उसका निराकरण करने के लिये 'निर्मोह' पद दिया है। नि शेष रूप से मोहकर्म रहित ऐसा निर्मोही अमोह पद का वाच्य है। ऐसा निर्मोही भी कालान्तर मे मोहोदययुक्त बन सकता है, जैसे उपशान्तमोहवाला। इस आशका को निर्मूल करने के लिये क्षीणमोह पद दिया है कि अपुनर्भव रूप मोहोदयवाला जीव अमोह, निर्मोह नाम से यहाँ ग्रहण किया गया है।

इसी प्रकार अणामे, निण्णामे, खीणनामे, अगोए, निग्गोए, खीणगोए, अणतराए, णिरतराए, खीणतराए पदो की सार्थकता का विचार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म की अपेक्षा कर लेना चाहिये।

अणाउए निराउए खीणाउए—तद्भवसबन्धी आयु के क्षय होने पर भी जीव अनायुष्क कहलाता है। अत ऐसे अनायुष्क का निराकरण करने के लिये—जिसका आयुकर्म नि शेष रूप से समाप्त हो चुका है ऐसे अनायुष्क का ग्रहण करने के लिये निरायुष्क पद दिया है। ऐसी निरायुष्क अवस्था जीव की शैलेशी दशा मे हो जाती है। वहाँ सपूर्ण रूप से निरायुष्कता तो नही है किन्तु किंचिन्मात्र आयु अवशिष्ट होने पर भी उपचार से उसे निरायुष्क कहते है। अत इस आशका को दूर करने के लिये 'क्षीणायुष्क' पद रखा है, अर्थात् सपूर्ण रूप से जिसका आयुकर्म क्षीण हो चुकता है वही अनायुष्क, निरायुष्क नाम वाला कहलाता है।

उपर्युक्त पदो की सार्थकता तो ज्ञानावरण आदि पृथक्-पृथक् कर्म के क्षय की अपेक्षा जानना चाहिये और आठो कर्मों के सर्वथा नष्ट होने पर निष्पन्न पदो की सार्थकता इस प्रकार है—

सिद्ध—समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाने से सिद्ध यह नाम निष्पन्न होता है। **बुद्ध**—बोध स्वरूप हो जाने से बुद्ध, **मुक्त**—बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहबधन से छूट जाने पर मुक्त, **परिनिर्वृत्त**—सर्व प्रकार से, सब तरफ से शीतीभूत हो जाने से परिनिर्वृत्त, **अन्तकृत्**—ससार के अतकारी होने से अन्तकृत् और **सर्वदुःखप्रहीण**—शारीरिक एव मानसिक समस्त दु खो का आत्यन्तिक क्षय हो जाने से सर्वदु खप्रहीण नाम निष्पन्न होता है।

इस प्रकार से क्षायिक और क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव की वक्तव्यता का आशय जानना चाहिये।

क्षायोपशमिकभाव

२४५. से किं तं खओवसमिए ?

खओवसमिए दुविहे पन्नत्ते। तं जहा—खओवसमे य १ खओवसमनिप्फन्ने य २।

[२४५ प्र] भगवन् ! क्षायोपशमिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४५ उ] आयुष्मन् ! क्षायोपशमिकभाव दो प्रकार का है। वह इस प्रकार—१ क्षयोपशम और २ क्षयोपशमनिष्पन्न।

२४६. से किं तं खओवसमे ?

खओवसमे चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं। तं जहा— णाणावरणिज्जस्स १ दसणावरणिज्जस्स २ मोहणिज्जस्स ३ अंतराइयस्स ४। से तं खओवसमे।

[२४६ प्र] भगवन् ! क्षयोपशम का क्या स्वरूप है ?

[२४६ उ] आयुष्मन् ! १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ मोहनीय और ४ अन्तराय, इन चार घातिकर्मों के क्षयोपशम को क्षयोपशमभाव कहते है।

२४७. से किं तं खओवसमनिप्फन्ने ?

खओवसमनिप्फन्ने अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—खओवसमिया आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी, खओवसमिया मतिअण्णाणलद्धी खओवसमिया सुयअण्णाणलद्धी खओवसमिया विभगणाणलद्धी, खओवसमिया चक्खुदसणलद्धी एवमचक्खुदसणलद्धी ओहिदंसणलद्धी, एवं सम्मद्दसणलद्धी मिच्छादसणलद्धी सम्मामिच्छादसणलद्धी, खओवसमिया सामाइयचरित्तलद्धी एव छेदोवट्ठावणलद्धी परिहारविसुद्धियलद्धी सुहुमसपराइयलद्धी एव चरित्ताचरित्तलद्धी, खओवसमिया दाणलद्धी एव लाभ० भोग० उवभोग० खओवसमिया वीरियलद्धी एव पडियवीरियलद्धी बालवीरियलद्धी बालपडियवीरियलद्धी, खओवसमिया सोइंदियलद्धी जाव खओवसमिया फासिंदियलद्धी, खओवसमिए आयारधरे एव सूयगडधरे ठाणधरे समवायधरे विवाहपण्णत्तिधरे एव नायाधम्मकहा० उवासगदसा० अतगडदसा० अणुत्तरोववाइयदसा०पण्हावागरण० खओवसमिए विवागसुयधरे खओवसमिए दिट्ठिवायधरे, खओवसमिए णवपुव्वी जाव चोद्दसपुव्वी, खओवसमिए गणी खओवसमिए वायए। से त खओवसमनिप्फण्णे। से त खओवसमिए।

[२४७ प्र] भगवन् ! क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४७ उ] आयुष्मन् ! क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिकभाव अनेक प्रकार का है। यथा—क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् क्षायोपशमिकी मन पर्यायज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी मति-अज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुत-अज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी विभगज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी चक्षुदर्शनलब्धि, इसी प्रकार अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि, सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि, क्षायोपशमिकी सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिलब्धि, सूक्ष्मसपरायिकलब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, क्षायोपशमिकी दान-लाभ-भोग-उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि, पडितवीर्यलब्धि, बालवीर्यलब्धि, बालपडितवीर्यलब्धि, क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शनेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक आचारागधारी, सूत्रकृतागधारी, स्थानागधारी, समवायागधारी, व्याख्याप्रज्ञप्तिधारी, ज्ञाताधर्मकथागधारी, उपासकदशागधारी, अन्तकृद्दशागधारी, अनुत्तरोपपातिकदशागधारी, प्रश्नव्याकरणधारी, क्षायोपशमिक

विपाकश्रुतधारी, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी, क्षायोपशमिक नवपूर्वधारी यावत् चौदहपूर्वधारी, क्षायोपशमिक गणी, क्षायोपशमिक वाचक । ये सब क्षयोपशमनिष्पन्नभाव है ।

यह क्षायोपशमिकभाव का स्वरूप है ।

विवेचन—यहाँ सप्रभेद क्षायोपशमिकभाव का स्वरूप स्पष्ट किया है । एक तो तत्तत्—अमुक-अमुक कर्म का क्षयोपशम ही क्षायोपशमिक है और दूसरा क्षयोपशमनिष्पन्नभाव क्षायोपशमिक है । विवक्षित ज्ञानादि गुणो का घात करने वाले उदयप्राप्त कर्म का क्षय– सर्वथा अपगम और अनुदीर्ण उन्ही कर्मों का उपशम—विपाक की अपेक्षा उदयाभाव, इस प्रकार के क्षय से उपलक्षित उपशम को क्षयोपशम कहते है और इस क्षयोपशम से निष्पन्न पर्याय क्षयोपशमनिष्पन्नभाव है ।

जिस कर्म मे सर्वघाती और देशघाती ये दोनो प्रकार के स्पर्धक (अश) पाये जाते है, उनका क्षयोपशम होता है । किन्तु जिनमे केवल देशघातीस्पर्धक ही पाये जाते हैं ऐसे हास्यादि नवनोकषाय और जिनमे मात्र सर्वघातीस्पर्धक ही पाये जाते है, ऐसे केवलज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षयोपशम नही होता है ।

यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय सर्वघाती ही है किन्तु इन्हे अपेक्षा-कृत देशघाती मान लिये जाने से अनन्तानुबधी आदि कषायो का क्षयोपशम माना जाता है तथा अघाति कर्मो मे देशघाति और सर्वघाति रूप विकल्प न होने से उनका क्षयोपशम सभव नही है ।

इस प्रकार से यह क्षयोपशम की सामान्य भूमिका जानना चाहिये । किस-किस कर्म के क्षयोपशम मे कौन-कौन से भाव प्रकट होते है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है --

आभिनिबोधिकज्ञान अर्थात् मतिज्ञान । इस ज्ञान की प्राप्ति का नाम आभिनिबोधिकज्ञान-लब्धि है । यह मतिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने के कारण क्षायोपशमिकी है । इसी प्रकार श्रुतज्ञानलब्धि, अवधिज्ञानलब्धि और मन पर्यायज्ञानलब्धि तत्तत् ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने के कारण क्षयोपशमनिष्पन्न है ।

केवलज्ञान और केवलदर्शन भी लब्धिरूप है । किन्तु केवलज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के क्षय से प्राप्त होने के कारण यहाँ उनका उल्लेख नही किया है । वे क्षयनिष्पन्नलब्धि हैं ।

मति-अज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मति-अज्ञान, श्रुत-ज्ञानावरण के क्षयोपशम से श्रुत-अज्ञान, विभग-ज्ञानावरण के क्षयोपशम से विभगज्ञान की प्राप्ति होने से इन्हे क्षायोपशमिकी मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभगज्ञानलब्धि कहा है । यहाँ अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही किन्तु मिथ्याज्ञान समझना चाहिए ।

क्षायोपशमिकी चक्षुदर्शनलब्धि, अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि क्रमश चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने के कारण क्षयोपशम-निष्पन्न है ।

सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि की प्राप्ति मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने के कारण क्षयोपशमनिष्पन्न है ।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसपराय नामक चार चारित्रलब्धिया

चारित्रमोहनीयकर्म के क्षयोपशम से तथा चारित्राचारित्रलब्धि (देशचारित्रलब्धि) अनन्तानुबधी एव अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से प्राप्त होती है।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य लब्धि दानान्तराय आदि पाच अन्तरायकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने के कारण क्षयोपशमनिष्पन्न है।

पडितवीर्यलब्धि, बालवीर्यलब्धि एव बालपडितवीर्यलब्धि की प्राप्ति वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से होती है।

श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शनेन्द्रिय तक की पाच इन्द्रियलब्धिया भावेन्द्रिय की अपेक्षा जानना चाहिये। वे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम से होती हैं। इसी प्रकार आचाराग आदि बारह अगो को धारण करने और वाचक रूप लब्धिया श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम से होती है। अत ये क्षायोपशमिक है।

क्षायोपशमिक और उपशमभाव मे अन्तर—क्षय और उपशम का सयोगज रूप क्षयोपशम है। उदयप्राप्त कर्म का क्षय और अनुदीर्ण उसी कर्म का विपाक की अपेक्षा मे उदयाभाव इस प्रकार के क्षय से उपलक्षित उपशम क्षयोपशम कहलाता है। यही स्थिति औपशमिकभाव की भी है। वहाँ भी उदयप्राप्त कर्म का सर्वथा क्षय और अनुदयप्राप्त कर्म का न क्षय और न उदय किन्तु उपशम है। इस प्रकार सामान्य से दोनो मे कोई अन्तर प्रतीत नही होता है। फिर भी दोनो मे अन्तर है। वह यह कि क्षयोपशमभाव मे कर्म का जो उपशम है वह विपाक की अपेक्षा से है, प्रदेश की अपेक्षा से नही। क्योकि प्रदेश की अपेक्षा से तो वहाँ कर्म का उदय रहता है। परन्तु औपशमिकभाव मे विपाक और प्रदेश दोनो की अपेक्षा उपशम जानना चाहिये। औपशमिकभाव मे कर्म का न विपाकोदय होता है और न प्रदेशोदय ही होता है। इसीलिये क्षायोपशमिक और औपशमिक ये दोनो पृथक्-पृथक् भाव माने गये है।

क्षयोपशम ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय इन चार घाति कर्मो का ही होता है, अन्य कर्मों का नही, जब कि करणसाध्य उपशम सिर्फ मोहनीयकर्म का ही होता है।

इस प्रकार से क्षायोपशमिकभाव की वक्तव्यता जानना चाहिये।

पारिणामिकभाव

२४८. से किं त पारिणामिए ?

पारिणामिए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—सादिपारिणामिए य १ अणादिपारिणामिए य २।

[२४८ प्र] भगवन्! पारिणामिकभाव किसे कहते है?

[२४८ उ] आयुष्मन्! पारिणामिकभाव के दो प्रकार है। यथा—१ सादिपारिणामिक, २ अनादिपारिणामिक।

२४९. से किं तं सादिपारिणामिए ?

सादिपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते। त जहा—

जुण्णसुरा जुण्णगुलो जुण्णघय जुण्णतदुला चेव।
अब्भा य अब्भरुक्खा संझा गंधव्वणगरा य ॥ २४ ॥

उक्कावाया दिसादाघा गज्जियं विज्जू निग्घाया जूवया जक्खादित्ता धूमिया महिया रयुग्घाओ चंदोवरागा सूरोवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडिचंदया पडिसूरया इंदधणू उदगमच्छा कविहसिया अमोहा वासा वासधरा गामा णगरा घरा पव्वता पायाला भवणा निरया रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुयप्पभा पंकप्पभा धूमप्पभा तमा तमतमा सोहम्मे ईसाणे जाव आणए पाणए आरणे अच्चुए गेवेज्जे अणुत्तरोववाइया ईसीपब्भारा परमाणुपोग्गले दुपदेसिए जाव अणंतपदेसिए। से तं सादिपारिणामिए।

[२४९ प्र] भगवन् ! सादिपारिणामिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२४९ उ] आयुष्मन् ! सादिपारिणामिकभाव के अनेक प्रकार है। जैसे--

जीर्ण सुरा, जीर्ण गुड, जीर्ण घी, जीर्ण तंदुल, अभ्र, अभ्रवृक्ष, संध्या, गंधर्वनगर। १२४ तथा—

उल्कापात, दिग्दाह, मेघगर्जना, विद्युत, निर्घात्, यूपक, यक्षादिप्त, धूमिका, महिका, रजोद्‌घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, वर्ष (भरतादि क्षेत्र), वर्षधर (हिमवानादि पर्वत), ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पातालकलश, भवन, नरक, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा, सौधर्म, ईशान, यावत् आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक, अनुत्तरोपपातिक देव-विमान, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, परमाणुपुद्‌गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध सादि-पारिणामिकभाव रूप है।

२५०. से किं अणादिपारिणामिए ?

अणादिपारिणामिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभवसिद्धिया। से तं अणादिपारिणामिए। से तं पारिणामिए।

[२५० प्र] भगवन् ! अनादिपारिणामिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५० उ] आयुष्मन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय, अद्धासमय, लोक, अलोक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, ये अनादि पारिणामिक है।

यह पारिणामिकभाव का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे पारिणामिक भाव का निरूपण किया है। वह सादि और अनादि के भेद से दो प्रकार का है।

पारिणामिकभाव का लक्षण व विशेषता—द्रव्य के मूल स्वभाव का परित्याग न होना और पूर्व अवस्था का विनाश तथा उत्तर अवस्था की उत्पत्ति होती रहना परिणमन-परिणाम है। अर्थात् स्वरूप मे स्थित रहकर उत्पन्न तथा नष्ट होना परिणाम है। ऐसे परिणाम को अथवा इस परिणाम से जो निष्पन्न हो उसे पारिणामिक कहते है।

पारिणामिकभाव के कारण ही जिस द्रव्य का जो स्वभाव है, उसी रूप मे उसका परिणमन-परिवर्तन होता है। अर्थात् प्रत्येक द्रव्य मे स्वभावस्थ रहते हुए ही परिवर्तन होता है। वह न तो सर्वथा तदवस्थ नित्य है और न सर्वथा क्षणिक ही।

परिणाम के इस लक्षण द्वारा द्रव्य और गुण मे एकान्त भेद एव द्रव्य को सर्वथा अविकृत और गुणो को उत्पन्न-विनष्ट मानने वाले नैयायिक आदि दर्शनो का तथा वस्तुमात्र को क्षणस्थायी—निरन्वय विनाशी मानने वाले बौद्धदर्शन के मतव्यो का निराकरण किया गया है।

यह पारिणामिकभाव सादि और अनादि के भेद से दो प्रकार का है।

सादिपारिणामिक सबन्धी स्पष्टीकरण—सादिपारिणामिक के अनेक प्रकारो की सादिता का कारण यह है—

सुरा, गुड, घृत और तदुलो की नव्य और जीर्ण, इन दोनो अवस्थाओ मे अनुगत होने पर भी उनमे नवीनता पर्याय के निवृत्त होने पर जीर्णता रूप पर्याय उत्पन्न होता है। इसलिये सादि-पारिणामिक के उदाहरण रूप मे जीर्ण विशेषण से विशिष्ट सुरा आदि पदो को रखा है। जीर्णता उपलक्षण है, अत इसी प्रकार से नव्य विशेषण के लिये भी समझना चाहिये।

भरतादि क्षेत्र सादिपारिणामिक कैसे ?—भरतादि क्षेत्र, हिमवान् आदि वर्षधर पर्वत, नरक-भूमिया एव देवविमान अपने आकार मात्र से अवस्थित रहने के कारण शाश्वत अवश्य है किन्तु वे पौद्गलिक है और पुद्गलद्रव्य परिणमनशील होने से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल बाद उसमे अवश्य परिणमन होता है। तब विलग हुए उन पुद्गलस्कन्धो के स्थान मे दूसरे-दूसरे स्कन्ध मिलकर उस-उस रूप परिणत हो जाते है। इसलिये वर्षधरादिको को सादिपारिणामिकता के रूप मे उदाहृत किया है। मेघ आदि मे तो कुछ काल पर्यन्त ही रहने से सादिरूपता स्वयसिद्ध है।

धर्मास्तिकाय आदि षड् द्रव्य, लोक, अलोक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक अनादिपारिणामिक-भाव इसलिये है कि वे स्वभावत अनादि काल से उस-उस रूप से परिणत है और अनन्तकाल तक रहेगे।

सूत्रगत कठिन शब्दो के अर्थ—अब्भा—अभ्र, मेघ। **अब्भरुक्खा**—अभ्रवृक्ष—वृक्षाकार मे परिणत हुए मेघ। **संझा**—सध्या—दिनरात्रि का सधिकाल। **गधव्वणगरा**—गधर्वनगर—उत्तम प्रासाद से शोभित नगर की आकृति जैसे आकाश मे बने हुए पुद्गलो का परिणमन। **उक्कावाया**—उल्कापात—आकाशप्रदेश से गिरता हुआ तेजपुज। **दिसादाघा**—दिग्दाह—किसी एक दिशा की ओर आकाश मे जलती हुई अग्नि का आभास होना—दिखाई देना। **गज्जिय**—गर्जित-मेघ की गर्जना। **विज्जू**—विद्युत—बिजली। **णिग्घाया**—निर्घात—गाज (बिजली) गिरना। **जूवया**—यूपक—शुक्लपक्ष सम्बन्धी प्रथम तीन दिन का बाल चन्द्र। **जक्खादित्ता**—यक्षादीप्त—आकाश मे दिखाई देती हुई पिशाचाकृति अग्नि। **धूमिया**—धूमिका—आकाश मे रूक्ष और विरल दिखाई पडती हुई धुएं जैसी एक प्रकार की धूमस। **महिया**—महिका—जलकणयुक्त धूमस, कुहरा। **रयुग्घाओ**—रजोद्घात—आकाश मे धूलि का उडना, आधी। **चदोवरागा सूरोवरागा**—चन्दोपराग, सूर्योपराग—चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण। **चदपरिवेसा सूरपरिवेसा**—चन्द्रपरिवेश, सूर्यपरिवेश—चन्द्र और सूर्य के चारो ओर गोलाकार मे परिणत हुए पुद्गल परमाणुओ का मण्डल। **पडिचदया, पडिसूरया**—प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य—उत्पात आदि का सूचक द्वितीय चन्द्र और द्वितीय सूर्य का दिखाई पडना। **इंदधणु**—इन्द्रधनुष—आकाश मे नील-पीत आदि वर्ण विशिष्ट धनुषाकार आकृति। **उदगमच्छ**—**उदकमत्स्य**—इन्द्रधनुष के खण्ड, टुकडे। **कविहसिया**—कपिहसिता—कभी-कभी आकाश मे सुनाई पडने वाली अति कर्णकटु ध्वनि। **अमोहा**—अमोघ—उदय और अस्त के समय सूर्य की किरणो द्वारा उत्पन्न रेखा-विशेष। **वासा**—वर्ष—भरतादि क्षेत्र, **वासधरा**—वर्षधर—हिमवान् आदि पर्वत। शेष शब्दो के अर्थ सुगम है।

सान्निपातिकभाव

२५१. से किं तं सण्णिवाइए ?

सण्णिवाइए एतेसिं चेव उदइय-उवसमिय-खइय-खओवसमिय-पारिणामियाणं भावाण दुयसंजोएणं तियसंजोएणं चउक्कसंजोएण पंचगसंजोएणं जे निप्पज्जंति सव्वे से सन्निवाइए नामे। तत्थ णं दस दुगसंजोगा, दस तिगसंजोगा, पंच चउक्कसंजोगा, एक्के पंचगसंजोगे।

[२५१ प्र] भगवन्! सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५१ उ] आयुष्मन्! औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, इन पांचों भावों के द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, चतुःसंयोग और पंचसंयोग से जो भाव निष्पन्न होते हैं वे सब सान्निपातिकभाव नाम हैं।

उनमें से द्विकसंयोगज दस, त्रिकसंयोगज दस, चतुःसंयोगज पांच और पंचसंयोगज एक भाव है। इस प्रकार सब मिलाकर ये छब्बीस सान्निपातिकभाव हैं।

विवेचन—सूत्र में सान्निपातिकभाव का स्वरूप बतलाया है। पूर्वोक्त औदयिक आदि पांच भावों में से दो आदि भावों के मिलने से जो-जो भाव निष्पन्न होते हैं, वे सब सान्निपातिकभाव हैं।

इन औदयिक आदि पांच भावों के द्विक, त्रिक, चतुष्क और पंच संयोगज छब्बीस भंगों में से जीवों में कुल छह भंग पाये जाते हैं। शेष बीस प्ररूपणा मात्र के लिये ही हैं।

सान्निपातिकभाव दो आदि भावों के संयोगजरूप है। अतः अब यथाक्रम उन द्विकसंयोगज आदि सान्निपातिकभावों का निरूपण करते हैं।

द्विकसंयोगज सान्निपातिकभाव

२५२. **तत्थ णं जे से दस दुगसंजोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइए उवसमनिप्पण्णे[1] १ अत्थि णामे उदइए खयनिप्पण्णे २ अत्थि णामे उदइए खओवसमनिप्पण्णे ३ अत्थि णामे उदइए पारिणामियनिप्पण्णे ४ अत्थि णामे उवसमिए खयनिप्पण्णे ५ अत्थि णामे उवसमिए खओवसमनिप्पण्णे ६ अत्थि णामे उवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ७ अत्थि णामे खइए खओवसमनिप्पन्ने ८ अत्थि णामे खइए पारिणामियनिप्पन्ने ९ अत्थि णामे खयोवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने १०।**

[२५२] दो-दो के संयोग से निष्पन्न दस भंगों के नाम इस प्रकार हैं—

१ औदयिक-औपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव २ औदयिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव ३ औदयिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव ४ औदयिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव ५ औपशमिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव ६ औपशमिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव ७ औपशमिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव ८ क्षायिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव ९. क्षायिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव तथा १० क्षायोपशमिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव।

२५३. **कतरे से नामे उदइए उवसमनिप्पन्ने ?**

उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया, एस णं से णामे उदइए उवसमनिप्पन्ने १।

---
१ पाठान्तर—*निप्फण्णे*।

कतरे से नामे उदइए खयनिप्पन्ने ?

उदए त्ति मणूसे खतियं सम्मत्त, एस ण से नामे उदइए खयनिप्पन्ने २।

कतरे से णामे उदइए खयोवसमनिप्पन्ने ?

उदए त्ति मणूसे खयोवसमियाइं इंदियाइ, एस ण से णामे उदइए खयोवसमनिप्पन्ने ३।

कतरे से णामे उदइए पारिणामियनिप्पन्ने ?

उदए त्ति मणूसे पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए पारिणामियनिप्पन्ने ४।

कयरे से णामे उवसमिए खयनिप्पन्ने ?

उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं, एस णं से णामे उवसमिए खयनिप्पन्ने ५।

कयरे से णामे उवसमिए खओवसमनिप्पण्णे ?

उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उवसमिए खओवसमनिप्पन्ने ६।

कयरे से णामे उवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ?

उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ७।

कतरे से णामे खइए खओवसमियनिप्पन्ने ?

खइयं सम्मत्त खयोवसमियाइ इदियाइ, एस णं से णामे खइए खयोवसमनिप्पन्ने ८।

कतरे से णामे खइए पारिणामियनिप्पन्ने ?

खइय सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइए पारिणामियनिप्पन्ने ९।

कतरे से णामे खयोवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ?

खयोवसमियाइ इदियाइ पारिणामिए जीवे, एस ण से णामे खयोवसमिए पारिणामिय-निप्पन्ने १०।

[२५३ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिकभाव के सयोग से निष्पन्न भग का स्वरूप क्या है?

उत्तर— आयुष्मन! औदयिक-औपशमिकभाव के सयोग से निष्पन्न भग का यह स्वरूप है—औदयिकभाव मे मनुष्यगति और औपशमिकभाव मे उपशातकषाय को ग्रहण करने रूप औदयिक-औपशमिकभाव है। १

प्रश्न—भगवन्! औदयिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

उत्तर—आयुष्मन्! औदयिकभाव मे मनुष्यगति और क्षायिकभाव मे क्षायिक सम्यक्त्व का ग्रहण औदयिकक्षायिकभाव है। २।

प्रश्न—भगवन्! औदयिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

उत्तर—आयुष्मन्! औदयिकभाव मे मनुष्यगति और क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया जानना चाहिये। यह औदयिक-क्षायोपशमिकभाव का स्वरूप है। ३

प्रश्न—भगवन् ! औदयिक-पारिणामिकभाव के संयोग से निष्पन्न भग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! औदयिकभाव मे मनुष्यगति और पारिणामिकभाव में जीवत्व को ग्रहण करना औदयिक-पारिणामिकभाव का स्वरूप है। ४

प्रश्न—भगवन् ! औपशमिक-क्षयसयोगनिष्पन्नभाव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! उपशातकषाय और क्षायिक सम्यक्त्व यह औपशमिक-क्षायिकसयोगज भाव का स्वरूप है। ५

प्रश्न—भगवन् ! औपशमिक-क्षयोपशमनिष्पन्नभाव के सयोग का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! औपशमिकभाव मे उपशातकषाय और क्षयोपशमनिष्पन्न मे इन्द्रियां यह औपशमिक-क्षयोपशमनिष्पन्नभाव का स्वरूप है। ६

प्रश्न—भगवन् ! औपशमिक-पारिणामिकसयोगनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! औपशमिकभाव में उपशातकषाय और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है। ७

प्रश्न—भगवन् ! क्षायिक और क्षयोपशमनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक इन्द्रिया यह क्षायिक-क्षायोपशमिक-निष्पन्नभाव का स्वरूप जानना चाहिये। ८

प्रश्न—भगवन् ! क्षायिक और पारिणामिकनिष्पन्न का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! क्षायिकभाव मे क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिकभाव में जीवत्व का ग्रहण क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है। ९

प्रश्न—भगवन् ! क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावसयोगज का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया और पारिणामिकभाव में जीवत्व को ग्रहण किया जाये तो यह क्षायोपशमिक-पारिणामिकभाव का स्वरूप है। १०

इस प्रकार से यह द्विकसयोगी सान्निपातिक भाव के दस भगो का स्वरूप है।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे से पहले मे द्विकसयोगी दस सान्निपातिकभावो के नाम और दूसरे मे 'कतरे से नामे ' प्रश्न और 'एस ण से णामे ' उत्तर द्वारा उन-उन भावो का उदाहरण सहित स्वरूप स्पष्ट किया है।

इन दस सयोगज नामो मे औदयिक के साथ उत्तरवर्ती औपशमिक आदि चार भावो मे से एक-एक को जोडने से चार भग औपशमिक के साथ, क्षायिक आदि तीन भावो के सयोग से तीन भग, क्षायिक के साथ क्षायोपशमिक आदि दो भावो के सयोग से दो भग और क्षायोपशमिक के साथ अतिम पारिणामिकभाव को जोडने मे एक भग बनता है। कुल मिलाकर इनका जोड (४+३+२+१=१०) दस है।

इन दस भंगों की स्वरूपव्याख्या के प्रसग मे उल्लिखित मनुष्य, उपशांतकषाय, क्षायिक

सम्यक्त्व आदि नाम उपलक्षण रूप है। अत इनमे अन्य जिन-जिन कर्मप्रकृतियो की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम रूप स्थिति बनती हो उन सबका ग्रहण कर लेना चाहिये।

यद्यपि द्विकसयोगी-सान्निपातिकभाव के दस भग बतलाये है, लेकिन इनमे से मात्र क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न एक नौवा भग ही सिद्ध भगवान् की अपेक्षा घटित होता है। सिद्ध भगवान् मे क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिकभाव रूप जीवत्व है। इसके अतिरिक्त शेष नौ भग केवल प्ररूपणामात्र ही है। क्योकि सिद्धो के सिवाय सभी ससारी जीवो मे कम से कम यह तीन भाव तो होते ही है—औदयिक—वह गति जिसमे वे है, क्षायोपशमिक—यथायोग्य इन्द्रिय और पारिणामिक—जीवत्व।

इस प्रकार से द्विकसयोगी दस सान्निपातिक भावो की वक्तव्यता जानना चाहिये।

त्रिकसंयोगज सान्निपातिकभाव

२५४. तत्थ ण जे ते दस तिगसजोगा ते ण इमे—अत्थि णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने १, अत्थि णामे उदइए उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने २, अत्थि णामे उदइए उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ३, अत्थि णामे उदइए खइए खओवसमनिप्फन्ने ४, अत्थि णामे उदइए खइए पारिणामियनिप्फन्ने ५, अत्थि णामे उदइए खयोवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ६, अत्थि णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने ७, अत्थि णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने ८, अत्थि णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ९, अत्थि णामे खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने १०।

[२५४] वहाँ (सान्निपातिकभाव मे) त्रिकसयोगज दस भग इस प्रकार है—१ औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव, २ औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव, ३ औदयिक-औपशपिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ४. औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव, ५ औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ६ औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ७ औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव, ८ औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ९ औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, १० क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव।

२५५. कतरे से णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने? उदए त्ति मणूसे उवसता कसाया खइय सम्मत्तं, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने १।

[२५५-१ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-१ उ] आयुष्मन्! मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशातकषाय औपशमिकभाव और क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है। १

कतरे से णामे उदइए उवसमिए खयोवसमियनिप्फने? उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया खयोवसमियाइ इंदियाइं, एस ण से णामे उदइए उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने २।

[२५५-२ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५ २ उ] आयुष्मन् ! मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशातकषाय औपशमिक और इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव, इस प्रकार औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप जानना चाहिये। २।

कयरे से णामे उवइए उवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवइए उवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ३।

[२५५-३ प्र] भगवन् ! औदयिक-औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-३ उ] आयुष्मन् ! मनुष्यगति औदयिक, उपशातकषाय औपशमिक और जीवत्व पारिणामिक भाव, इस प्रकार से औदयिक-औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है। ३

कयरे से णामे उदइए खइए खओवसमनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइए खइए खओवसमनिप्पन्ने ४।

[२५५-४ प्र] भगवन् ! औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-४ उ] आयुष्मन् ! मनुष्यगति औदयिक, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और इन्द्रिया क्षायोपशमिकभाव यह औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। ४।

कतरे से णामे उवइए खइए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्त पारिणामिए जीवे, एस णं से नामे उवइए खइए पारिणामियनिप्पन्ने ५।

[२५५-५ प्र] भगवन् ! औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-५ उ] आयुष्मन् ! मनुष्यगति औदयिकभाव, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव इस प्रकार का औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिक-भाव का स्वरूप है। ५

कतरे से णामे उवइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे खओवसमियाइं इंदियाइ पारिणामिए जीवे, एस ण से णामे उवइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ६।

[२५५-६ प्र] भगवन् ! औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-६ उ] आयुष्मन् ! मनुष्यगति औदयिक, इन्द्रिया क्षायोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक, यह औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना चाहिये। ६

कतरे से णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्पन्ने? उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओव-समियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्पन्ने ७।

[२५५-७ प्र] भगवन् ! औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है?

[२५५-७ उ] आयुष्मन् ! उपशातकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव है। ७।

कतरे से णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्पन्ने ? उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्पन्ने ८।

[२५५-८ प्र] भगवन् ! औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५५-८ उ] आयुष्मन् ! उपशातकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना चाहिये। ८

कतरे से णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ? उवसता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ९।

[२५५-९ प्र] भगवन् ! औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५५-९ उ] आयुष्मन् ! उपशातकषाय औपशमिकभाव, इन्द्रिया क्षायोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक, इस प्रकार से यह औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न-सान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना चाहिये। ९

कतरे से णामे खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ? खइय सम्मत्त खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइए खयोवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने १०।

[२५५-१० प्र] भगवन् ! क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५५-१० उ] आयुष्मन् ! क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रिया क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, इस प्रकार का क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। १०

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो द्वारा तीन भावो के सयोग से निष्पन्न दस सान्निपातिकभावो के भग और और उनके स्वरूप का निरूपण किया है।

त्रिकसयोगज भावो के औदयिक और औपशमिक इन दो भावो को परिपाटी से निक्षिप्त करके अवशिष्ट क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन तीन भावो मे से एक-एक भाव का उनके साथ सयोग करने पर प्रथम तीन भाव निष्पन्न हुए है। उनमे भी पहला औदयिक-औपशमिक-क्षायिकसान्निपातिकभाव इस प्रकार घटित करना चाहिये कि यह मनुष्य उपशातक्रोधादि कषाय वाला होकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। मनुष्य से मनुष्यगति को ग्रहण किया है और मनुष्यगतिनामकर्म के उदय से मनुष्य होने से गति औदयिकभाव है। उपशातक्रोधादि कषाय कहने से औपशमिकभाव तथा क्षायिकसम्यक्त्व से क्षायिकभाव घटित होता है। इसी प्रकार से शेष दो भगो मे से पहले औदयिक-औपशमिक, क्षायोपशमिक-सान्निपातिकभाव मे मनुष्य, उपशातकषाय, पचेन्द्रिय तथा दूसरे औदयिक-औपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभाव मे मनुष्य, उपशातकषाय, जीवत्व को घटित कर लेना चाहिये।

तत्पश्चात् औपशमिकभाव को विलग कर औदयिक और क्षायिक भाव को ग्रहण किया जाय तब क्षायोपशमिक एव पारिणामिक भावो मे से एक-एक का ग्रहण करने पर त्रिसयोगी सान्निपातिकभाव के दो भग इस प्रकार बनते हैं—१ औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक और २. औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक । पहले का दृष्टान्त है—क्षीणकषायी, मनुष्य, इन्द्रिय वाला और दूसरे का दृष्टान्त—क्षायिक सम्यक्त्वी, मनुष्य, जीव है। इन भावो को पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिये ।

केवल औदयिकभाव का ग्रहण और औपशमिक एव क्षायिक भाव का परित्याग किये जाने पर छठा त्रिसयोगी—औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकसान्निपातिकभग बनता है । इसका उदाहरण है—मनुष्य मनोयोगी जीव है ।

यहाँ तक तो औदयिकभाव सयोग मे ग्रहण किया गया है । लेकिन औदयिकभाव को छोडकर शेष औपशमिकादि चार भावो मे से एक-एक का परित्याग किये जाने पर इस प्रकार चार भग बनते है— १ औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकसान्निपातिकभाव २ औपशमिक-क्षायिक-परिणामिक-सान्निपातिकभाव ३ औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकसान्निपातिकभाव और ४ क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकसान्निपातिकभाव । इन चारो के सूत्रोक्त उदाहरण स्वय घटित कर लेना चाहिये ।

इन दस सयोगज भगो मे से पाचवा और छठा भग जीवो मे पाया जाता है । यथा—औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकभावो के सयोग से निष्पन्न पाचवा सान्निपातिकभाव मनुष्यगति औदयिक, ज्ञान-दर्शन-चारित्र क्षायिक और जीवत्व पारिणामिक रूप होने से यह भग केवलियो मे घटित होता है । इन तीन भावो के अतिरिक्त अन्य भाव उनमे नही है । क्योकि उपशम मोहनीयकर्म का होता है और वे मोहनीयकर्म का सर्वथा क्षय कर चुके है तथा केवलियो का ज्ञान इन्द्रियातीत-अतीन्द्रिय होने से उनमे क्षायोपशमिकभाव भी नही है ।

औदयिक, क्षायोपशमिक एव पारिणाणामिक इन तीन भावो से निष्पन्न छठा भग नारकादि चारो गति के जीवों में होता है । क्योकि उनमे नारकादि गतिया औदयिकी है, इन्द्रिया क्षायोपशमिक-भाव और जीवत्व पारिणामिकभाव है ।

इनके अतिरिक्त शेष आठ भगो की कही पर भी सभावना नही होने से प्ररूपणामात्र समझना चाहिए ।

इस प्रकार त्रिकसयोगी दस सान्निपातिकभावो की वक्तव्यता है ।

चतुःसंयोगज सान्निपातिकभाव

२५६. तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंयोगा ते णं इमे—अत्थि णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमनिप्पन्ने १ अत्थि णामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामियनिप्पन्ने २ अत्थि णामे उदइए उवसमिए खयोवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ३ अत्थि णामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामिय-निप्पन्ने ४ अत्थि णामे उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ५ ।

[२५६] चार भावो के सयोग मे निष्पन्न सान्निपातिकभाव के पाच भगो के नाम इस प्रकार हैं—१ औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव, २ औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ३ औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ४ औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, ५ औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक-निष्पन्नभाव।

२५७. कतरे से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे उवसता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइ इंदियाइ, एस ण से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसम-निप्पन्ने १।

[२५७-१ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है?

[२५७-१ उ] आयुष्मन्! औदयिकभाव मे मनुष्य, औपशमिकभाव मे उपशातकषाय, क्षायिकभाव मे क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। १

कतरे से नामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे उवसता कसाया खइय सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामिय-निप्पन्ने २।

[२५७-२ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिक-भाव का क्या स्वरूप है?

[२५७-२ उ] आयुष्मन्! औदयिकभाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव मे उपशातकषाय, क्षायिकभाव मे क्षायिकसम्यक्त्व और पारिणामिकभाव मे जीवत्व, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। २

कतरे से णामे उदइए उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया खओवसमियाइ इंदियाइ पारिणामिए जीवे, एस ण से णामे उदइए उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ३।

[२५७-३ प्र] भगवन्! औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है?

[२५७-३ उ] आयुष्मन्! औदयिकभाव मे मनुष्यगति, औपशमिकभाव मे उपशातकषाय, क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया और पारिणामिकभाव मे जीवत्व, इस प्रकार से औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव के तृतीय भग का स्वरूप जानना चाहिये। ३

कतरे से णामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने? उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्त खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस ण से नामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ४।

[२५७-४ प्र.] भगवन् ! औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव किसे कहते हैं ?

[२५७-४ उ] आयुष्मन् ! औदयिकभाव मे मनुष्यगति, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया और पारिणामिकभाव मे जीवत्व, यह औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। ४

कतरे से नामे उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ? उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइ इंदियाइ पारिणामिए जीवे, एस णं से नामे उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ५।

[२५७-५ प्र] भगवन् ! औपशमिक - क्षायिक - क्षायोपशमिक - पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप क्या है ?

[२५७-५ उ] आयुष्मन् ! औपशमिकभाव मे उपशातकषाय, क्षायिकभाव मे क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया और पारिणामिकभाव मे जीवत्व, यह औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है। ५

विवेचन—इन दो सूत्रो मे चतु सयोगी सान्निपातिकभाव के पाच भगो के नाम और उनके स्वरूप बतलाये है।

स्वरूप बताने के प्रसग मे उदाहरणार्थ प्रयुक्त मनुष्यगति, क्षायिकसम्यक्त्व, इन्द्रिया, जीवत्व आदि उपलक्षण रूप होने से उस-उस भाव रूप मे अन्यान्य गतियो आदि का भी ग्रहण समझ लेना चाहिये।

इन चतु सयोगी पाचो भगो मे पाचवे पारिणामिकभाव को छोडने और शेष चार भावो का सयोग करने पर प्रथम भग, चौथे क्षायोपशमिकभाव को छोडकर शेष चार भावो के सयोग से दूसरा भग, तीसरे क्षायिक भाव को छोडकर बाकी के चार भावो के सयोग से तीसरा भग, दूसरे औपशमिकभाव को छोडकर शेष चार भावो के सयोग से चौथा भग और पहले औदयिकभाव को छोडकर शेष चार भावो के सयोग से पाचवा भग निष्पन्न जानना चाहिये।

इन पाचो भगो मे से तृतीय और चतुर्थ ये दो भग ही जीव मे घटित होते है, शेष तीन नही। घटित होने वाले भगो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावो के सयोग से निष्पन्न तृतीय भग नारक आदि चारो गतियो मे होता है। क्योंकि विवक्षित गति औदयिकी है तथा प्रथम सम्यक्त्व के लाभकाल मे उपशमभाव होने से और मनुष्यगति में उपशमश्रेणी मे भी औपशमिक सम्यक्त्व होने से औपशमिकभाव है। इन्द्रिया क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव रूप है। इस प्रकार यह तृतीय भग सर्व गतियो में पाया जाता है।

सूत्र मे प्रयुक्त इस तृतीय भग के उदाहरण रूप मे 'उदए त्ति मणूसे उवसता कसाया' पाठ इस बात को स्पष्ट करने के लिये है कि उपशमश्रेणी मे मनुष्यत्व का उदय और कषायों का उपशम होता है। अथवा सूत्रोक्त पाठ उपलक्षण रूप होने से यथायोग्य गति आदि का ग्रहण समझ लेना चाहिये।

औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिकभावो का सयोगज रूप चौथा भग भी तृतीय भग की तरह नरकादि चारो गतियो मे सभव है। परन्तु विशेषता यह है कि तृतीय भगोक्त उपशमसम्यक्त्व के स्थान पर यहाँ क्षायिक सम्यक्त्व समझना चाहिये। क्षायिक सम्यक्त्व नारक, तिर्यंच और देव इन गतियों में तो पूर्वप्रतिपन्न जीव को और मनुष्यगति में पूर्वप्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान को भी होता है। इसी कारण यह चतुर्थ भग चारो गतियो मे सभव है।

इस प्रकार चतु सयोगी सान्निपातिकभावो की प्ररूपणा जानना चाहिये। अब अतिम पंचसयोगी सान्निपातिकभाव का निरूपण करते हैं।

पंचसंयोगी सान्निपातिकभाव

२५८. तत्थ ण जे से एक्के पचकसंजोगे से ण इमे—अत्थि नामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने १।

[२५८] पचसयोगज सान्निपातिकभाव का एक भग इस प्रकार है—औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव।

२५९. कतरे से नामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने ? उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया खइय सम्मत्त खओवसमियाइ इंदियाइ पारिणामिए जीवे, एस ण से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्पन्ने। से त सन्निवाइए। से तं छण्णामे।

[२५९ प्र] भगवन् ! औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का क्या स्वरूप है ?

[२५९ उ] आयुष्मन् ! औदयिकभाव मे मनुष्यगति, औपशमिकभाव मे उपशातकषाय, क्षायिकभाव मे क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव मे इन्द्रिया और पारिणामिकभाव मे जीवत्व, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है।

इस प्रकार से सान्निपातिकभाव और साथ ही षड्नाम का वर्णन समाप्त हुआ।

विवेचन—इस सूत्र मे पाच भावो के सयोग से निष्पन्न सान्निपातिकभाव का कथन करने के साथ षड्नाम की वक्तव्यता की समाप्ति का सकेत किया है।

इस पचसयोगज सान्निपतिकभाव मे औदयिक आदि पारिणामिक भाव पर्यन्त पाचो भावो का समावेश हो जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य भावो के न होने से यहाँ एक ही भग बनता है। यह भग क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर उपशमश्रेणी पर आरोहण करने वाले मनुष्य मे पाया जाता है। इसी का सकेत करने के लिये सूत्र मे मनुष्य,उपशातकषाय आदि को उदाहृत किया है।

जीव में प्राप्त सान्निपातिकभाव-निरूपण का सारांश

औदयिक आदि पाच मूल भावो के सयोग से निष्पन्न सान्निपातिकभाव के द्विकसयोगी दस, त्रिकसंयोगी दस, चतुष्कसयोगी पाच और पचसयोगी एक कुल छब्बीस भगो मे से जीवो मे सिर्फ द्विकसयोगी एक, त्रिकसयोगी दो, चतुष्कसयोगी दो और पचसयोगी एक, इस प्रकार छह भग पाये जाते हैं। शेष भग प्ररूपणामात्र के लिए ही हैं।

जीवों में प्राप्त भगो का कारण सहित स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. क्षायिक और पारिणामिकभाव से निष्पन्न द्विकसंयोगी भग सिद्ध जीवो मे पाया जाता है। क्योकि उनमे पारिणामिकभाव जीवत्व और क्षायिकभाव अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि हैं।

२ औदयिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभाव के सयोग से निष्पन्न त्रिसयोगी भेद चातुर्गतिक ससारी जीवो मे पाया जाता है। क्योकि उनमे गतिया औदयिक रूप, भावेन्द्रिया क्षायोपशमिक रूप और जीवत्व आदि पारिणामिकभाव रूप हैं।

३ औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक के सयोग से निष्पन्न त्रिसयोगी भंग भवस्थ केवलियो मे पाया जाता है। वह इस प्रकार है—औदयिकभाव मनुष्यगति, क्षायिकभाव केवलज्ञान आदि और पारिणामिकभाव जीवत्व रूप से उनमे है।

४ औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक के सयोग से निष्पन्न चतु:सयोगी भग चतुर्गतिक जीवो मे पाया जाता है। इसमे गति औदयिकभाव, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव, भावेन्द्रिया क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव रूप है।

५ औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक के सयोग वाला चतु सयोगी भग भी चारो गतियो मे पाया जाता है। इसका आशय भी पूर्वोक्त चतु सयोगी भग के अनुरूप है। विशेष इतना है कि क्षायिकभाव के स्थान पर औपशमिकभाव मे औपशमिक सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिये।

६ पचसयोगी सान्निपातिकभाव औदयिक आदि पच भावों का सयोग रूप है और वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी मे वर्तमान मनुष्यो मे पाया जाता है। वह इस प्रकार मनुष्यगति औदयिकभाव, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव, औपशमिक चारित्र औपशमिकभाव, भावेन्द्रिया क्षायोपशमिकभाव रूप और जीवत्व पारिणामिकभाव रूप जानना चाहिये।

इस प्रकार छह नाम के रूप मे छह भावो का निरूपण करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त सप्त-नाम की प्ररूपणा करते है।

सप्तनाम

२६०. [१] से किं तं सत्तनामे ?

सत्तनामे सत्त सरा पण्णत्ता। त जहा—

सज्जे १ रिसभे २ गंधारे ३ मज्झिमे ४ पंचमे सरे ५।
धेवए ६ चेव णेसाए ७ सरा सत्त वियाहिया ॥ २५ ॥

[२६०-१ प्र] भगवन्! सप्तनाम का क्या स्वरूप है ?

[२६०-१ उ] आयुष्मन्! सप्तनाम सात प्रकार के स्वर रूप है। स्वरो के नाम इस प्रकार है—१ षड्ज, २ ऋषभ, ३ गाधार, ४ मध्यम, ५ पचम, ६ धैवत और ७ निषाद, ये सात स्वर जानना चाहिये। २५

विवेचन—सूत्र मे सप्तनाम के रूप मे सात स्वरो का वर्णन किया है। वह इसलिये कि पुरुषो की बहत्तर और स्त्रियों की चौसठ कलाओ मे शकुनिरुत गीत, सगीत, वाद्यवादन आदि का समावेश किया गया है और वे स्वर ध्वनिविशेषात्मक हैं। सात स्वरो के लक्षण इस प्रकार है—

१. षड्ज—छह से जन्य। अर्थात् स्वरोत्पत्ति के कारणभूत कठ, वक्षस्थल, तालु, जिह्वा, दन्त और नासिका इन छह स्थानों के सयोग से उत्पन्न होने वाले स्वर को षड्ज कहते हैं।

२. ऋषभ—ऋषभ का अर्थ बैल है। अत नाभि से उत्थित और कठ एव शिर से समाहत होकर (टकराकर) ऋषभ के समान गर्जना रूप स्वर।

३. गांधार—गधवाहक स्वर। नाभि से समुन्थित एव कठ व हृदय से समाहत तथा नाना प्रकार की गधो का वाहक स्वर गाधार कहलाता है।

४. मध्यम—शरीर के मध्यभाग से उत्पन्न होने वाला स्वर। अर्थात् शरीर के मध्यभाग—नाभिप्रदेश मे उत्पन्न हुई और उरस् एव हृदय से समाहत होकर पुन नाभिस्थान मे आई हुई वायु द्वारा जो उच्चनाद होता है, वह मध्यम स्वर है।

५. पंचम—जिस स्वर मे नाभिस्थान से उत्पन्न वायु वक्षस्थल, हृदय, कठ और मस्तक मे व्याप्त होकर स्वर रूप मे परिणत हो, उसे पचम स्वर कहते है।

६. धैवत—पूर्वोक्त सभी स्वरो का अनुसधान करने वाला स्वर धैवत कहलाता है।

७. निषाद—सभी स्वरो का अभिभव करने वाला स्वर। यह स्वर समस्त स्वरो का पराभव करने वाला है। आदित्य (सूर्य) इसका स्वामी कहलाता है।

सगीतशास्त्र मे इन स्वरो का बोध कराने के लिये—'सरेगमपधनी' पद दिया है। पदोक्त एक-एक अक्षर पृथक्-पृथक् स्वर का बोधक है। जैसे 'स' षड्ज स्वर का बोधक है। इसी प्रकार शेष रे-ग-म-प-ध-नीअक्षर ऋषभ आदि स्वरो के बोधक है।

ये सातो स्वर जीव और अजीव दोनो पर आश्रित है। अर्थात् जीव और अजीव के माध्यम से इनका प्रादुर्भाव हो सकता है।

स्वर सात ही क्यो—यद्यपि स्वरोत्पत्ति के साधन जीभ आदि त्रस—द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवो मे पाये जाते है और इन जीवो के असख्यात होने से स्वरो की सख्या भी असख्यात है। फिर भी उन सभी स्वरो का सामान्य रूप से इन षड्ज आदि सात स्वरो मे अन्तर्भाव हो जाने से मौलिक स्वरो की सख्या सात से अधिक नही है।

सप्त स्वरों के स्वरस्थान

[२] **एएसि णं सत्तण्हं सराण सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता। त जहा—**

> **सज्ज च अग्गजीहाए १ उरेण रिसहं सर २।**
> **कठुग्गतेण गधार ३ मज्झजीहाए मज्झिमं ४॥ २६॥**
> **नासाए पंचम बूया ५ दंतोट्ठेण य धेवतं ६।**
> **भमुहक्खेवेण णेसाय ७ सरट्ठाणा वियाहिया॥ २७॥**

[२६०-२] इन सात स्वरो के सात स्वर (उच्चारण) स्थान कहे गये हैं। वे स्थान इस प्रकार है—

१. जिह्वा के अग्रभाग से षड्जस्वर का उच्चारण करना चाहिए।
२. वक्षस्थल से ऋषभस्वर उच्चरित होता है।
३. कंठ से गांधारस्वर उच्चरित होता है।
४ जिह्वा के मध्यभाग से मध्यमस्वर का उच्चारण करे।
५. नासिका से पंचमस्वर का उच्चारण करना चाहिए।
६ दंतोष्ठ-संयोग से धैवतस्वर का उच्चारण करना चाहिए।
७ मूर्धा (भ्रु कुटि ताने हुए शिर) से निषाद स्वर का उच्चारण करना चाहिए। २६, २७

विवेचन—यहाँ सूत्रकार ने षड्ज आदि सात स्वरों के पृथक्-पृथक् स्वर-उच्चारणस्थानों का कथन किया है।

स्वरस्थान का लक्षण व मानने का कारण—मूल उद्‌गमस्थान नाभि से उत्थित अविकारी स्वर में विशेषता के जनक जिह्वा आदि अंग स्वरस्थान हैं।

यद्यपि षड्ज आदि समस्त स्वरों के उच्चारण करने में सामान्यतया जिह्वाग्र, कंठ आदि स्थानों की अपेक्षा होती है तथापि विशेष रूप से एक-एक स्वर जिह्वाग्रभागादिक रूप स्थानों में से एक-एक स्थान को प्राप्त कर ही अभिव्यक्त होता है। इसी अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये षड्ज आदि स्वरों का पृथक्-पृथक् एक-एक स्वरस्थान माना गया है। जैसे वक्षस्थल से ऋषभस्वर उच्चरित होता है, इसका यह अर्थ हुआ कि ऋषभस्वर का उच्चारणस्थान वक्षस्थल है। इस स्वर के उच्चारण में वक्षस्थल का विशेष रूप में उपयोग होता है। इसी प्रकार अन्य स्वरों और उनके स्थानों के लिये भी समझ लेना चाहिये।

पूर्व में यह संकेत किया है कि ये षड्ज आदि सप्त स्वर जीव-अजीवनिश्रित हैं। अतः अब क्रम से उनका निर्देश करते हैं।

जीवनिश्रित सप्तस्वर

[३] **सत्त सरा जीवणिस्सिया पण्णत्ता। तं जहा—**

> **सज्जं रवइ मयूरो १ कुक्कुडो रिसभं सरं २।**
> **हंसो रवइ गंधारं ३ मज्झिमं तु गवेलगा ४॥ २८॥**
> **अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं ५।**
> **छट्ठं च सारसा कुंचा ६ णेसायं सत्तमं गओ ७॥ २९॥**

[२६०-३] जीवनिश्रित—जीवों द्वारा उच्चरित होने वाले सप्तस्वरों का स्वरूप इस प्रकार है—

१ मयूर षड्जस्वर में बोलता है।
२ कुक्कुट (मुर्गा) ऋषभस्वर में बोलता है।
३. हंस गांधारस्वर में बोलता है।
४. गवेलक (भेड) मध्यमस्वर में बोलता है।
५. कोयल पुष्पोत्पत्तिकाल (वसन्तऋतु—चैत्र वैशाखमास) में पंचमस्वर में बोलता है।

६. सारस और क्रौंच पक्षी धैवतस्वर मे बोलते है। तथा—
७. हाथी निषाद स्वर में बोलता है। २८,२९

अजीवनिश्रित सप्तस्वर

[४] **सत्त सरा अजीवणिस्सिया पण्णत्ता। तं जहा—**

सज्जं रवइ मुयंगो १ गोमुही रिसहं सरं २।
संखो रवइ गंधारं ३ मज्झिमं पुण झल्लरी ४॥ ३०॥
चउचलणपतिट्ठाणा गोहिया पंचमं सरं ५।
आडंबरो धेवइयं ६ महाभेरी य सत्तमं ७॥ ३१॥

[२६०-४] अजीवनिश्रित सप्तस्वर इस प्रकार हैं—
१. मृदग मे षड्जस्वर निकलता है।
२ गोमुखी वाद्य से ऋषभस्वर निकलता है।
३ शख से गाधारस्वर निकलता है।
४ झालर से मध्यमस्वर निकलता है।
५ चार चरणो पर स्थित गोधिका से पचमस्वर निकलना है।
६ आडबर (नगाडा) से धैवतस्वर निकलता है।
७ महाभेरी से निषादस्वर निकलता है। ३०, ३१

विवेचन—सूत्रकार ने सप्तस्वरो की अभिव्यक्ति के साधनो के रूप मे कुछएक जीवो और अजीव पदार्थों के नामो का उल्लेख किया है कि अमुक द्वारा उस-उस प्रकार का स्वर निष्पन्न होता है।

आशय को स्पष्ट करने के लिये उदाहृत जीवो और अजीवो के नाम उपलक्षण रूप होने से इन जैसे अन्यो का ग्रहण भी इनसे किया गया समझना चाहिये। कठादि से अभिव्यक्त होने वाले स्वरो में तो जीवनिश्रितता स्वयसिद्ध है और मृदग आदि अजीव वस्तुओ मे जीवव्यापार अपेक्षित है। मृदग आदि द्वारा जनित स्वरो के नाभि, कठ आदि से उत्पन्न होने रूप अर्थ घटित नही होता है तो भी उन वाद्यो से षड्ज आदि स्वरो जैसे स्वर उत्पन्न होने से उन्हे मृदग आदि अजीवो से निश्रित कहा जाता है।

सप्तस्वरों के स्वरलक्षण-फल

[५] **एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता। त जहा—**

सज्जेण लहइ वित्तिं कयं च न विणस्सई।
गावो पुत्ता य मित्ता य नारीणं होति वल्लहो १॥ ३२॥

रिसहेणं तु एसज्जं सेणावच्चं धणाणि य।
वत्थ गंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य २॥ ३३॥

गंधारे गीतजुत्तिण्णा वज्जवित्ती कलाहिया ।
हवंति कइणो पण्णा जे अण्णे सत्थपारगा ३ ।। ३४ ।।
मज्झिमसरमंता उ हवंति सुहजीविणो ।
खायती पियती देती मज्झिमस्सरमस्सिओ ४ ।। ३५ ।।
पंचमस्सरमंता उ हवंती पुहवीपती ।
सूरा संगहकत्तारो अणेगगणणायगा ५ ।। ३६ ।।
धेवयस्सरमंता उ हवंति कलहप्पिया ।
साउणिया वग्गुरिया सोयरिया मच्छबंधा य ६ ।। ३७ ।।[1]
चंडाला मुट्ठिया मेता, जे यऽण्णे पावकारिणो ।
गोघातगा य चोरा य नेसातं सरमस्सिता ७ ।। ३८ ।।[2]

[२६०-५] इन सात स्वरो के (तत्तत् फल प्राप्ति के अनुसार) सात स्वरलक्षण कहे गये है । यथा—

१ षड्जस्वर वाला मनुष्य वृत्ति—आजीविका प्राप्त करता है । उसका प्रयत्न व्यर्थ नही जाता है । उसे गोधन, पुत्र-पौत्रादि और सन्मित्रो का सयोग मिलता है । वह स्त्रियो का प्रिय होता है ।३२

२ ऋषभस्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है । सेनापतित्व, धन-धान्य, वस्त्र, गध-सुगधित पदार्थ, आभूषण-अलकार, स्त्री, शयनासन आदि भोगसाधनो को प्राप्त करता है । ३३

३ गाधारस्वर वाला श्रेष्ठ आजीविका प्राप्त करता है । वादित्रवृत्ति वाला होता है । कलाविदो मे श्रेष्ठ—शिरोमणि माना जाता है । कवि अथवा कर्त्तव्यशील होता है । प्राज्ञ—बुद्धिमान्—चतुर तथा अनेक शास्त्रो मे पारगत होता है । ३४

४ मध्यमस्वरभाषी सुखजीवी होते है । रुचि के अनुरूप खाते-पीते और जीते है तथा दूसरो को भी खिलाते-पिलाते तथा दान देते है । ३५

५ पचमस्वर वाला व्यक्ति भूपति, शूरवीर, सग्राहक और अनेक गुणो का नायक होता होता है । ३३

६ धैवतस्वर वाला पुरुष कलहप्रिय, शाकुनिक (पक्षियो को मारने वाला—चिडीमार), वागुरिक (हिरण आदि पकडने—फँसाने वाला), शौकरिक (सूअरो का शिकार करने वाला) और मत्स्यबधक (मच्छीमार) होता है । ३७

१-२. पाठान्तर

रेवयसरमता उ, हवति दुहजीविणो ।
कुचेला य कुवित्ती य, चोरा चडालमुट्ठिया ।।
णिसायसरमता उ, होति कलहकारगा ।
जघाचरा लेहवाहा, हिंडगा भारवाहगा ।। —अनुयोगद्वारवृत्ति, पृ १२९

७ निषादस्वर वाला पुरुष चाडाल, वधिक, मुक्केबाज, गोघातक, चोर और इसी प्रकार के दूसरे-दूसरे पाप करने वाला होता है । ३८

विवेचन—इन गाथाओ मे व्यक्ति के हाव-भाव-विलास, आचार-विचार-व्यवहार, कुल-शील-स्वभाव का बोध कराने मे स्वर—वाग्व्यवहार के योगदान का सकेत किया गया है । बोलने मात्र से ही व्यक्ति के गुणावगुण का अनुमान लगाया जा सकता है । शिष्ट सरल जन प्रसादगुणयुक्त कोमल-कान्तपदावली का प्रयोग करते हैं, जबकि धूर्त, वचक व्यक्तियो के बोलचाल मे कर्णकटु, अप्रिय और भयोत्पादक शब्दों की बहुलता होती है एव उनकी प्रवृत्ति भी वाग्व्यवहार के अनुरूप ही होती है ।

सप्तस्वरों के ग्राम और उनकी मूर्च्छनाएँ

[६] **एतेसि ण सत्तण्ह सराणं तयो गामा पण्णत्ता । तं जहा—सज्जग्गामे १ मज्झिमग्गामे २ गंधारग्गामे ३ ।**

[२६०-६] इन सात स्वरो के तीन ग्राम कहे गये है । वे इस प्रकार—

१ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ गाधारग्राम ।

[७] **सज्जग्गामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ । त जहा—**

मंगी कोरव्वीया हरी य रयणी य सारकंता य ।
छट्ठी य सारसी नाम सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥ ३९ ॥

[२६०-७] षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई है । उनके नाम है—

१ मगी, २. कौरवीया, ३ हरित्, ४ रजनी, ५ सारकान्ता, ६ सारसी और ७ शुद्ध-षड्ज । ३९

[८] **मज्झिमग्गामस्स ण सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ । त जहा—**

उत्तरमंदा रयणी उत्तरा उत्तरायसा (ता) ।
अस्सोकता य सोवीरा अभीरू भवति सत्तमा ॥ ४० ॥

[२६०-८] मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही है । जैसे—

१ उत्तरमदा, २ रजनी, ३ उत्तरा, ४ उत्तरायशा अथवा उत्तरायता, ५ अश्वक्रान्ता, ६ सौवीरा, ७ अभिरुद्गता । ४०

[९] **गंधारग्गामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—**

नंदी य खुड्डिमा पूरिमा य चउथी य सुद्धगंधारा ।
उत्तरगंधारा वि य पंचमिया हवइ मुच्छा उ ॥ ४१ ॥

सुट्ठुत्तरमायामा सा छट्ठा नियमसो उ णायव्वा ।
अहउत्तरायता कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥ ४२ ॥

[२६०-९] गाधारग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं । उनके नाम ये है—

१ नन्दी, २. क्षुद्रिका, ३ पूरिमा, ४ शुद्धगाधारा, ५ उत्तरगाधारा, ६. सुष्ठुतर-आयामा और ७ उत्तरायता—कोटिमा। ४१-४२।

(इस प्रकार से सात स्वरो के तीन ग्राम और उनकी सात-सात मूर्च्छनाओ के नाम जानने चाहिये।)

विवेचन—सूत्रकार ने सप्तस्वरो के तीन ग्राम और प्रत्येक की मूर्च्छनाओं के नाम गिनाये है।

मूर्च्छनाओ के समुदाय को ग्राम कहते है। वे षड्ज आदि के भेद से तीन प्रकार के है। प्रत्येक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएँ होने से सब मिलकर इक्कीस हैं। मूर्च्छना अर्थात् गायक का गीत के स्वरो मे तल्लीन—मूर्च्छित-सा हो जाना।

मगी आदि इक्कीस मूर्च्छनाओ की विशेष जानकारी के लिये भरतमुनि का नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थ देखिये।

सप्त स्वरोत्पत्ति आदि विषयक जिज्ञासाएँ : समाधान

[१० अ] **सत्त स्सरा कतो सभवंति ? गीयस्स का हवति जोणी ? ।**
कतिसमया ऊसासा ? कति वा गीयस्स आगारा ? ॥ ४३ ॥
सत्त सरा नाभीओ संभवंति, गीत च रुन्नजोणीयं।
पायसमा उस्सासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥ ४४ ॥
आदिमिउ आरभता, समुव्वहंता य मज्झगारम्मि।
अवसाणे य झवेंता, तिन्नि वि गीयस्स आगारा ॥ ४५ ॥

[२६०-१०-अ] प्र—सप्त स्वर कहाँ से—किससे उत्पन्न होते है ? गीत की योनि क्या है ? इसके उच्छ्वासकाल का समयप्रमाण कितना है ? गीत के कितने आकार होते है ?

उत्तर—सातो स्वर नाभि मे उत्पन्न होते है। रुदन गीत की योनि—जाति है। पादसम—जितने समय मे किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका (गीत का) उच्छ्वासकाल होता है। गीत के तीन आकार होते है—

आदि मे मृदु, मध्य मे तीव्र (तार) और अत मे मद। इस प्रकार से गीत के तीन आकार जानने चाहिए। ४३, ४४, ४५

विवेचन—इन तीन गाथाओ मे से पहली गाथा मे गीत के स्वरो के उत्पत्तिस्थान आदि सबन्धी चार प्रश्न है और अगली दो गाथाओ मे प्रश्नो के उत्तर दिये हैं।

गाथागत विशेष शब्द—रुन्नजोणियं—रुदितयोनिक—गीत की योनि रुदन है, अथवा रोने की जाति जैसा है। **आगारा**—आकारा—स्वरूपविशेष। **अवसाणे**—अवसाने—अत मे। **झवेंता**—क्षपयन्त—समाप्त करते समय।

गीतगायक की योग्यता

[१० आ] **छद्दोसे अट्ठ गुणे तिण्णि य वित्ताणि दोण्णि भणितीओ।**
जो णाही सो गाहिति सुसिक्खतो रंगमज्झम्मि ॥ ४६ ॥

[२६०-१०-आ] संगीत के छह दोषो, आठ गुणो, तीन वृत्तो और दो भणितियो को यथावत् जानने वाला सुशिक्षित—गानकलाकुशल व्यक्ति रगमच पर गायेगा । ४६

विवेचन—सूत्रकार ने गानकला मे प्रवीण व्यक्ति की योग्यता का निर्देश किया है कि वह गीत के दोष-गुण आदि का मर्मज्ञ हो । अत आगे गीत के दोषो और गुणो आदि का निरूपण करते हैं ।

गीत के दोष

> **[१० इ] भीयं दुयमुप्पिच्छं उत्तालं च कमसो मुणेयव्वं ।**
> **काकस्सरमणुनासं छ होसा होंति गीयस्स ।। ४७ ।।**

[२६०-१०-इ] गीत के छह दोष इस प्रकार है—

१ भीतदोष—डरते हुए गाना ।

२ द्रुतदोष—उद्वेगवश शीघ्रता से गाना ।

३ उत्पिच्छदोष—श्वास लेते हुए या जल्दी-जल्दी गाना ।

४ उत्तालदोष—तालविरुद्ध गाना ।

५ काकस्वरदोष—कौए के समान कर्णकटु स्वर में गाना ।

६ अनुनासदोष—नाक से स्वरो का उच्चारण करते हुए गाना । ४७

विवेचन—गाथार्थ सुगम है । यह छह दोष गायक को उपसनीय बना देते है ।

पाठान्तर के रूप मे 'उप्पिच्छ' के स्थान पर 'रहस्स' पद भी प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है अक्षरों को लघु बनाकर गाना ।

गीत के आठ गुण

> **[१० ई] पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहेवमविघुट्ठ ।**
> **महुरं समं सुललियं अट्ठ गुणा होंति गीयस्स ।। ४८ ।।**

[२६०-१०-ई] गीत के आठ गुण इस प्रकार हैं—

१. पूर्णगुण—स्वर के आरोह-अवरोह आदि समस्त स्वरकलाओ से परिपूर्ण गाना ।

२ रक्तगुण—गेय राग से भावित होकर गाना ।

३ अलकृतगुण—विविध विशेष शुभ स्वरो से सपन्न होकर गाना ।

४ व्यक्तगुण—गीत के बोलो—स्वर-व्यजनो का स्पष्ट रूप से उच्चारण करके गाना ।

५ अविघुष्टगुण—विकृति और विशृंखलता से रहित नियत और नियमित स्वर से गाना—चीखते-चिल्लाते हुए न गाना ।

६ मधुरगुण—कर्णप्रिय मनोरम स्वर से कोयल की भांति गाना ।

७ समगुण—सुर-ताल-लय आदि से समनुगत-सगत स्वर मे गाना ।

८. सुललितगुण—स्वरघोलनादि के द्वारा ललित—श्रोत्रेन्द्रियप्रिय सुखदायक स्वर मे गाना । ४८

> **[१० उ] उर-कंठ-सिरविसुद्धं च गिज्जते मउय-रिभियपदबद्धं ।**
> **समतालपडुक्खेवं सत्तस्सरसीभरं गीयं ।। ४९ ।।**

[२६०-१० उ] गीत के आठ गुण और भी हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ उरोविशुद्ध—जो स्वर उरस्थल में विशाल होता है।

२ कंठविशुद्ध—नाभि से उत्थित जो स्वर कंठस्थल में व्याप्त होकर स्फुट रूप से व्यक्त होता है। अर्थात् जो स्वर कंठ में नहीं फटता।

३ शिरोविशुद्ध—जो स्वर शिर से उत्पन्न होकर भी नासिका के स्वर से मिश्रित नहीं होता।

४ मृदुक—जो गीत मृदु—कोमल स्वर में गाया जाता है।

५ रिभित—घोलनाबहुल आलाप द्वारा गीत में चमत्कार पैदा करना।

६ पदबद्ध—गीत को विशिष्ट पदरचना से निबद्ध करना।

७ समतालप्रत्युत्क्षेप—जिस गीत में (हस्त) ताल, वाद्य-ध्वनि और नर्तक का पादक्षेप सम हो अर्थात् एक दूसरे से मिलते हों।

८ सप्तस्वरसीभर—जिसमें (षड्ज) आदि सातों स्वर तन्त्री आदि वाद्यध्वनियों के अनुरूप हों। अथवा वाद्यध्वनियां गीत के स्वरों के समान हों। ४९

[१० ऊ] अक्खरसमं पयसमं तालसमं लयसमं गहसमं च।
निस्ससिउस्ससियसमं संचारसमा सरा सत्त ॥ ५० ॥

[२६०-१०-ऊ] (प्रकारान्तर से) सप्तस्वरसीभर की व्याख्या इस प्रकार है—

१ अक्षरसम—जो गीत ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत और सानुनासिक अक्षरों के अनुरूप ह्रस्वादि स्वरयुक्त हो।

२ पदसम—स्वर के अनुरूप पदों और पदों के अनुरूप स्वरों के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

३ तालसम— तालवादन के अनुरूप स्वर में गाया जाने वाला गीत।

४ लयसम—वीणा आदि वाद्यों की धुनों के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

५ ग्रहसम—वीणा आदि द्वारा ग्रहीत स्वरों के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

६ निश्वसितोच्छ्वसितसम— सांस लेने और छोड़ने के क्रमानुसार गाया जाने वाला गीत।

७ संचारसम—सितार आदि वाद्यों के तारों पर अंगुली के संचार के साथ गाया जाने वाला गीत।

इस प्रकार गीत स्वर, तन्त्री आदि के साथ सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है। ५०

विवेचन—यद्यपि षड्ज आदि के भेद से सप्त स्वरों के नाम प्रसिद्ध हैं। लेकिन अक्षरसम आदि इस गाथा द्वारा पुनः सप्त स्वरों के नाम बताने का कारण यह है कि षड्ज आदि नाम तो कंठोद्गत ध्वनिवाचक हैं और यहाँ लिपि रूप अक्षरों की अपेक्षा है। इसीलिये अनुयोगद्वार मलधारीया वृत्ति में इस गाथा को 'सत्तस्सरसीभर'—सप्तस्वर सीभर पद का विशेषण मानते हुए कहा है-'...... सप्तस्वरासीभरति — अक्षरादिभिस्समायत्र तत्सप्तस्वरसीभरमिति, ते चामी सप्तस्वर —अक्खरसम... ।'

[१० ए] **निद्दोसं सारवंतं च हेउजुत्तमलंकियं ।**
उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव य ॥ ५१ ॥

[२६०-१०-ए] गेय पदो के आठ गुण इस प्रकार भी है—
१ निर्दोष—अलीक, उपघात आदि बत्तीस दोषो से रहित होना ।
२ सारवत—सारभूत विशिष्ट अर्थ से युक्त होना ।
३ हेतुयुक्त—अर्थसाधक हेतु से सयुक्त होना ।
४. अलकृत—काव्यगत उपमा-उत्प्रेक्षा आदि अलकारो से युक्त होना ।
५ उपनीत—उपसहार से युक्त होना ।
६ सोपचार—अविरुद्ध अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना ।
७ मित—अल्पपद और अल्पअक्षर वाला होना ।
८ मधुर—सुश्राव्य शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की अपेक्षा प्रिय होना । ५१

विवेचन—सूत्रकार ने 'छद्दोसे अट्ठ गुणे' इन पदो के अनुसार गीत सबन्धी दोषो और विभिन्न अपेक्षाओ से गुणो का वर्णन किया है । वर्णन करने का कारण यह है कि गायक गीतविधाओ को जानता हुआ भी दोषो का निराकरण और गुणो का समायोजन करने का लक्ष्य नही रखे तो वह जनप्रिय और समाननीय नही हो पाता है ।

गीत के वृत्त-छन्द

[१० ऐ] **समं अद्धसमं चेव सव्वत्थ विसमं च जं ।**
तिण्णि वित्तप्पयाराइं चउत्थं नोवलब्भइ ॥ ५२ ॥

[२६०-१०ऐ] गीत के वृत्त-छन्द तीन प्रकार के होते है—
१ सम—जिसमें गीत के चरण और अक्षर सम हो अर्थात् चार चरण हो और उनमे गुरु-लघु अक्षर भी समान हो, अथवा जिसके चारो चरण सरीखे हो ।
२ अर्धसम—जिसमे प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हो ।
३ सर्वविषम—जिसमे सभी चरणो मे अक्षरो की सख्या विषम हो, जिसके चारो चरण विषम हो ।
इनके अतिरिक्त चौथा प्रकार नही पाया जाता है । ५२

गीत की भाषा

[१० ओ] **सक्कया पायया चेव भणिईओ होंति दुण्णि उ ।**
सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्था इसिभासिया ॥ ५३ ॥

[२६०-१०-ओ] भणतिया-गीत की भाषाये दो प्रकार की कही गई है—सस्कृत और प्राकृत । ये दोनो प्रशस्त एव ऋषिभाषित है और स्वरमडल मे पाई जाती है । ५३

विवेचन—उक्त दो गाथाओ मे गीत के छन्दो और भाषाओ का विचार किया गया है । अब 'सो गाहिति' पद के अनुसार कौन किस प्रकार से गाता है ? इसका प्रश्नोत्तर विधा द्वारा निरूपण करते है ।

गीतगायक के प्रकार

[११ अ] केसी गायति महुरं ? केसी गायति खरं च रुक्खं च ? ।
केसी गायति चउरं ? केसी य विलबियं ? दुतं केसी ?
विस्सरं पुण केरिसी ? ।। ५४ ।। [पंचपदी]

सामा गायति महुर, काली गायति खरं च रुक्खं च ।
गोरी गायति चउरं, काणा य विलंबिय, दुतं अंधा,
विस्सरं पुण पिगला ।। ५५ ।। [पंचपदी]

[२६०-११-अ प्र] कौन स्त्री मधुर स्वर में गीत गाती है ? परुष और रूक्ष स्वर मे कौन गाती है ? चतुराई से कौन गाती है ? विलबित स्वर मे कौन गाती है ? द्रुत स्वर मे कौन गाती है ? तथा विकृत स्वर मे कौन गाती है ?

[२६०-११-अ उ] श्यामा (षोडशी) स्त्री मधुर स्वर मे गीत गाती है, कृष्णवर्णा स्त्री खर (परुष) और रूक्ष स्वर मे गाती है, गौरवर्णा स्त्री चतुराई से गीत गाती है, कानी स्त्री विलबित (मद) स्वर मे गाती है । अधी स्त्री शीघ्रता से गीत गाती है और पिगला (कपिला) विकृत स्वर मे गीत गाती है । ५४, ५५

विवेचन—इन दो गाथाओ द्वारा परोक्ष मे गीत स्वरो द्वारा गायक की योग्यता, स्थिति आदि का अनुमान लगाने का सकेत किया है ।

कुछ भिन्नता के साथ अन्य प्रतियो मे गाथा ५५ इस रूप मे अकित है—

गोरी गायति महुर सामा गायइ खर च रूक्ख च ।
काली गायइ चउर काणा य विलविय दुत अधा ।। विस्सर पुण पिंगला ।

इस प्रकार से सप्त स्वरमडल सबन्धी आवश्यक वर्णन करने के अनन्तर अब उपसहार करते है ।

उपसंहार

[११ आ] सत्त सरा तयो गामा मुच्छणा एक्कवीसतिं ।
ताणा एगूणपण्णासं सम्मत्तं सरमंडल ।। ५६ ।।

से तं सत्तनामे ।

[२६०-११-आ] इस प्रकार सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाये होती है । प्रत्येक स्वर सात तानो से गाया जाता है, इसलिये उनके (७×७=४९) उनपचास भेद हो जाते है । इस प्रकार स्वरमडल का वर्णन समाप्त हुआ । ५६

स्वरमडल के वर्णन की पूर्णता के साथ सप्तनाम की वक्तव्यता भी समाप्त हुई ।

विवेचन—यह गाथा सप्तस्वर और सप्तनाम के वर्णन की समाप्ति सूचक है । उनपचास ताने होने का कारण यह है कि षड्ज आदि सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर सात तानो मे गाया जाता

है तथा सप्ततन्त्रिका वीणा मे ४९ ताने होती हैं और इसी प्रकार एकतन्त्रिका अथवा त्रितन्त्रिका वीणा के साथ कठ से गाई जाने वाली ताने भी ४९ होती है।

इस प्रकार सप्तनाम का वर्णन है।

अब क्रमप्राप्त अष्टनाम का निरूपण करते है—

अष्टनाम

२६१. [१] **से किं तं अट्ठणामे ?**

अट्ठणामे अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता। तं जहा—
निद्देसे पढमा होति १ बितिया उवएसणे २।
तइया करणम्मि कया ३ चउत्थी संपयावणे ४ ॥ ५७ ॥
पंचमी य अपायाणे ५ छट्ठी सस्सामिवायणे ६।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे ७ अट्ठमाऽऽमंतणी भवे ८ ॥ ५८ ॥

[२६१-१ प्र] भगवन् ! अष्टनाम का क्या स्वरूप है ?

[२६१-१ उ] आयुष्मन् ! आठ प्रकार की वचनविभक्तियो को अष्टनाम कहते हैं। वचनविभक्ति के वे आठ प्रकार यह है—

१ निर्देश-प्रतिपादक अर्थ मे प्रथमा विभक्ति होती है।
२ उपदेशक्रिया के प्रतिपादन मे द्वितीया विभक्ति होती है।
३ क्रिया के प्रति साधकतम कारण के प्रतिपादन मे तृतीया विभक्ति होती है।
४ सप्रदान मे चतुर्थी विभक्ति होती है।
५ अपादान (पृथक्ता) बताने के अर्थ मे पचमी विभक्ति होती है।
६ स्व-स्वामित्वप्रतिपादन करने के अर्थ मे षष्ठी विभक्ति होती है।
७ सन्निधान (आधार) का प्रतिपादन करने के अर्थ मे सप्तमी विभक्ति होती है।
८ सबोधित, आमत्रित करने के अर्थ मे अष्टमी विभक्ति होती है। ५७, ५८

विवेचन:—इन दो गाथाओ मे अष्टनाम के रूप मे आठ वचनविभक्तियो का निरूपण किया है।

वचनविभक्ति—जो कहे जाते है वे वचन है और विभक्ति अर्थात् कर्ता, कर्म आदि रूप अर्थ जिसके द्वारा प्रगट किया जाता है। अत वचनो-पदो की विभक्ति को वचनविभक्ति कहते है।

यहाँ वचनविभक्ति से सुवन्त (सज्ञा, सर्वनाम) रूप प्रथमान्त आदि पदो का ग्रहण जानना चाहिये, तिङन्त रूप आख्यात विभक्तियो का नही।

यथाक्रम आठ वचनविभक्तियो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

निद्देसे पढमा—प्रतिपादक अर्थमात्र के प्रतिपादन करने को निर्देश कहते है। प्रतिपादक अर्थ के विषय मे अनेक मत प्रचलित है। जिनमे जाति, व्यक्ति, लिंग, सख्या, कारक इन पाच को प्रतिपादक के अर्थ मे स्वीकार किया है और इनमे भी जाति एव व्यक्ति रूप अर्थ मुख्य हैं। इसका निर्देश करने मे 'सु, औ, जस्' यह प्रथमा विभक्ति होती हैं।

२ बितिया उवएसणे—उपदेश क्रिया से व्याप्त कर्म के प्रतिपादन मे द्वितीया विभक्ति होती है। क्रिया में प्रवर्तित कराये जाने की इच्छा उत्पन्न करने को उपदेश कहते है और जिस पर क्रिया का फल पडे वह कर्म है। इसकी बोधक 'अम्, औट्, शस्' यह विभक्ति है।

३. तइया करणम्मि—क्रियाफल की सिद्धि में सबसे अधिक उपकारक, सहायक को करण कहते हैं। इस करण मे 'टा, भ्याम्, भिस्' यह तृतीया विभक्ति होती हैं।

४. चउत्थी सपयावणे—जिसके लिये क्रिया होती है, उसे सम्प्रदान कहते हैं और इस सप्रदान मे 'ङे भ्याम्, भ्यस्' विभक्ति होती है।

५. पचमी या अपायाणे—जिससे अलग होने या पृथक्ता का बोध हो, उसे अपादान कहते हैं। इस अपादान को बताने के लिये 'ङसि, भ्याम्, भ्यस्' यह पचमी विभक्ति होती हैं।

६ छट्ठी सस्सामिवायणे—स्व-स्वामित्व सम्बन्ध का प्रतिपादन करने मे 'ङस्, ओस्, आम्' यह षष्ठी विभक्ति होती है।

७ सत्तमी सण्णिधाणत्थे—सन्निधान अर्थात् क्रिया करने के आधार या स्थान का बोध कराने मे 'ङि, ओस्, सुप' यह सप्तमी विभक्ति होती हैं।

८ अट्ठमाऽऽमतणी भवे—किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के अर्थ मे सबोधनरूप आठवी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार सामान्य से आठ विभक्तियो का कथन करके अब इनको उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते है।

२६१. [२] तत्थ पढमा विभत्ती निद्देसे सो इमो अहं व त्ति १।
बितिया पुण उवदेसे भण कुणसु इम व त व त्ति २ ॥ ५९ ॥
ततिया करणम्मि कया भणियं व कय व तेण व मए वा ३।
हवि णमो साहाए हवति चउत्थी पयाणम्मि ४ ॥ ६० ॥
अवणय गिण्ह य एत्तो इतो त्ति वा पचमी अपायाणे ५।
छट्ठी तस्स इमस्स व गयस्स वा सामिसबंधे ६ ॥ ६१ ॥
हवति पुण सत्तमी तं इमम्मि आधार काल भावे य ७।
आमंतणी भवे अट्ठमी उ जह हे जुवाण! त्ति ८ ॥ ६२ ॥

से तं अट्ठणामे।

[२६१-२] १ निर्देश मे प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे—वह, यह अथवा मैं।

२. उपदेश मे द्वितीया विभक्ति होती है।—जैसे इसको कहो, उसको करो आदि।

३ करण मे तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—उसके और मेरे द्वारा कहा गया अथवा उसके और मेरे द्वारा किया गया।

४ सप्रदान, नम तथा स्वाहा अर्थ मे चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे विप्राय गा ददाति—ब्राह्मण को (के लिये) गाय देता है। नमो जिनाय—जिनेश्वर के लिये मेरा नमस्कार हो। अग्नये स्वाहा—अग्नि देवता को हवि दिया जाता है।

५ अपादान मे पचमी होती है। जैसे—यहा से दूर करो अथवा इससे ले लो।

६ स्वस्वामीसम्बन्ध बतलाने मे षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—उसकी अथवा इसकी यह वस्तु है।

७ आधार, काल और भाव मे सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे (वह) इसमे है।

८ आमत्रण अर्थ मे अष्टमी विभक्ति होती है। जैसे—हे युवन्! । ५९-६२।

यह आठ विभक्तिरूप अष्टनाम का वर्णन है।

विवेचन—सूत्रकार ने गाथा ५९ से ६२ तक पूर्वोक्त प्रथमा आदि आठ विभक्तियो का उदाहरण सहित वर्णन किया है। इन विभक्तियो द्वारा वाक्यगत शब्दो का परस्पर एक दूसरे के साथ ठीक-ठीक सबन्धो का परिज्ञान होता है तथा यह आठो विभक्तिया सज्ञावाचक शब्दो के साथ जुडती हैं किन्तु सर्वनाम शब्दो मे आठवी सबोधन विभक्ति प्रयुक्त नही होती है।

हिन्दी भाषा मे इन विभक्तियों की कारक सज्ञा है और कर्ता आदि भेद है, जिनके चिह्न इस प्रकार है—

कर्ता—ने। कर्म—को। करण—से, द्वारा। सप्रदान—को, के लिये। अपादान— से। सबन्ध—का, की, के। अधिकरण—मे, पर। सबोधन—हे, हो, अरे।

हिन्दी भाषा मे इन प्रत्ययो से सस्कृत जैसा एक, द्वि, बहुवचन की अपेक्षा कोई अतर नही आता है। समान रूप से एकवचन और बहुवचन रूप सज्ञानामो के साथ सयोजित होते है।

इस प्रकार से अष्टनाम की प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये।

नवनाम

२६२. [१] **से किं तं नवनामे?**

नवनामे णव कव्वरसा पण्णत्ता। तं जहा—

वीरो १ सिंगारो २ अब्भुओ य ३ रोद्दो य ४ होइ बोधव्वो।
वेलणओ ५ बीभच्छो ६ हासो ७ कलुणो ८ पसंतो य ९ ॥ ६३ ॥

[२६२-१ प्र] भगवन्! नवनाम का क्या स्वरूप है?

[२६२-१ उ] आयुष्मन्! काव्य के नौ रस नवनाम कहलाते है। जिनके नाम है—

१ वीररस, २ शृंगाररस, ३ अद्भुतरस, ४ रौद्ररस, ५ व्रीडनकरस, ६ बीभत्सरस, ७ हास्यरस, ८ कारुण्यरस और ९ प्रशातरस, ये नवरसो के नाम है। ६३।

विवेचन—सूत्र मे नौ काव्यरसो के नाम गिनाये हैं।

काव्यरसों की व्याख्या—कवि के कर्म को काव्य और काव्य में उपनिबद्ध रस को काव्यरस कहते है। विभिन्न सहकारी कारणो से अन्तरात्मा मे उत्पन्न उल्लास या विकार की अनुभूति रस कहलाती है।

रससिद्धान्त मानने का कारण—रससिद्धान्त मानव-मन सम्बन्धी गहन अनुशीलन का परिचायक है। सौन्दर्यविषयक धारणाओ का सार-सर्वस्व है।

रस-परिकल्पना काव्यास्वाद से सबद्ध है। आस्वादन के क्षणो में आस्वादक जब अनुभूति की गहनता मे एक अखड आनन्दोपलब्धि मे लीन होता है तब वह उस आस्वाद या आनन्द का कोई न कोई नाम देना चाहता है। बस यही दृष्टि रस नामकरण की हेतु है और इसे काव्यशास्त्र में सिद्धान्त के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

रसों की संख्या—सामान्यत अनुभूति के दो प्रकार है—सुखात्मक और दु खात्मक। अत स्थूल रूप मे रस के दो भेद होगे। लेकिन ये अनुभूतिया इतनी अधिक है, इतने प्रकार की हैं कि उन्हे सुख या दु ख मे समायोजित नही किया जा सकता है। इसीलिये आचार्यों ने अनुभूतियो की भिन्नताओ का बोध कराने के लिये रस के भेद करके उनके पृथक्-पृथक् नामकरण किये और रस-सख्या के सदर्भ मे परपरित दृष्टि का अतिक्रमण करके अनेक नवीन रसो का भी नामोल्लेख किया। लेकिन अत मे रसभेद के रूप मे इन नौ नामो को स्वीकार किया गया है—

> शृ गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानका।
> बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसा स्मृता॥

इन नौ भेदो मे से कुछ विद्वानो ने करुण, रौद्र, भयानक और बीभत्स इन चार रसो को दु खात्मक तथा शृ गार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त इन पाच को सुखात्मक कहा है। लेकिन साहित्यशास्त्रियो ने इस मत को ग्राह्य नही माना। उनकी युक्ति है—रस की प्रक्रिया मे दु ख का अश रहने पर भी परिणति मे कोई भी रस दु खात्मक नही है।

जैनाचार्यों की मान्यता भी नौ रसो की है, लेकिन उनके नामो मे कुछ अन्तर है। उन्होने इनमे से भयानक रस को अस्वीकार करके 'व्रीडनक' नामक रस माना और शात के स्थान पर 'प्रशात' शब्द का प्रयोग किया है।

इस प्रकार सामान्य से नवरसो की रूपरेखा बताने के बाद अब विस्तारपूर्वक वीर आदि प्रत्येक रस का वर्णन करते है।

वीररस

[२] तत्थ परिच्चायम्मि य १ तव-चरणे २ सत्तुजणविणासे य ३।
अणणुसय-धिति-परक्कमचिण्हो वीरो रसो होइ॥ ६४॥

वीरो रसो जहा—

सो णाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ।
काम-क्कोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ॥ ६५॥

[२६२-२] इन नव रसो मे १ परित्याग करने मे गर्व या पश्चात्ताप न होने, २ तपश्चरण मे धैर्य और ३ शत्रुओ का विनाश करने मे पराक्रम होने रूप लक्षण वाला वीररस है। ६४

वीररस का बोधक उदाहरण इस प्रकार है—

राज्य-वैभव का परित्याग करके जो दीक्षित हुआ और दीक्षित होकर काम-क्रोध आदि रूप महाशत्रुपक्ष का जिसने विघात किया, वही निश्चय से महावीर है। ६५

विवेचन—सूत्रकार ने इन दो गाथाओ मे से पहली मे अननुशय, धृति, पराक्रम आदि वीररस के बोधक चिह्नो का उल्लेख किया है और दूसरी मे वीररस के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है। शत्रु दो प्रकार के है—आन्तरिक (भाव) और बाह्य (द्रव्य)। मोक्ष का प्रतिपादक होने से प्रस्तुत शास्त्र मे काम, क्रोध आदि भाव-शत्रुओ को जीतनेवाले महापुरुष को वीर कहा है। यही दृष्टि आगे के उदाहरणो के लिये भी जानना चाहिये।

शृंगाररस

[३] **सिंगारो नाम रसो रतिसंजोगाभिलाससंजणणो।**
मंडण - विलास-विब्बोय-हास-लीला-रमणलिंगो ॥ ६६ ॥

सिंगारो रसो जहा—

महुरं विलासललियं हिययुम्मादणकरं जुवाणाणं।
सामा सद्दुद्दामं दाएती मेहलादामं ॥ ६७ ॥

[२६२-३] शृंगाररस रति के कारणभूत साधनो के सयोग की अभिलाषा का जनक है तथा मडन, विलास, विब्बोक, हास्य-लीला और रमण ये सब शृंगाररस के लक्षण है। ६६

शृंगाररस का बोधक उदाहरण है--

कामचेष्टाओ से मनोहर कोई श्यामा (सोलह वर्ष की तरुणी) क्षुद्र घंटिकाओ से मुखरित होने से मधुर तथा युवको के हृदय को उन्मत्त करने वाले अपने कोटिसूत्र का प्रदर्शन करती है। ६७

विवेचन—पूर्व की तरह इन दो गाथाओ मे सोदाहरण शृंगाररस का वर्णन किया गया है। पहली गाथा मे शृंगार रस की सभव चेष्टाओ का और दूसरी मे उन चेष्टाओ से युक्त व्यक्ति (नायिका) को उदाहारण रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

गाथोक्त कतिपय शब्दो की व्याख्या— **रतिसंजोगाभिलाससजणणो** रति—सुरतक्रीडा के कारणभूत ललना आदि के साथ सगम की इच्छा को उत्पन्न करने वाला। **मडण**—अलकार-आभूषणो आदि से शरीर को अलकृत करना--सजाना। **विलास**—कामोत्तेजक नेत्रादि की चेष्टाये। **विब्बोय**--विकारोत्तेजक शारीरिक प्रवृत्ति। **लीला**--गमनादि रूप रमणीय चेष्टा। **रमण** क्रीडा करना।

अद्भुतरस

[४] **विम्हयकरो अपुव्वो व भूयपुव्वो व जो रसो होइ।**
सो हास-विसायुप्पत्तिलक्खणो अब्भुतो नाम ॥ ६८ ॥

अब्भुओ रसो जहा—

अब्भुयतरमिह एत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगम्मि।
जं जिणवयणेणऽत्था तिकालजुत्ता वि णज्जंति ! ॥ ६९ ॥

[२६२-४] पूर्व मे कभी अनुभव मे नही आये अथवा अनुभव मे आये किसी विस्मयकारी-आश्चर्यकारक पदार्थ को देखकर जो आश्चर्य होता है, वह अद्भुतरस है। हर्ष और विषाद की उत्पत्ति अद्भुतरस का लक्षण है। जैसे--

इस जीवलोक में इससे अधिक अद्भुत और क्या हो सकता है कि जिनवचन द्वारा त्रिकाल सबन्धी समस्त पदार्थ जान लिये जाते है। ६८,६९

विवेचन—अद्भुतरस का लक्षण और उदाहरण इन गाथाओ द्वारा बताया गया है।

हर्ष और विषाद की उत्पत्ति को अद्भुतरस के लक्षण बताने का कारण यह है कि आश्चर्यजनक किसी शुभ वस्तु के देखने पर हर्ष और अशुभ वस्तु को देखने पर विषाद की उत्पत्ति होती है।

रौद्ररस

[५] भयजणणरूव-सद्दधकारचिंता- कहासमुप्पन्नो।
सम्मोह-संभम-विसाय-मरणलिंगो रसो रोद्दो ॥ ७० ॥

रोद्दो रसो जहा—
भिउडीविडंबियमुहा! संदट्ठोट्ठ! इय रुहिरमोकिण्ण! ।
हणसि पसुं असुरणिभा! भीमरसिय! अतिरोद्द! रोद्दोऽसि ॥ ७१ ॥

[२६२-५] भयोत्पादक रूप, शब्द अथवा अधकार के चिन्तन, कथा, दर्शन आदि से रौद्ररस उत्पन्न होता है और समोह, सभ्रम, विपाद एव मरण उसके लक्षण है। ७०, यथा—

भृकुटियों से तेरा मुख विकराल बन गया है, तेरे दांत होठो को चबा रहे है, तेरा शरीर खून से लथपथ हो रहा है, तेरे मुख से भयानक शब्द निकल रहे है, जिससे तू राक्षस जैसा हो गया है और पशुओ की हत्या कर रहा है। इसलिये अतिशय रौद्ररूपधारी तू साक्षात रौद्ररस है। ७१

विवेचन—यहाँ रौद्ररस का लक्षण और उन लक्षणो से युक्त व्यक्ति को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत रूपक से स्पष्ट है कि हिंसा मे प्रवृत्त व्यक्ति के परिणाम रौद्र होते है और भृकुटि आदि के द्वारा ही उन परिणामो की रौद्ररूपता आदि का बोध होता है।

यद्यपि भयजनक पिशाचादि के रूप के दर्शन, स्मरण आदि से समोहादि लक्षण वाले भयानकरस की उत्पत्ति होती है, तथापि उनके रौद्रपरिणामो का बोध कराने का कारण होने से इसमे रौद्रता की विवक्षा की है।

शब्दार्थ—**संमोह**—विवेकशून्यता-विवेकविकलता, **संभम**—सभ्रम—व्याकुलता, **भिउडी**—भ्रकुटि—भौहो को ऊपर चढाना। **विडंबिय**—विडम्बित—विकराल, विकृत। **रुहिरमोकिण्ण**—रुधिराकीर्ण—खून से लथपथ। **असुरणिभा**—असुरनिभ—असुर-राक्षस के जैसे (हो रहे हो)। **भीमरसिय**—भीमरसित—भयोत्पादक शब्द बोलने वाला। **अतिरोद्दो**—अतिरौद्र—अतिशय रौद्र रूपधारी।

व्रीडनकरस

[६] विणयोवयार-गुज्झ-गुरुदारमेरावतिक्कमुप्पण्णो।
वेलणओ नाम रसो लज्जा-संकाकरणलिंगो ॥ ७२ ॥

वेलणओ रसो जहा—

किं लोइयकरणीओ लज्जणियतरं ति लज्जिया होमो।
वारिज्जम्मि गुरुजणो परिवंदइ जं वहूपोत्तं ॥ ७३ ॥

[२६२-६] विनय करने योग्य माता-पिता आदि गुरुजनो का विनयन करने से, गुप्त रहस्यो को प्रकट करने से तथा गुरुपत्नी आदि के साथ मर्यादा का उल्लघन करने से व्रीडनकरस उत्पन्न होता है। लज्जा और शका उत्पन्न होना, इस रस के लक्षण हैं। ७२, यथा—(कोई वधू कहती है—) इस लौकिक व्यवहार से अधिक लज्जास्पद अन्य बात क्या हो सकती है—मै तो इससे बहुत लजाती हूँ—मुझे तो इससे बहुत लज्जा-शर्म आती है कि वर-वधू का प्रथम समागम होने पर गुरुजन—सास आदि वधू द्वारा पहने वस्त्र की प्रशसा करते हैं। ७३

विवेचन—व्रीडनकरस का सोदाहरण लक्षण बताया है कि लोकमर्यादा और आचारमर्यादा के उल्लघन से व्रीडनकरस की उत्पत्ति होती है और लज्जा आना एव आशकित होना उसके ज्ञापक चिह्न हैं। लज्जा अर्थात् कार्य करने के बाद मस्तक का नमित हो जाना, शरीर का सकुचित हो जाना और दोष प्रकट न हो जाए, इस विचार से मन का दोलायमान बना रहना।

उदाहरण अपने-आप मे स्पष्ट है। किसी क्षेत्र या किसी काल मे ऐसी रूढि—लोकपरपरा रही होगी कि नववधू की अक्षतयोनि प्रदर्शित करने के लिए सुहागरात के बाद उसके रक्तरजित वस्त्रो का प्रदर्शन किया जाता था। परन्तु है वह अतिशय लज्जाजनक।

बीभत्सरस

[७] **असुइ-कुणव-दुद्दंसणसंजोगब्भासगंधनिप्फण्णो।**
निव्वेयऽविहिंसालक्खणो रसो होइ बीभत्सो ॥ ७४ ॥

बीभत्सो रसो जहा—

असुइमलभरियनिज्झर सभावदुग्गंधि सव्वकाल पि।
धण्णा उ सरीरकलिं बहुमलकलुस विमुचति ॥ ७५ ॥

[२६२-७] अशुचि—मल मूत्रादि, कुणप—शव, मृत शरीर, दुर्दर्शन—लार आदि से व्याप्त घृणित शरीर को बारबार देखने रूप अभ्यास से या उसकी गध से बीभत्सरस उत्पन्न होता है। निर्वेद और अविहिंसा बीभत्सरस के लक्षण है। ७४

बीभत्सरस का उदाहरण इस प्रकार है—

अपवित्र मल से भरे हुए झरनो (शरीर के छिद्रो) से व्याप्त और सदा सर्वकाल स्वभावत दुर्गन्धयुक्त यह शरीर सर्व कलहो का मूल है। ऐसा जानकर जो व्यक्ति उसकी मूर्च्छा का त्याग करते हैं, वे धन्य हैं।

विवेचन—सूत्रकार ने बीभत्सरस का स्वरूप बतलाया है और उदाहरण मे रूप के शरीर का उल्लेख किया है। शरीर की बीभत्सता को सभी जानते हैं—

पल-रुधिर-राध-मल थैली कीकस वसादि तै मैली।

अतएव इससे अधिक और दूसरी घृणित वस्तु क्या हो सकती है ?

निर्वेद और अविहिंसा बीभत्सरस के लक्षण बताये हैं। निर्वेद अर्थात् उद्वेग, मन में ग्लानिभाव, सकल्प-विकल्प उत्पन्न होना। शरीर आदि की असारता को जानकर हिंसादि पापो का त्याग करना अविहिंसा है। इन दोनो को उदाहरण मे घटित किया है कि यह शरीर यथार्थ में उद्वेगकारी होने से भाग्यशाली जन उसके ममत्व को त्याग कर, हिंसादि पापों से विरत होकर आत्मरमणता की ओर अग्रसर होते हैं।

हास्यरस

[८] रूव - वय - वेस-भासाविवरीयविलंबणासमुप्पन्नो।
हासो मणप्पहासो पकासलिंगो रसो होति ॥ ७६ ॥

हासो रसो जहा—

पासुत्तमसीमंडियपडिबुद्ध देयरं पलोयंती।
ही ! जह थणभरकंपणपणमियमज्झा हसति सामा ॥ ७७ ॥

[२६२-८] रूप, वय, वेष और भाषा की विपरीतता से हास्यरस उत्पन्न होता है। हास्य-रस मन को हर्षित करने वाला है और प्रकाश—मुख, नेत्र आदि का विकसित होना, अट्टहास आदि उसके लक्षण है। ७६

हास्य रस इस प्रकार जाना जाता है—

प्रात सोकर उठे, कालिमा से—काजल की रेखाओ से मडित देवर के मुख को देखकर स्तन-युगल के भार से नमित मध्यभाग वाली कोई युवती (भाभी) ही-ही करती हँसती है। ७७

विवेचन—यहाँ हास्यरस का स्वरूप बताया है। हास्यरस रूप, वय, वेश और भाषा की विपरीतता रूप विडबना से उत्पन्न होता है। पुरुष द्वारा स्त्री का या स्त्री द्वारा पुरुष का रूप धारण करना रूप की विपरीतता है। इसी प्रकार वय आदि की विपरीतता-विडम्बना के विषय मे जान लेना चाहिये। जैसे कोई तरुण वृद्ध का रूप बनाए, राजपुत्र वणिक् का रूप धारण करे, आदि। इस प्रकार की विपरीतताओ से हास्यरस की उत्पत्ति होती है। हँसते समय मुख का खिल जाना, खिल-खिलाना आदि हास्यरस के चिह्नो को तो सभी जानते है।

करुणरस

[९] पियविप्पयोग-बंध-वह-वाहि-विणिवाय-संभमुप्पन्नो।
सोचिय-विलविय-पव्वाय-रुन्नलिंगो रसो कलुणो ॥ ७८ ॥

कलुणो रसो जहा—

पज्झातकिलामिययं बाहागयपप्पुयच्छियं बहुसो।
तस्स वियोगे पुत्तिय ! दुब्बलयं ते मुहं जायं ॥ ७९ ॥

[२६२-९] प्रिय के वियोग, बध, वध, व्याधि, विनिपात, पुत्रादि-मरण एव सभ्रम-परचक्रादि के भय आदि से करुणरस उत्पन्न होता है। शोक, विलाप, अतिशय म्लानता, रुदन आदि करुणरस के लक्षण हैं। ७८

करुणरस इस प्रकार जाना जा सकता है—

हे पुत्रिके ! प्रियतम के वियोग मे उसकी वारवार अतिशय चिन्ता से क्लान्त-मुर्झाया हुआ और आसुओ से व्याप्त नेत्रो वाला तेरा मुख दुर्बल हो गया है। ७९

विवेचन—करुणरस के स्वरूपवर्णन के प्रसग मे उसके शोक, विलाप, मुखशुष्कता, रोना आदि चिह्न बताये गये है, जिन्हे उदाहरण मे कारण सहित स्पष्ट किया है।

प्रशान्तरस

[१०] निद्दोसमणसमाहाणसंभवो जो पसंतभावेण।
अविकारलक्खणो सो रसो पसंतो त्ति णायव्वो ॥ ८० ॥

पसंतो रसो जहा—

सब्भावनिव्विकारं उवसंत-पसंत-सोमदिट्ठीयं।
ही ! जह मुणिणो सोहति मुहकमलं पीवरसिरीयं ॥ ८१ ॥

[२६२-१०] निर्दोष (हिंसादि दोषो से रहित), मन की समाधि (स्वस्थता) से और प्रशान्त भाव से जो उत्पन्न होता है तथा अविकार जिसका लक्षण है, उसे प्रशान्तरस जानना चाहिये। ८०

प्रशान्तरस सूचक उदाहरण इस प्रकार है—सद्भाव के कारण निर्विकार, रूपादि विषयो के अवलोकन की उत्सुकता के परित्याग से उपशान्त एव क्रोधादि दोषो के परिहार से प्रशान्त, सौम्य दृष्टि से युक्त मुनि का मुखकमल वास्तव मे अतीव श्रीसम्पन्न होकर सुशोभित हो रहा है। ८१

विवेचन—यहाँ सूत्रकार ने नव रसो के अतिम भेद प्रशान्तरस का स्वरूप बताया है। क्रोधादि कषायो रूप वैभाविक भावो की रहितता से जो अतर मे शाति की अनुभूति एव बाहर मे मुख पर लावण्यमय ओज—तेज दिखाई देता है, वह सब प्रशान्तरस रूप है। इसी बात को उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है।

इस प्रकार नवरसो के रूप मे नवनाम का वर्णन करके अब ग्रन्थकार उपसहार करते है—

[११] एए नव कव्वरसा बत्तीसादोसविहिसमुप्पण्णा।
गाहाहिं मुणेयव्वा, हवंति सुद्धा व मीसा वा ॥ ८२ ॥

से तं नवनामे।

[२६२-११] गाथाओ द्वारा कहे गये ये नव काव्यरस अलीकता आदि सूत्र के बत्तीस दोषो से उत्पन्न होते है और ये रस कही शुद्ध (अमिश्रित) भी होते है और कही मिश्रित भी होते है।

इस प्रकार से नवरसो का वर्णन पूर्ण हुआ और नवरसो के साथ ही नवनाम का निरूपण भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—यह गाथा नवरसो और साथ ही नवनाम के वर्णन की समाप्ति की सूचक है।

ये नवरस आगे कहे जाने वाले अलीक, उपघात आदि सूत्र के बत्तीस दोषो के द्वारा उत्पन्न होते है। जैसे—

तेषा कटतटभ्रष्टैर्गजाना मदबिन्दुभि ।
प्रावर्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनी ।।

अर्थात् उन हाथियो के कट-तट से झरते हुए मदबिन्दुओ से एक घोर (विशाल) नदी बह निकली कि जिसमे हाथी, घोडा, रथ और सेना बहने लगी ।

यह कथन अलीकता दोष से दूषित है, क्योकि मदजल से नदी का निकलना न तो किसी ने देखा है, न सुना है और न सभव है। यह तो एक कल्पनामात्र है। इस अलीक दोष से अद्भुतरस उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार से अन्यत्र भी यथासभव सूत्रदोषो से उन-उन रसो की उत्पत्ति जानना चाहिये। परन्तु यह एकान्त नियम नही है कि सभी रस अलीकादि दोषो की विरचना से ही उत्पन्न होते है। जैसे—तपश्चरण विषयक वीररस तथा प्रशान्त आदि रसो की उत्पत्ति अलीकादि सूत्रदोषो के बिना भी होती है।

'सुद्धा वा मिस्सा वा हवति' अर्थात् किसी काव्य मे शुद्ध—एक ही रस और किसी मे दो और दो से अधिक रसो का समावेश होता है ।

अब नाम अधिकार के अतिम भेद दसनाम का वर्णन करते है –

दसनाम

२६३. से किं त दसनामे ?

दसनामे दसविहे पण्णत्ते । त जहा—गोण्णे १ नोगोण्णे २ आयाणपदेण ३ पडिवक्खपदेण ४ पाहण्णयाए ५ अणादियसिद्धतेण ६ नामेणं ७ अवयवेण ८ सजोगेणं ९ पमाणेण १० ।

[२६३ प्र] भगवन् ! दसनाम का क्या स्वरूप है ?

[२६३ उ] आयुष्मन् ! दस प्रकार के नाम दस नाम कहलाते है। वे इस प्रकार है—

१ गौणनाम, २ नोगौणनाम, ३ आदानपदनिष्पन्ननाम, ४ प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम, ५ प्रधानपदनिष्पन्ननाम, ६ अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम, ७ नामनिष्पन्ननाम, ८ अवयवनिष्पन्ननाम, ९ सयोगनिष्पन्ननाम, १० प्रमाणनिष्पन्ननाम ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र दसनाम की व्याख्या की भूमिका रूप है। यहाँ बतलाया है कि विभिन्न आधारो को लेकर वस्तु का नामकरण किया जा सकता है। प्रस्तुत मे दस आधार कहे गए है। उनका आशय यह है—

गौणनाम

२६४. से किं तं गोण्णे ?

गोण्णे खमतीति खमणो, तपतीति तपणो, जलतीति जलणो, पवतीति पवणो । से तं गोण्णे ।

[२६४ प्र] भगवन् ! गौण—गुणनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२६४ उ] आयुष्मन् ! गौण—गुणनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है—

जो क्षमागुण से युक्त हो उसका 'क्षमण' नाम होना, जो तपे उसे तपन (सूर्य), प्रज्वलित हो उसे ज्वलन (अग्नि), जो पवे अर्थात् बहे उसे पवन कहना। यह गौणनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे कतिपय उदाहरणो के द्वारा गौणनाम का स्वरूप बतलाया है। गुणों के आधार से जो संज्ञाये निर्धारित होती है, उन्हे गौणनाम कहते है। यह यथार्थनाम भी कहलाता है।

उदाहरण के रूप में जिन नामो का उल्लेख किया है, वे क्षमा, तपन, ज्वलन, पवन रूप नाम के अनुसार गुणो वाले है। इसलिये उनके नाम गुणनिष्पन्न होने से गौण—यथार्थ नाम हैं।

नोगौणनाम

२६५. से किं तं नोगोण्णे ?

नोगोण्णे अकुंतो सकुंतो, अमुग्गो समुग्गो, अमुद्दो समुद्दो, अलाल पलालं, अकुलिया सकुलिया, नो पल असतीति पलासो, अमातिवाहए मातिवाहए, अबीयवावए बीयवावए, नो इंदं गोवयतीति इंदगोवए। से तं नोगोण्णे।

[२६५ प्र] भगवन् ! नोगौणनाम का क्या स्वरूप है ?

[२६५ उ] आयुष्मन् ! नोगौणनाम का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—

कुन्त—शस्त्र-विशेष (भाला) से रहित होने पर भी पक्षी को 'सकुन्त' कहना।

मुद्ग—मूग धान्य से रहित होने पर भी डिबिया को 'समुद्ग' कहना।

मुद्रा—अगूठी से रहित होने पर भी सागर को 'समुद्र' कहना।

लाल—लार से रहित होने पर भी विशेष प्रकार के घास को 'पलाल' कहना।

कुलिका—भित्ति (दीवार) से रहित होने पर भी पक्षिणी को 'सकुलिका' कहना।

पल—मास का आहार न करने पर भी वृक्ष-विशेष को 'पलाश' कहना।

माता को कन्धो पर वहन न करने पर भी विकलेन्द्रिय जीवविशेष को 'मातृवाहक' नाम से कहना।

बीज को नही बोने वाले जीवविशेष को 'बीजवापक' कहना।

इन्द्र की गाय का पालन न करने पर भी कीटविशेष का 'इन्द्रगोप' नाम होना।

इस प्रकार से नोगौणनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे नोगौणनाम का स्वरूप कतिपय उदाहरणो द्वारा बतलाया गया है। यह नाम गुण-धर्म-स्वभाव आदि की अपेक्षा किये बिना मात्र लोकरूढि से निष्पन्न होता है। इस प्रकार के नाम अयथार्थ होने पर भी लोक मे प्रचलित हैं।

सूत्रगत उदाहरण स्पष्ट हैं। जैसे 'सकुन्त' यह नाम अयथार्थ है। क्योकि व्युत्पत्ति के अनुसार जो कुन्त—शस्त्र-विशेष—भाला से युक्त हो वही सकुन्त है। किन्तु पक्षी को भी सकुन्त (शकुन्त) कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणो के लिये जानना चाहिये।

आदानपदनिष्पन्ननाम

२६६. से किं तं आयाणपदेणं ?

आयाणपदेणं आवंती चातुरंगिज्जं अहातत्थिज्जं अद्दइज्जं असंखयं जण्णइज्जं पुरिसइज्जं (उसुकारिज्जं) एलइज्जं वीरियं धम्मो मग्गो समोसरणं जमईयं। से तं आयाणपदेणं।

[२६६ प्र] भगवन् ! आदानपदनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२६६ उ] आयुष्मन् ! आवती, चातुरंगिज्ज, असखय, अहातत्थिज्ज अद्दइज्ज, जण्णइज्ज, पुरिसइज्ज (उसुकारिज्ज), एलइज्ज, वीरिय, धम्म, मग्ग, समोसरण, जमईय आदि आदानपद-निष्पन्ननाम है ।

विवेचन—सूत्र मे आदानपदनिष्पन्ननाम का स्वरूप बताने के लिये सबन्धित उदाहरणो का उल्लेख किया है ।

किसी शास्त्र के अध्ययन आदि के प्रारभ मे उच्चरित पद आदान पद कहलाता है । उस के आधार से निष्पन्न—रखे जाने वाले नाम को आदानपदनिष्पन्ननाम कहते है । जैसे—

आवती- -इस आचारागसूत्र के पाचवे अध्ययन के नाम का कारण उसके प्रारभ मे उच्चरित 'आवती केयावती' पद है ।

'चाउरगिज्ज' यह उत्तराध्ययनसूत्र के तीसरे अध्ययन का नाम है, जो उस अध्ययन के प्रारभ मे आगत 'चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणीह जतुणो' गाथा के आधार से रखा है ।

'असखय जीविय मा पमायए' इस वाक्य मे प्रयुक्त 'असखय' शब्द उत्तराध्ययनसूत्र के चतुर्थ अध्ययन के नाम का कारण है ।

'जह सुत्त तह अत्थो' गाथोक्त जह तह इन दो पदो के आधार से सूत्रकृतागसूत्र के तेरहवे अध्ययन का 'जहतह' नामकरण किया गया है ।

इसी प्रकार 'पुराकड अद्दइय सुणेह' इस सूत्रकृतागसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन की पहली गाथा के 'अद्दइय' पद के आधार से इस अध्ययन का नाम 'अद्दइज्ज' है ।

उत्तराध्ययनसूत्र के पच्चीसवे अध्ययन के प्रारभ मे यह गाथा है—

माहणकुलसभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जायई जम जन्नमि जयघोसो त्ति नामओ ।।

इस गाथा मे आगत 'जन्न' पद के आधार से इस अध्ययन का नाम 'जन्नइज्ज' रखा है । इसी प्रकार चौदहवे अध्ययन की पहली गाथा मे आगत उसुयार पद के आधार से उस अध्ययन का नाम 'उसुकारिज्ज' है तथा सातवे अध्ययन के प्रारभ मे 'एलय' पद होने से उस अध्ययन का नाम 'एलइज्ज' है ।

सूत्रकृतागसूत्र के आठवे अध्ययन की पहली गाथा मे 'वीरिय' पद होने से उस अध्ययन का नाम 'वीरिय' रखा तथा नौवे अध्ययन की पहली गाथा मे 'धम्म' पद होने से वह अध्ययन 'धम्मज्झ-यण' नाम वाला है और ग्यारहवे अध्ययन की प्रस्तावना की प्रथम गाथा मे 'मग्ग' शब्द होने से उस अध्ययन का नाम 'मग्गज्झयण' है ।

सूत्रकृतागसूत्र के बारहवे अध्ययन के प्रारभ की गाथा मे 'समोसरणाणिमाणि' पद है । इसी के आधार से उस अध्ययन का नाम 'समोसरणज्झयण' रख लिया गया तथा पन्द्रहवे अध्ययन की पहली गाथा मे 'जमईय' पद होने से अध्ययन का नाम 'जमईय' है ।

इसी प्रकार अन्य नामो की आदानपदनिष्पन्नता समझ लेना चाहिये ।

प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम

२६७. से किं तं पडिवक्खपदेणं ?

पडिवक्खवदेणं णवेसु गामाऽऽगर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणाऽऽसम-संवाह-सन्निवेसेसु निविस्समाणेसु असिवा सिवा, अग्गी सीयलो, विसं महुरं, कल्लालघरेसु अंबिलं साउयं, जे लत्तए से अलत्तए, जे लाउए से अलाउए, जे सुंभए से कुसुंभए, आलवंते विवलीयभासए। से तं पडिपक्खपदेणं।

[२६७ प्र] भगवन् ! प्रतिपक्षपद से निष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२६७ उ] आयुष्मन् ! प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है—

नवीन ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, सबाह और सन्निवेश आदि मे निवास करने अथवा बसाये जाने पर अशिवा (शृगाली, सियारनी) को 'शिवा' शब्द से उच्चारित करना। (कारणवशात्) अग्नि को शीतल और विष को मधुर, कलाल के घर मे 'आम्ल' के स्थान पर 'स्वादु' शब्द का व्यवहार होना। इसी प्रकार रक्त वर्ण का हो उसे अलक्तक, लाबु (पात्र-विशेष) को अलाबु, सुभक (शुभ वर्ण वाले) को कुसुभक और विपरीतभाषक—भाषक से विपरीत अर्थात् असम्बद्ध प्रलापी को 'अभाषक' कहना।

यह सब प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है।

प्रतिपक्ष—विवक्षित वस्तु के धर्म से विपरीत धर्म। इस प्रतिपक्ष के वाचक पद से निष्पन्न होने वाले नाम को प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम कहते है। उदाहरणार्थ—मगल के निमित्त शृगाली के लिये 'अशिवा' के स्थान पर 'शिवा' शब्द का प्रयोग करना।

इसका कारण यह है कि शब्दकोश मे 'शिवा' शृगाली वाचक नाम तो है किन्तु उसका देखना या बोलना अशिव-अमगल-अशुभ रूप होने से मागलिक प्रसगो पर अशिवा के स्थान पर शिवा शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इसी प्रकार मगल-अमगल विषयक लोकमान्यता के अनुसार अग्नि के लिये शीतल, विष के लिये मधुर और अम्ल के लिये स्वादु शब्दप्रयोगो के विषय मे जानना चाहिये। शीतल आदि शब्द वस्तुगत गुण-धर्मों से विपरीत गुणधर्म के बोधक होने पर भी अग्नि आदि के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

अलक्तत, अलाबु, कुसुम्भक, अभाषक आदि शब्दगत 'अ' 'कु' प्रत्यय प्रतिपक्ष का बोध कराने वाले होने से इनके सयोग से बनने वाले पदो की प्रतिपक्षनिष्पन्नता सुगम है।

नोगौणपदनिष्पन्न से इसे पृथक् मानने का कारण यह कि नोगौणपद मे तो नामकरण का कारण कुन्तादि के प्रवृत्तिनिमित्त का अभाव है। जबकि उसमे प्रतिपक्षधर्मवाचक शब्द मुख्य है।

ग्राम आदि पदों की व्याख्या—ग्राम—जहां पर बुद्धि आदि गुण ग्रसे जाते हैं अर्थात् गुणो मे हीनता आती है, गुणो का विकास नही होता अथवा जिसके चारों ओर काटो आदि की बाड हो।

आकर—स्वर्ण आदि धातुओं, रत्नों और खनिज पदार्थों की खानें हों। **नगर**—अठारह प्रकार के राजकर (टैक्स) से जो मुक्त हों। **खेड**—जिसके चारों ओर मिट्टी का कोट बनाया गया हो। **कर्बट**—कुत्सित नगर—जहाँ जीवनोपयोगी साधनों का अभाव हो। **मडम्ब**—जिसके आसपास ढाई कोस तक कोई गांव न हो। **द्रोणमुख**—जो जल और स्थल रूप आवागमन के मार्गों से जुड़ा हुआ हो। पट्टन (पत्तन) जहाँ सभी प्रकार की वस्तुएँ मिलती हों। **आश्रम**—तापसों का आवासस्थान। **संवाह**—अनेक प्रकार के लोगों से व्याप्त स्थान अथवा पथिकों का विश्रामस्थान। **सन्निवेश**—सार्थवाहों का निवासस्थान।

प्रधानपदनिष्पन्ननाम

२६८. से किं तं पाहण्णयाए ?

पाहण्णयाए असोगवणे सत्तवण्णवणे चंपकवणे चूयवणे नागवणे पुन्नागवणे उच्छुवणे दक्खवणे सालवणे। से तं पाहण्णयाए।

[२६८ प्र] भगवन् ! प्रधानपदनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२६८ उ] आयुष्मन् ! प्रधानपदनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है, जैसे—

अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, आम्रवन, नागवन, पुन्नागवन, इक्षुवन, द्राक्षावन, शालवन, ये सब प्रधानपदनिष्पन्ननाम हैं।

विवेचन—यह सूत्र प्रधानपदनिष्पन्ननाम का सूचक है।

जिसकी प्रचुरता—बहुलता हो वह यहाँ प्रधान कहा गया है और उस प्रधान की अपेक्षा निष्पन्न-नाम प्रधानपदनिष्पन्ननाम कहलाता है।

अशोकवन आदि उदाहरणों में जैसे अशोकवन में अन्य वृक्षों का सद्भाव तो है, किन्तु अशोक वृक्षों की प्रचुरता होने से उस वन को 'अशोकवन' इस नाम से सम्बोधित किया जाता है। सप्तपर्णवन आदि नामों के लिये भी यही कारण जानना चाहिये।

गौणनाम से प्रधानपदनिष्पन्ननाम में यह अन्तर है कि गौणनाम में तो क्षमादि गुण से क्षमण आदि शब्दों का वाच्यार्थ सम्पूर्ण रूप से उस नाम वाले में घटित होता है, जबकि प्रधानपद-निष्पन्ननाम में उस-उस नाम के वाच्यार्थ की मुख्यता और शेष की गौणता रहती है। किन्तु गौणता के कारण उनका अभाव नहीं होता है। जैसे अशोक वृक्षों की प्रचुरता होने पर भी वृक्षों का अभाव नहीं है।

अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम

२६९. से किं तं अणादियसिद्धंतेणं ?

अणादियसिद्धंतेणं धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए। से तं अणादियसिद्धंतेणं।

[२६९ प्र] भगवन् ! अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२६९ उ] आयुष्मन्! अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय।

यह अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का स्वरूप है।

विवेचन— सूत्र मे अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का स्वरूप बतलाया है। इसमे अनादिसिद्धान्त पद मुख्य है। जिसका अर्थ यह है कि अमुक शब्द अमुक अर्थ का वाचक है और अमुक अर्थ अमुक शब्द का वाच्य है। इस प्रकार के अनादि वाच्य-वाचकभाव के ज्ञान को सिद्धान्त कहते है। अतएव इस अनादिसिद्धान्त से जो नाम निष्पन्न हो वह अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम कहलाता है।

उदाहरण के रूप मे जो धर्मास्तिकाय आदि नामो का उल्लेख किया है, उनमे वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध अनादिकाल से सिद्ध है। उन्होने कभी भी अपने स्वरूप का त्याग नही किया है और भविष्य मे कभी त्याग नही करेगे।

गौणनाम से इस अनादिसिद्धान्तनाम मे यह अन्तर है कि गौणनाम का अभिधेय तो अपने स्वरूप का परित्याग भी कर देता है। जबकि अनादिसिद्धान्तनाम न कभी बदला है, न बदलेगा। वह सदैव रहता है, इसलिये सूत्रकार ने इसका पृथक् निर्देश किया है।

नामनिष्पन्ननाम

२७०. से किं तं नामेणं?

नामेणं पिउपियामहस्स नामेण उन्नामियए। से त णामेण।

[२७० प्र] भगवन्! नामनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है?

[२७० उ] आयुष्मन्! जो नाम नाम से निष्पन्न होता है, उसका स्वरूप इस प्रकार है— पिता या पितामह अथवा पिता के पितामह के नाम से निष्पन्न नाम नामनिष्पन्ननाम कहलाता है।

विवेचन—सूत्र मे नाम से निष्पन्न नाम का स्वरूप बताया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्व मे लोक-व्यवहार की मुख्यता से किसी का कोई नामकरण किया गया। उसी नाम मे पुन नये नाम की स्थापना करना नामनिष्पन्ननाम कहलाता है। जैसे किसी के पिता, पितामह आदि बन्धुदत्त नाम से प्रख्यात हुए थे। उन्ही के नाम से उनके पौत्र आदि का नाम होना नाम-निष्पन्ननाम है। इतिहास मे ऐसे अनेक राजाओ के नाम मिलते है।

अवयवनिष्पन्ननाम

२७१. से किं त अवयवेण?

अवयवेणं—

सिंगी सिही विसाणी दाढी पक्खी खुरी णही वाली।
दुपय चउप्पय बहुपय णंगुली केसरी ककुही॥ ८३॥
परियरबंधेण भडं जाणेज्जा, महिलियं निवसणेणं।
सित्थेण दोणपागं, कविं च एगाइ गाहाए॥ ८४॥

से तं अवयवेणं ।

[२७१ प्र.] भगवन् ! अवयवनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२७१ उ.] आयुष्मन् ! अवयवनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—

शृंगी, शिखी, विषाणी, दष्ट्री, पक्षी, खुरी, नखी, वाली, द्विपद, चतुष्पद, बहुपद, लागूली, केशरी, ककुदी आदि । ८३

इसके अतिरिक्त परिकरबधन—विशिष्ट रचना युक्त वस्त्रो के पहनने से—कमर कसने से योद्धा पहिचाना जाता है, विशिष्ट प्रकार के वस्त्रो को पहनने से महिला पहिचानी जाती है, एक कण पकने से द्रोणपरिमित अन्न का पकना और (प्रासादादि गुणो से युक्त) एक ही गाथा के सुनने से कवि को पहिचाना जाता है । यह सब अवयवनिष्पन्ननाम कहलाते है । ८४

विवेचन—सूत्र मे अवयवनिष्पन्ननाम की व्याख्या की है ।

अवयवनिष्पन्न अर्थात् अवयवी के एक देश रूप अवयव का समस्त अवयवी पर आरोप करके अवयव और अवयवी को अभिन्न मानकर जो नाम रक्खा जाता है उसे अवयवनिष्पन्ननाम कहते है, जो शृंगी, शिखी आदि उदाहरणो से स्पष्ट है । शृंगी नाम शृंग (सीग) रूप अवयव के सम्बन्ध से, शिखी नाम शिखा रूप अवयव के सम्बन्ध से निष्पन्न हुआ है । इसी प्रकार विषाणी, दष्ट्री, पक्षी आदि नामो के विषय मे जानना चाहिये ।

योद्धा, महिला, द्रोणपाक, कवि आदि शब्दो का प्रयोग परिकरबधन आदि-आदि अवस्थाओ को प्रत्यक्ष देखने, सुनने से होता है और ये परिकरबधन आदि योद्धा आदि अवयवी के अवयव रूप एकदेश है । इसलिये ये शब्द भी अवयव की प्रधानता से निष्पन्न होने के कारण अवयवनिष्पन्ननाम के रूप मे उदाहृत हुए है ।

अवयवनिष्पन्न और गौणनिष्पन्न नाम मे अन्तर—इन दोनो की नामनिष्पन्नता के आधार भिन्न-भिन्न है । अवयवनिष्पन्ननाम मे शृंग आदि शरीरावयव या अग-प्रत्यग विशेष नाम के आधार है, जबकि गौणनिष्पन्ननाम मे गुणो की प्रधानता होती है । इसलिये अवयवनाम और गौणनाम पृथक्-पृथक् माने गये है ।

संयोगनिष्पन्ननाम

२७२. से किं त संजोगेणं ?

संजोगे चउव्विहे पण्णत्ते । त जहा—दव्वसजोगे १ खेत्तसजोगे २ कालसजोगे ३ भावसंजोगे ४ ।

[२७२ प्र.] भगवन् ! सयोगनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२७२ उ.] आयुष्मन् ! (सयोग की प्रधानता से निष्पन्न होने वाला नाम सयोगनिष्पन्ननाम है ।) सयोग चार प्रकार का है—१ द्रव्यसयोग, २ क्षेत्रसयोग, ३. कालसयोग, ४. भावसयोग ।

विवेचन—यह सूत्र सयोगनिष्पन्ननाम की प्ररूपणा करने की भूमिका रूप है । सयोग

अर्थात् दो पदार्थों का आपस मे जुडना । सयोग की द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव यह चार अपेक्षाए हो सकती हैं । इसलिये सयोगज नाम के चार भेद कहे गये हैं ।

इन चतुर्विध सयोगनिष्पन्ननामो की व्याख्या आगे की जा रही है ।

द्रव्यसंयोगजनाम

२७३. से किं तं दव्वसंजोगे ?

दव्वसजोगे तिविहे पण्णत्ते । त जहा—सचित्ते १ अचित्ते २ मीसए ३ ।

[२७३ प्र] भगवन् ! द्रव्यसयोग से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२७३ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यसयोग तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—१ सचित्तद्रव्य-सयोग, २ अचित्तद्रव्यसयोग, ३ मिश्रद्रव्यसयोग ।

२७४. से किं त सचित्ते ?

सचित्ते गोहि गोमिए, महिसीहि माहिसिए, ऊरणीहि ऊरणिए, उट्टीहि उट्टीवाले । से त सचित्ते ।

[२७४ प्र] भगवन् ! सचित्तद्रव्यसयोग से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२७४ उ] आयुष्मन् ! सचित्तद्रव्य के सयोग से निष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार है—

गाय के सयोग से गोमान् (ग्वाला), महिषी (भैंस) के सयोग से महिषीमान्, मेषियो (भेडो) के सयोग से मेषीमान् और ऊटनियो के सयोग से उष्ट्रीपाल नाम होना आदि सचित्तद्रव्यसयोग से निष्पन्न नाम है ।

२७५. से किं तं अचित्ते ?

अचित्ते छत्तेण छत्ती, दडेण दडी, पडेण पडी, घडेण घडी, कडेण कडी । से त अचित्ते ।

[२७५ प्र] भगवन् ! अचित्तद्रव्यसयोगनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२७५ उ] आयुष्मन् ! अचित्त द्रव्य के सयोग से निष्पन्न नाम का यह स्वरूप है—छत्र के सयोग से छत्री, दड के सयोग से दडी, पट (कपडा) के सयोग से पटी, घट के सयोग से घटी, कट (चटाई) के सयोग से कटी आदि नाम अचित्तद्रव्यसयोगनिष्पन्न नाम है ।

२७६. से किं त मीसए ?

मीसए हलेणं हालिए, सकडेणं साकडिए, रहेणं रहिए, नावाए नाविए । से त मीसए । से तं दव्वसंजोगे ।

[२७६ प्र] भगवन् । मिश्रद्रव्यसयोगजनाम का क्या स्वरूप है ?

[२७६ उ] आयुष्मन् ! मिश्रद्रव्यसयोगनिष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—हल के सयोग से हालिक, शकट (गाडी) के सयोग से शाकटिक, रथ के सयोग से रथिक, नाव के सयोग से नाविक आदि नाम मिश्रद्रव्यसयोगनिष्पन्ननाम है ।

विवेचन—सूत्रकारने सयोगनिष्पन्न के प्रथम भेद द्रव्यसयोगजनाम का स्वरूप बतलाया है। द्रव्य तीन प्रकार के हैं—सचित्त (सजीव), अचित्त (अजीव) और दोनो का मिश्ररूप। इस प्रकार द्रव्य के तीन भेद करके उनके पृथक्-पृथक् उदाहरण दिये है।

गोमान् (ग्वाला) आदि सचित्तद्रव्यसयोगजनाम की निष्पत्ति मे गाये सचित्त (सचेतन) पदार्थ कारण है।

अचित्तद्रव्यसयोगजनाम के लिये उदाहृत छत्री आदि नामो की निष्पत्ति छत्र आदि अचित्त-द्रव्यसयोगसापेक्ष है। इसलिये छत्र जिसके पास है वह छत्री, दड जिसके पास है वह दडी इत्यादि कहा जाता है।

मिश्रद्रव्यसयोगजनाम के हालिक, शाकटिक आदि उदाहरणो मे हल, शकट (गाडी) आदि पदार्थ अचित्त और उनके साथ सयुक्त बैल आदि पदार्थ सचित्त है। इस प्रकार सचित्त-अचित्त दोनो प्रकार के पदार्थों की मिश्रता इन नामो की निष्पत्ति की आधार होने से ये सचित्ताचित्त (मिश्र) द्रव्य-सयोगनिष्पन्न नाम के रूप मे बताये गये है।

इसी प्रकार अन्य नामो की द्रव्यसयोगिता का विचार करके उस-उस प्रकार के द्रव्यसयोग-निष्पन्न नाम समझ लेना चाहिये।

क्षेत्रसंयोगजनाम

२७७. **से किं त खेत्तसजोगे ?**

खेत्तसंजोगे भारहे एरवए हेमवए एरण्णवए हरिवस्सए रम्मयवस्सए पुव्वविदेहए अवरविदेहए, देवकुरुए उत्तरकुरुए अहवा मागहए मालवए सोरट्ठए मरहट्ठए कोंकणए कोसलए। से त खेत्तसजोगे।

[२७७ प्र] भगवन्! क्षेत्रसयोग से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है?

[२७७ उ] आयुष्मन्! क्षेत्रसयोगनिष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार है—

यह भारतीय—भरतक्षेत्रीय है, यह ऐरावतक्षेत्रीय है, यह हेमवतक्षेत्रीय है, यह ऐरण्यवत्त-क्षेत्रीय है, यह हरिवर्षक्षेत्रीय है, यह रम्यकवर्षीय है, यह पूर्वविदेहक्षेत्र का है, यह उत्तरविदेहक्षेत्रीय है, यह देवकुरुक्षेत्रीय है, यह उत्तरकुरुक्षेत्रीय है। अथवा यह मागधीय है, मालवीय है, सौराष्ट्रीय है, महाराष्ट्रीय है, कौकणदेशीय है, यह कोशलदेशीय है आदि नाम क्षेत्रसयोगनिष्पन्न-नाम है।

विवेचन—सूत्र मे क्षेत्रसयोगनिष्पन्न नाम का स्वरूप स्पष्ट किया है। क्षेत्र को आधार—माध्यम बनाकर और क्षेत्र की मुख्यता से जो नामकरण किया जाता है, वह क्षेत्रसयोगनिष्पन्न नाम कहलाता है।

भरत, ऐरवत, मगध आदि क्षेत्र रूप मे प्रसिद्ध हैं। अत लोकव्यवहार चलाने के लिये जो मागधीय—मगध देश का रहने वाला आदि नाम रख लिए जाते हैं, वे क्षेत्र के सयोग से बनने के कारण क्षेत्रसंयोगनिष्पन्न नाम कहे जाते हैं।

कालसंयोगनिष्पन्ननाम

२७८. से किं तं कालसंजोगे ?

कालसंजोगे सुसमसुसमए सुसमए सुसमदूसमए दूसमसुसमए दूसमए दूसमदूसमए अहवा पाउसए वासारत्तए सरवए हेमतए वसतए गिम्हए । से तं कालसंजोगे ।

[२७८ प्र] भगवन् ! कालसयोग से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२७८ उ] आयुष्मन् ! काल के सयोग से निष्पन्न होने वाले नाम का स्वरूप इस प्रकार है—

सुषमसुषम काल मे उत्पन्न होने से यह 'सुषम-सुषमज' है, यह सुषमकाल मे उत्पन्न होने से 'सुषमज' है। इसी प्रकार से सुषमदुषमज, दुषमसुषमज, दुषमज, दुषमदुषमज नाम भी जानना चाहिये। अथवा यह प्रावृषिक (वर्षा के प्रारभ काल मे उत्पन्न हुआ) है, यह वर्षारात्रिक (वर्षाऋतु मे उत्पन्न) है, यह शारद (शरदऋतु मे उत्पन्न) है, यह हेमन्तक है, यह वासन्तक है, यह ग्रीष्मक है आदि सभी नाम कालसयोग से निष्पन्न नाम है।

विवेचन—सूत्र में काल के सयोग से निष्पन्न नाम का स्वरूप बताया है। विवक्षाभेद से सुषमसुषम आदि की तरह वर्षा, शरद् आदि ऋतुये भी काल शब्द की वाच्य होती है। अतएव इन सब कालो के आधार मे निष्पन्न होने वाले नाम कालसयोगनिष्पन्न नाम है।

सुषमसुषम आदि कालो का स्वरूप—जैनदर्शन मे अनन्त समय वाले काल की व्यवहार-दृष्टि से अनेक रूपो मे व्याख्या की है। उनमे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी यह काल के दो मुख्य भेद है। ये दोनो भेद भी पुन सुषमसुषम आदि छह भेदो (आरे) के रूप मे विभाजित है। नामकरण के कारण सहित उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. सुषमसुषम—इस काल मे भूमि प्राकृतिक उपसर्गों से रहित होती है। कल्पवृक्षो से परिपूर्ण पर्वत, रत्नो से भरी पृथ्वी, सुन्दर नदिया होती है। वृक्ष फल-फूलो से लदे रहते है। दिन-रात का भेद नही होता है, शीत, उष्ण वेदना का अभाव होता है। मनुष्य युगल (नर-नारी) के रूप मे उत्पन्न होते है। ये अकालमरण से नही मरते और इनको तीन-तीन दिन के अतर से आहार की इच्छा होती है। कल्पवृक्ष के फल आदि का आहार करते है। मनुष्यो की शरीर अवगाहना तीन कोस की होती है। शरीर मे २५६ पसलिया होती है तथा वज्रऋषभनाराचसहनन और समचतुरस्रसस्थान वाले होते है। आयु तीन पल्य की होती है।

सुषमसुषमकाल का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम का है।

सुषम—उक्त प्रकार के प्रथम आरे की समाप्ति होने पर तीन कोडाकोडी सागरोपम का यह दूसरा सुषम आरा प्रारभ होता है। इसमे पूर्व आरे की अपेक्षा वर्ण-गध-रस-स्पर्श की उत्तमता मे अनन्तगुणी हीनता आ जाती है। क्रम से घटती शरीर अवगाहना दो कोस और आयु दो पल्योपम की हो जाती है। शरीर मे पसलिया १२८ रह जाती है। दो दिन के अतर से आहार की इच्छा होती है। पृथ्वी का स्वाद मिश्री के बदले शक्कर जैसा रह जाता है। मृत्यु से पहले युगलिनी

पुत्र-पुत्री के एक युगल को जन्म देती है, जिनका चौसठ दिन तक पालन-पोषण करना पडता है। तत्पश्चात् वे स्वावलबी हो जाते हैं और पति-पत्नी के रूप मे सुखोपभोग करते विचरते हैं। शेष वर्णन प्रथम आरक के समान समझना चाहिये।

सुषमदुषम—दूसरा आरा समाप्त होने पर दो कोडाकोडी सागरोपम का तीसरा आरा प्रारभ होता है। इस आरे मे पूर्व की अपेक्षा वर्ण, गध, रस और स्पर्श की उत्तमता अनन्त गुणहीन हो जाती है। घटते-घटते देहमान एक कोस, एक पल्योपम आयुष्य और शरीर के चौसठ करडक (पसलिया) रह जाते हैं। एक दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है। पृथ्वी का स्वाद गुड जैसा रह जाता है। मृत्यु के छह माह पूर्व युगलिनी पुत्र-पुत्री के जोडे को जन्म देती है। उन्यासी दिन तक पालन-पोषण करने के बाद वह जोडा स्वावलबी हो जाता है। शेष कथन पहले के समान जानना चाहिये। इन तीन आरो के तिर्यच भी युगलिया होते है।

इस आरे के कालमान मे दो विभागो के बीतने पर कालस्वभाव से, कल्पवृक्षों की फलदायिनी शक्ति हीन होते जाने से युगल मनुष्यो मे परस्पर कलह होने लगता है। इस कलह का अत करने के लिये क्रम से पन्द्रह कुलकरो की उत्पत्ति होती है। वे लोकव्यवस्था करते हैं।

कल्पवृक्षो की फलदायिनी शक्ति के क्रमश क्षीण होते जाने पर भी जैसे-तैसे उन्ही के आधार से जीवननिर्वाह होते रहने से असि-मसि आदि के द्वारा आजीविका अर्जित करने की आवश्यकता नही पडती है। इसलिये पहले और दूसरे आरे के समान इस आरे मे अकर्मभूमिक स्थिति बनी रहती है और युगल रूप मे उत्पन्न होने से मनुष्य युगलिया कहलाते है।

इस तीसरे आरे के समाप्त होने मे चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रह जाते है तब (अयोध्या नगरी मे पन्द्रहवे कुलकर के यहाँ) प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। वे लोकव्यवस्था स्थापित करने के लिये असि, मसि आदि द्वारा आजीविका अर्जित करने के उपाय बताते है। पुरुषो को बहत्तर और स्त्रियो को चौसठ कलाये सिखाते हैं। राज्यव्यवस्था करते हैं। फिर राज्यवैभव को छोडकर सयम ग्रहण करते है और केवलज्ञान प्राप्त होने पर तीर्थ की स्थापना करते है।

दुषमसुषम—तीसरा आरा समाप्त होने पर बियालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम का चौथा आरा प्रारभ होता है। इसमे दु ख अधिक और सुख थोडा होता है। पहले की अपेक्षा वर्णादि की, शुभ पुद्गलो की अनन्तगुण हानि हो जाती है। घटते-घटते देहमान पाच सौ धनुष और आयुष्य एक करोड पूर्व का रह जाता है। शरीर मे बत्तीस पसलिया रह जाती हैं। दिन मे एक बार भोजन की इच्छा होती है। छहो सहननो, छहों सस्थानो वाले और पाचो गतियो (ससार की चार गति, एक मुक्ति गति) मे जाने वाले मनुष्य होते हैं। तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव भी इसी आरे मे होते हैं।

दुषम—चौथे आरे के समाप्त होने पर इक्कीस हजार वर्ष कालमान वाला पाचवा आरा प्रारभ होता है। चौथे आरे की अपेक्षा वर्णादि और शुभ पुद्गलो मे अनन्तगुणी हीनता हो जाती है। आयु घटते-घटते १२५ वर्ष की, शरीर-अवगाहना सात हाथ की और शरीर मे पसलिया सोलह रह जाती हैं। दिन मे दो बार आहार करने की इच्छा होती है।

पांचवे आरे मे केवलज्ञान, जिनकल्पी मुनि आदि दस बातो का अभाव हो जाता है। पापाचार की वृद्धि होती जाती है। पाखंडियो की पूजा होती है, धर्म के प्रति रुचि का अभाव बढ़ता जाता है आदि। इन सब कारणों से इस आरे को दुषम कहते हैं।

दुषमदुषम—पाचवे आरे के पूर्ण होने पर इक्कीस हजार वर्ष का यह छठा आरा प्रारभ होता है। इस आरे मे पहले की अपेक्षा वर्ण आदि मे शुभ पुद्गलों की अनन्तगुणी हानि हो जाती है। आयु घटते-घटते बीस वर्ष की और शरीर की ऊँचाई एक हाथ की रह जाती है। शरीर मे आठ पसलिया होती है। अपरिमित आहार की इच्छा होती है। रात्रि मे शीत और दिन मे ताप अत्यन्त प्रबल होता है। मनुष्य बिलो मे रहते हैं। गगा-सिन्धु नदिया साप के समान बाकी गति से बहती हैं। गाड़ी का आधा पहिया डूबे, इतनी उनकी गहराई होती है। मछली आदि जलचर जीव बहुत होते हैं। जिन्हे मनुष्य पकडकर नदी की रेत मे गाड देते हैं और शीत व गरमी के योग से पक जाने पर लूटकर खा जाते है। मृतक मनुष्य की खोपडी मे पानी पीते है। जानवर मरी हुई मछलियो आदि की हड्डिया खाकर जीवनयापन करते है। मनुष्य दीन, हीन, दुर्जन, रुग्ण, अपवित्र, आचार-विचार से हीन होते हैं। धर्म से हीन वे दु ख ही दु ख मे अपनी आयु व्यतीत करते हैं। छह वर्ष की आयु वाली स्त्री सतान का प्रसव करती है।

इन सब कारणो से इस आरे का नाम दुषमदुषम है।

आराओ का यह क्रम अवसर्पिणीकाल की अपेक्षा से है। अवसर्पिणीकाल के समाप्त होने पर उत्सर्पिणीकाल आरभ होता है। वह भी इन्ही छह आरो मे विभक्त है, किन्तु आरा का क्रम विपरीत होता है। अर्थात् उत्सर्पिणी का प्रथम आरा दुषमदुषम है और छठा सुषम-सुषम। इनका स्वरूप पूर्वोक्त ही है।

भावसंयोगनिष्पन्ननाम

२७९. से किं तं भावसजोगे ?

भावसंजोगे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पसत्थे य १ अपसत्थे य २।

[२७९ प्र] भगवन् ! भावसयोगनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२७९ उ] आयुष्मन् ! भावसयोगजनाम के दो प्रकार है। यथा—१ प्रशस्तभावसयोगज, २ अप्रशस्तभावसयोगज।

२८०. से किं त पसत्थे ?

पसत्थे नाणेणं नाणी, दंसणेण दंसणी, चरित्तेणं चरित्ती। से त पसत्थे।

[२८० प्र] भगवन् ! प्रशस्तभावसयोगनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२८० उ] आयुष्मन् ! (ज्ञान, दर्शन आदि प्रशस्त (शुभ) भाव रूप होने से) ज्ञान के सयोग से ज्ञानी, दर्शन के सयोग से दर्शनी, चारित्र के संयोग से चारित्री नाम होना प्रशस्तभावसयोगनिष्पन्न नाम है।

२८१. से किं तं अपसत्थे ?

अपसत्थे कोहेणं कोही, माणेण माणी, मायाए मायी, लोभेणं लोभी। से तं अपसत्थे। से तं भावसंजोगे। से तं संजोगेणं।

[२८१ प्र] भगवन्! अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२८१ उ] आयुष्मन्! (क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अप्रशस्त (अशुभ) भाव हैं। अत इन भावो के सयोग से) जैसे क्रोध के सयोग से क्रोधी, मान के सयोग से मानी, माया के सयोग से मायी और लोभ के सयोग से लोभी नाम होना अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम हैं।

इसी प्रकार मे भावसयोगजनाम का स्वरूप और साथ ही सयोगनिष्पन्न नाम की वक्तव्यता जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे भावसयोगजनाम का प्रशस्त और अप्रशस्त भेद की अपेक्षा वर्णन करके सयोगनाम की वक्तव्यता की समाप्ति का सकेत किया है।

प्रशस्त और अप्रशस्त भाव का आशय—धर्मों को भाव कहते है। यह सभी द्रव्यो में पाये जाते हैं। अजीव द्रव्यो मे तो अपने-अपने स्वभाव का परित्याग न करने के कारण प्रशस्त, अप्रशस्त जैसा कोई भेद नही है। यह भेद मसारस्थ जीवद्रव्य की अपेक्षा से है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि स्वाभाविक गुण शुभ और पवित्रना के हेतु होने से प्रशस्त और क्रोधादि परसयोगज, विकारजनक एव पतन के कारण होने से अप्रशस्त है। इन्ही दोनों दृष्टियो और अपेक्षाओ को ध्यान मे रखकर भावसयोगजनाम के प्रशस्त और अप्रशस्त भेद किये हैं और सुगमता से बोध के लिये क्रमश ज्ञानी, दर्शनी, क्रोधी, लोभी आदि उदाहरणो द्वारा उन्हे बतलाया है।

प्रमाणनिष्पन्ननाम

२८२. से किं तं पमाणेण ?

पमाणेणं चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—णामप्पमाणे १ ठवणप्पमाणे २ दव्वप्पमाणे ३ भावप्पमाणे ४।

[२८२ प्र] भगवन्! प्रमाण से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२८२ उ] आयुष्मन्! प्रमाणनिष्पन्न नाम के चार प्रकार हैं। यथा—१ नामप्रमाण से निष्पन्न नाम, २ स्थापनाप्रमाण से निष्पन्न नाम, ३ द्रव्यप्रमाण से निष्पन्न नाम, ४ भावप्रमाण से निष्पन्न नाम।

विवेचन—इस सूत्र में प्रमाणनिष्पन्न नाम का भेदों द्वारा निरूपण किया गया है।

जिसके द्वारा वस्तु का निर्णय किया जाता है अर्थात् जो वस्तुस्वरूप के सम्यग् निर्णय का कारण हो उसे प्रमाण कहते हैं। इससे निष्पन्न नाम को प्रमाणनिष्पन्ननाम कहते है। ज्ञेय वस्तु नाम आदि चार प्रकारो द्वारा प्रमाण की विषय बनने से प्रमाणनाम के नाम, स्थापना आदि चार प्रकार हो जाते हैं। उनका क्रमानुसार आगे वर्णन किया जा रहा है।

नामप्रमाणनिष्पन्न नाम

२८३. से किं तं नामप्पमाणे ?

नामप्पमाणे जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा पमाणे त्ति णामं कज्जति । से तं णामप्पमाणे ।

[२८३ प्र] भगवन् ! नामप्रमाणनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२८३ उ] आयुष्मन् ! नामप्रमाणनिष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार है—किसी जीव या अजीव का अथवा जीवो या अजीवो का, तदुभय (जीवाजीव) का अथवा तदुभयो (जीवाजीवो) का 'प्रमाण' ऐसा जो नाम रख लिया जाता है, वह नामप्रमाण और उससे निष्पन्न नाम नामप्रमाण-निष्पन्ननाम कहलाता है ।

विवेचन—सूत्र मे नामप्रमाणनिष्पन्ननाम का स्वरूप स्पष्ट किया है ।

वस्तु का परिच्छेद—पृथक्-पृथक् रूप मे वस्तु का बोध कराने का कारण नाम है । लोक-व्यवहार चलाने और प्रत्येक वस्तु की कोई न कोई सज्ञा निर्धारित करने का मुख्य आधार नाम है । इसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि सभी जीव, अजीव पदार्थ इसके वाच्य है । 'प्रमाण' ऐसा नाम केवल नामसज्ञा के कारण ही होता है । इसमे वस्तु के गुण-धर्म आदि की अपेक्षा नही होती ।

स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम

२८४. से किं तं ठवणप्पमाणे ?

ठवणप्पमाणे सत्तविहे पण्णत्ते । त जहा—

णक्खत्त-देवय-कुले पासड-गणे य जीवियाहेउ ।
आभिप्पाउयणामे ठवणानाम तु सत्तविह ।। ८५ ।।

[२८४ प्र] भगवन् ! स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[२८४ उ] आयुष्मन् ! स्थापनाप्रमाण से निष्पन्न नाम सात प्रकार का है । उन प्रकारो के नाम हैं—

१ नक्षत्रनाम, २ देवनाम, ३ कुलनाम, ४. पाषडनाम, ५ गणनाम, ६ जीवितनाम और ७ आभिप्रायिकनाम । ८५

विवेचन—सूत्र मे स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम का वर्णन करने के लिये सात भेदो के नाम गिनाये हैं । इसका कारण यह है कि लोक मे यह वस्तुएँ स्थापना का आधार बनाई जाती हैं ।

स्थापनाप्रमाणनिष्पन्ननाम का लक्षण—नाम की तरह लोकव्यवहार चलाने मे स्थापना का भी प्रमुख स्थान है । यद्यपि प्रयोजन या अभिप्रायवश तदर्थशून्य वस्तु मे तदाकार अथवा अतदाकार रूप मे की जाने वाली स्थापना को स्थापना कहते है, यहाँ उसकी अपेक्षा नही है । किन्तु नक्षत्र, देवता, कुल आदि के आधार से किया जाने वाला नामकरण स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम है ।

अब गाथोक्त क्रम से स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम के सातो भेदो का वर्णन करते है ।

नक्षत्रनाम

२८५. से किं तं नक्खत्तणामे ?

नक्खत्तणामे कत्तियाहिं जाए कत्तिए कत्तिदिण्णे कत्तिधम्मे कत्तिसम्मे कत्तिदेवे कत्तिदासे कत्तिसेणे कत्तिरक्खिए। रोहिणीहिं जाए रोहिणिए रोहिणिदिन्ने रोहिणिधम्मे रोहिणिसम्मे रोहिणिदेवे रोहिणिदासे रोहिणिसेणे रोहिणिरक्खिए। एवं सव्वणक्खत्तेसु नामा भाणियव्वा। एत्थ संगहणिगाहाओ—

कत्तिय १ रोहिणि २ मिगसिर ३ अद्दा ४ य पुणव्वसू ५ य पुस्से ६ य।
तत्तो य अस्सिलेसा ७ मघाओ ८ दो फग्गुणीओ य ९-१० ॥ ८६ ॥
हत्थो ११ चित्ता १२ सादी १३ [य] विसाहा १४ तह य होइ अणुराहा १५।
जेट्ठा १६ मूलो १७ पुव्वासाढा १८ तह उत्तरा १९ चेव ॥ ८७ ॥
अभिई २० सवण २१ धणिट्ठा २२ सतिभिसया २३ दो य होंति भद्दवया २४-२५।
रेवति २६ अस्सिणि २७ भरणी २८ एसा नक्खत्तपरिवाडी ॥ ८८ ॥

से तं नक्खत्तनामे।

[२८५ प्र] भगवन् ! नक्षत्रनाम—नक्षत्र के आधार से स्थापित नाम का—क्या स्वरूप है ?

[२८५ उ] आयुष्मन् ! नक्षत्रनाम का स्वरूप इस प्रकार है—

कृतिका नक्षत्र मे जन्मे (बालक) का कृत्तिक (कार्त्तिक), कृतिकादत्त, कृत्तिकाधर्म, कृत्तिकाशर्म, कृत्तिकादेव, कृत्तिकादास, कृतिकासेन, कृत्तिकारक्षित आदि नाम रखना।

रोहिणी नक्षत्र मे उत्पन्न हुए का रौहिणेय, रोहिणीदत्त, रोहिणीधर्म, रोहिणीशर्म, रोहिणीदेव, रोहिणीदास, रोहिणीसेन, रोहिणीरक्षित नाम रखना।

इसी प्रकार अन्य सब नक्षत्रो मे जन्मे हुओ के उन-उन नक्षत्रो के आधार से रक्खे नामो के विषय मे जानना चाहिये।

नक्षत्रनामो की सग्राहक गाथाये इस प्रकार है—

१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ मृगशिरा, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ अश्लेषा, ८ मघा, ९-१० पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी रूप दो फाल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूला, १८ पूर्वाषाढा, १९ उत्तराषाढा, २० अभिजित, २१ श्रवण, २२. धनिष्ठा, २३ शतभिषू, २४-२५ पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा नामक दो भाद्रपदा, २६ रेवती, २७ अश्विनी, २८ भरिणी, यह नक्षत्रो के नामो की परिपाटी है। ८६, ८७, ८८

इस प्रकार नक्षत्रनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे नक्षत्रनाम का स्वरूप बतलाया है। व्यक्ति की उस-उस नक्षत्र में उत्पत्ति का बोध कराने के साथ लोकव्यवहार चलाने के लिये नक्षत्रो के आधार से नाम रख लिये जाते है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार तो नक्षत्रो के नामो का क्रम अश्विनी, भरणी आदि रूप है, लेकिन अभिजित् नक्षत्र के साथ पढे जाने पर सूत्रोक्त कृत्तिका, रोहिणी आदि क्रमविन्यास ही देखा जाता है।

नक्षत्रनाम की व्याख्या तो उक्त प्रकार है, किन्तु ये कृत्तिका आदि प्रत्येक नक्षत्र अग्नि आदि एक-एक देवता द्वारा अधिष्ठित हैं। इसलिये कभी-कभी नक्षत्र के अधिष्ठायक देवो के नाम पर भी व्यक्ति का नाम रख लिया जाता है। अत अब देवनाम का वर्णन करते है।

देवनाम

२८६. से किं तं देवयणामे ?

देवयणामे अग्गिदेवयाहि जाते अग्गिए अग्गिदिण्णे अग्गिधम्मे अग्गिसम्मे अग्गिदेवे अग्गिदासे अग्गिसेणे अग्गिरक्खिए। एवं पि सव्वनक्खत्तदेवतनामा भाणियव्वा। एत्थं पि य संगहणिगाहाओ, तं जहा—

> **अग्गि १ पयावइ २ सोमे ३ रुद्दे ४ अदिती ५ बहस्सई ६ सप्पे ७।**
> **पिति ८ भग ९ अज्जम १० सविया ११ तट्ठा १२ वायू १३ य इदग्गी १४॥ ८९॥**
> **मित्तो १५ इदो १६ णिरिती १७ आऊ १८ विस्सो १९ य बंभ २० विण्हू य २१।**
> **वसु २० वरुण २३ अय २४ विवद्धी २५ पूसे २६ आसे २७ जमे २८ चेव॥ ९०॥**

से तं देवयणामे।

[२८६ प्र] भगवन् ! देवनाम का क्या स्वरूप है ?

[२८६ उ] आयुष्मन् ! देवनाम का यह स्वरूप है। यथा—अग्नि देवता से अधिष्ठित नक्षत्र मे उत्पन्न हुए (बालक) का आग्निक, अग्निदत्त, अग्निधर्म, अग्निशर्म, अग्निदास, अग्निसेन, अग्निरक्षित आदि नाम रखना। इसी प्रकार से अन्य सभी नक्षत्र-देवताओ के नाम पर स्थापित नामो के लिये भी जानना चाहिये।

देवताओ के नामो की भी सग्राहक गाथाये हैं, यथा—

१ अग्नि, २ प्रजापति, ३ सोम, ४ रुद्र, ५ अदिति, ६ बृहस्पति, ७. सर्प, ८ पिता, ९ भग, १० अर्यमा, ११ सविता, १२ त्वष्टा, १३ वायु, १४ इन्द्राग्नि, १५ मित्र, १६ इन्द्र, १७ निर्ऋति, १८ अम्भ, १९ विश्व, २० ब्रह्मा, २१ विष्णु, २२ वसु, २३ वरुण, २४ अज, २५ विवर्द्धि २६ पूषा, २७ अश्व और २८ यम, यह अट्ठाईस देवताओ के नाम जानना चाहिये। ८९, ९०

यह देवनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे देवनाम का स्वरूप बताया है। जैसे अग्निदेवता से अधिष्ठित कृत्तिका नक्षत्र मे उत्पन्न हुए व्यक्ति के नामस्थापन मे नक्षत्र को गौण मानकर देवनाम की मुख्यता से अग्निदत्त, अग्निसेन आदि नाम रखे जाते हैं, उसी प्रकार प्राजापतिक आदि नामो के लिये प्रजापति आदि देवनामो की मुख्यता समझ लेना चाहिये।

संग्रहणी गाथोक्त क्रम से अग्नि आदि अट्ठाईस देवताओं के नाम क्रमश. कृत्तिका आदि नक्षत्रों के अधिष्ठातृ देवों के हैं।

कुलनाम

२८७. से किं तं कुलनामे ?

कुलनामे उग्गे भोगे राइण्णे खत्तिए इक्खागे णाते कोरव्वे। से तं कुलनामे।

[२८७ प्र] भगवन् ! कुलनाम किसे कहते हैं ?

[२८७ उ] आयुष्मन् ! (जिस नाम का आधार कुल हो, उसे कुलनाम कहते हैं।) जैसे उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य इत्यादि।

यह कुलनाम का स्वरूप है।

विवेचन—पिता के वंश को कुल कहते हैं। कुल के नाम का कारण कोई प्रमुख व्यक्ति या प्रसंग-विशेष होता है। अतएव पितृवंश की परम्परा के आधार से किया जाने वाला नाम कुलनाम कहलाता है। जैसे उग्र कुल में जन्म लेने से उग्र नाम रखा जाना। इसी प्रकार भोग, राजन्य आदि नामों के विषय में जानना चाहिये।

पाषण्डनाम

२८८. से किं तं पासंडनामे ?

पासंडनामे समणए पंडुरंगए भिक्खू कावालियए तावसए परिव्वायगे। से तं पासंडनामे।

[२८८ प्र] भगवन् ! पाषण्डनाम का क्या स्वरूप है ?

[२८८ उ] आयुष्मन् ! श्रमण, पाण्डुराग, भिक्षु, कापालिक, तापस, परिव्राजक यह पाषण्डनाम का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन— सूत्र में उदाहरणों के माध्यम से पाषण्डनाम का स्वरूप बतलाया है।

मत, संप्रदाय, आचार-विचार की पद्धति अथवा व्रत को पाषण्ड कहते हैं। अतएव कारण में कार्य का उपचार करके पाषण्ड (व्रत आदि) के आधार से स्थापित नाम पाषण्डनाम कहलाता है।

पाषण्डनाम के उदाहरणों में निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक, आजीवक के भेद से श्रमण पांच प्रकार के हैं। भस्म से लिप्त शरीर वाले ऐसे शैव—शिव के भक्तों को पाण्डुराग कहते हैं। इसी प्रकार बुद्धदर्शन के अनुयायी भिक्षु, चिता की राख से अपने शरीर को लिप्त रखने वाले श्मशानवासी कापालिक, तपसाधना करने वाले तापस और गृहत्यागी सन्यासी परिव्राजक कहलाते हैं।

गणनाम

२८९. से किं तं गणनामे ?

गणनामे मल्ले मल्लदिन्ने मल्लधम्मे मल्लसम्मे मल्लदेवे मल्लदासे मल्लसेणे मल्लरक्खिए। से तं गणनामे।

[२८९ प्र] भगवन् ! गणनाम का क्या स्वरूप है ?

[२८९ उ] आयुष्मन् ! गण के आधार से स्थापित नाम को गणनाम कहते है। जैसे—मल्ल, मल्लदत्त, मल्लधर्म, मल्लशर्म, मल्लदेव, मल्लदाम, मल्लसेन, मल्लरक्षित आदि गण-स्थापना-निष्पन्ननाम है।

विवेचन—सूत्र मे गणनाम का स्वरूप स्पष्ट किया है। आयुधजीवियो के सघ-समूह को गण कहते हैं। इसमे पारस्परिक सहमति अथवा सम्मति के आधार से राज्यव्यवस्था का निर्णय किया जाता है। अतएव उसके आधार से नामस्थापन गणनाम कहा जाता है।

नौ मल्ली, नौ लिच्छवी इन अठारह राजाओ के राज्यो का एक गणराज्य था। इन के नाम शास्त्रों मे आये है। अत यहाँ उदाहरण के रूप मे मल्ल, मल्लदत्त आदि नामो का उल्लेख किया है।

जीवितहेतुनाम

२९०. से किं तं जीवियाहेउं ?

जीवियाहेउं अवकरए उक्कुरुडए उज्झियए कज्जवए सुप्पए। से त जीवियाहेउ।

[२९० प्र] भगवन् ! जीवितहेतुनाम का क्या स्वरूप है ?

(२९० उ.] आयुष्मन् ! (जिस स्त्री की सतान जन्म लेते ही मर जाती हो उसकी सतान को) दीर्घकाल तक जीवित रखने के निमित्त नाम रखने को जीवितहेतुनाम कहते है। जैसे—अवकरक (कचरा), उत्कुरुटक (उकरडा), उज्झितक (त्यागा हुआ), कचवरक (कूडे-कचरे का ढेर), सूर्पक (सूपडा—अन्न मे से भूसा आदि निकालने का साधन) आदि। ये सब जीवितहेतुनाम है।

विवेचन—सूत्र मे जीवितहेतुनाम का स्वरूप बताया है। सतान के प्रति ममत्वभाव और किसी न किसी प्रकार से सतान जीवित रहे, यह भावना इस नामकरण मे अन्तर्निहित है।

आभिप्रायिकनाम

२९१. से किं त आभिप्पाइयनामे ?

आभिप्पाइयनामे अंबए निंबए बकुलए पलासए सिणए पिलुयए करीरए। से त आभिप्पाइय-नामे। से तं ठवणप्पमाणे।

[२९१ प्र] भगवन् ! आभिप्रायिकनाम का क्या स्वरूप है ?

[२९१ उ.] आयुष्मन् ! (गुण की अपेक्षा रक्खे विना अपने अभिप्राय के अनुसार मनचाहा नाम रख लेना आभिप्रायिक नाम कहलाता है) जैसे— अबक, निम्बक, बकुलक, पलाशक, स्नेहक, पीलुक, करीरक आदि आभिप्रायिक नाम जानना चाहिये।

यह स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम की प्ररूपणा है।

विवेचन—सूत्र मे स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम के अतिम भेद आभिप्रायिक नाम का स्वरूप बतलाया है। आभिप्रायिकनामनिष्पत्ति का आधार अपना अभिप्राय ही है। उदाहरण के रूप मे बताये गये नामों की तरह अन्य नाम स्वयमेव समझ लेना चाहिए।

द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम

२९२. से किं तं दव्वप्पमाणे ?

दव्वप्पमाणे छव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—धम्मत्थिकाए जाव अद्धासमए । से तं दव्वप्पमाणे ।

[२९२ प्र.] भगवन् ! द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम का क्या स्वरूप है ?

[२९२ उ.] आयुष्मन् ! द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम छह प्रकार का है। यथा—धर्मास्तिकाय यावत् अद्धासमय।

यह द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम का स्वरूप है।

विवेचन—धर्मास्तिकाय आदि षट् द्रव्यों के नाम द्रव्यविषयक होने से अथवा द्रव्यों के सिवाय अन्य के नहीं होने से द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम है।

अनादिसिद्धान्तनाम में भी इन्हीं छह द्रव्यों के नामों का उल्लेख किया है किन्तु वस्तु अनन्तधर्मात्मक है, अतः विवक्षाभेद के कारण दोष नहीं समझना चाहिए।

भावप्रमाणनिष्पन्ननाम

२९३. से किं तं भावप्पमाणे ?

भावप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—सामासिए १ तद्धितए २ धातुए ३ निरुत्तिए ४ ।

[२९३ प्र.] भगवन् ! भावप्रमाण किसे कहते हैं ?

[२९३ उ.] आयुष्मन् ! भावप्रमाण १ सामासिक २ तद्धितज ३ धातुज और ४ निरुक्तिज के भेद से चार प्रकार का है।

विवेचन—भावप्रमाणनिष्पन्ननाम की प्ररूपणा प्रारंभ करने के लिये सूत्र में उसके चार भेदों के नाम गिनाये हैं।

भाव अर्थात् वस्तुगत गुण। अतएव भाव एव प्रमाण—भाव ही प्रमाण है—इस व्युत्पत्ति के अनुसार भाव रूप प्रमाण को भावप्रमाण कहते हैं और उसके द्वारा निष्पन्न नाम भावप्रमाणनिष्पन्न-नाम कहलाता है। वह सामासिक आदि के भेद से चार प्रकार का है। आगे क्रम से उनका वर्णन करते हैं।

सामासिकभावप्रमाणनिष्पन्ननाम

२९४. से किं तं सामासिए ?

सामासिए सत्त समासा भवंति । तं जहा—

दंदे १ य बहुव्वीही २ कम्मधारए ३ दिग्गु ४ य ।
तप्पुरिस ५ अव्वईभावे ६ एक्कसेसे ७ य सत्तमे ॥ ९१ ॥

[२९४ प्र.] भगवन् ! सामासिकभावप्रमाण किसे कहते हैं ?

[२९४ उ] आयुष्मन् ! सामासिकनामनिष्पन्नता के हेतुभूत समास सात है। वे इस प्रकार—

१ द्वन्द्व, २ बहुव्रीहि, ३ कर्मधारय, ४ द्विगु, ५ तत्पुरुष, ५ अव्ययीभाव और ७ एकशेष। ९१

विवेचन—सूत्र मे सामासिक नाम की प्ररूपणा के लिये सात समासो के नाम बताये है। दो या दो से अधिक पदो मे विभक्ति आदि का लोप करके उन्हे सक्षिप्त करना—इकट्ठा करना समास कहलाता है।

समासयुक्त शब्द जिन शब्दो के मेल से बनता है, उन्हे खड कहते है। जिन शब्दो मे समास होता है उनका बल एकसा नही होता, किन्तु उनमे से किसी का अर्थ मुख्य हो जाता है और शेष शब्द उस अर्थ को पुष्ट करते है। अपेक्षाभेद से समास के द्वन्द्व आदि सात भेद है।

द्वन्द्वसमास

२९५. से किं तं दंदे समासे ?

दंदे समासे दन्ताश्च ओष्ठौ च दन्तोष्ठम्, स्तनौ च उदर च स्तनोदरम्, वस्त्र च पात्र च वस्त्रपात्रम्, अश्वश्च महिषश्च अश्वमहिषम्, अहिश्च नकुलश्च अहिनकुलम्। से त दंदे समासे।

[२९५ प्र] भगवन् ! द्वन्द्वसमास का क्या स्वरूप है ?

[२९५ उ] आयुष्मन् ! 'दताश्च ओष्ठौ च इति दतोष्ठम्,' 'स्तनौ च उदर च इति स्तनोदरम्,' 'वस्त्र च पात्र च वस्त्रपात्रम्,' 'अश्वश्च महिषश्च इति अश्वमहिषम्', 'अहिश्च नकुलश्च इति अहिनकुलम्', ये सभी शब्द द्वन्द्वसमास रूप है।

विवेचन—सूत्र मे उदाहरणो के द्वारा द्वन्द्वसमास का आशय स्पष्ट किया है। तत्सबन्धी विशेष वक्तव्य इस प्रकार है—

जिस समास मे सभी पद समान रूप मे प्रधान होते है तथा जिनके बीच के 'और' अथवा 'च' शब्द का लोप हो जाता है, किन्तु विग्रह करने पर सबन्ध के लिये पुन 'च' अथवा 'और' शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसे द्वन्द्वसमास कहते है।

द्वन्द्वसमास के शब्दो से यदि एक मिश्रित वस्तु का बोध होता है तो वे एकवचन मे प्रयुक्त होते हैं। यथा—मैने दाल-रोटी खा ली है, उनमे ऊच-नीच नही है। किन्तु जिन शब्दो से मिश्रित वस्तु का बोध नही होता, वे बहुवचन मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे सीता-राम वन को गये।

यह समास समाहार द्वन्द्व और इतरेतर द्वन्द्व के भेद से दो प्रकार का है। समाहार द्वन्द्व मे प्रत्येक पद की प्रधानता नही होती, प्रत्युत सामूहिक अर्थ का बोध होता है। इसमे सदा नपुसकलिंग तथा किसी एक विभक्ति का एकवचन ही रहता है।

सूत्रोक्त उदाहरणो मे से 'दन्तोष्ठम्' और 'स्तनोदरम्' मे प्राणी के अग होने से एकवद्भाव हुआ है। 'वस्त्रपात्रम्' मे अप्राणी जाति होने से तथा 'अश्वमहिषम्' और 'अहिनकुलम्' पदो मे शाश्वत विरोध होने के कारण एकवचन का प्रयोग हुआ जानना चाहिये।

माता और पिता—मातापिता, पुण्य और पाप—पुण्यपाप इत्यादि शब्द हिन्दी भाषा सबन्धी द्वन्द्वसमास के उदाहरण है।

बहुव्रीहिसमास

२९६. से किं तं बहुव्वीहीसमासे ?

बहुव्वीहिसमासे फुल्ला जम्मि गिरिम्मि कुडय-कलंबा सो इमो गिरी फुल्लियकुडय-कलंबो। से तं बहुव्वीहीसमासे।

[२९६ प्र] भगवन्! बहुव्रीहिसमास किसे कहते है?

[२९६ उ] आयुष्मन्! बहुव्रीहिसमास का लक्षण यह है—इस पर्वत पर पुष्पित (प्रफुल्लित) कुटज और कदब वृक्ष होने से यह पर्वत फुल्लकुटजकदब है। यहाँ 'फुल्लकुटजकदब' पद बहुव्रीहिसमास है।

विवेचन—बहुव्रीहिसमास—समासगत पद जब अपने से भिन्न किसी अन्य पदार्थ का बोध कराये अर्थात् जिस समास मे अन्यपद प्रधान हो, उसे बहुव्रीहिसमास कहते है। बहुव्रीहिसमास मे शब्द के दोनों ही पद गौण होते है। जो सूत्रोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कुटज और कदब शब्द प्रधान नही हैं, किन्तु इनसे युक्त पर्वत रूप अन्य पद प्रधान है।

बहुव्रीहिसमास मे अन्तिम पद मे विभक्ति का लोप नही भी होता है। विभक्ति का लोप प्रथम पद मे और यदि दो से अधिक पदो का समास हो तो अन्तिम पद के अतिरिक्त अन्य पदो मे होता है।

कर्मधारयसमास

२९७. से किं तं कम्मधारयसमास ?

कम्मधारयसमासे धवलो वसहो धवलवसहो, किण्हो मिगो किण्हमिगो, सेतो पटो सेतपटो, रत्तो पटो रत्तपटो। से त कम्मधारयसमासे।

[२९७ प्र] भगवन्! कर्मधारयसमास का क्या स्वरूप है?

[२९७ उ] आयुष्मन्! 'धवलो वृषभ धवलवृषभ', 'कृष्णो मृग कृष्णमृग', 'श्वेत पट श्वेतपट' 'रक्त पट रक्तपट' यह कर्मधारयसमास है।

विवेचन—सूत्र मे उदाहरणो द्वारा कर्मधारयसमास की व्याख्या की है। जिसका आशय यह है—

जिसमे उपमान-उपमेय, विशेषण-विशेष्य का सम्बन्ध होता है वह कर्मधारयसमास है अथवा समान अधिकरण वाला तत्पुरुषसमास ही कर्मधारयसमास कहलाता है। यदि विशेषण प्रथम हो तो विशेषणपूर्वपदकर्मधारय, उपमान प्रथम हो तो उपमानपूर्वपदकर्मधारय, उपमान बाद मे हो तो उपमानोत्तरपदकर्मधारय कहलाता है। सूत्र मे जितने भी उदाहरण दिये है वे सब विशेषणपूर्वपद-कर्मधारय के है। उपमानपूर्वपद के उदाहरण 'घन इव श्याम घनश्याम' और उपमानोत्तर के उदाहरण पुरुषसिंह जैसे शब्द जानना चाहिये।

द्विगुसमास

२९८. से किं तं दिगुसमासे ?

दिगुसमासे तिण्णि कडुगा तिकडुगं, तिण्णि महुराणि तिमहुरं, तिण्णि गुणा तिगुणं, तिण्णि पुरा तिपुरं, तिण्णि सरा तिसरं, तिण्णि पुक्खरा तिपुक्खरं, तिण्णि बिंदुया तिबिंदुयं, तिण्णि पहा तिपहं, पंच नदीओ पंचणदं, सत्त गया सत्तगयं, नव तुरगा नवतुरगं, दस गामा दसगामं, दस पुरा दसपुरं। से तं दिगुसमासे।

[२९८ प्र] भगवन् ! द्विगुसमास किसे कहते है ?

[२९८ उ] आयुष्मन् ! द्विगुसमास का रूप इस प्रकार का है—तीन कटुक वस्तुओ का समूह—त्रिकटुक, तीन मधुरो का समूह—त्रिमधुर, तीन गुणो का समूह—त्रिगुण, तीन पुरो—नगरो का समूह—त्रिपुर, तीन स्वरो का समूह—त्रिस्वर, तीन पुष्करो—कमलो का समूह—त्रिपुष्कर, तीन बिन्दुओ का समूह—त्रिबिन्दु, तीन पथ—रास्तो का समूह—त्रिपथ, पाच नदियो का समूह—पचनद, सात गजो का समूह—सप्तगज, नौ तुरगो—अश्वो का समूह—नवतुरग, दस ग्रामो का समूह—दसग्राम, दस पुरो का समूह—दसपुर, यह द्विगुसमास है।

विवेचन—सूत्र मे द्विगुसमास के उदाहरण दिये है। जिनसे यह आशय फलित होता है—

जिस समास मे प्रथम पद सख्यावाचक हो और जिससे समाहार—समूह का बोध होता हो, उसे द्विगुसमास कहते है। इसमे दूसरा पद प्रधान होता है, जिससे बहुधा यह जाना जाता है कि इतनी वस्तुओ का समाहार हुआ है। सूत्रोक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट है।

द्विगुसमास की यह विशेषता है कि इसमे नपुसकलिग और एकवचन ही आता है, जैसे त्रिकटुकम्।

कर्मधारयसमास मे पहला पद सामान्य विशेषण रूप और द्विगुसमास मे पहला पद सख्यावाचक विशेषण होता है। इसलिये ये दोनो समास पृथक्-पृथक् कहे गए है।

तत्पुरुषसमास

२९९. से किं तं तप्पुरिसे समासे ?

तप्पुरिसे समासे तित्थे कागो तित्थकागो, वणे हत्थी वणहत्थी, वणे वराहो वणवराहो, वणे महिसो वणमहिसो, वणे मयूरो वणमयूरो। से तं तप्पुरिसे समासे।

[२९९ प्र] भगवन् ! तत्पुरुषसमास का क्या स्वरूप है ?

[२९९ उ] आयुष्मन् ! तत्पुरुषसमास का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—तीर्थ मे काक (कौआ) तीर्थकाक, वन मे हस्ती वनहस्ती, वन मे वराह वनवराह, वन में महिष वनमहिष, वन मे मयूर वनमयूर। यह तत्पुरुषसमास है।

विवेचन—उदाहरणो के द्वारा तत्पुरुषसमास का स्वरूप बताया है। जिसका फलितार्थ यह है—

इसमें अन्तिम पद प्रधान होता है और प्रथम पद प्रथमा विभक्ति से भिन्न किसी दूसरी विभक्ति का होता है। इसके प्रथम पद मे द्वितीया से लेकर सप्तमी पर्यन्त छह विभक्तियो के रहने के कारण इसके छह भेद होते है।

सूत्रोक्त उदाहरण सप्तमीविभक्तिपरक है।

तत्पुरुषसमास के और भी उपभेद है, जिनमे नञ्, अलुक् और उपपद प्रधान है। नञ् तत्पुरुष मे अभाव, निषेध अर्थसूचक अ, अन्, न उपसर्ग शब्द के पूर्व मे लगाकर समस्त पद बनाया जाता है। जैसे अनाथ, अनन्त, असत्य। इसमें व्यजन से पहले अ और स्वर से पहले अन् लगता है। अलुक् समास मे पूर्वपद की विभक्ति का लोप नही होता है। जैसे अन्तेवासी, खेचर आदि। उपपदसमास मे दूसरा पद ऐसा कृदन्त होता है कि असबद्ध रहने पर जिसका कोई प्रयोग या उपयोग नही होता। जैसे—कुभ-कार, चर्म-कार इत्यादि।

अव्ययीभावसमास

३००. से किं त अव्वईभावे समासे ?

अव्वईभावे समासे अणुगाम अणुणदीय अणुफरिह अणुचरिय। से तं अव्वईभावे समासे।

[३०० प्र] भगवन्! अव्ययीभावसमास का स्वरूप क्या है?

[३०० उ] आयुष्मन्! अव्ययीभावसमास इस प्रकार जानना चाहिये—ग्राम के समीप—'अनुग्राम', नदी के समीप—'अनुनदिकम्', इसी प्रकार अनुस्पर्शम्, अनुचरितम् आदि अव्ययीभावसमास के उदाहरण है।

विवेचन—अव्ययीभावसमास मे पूर्व पद अव्यय रूप और उत्तर पद नाम होता है तथा अन्त मे सदा नपुसकलिंग और प्रथमा विभक्ति का एकवचन रहता है। यह उदाहरणो से स्पष्ट है।

एकशेषसमास

३०१. से किं त एगसेसे समासे ?

एगसेसे समासे जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो, जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो, जहा एगो साली तहा बहवे सालिणो जहा बहवे सालिणो तहा एगो साली। से तं एगसेसे समासे। से तं सामासिए।

[३०१ प्र] भगवन्! एकशेषसमास किसे कहते है?

[३०१ उ] आयुष्मन्! जिसमे एक शेष रहे, वह एकशेषसमास है। वह इस प्रकार—जैसा एक पुरुष वैसे अनेक पुरुष और जैसे अनेक पुरुष वैसा एक पुरुष, जैसा एक कार्षापण (स्वर्णमुद्रा) वैसे अनेक कार्षापण और जैसे अनेक कार्षापण वैसा एक कार्षापण, जैसे एक शालि वैसे अनेक शालि और जैसे अनेक शालि वैसा एक शालि इत्यादि एकशेषसमास के उदाहरण है।

इस प्रकार से सामासिकभावप्रमाणनाम का आशय जानना चाहिये।

विवेचन—एकशेषसमास विषयक स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

समान रूप वाले दो या दो से अधिक पदो के समास मे एक पद शेष रहे और दूसरे पदों का लोप हो जाये तो उसे एकशेषसमास कहते हैं। इसमे 'स्वरूपाणामेकशेषएकविभक्तौ' इस सूत्र के अनुसार एक ही पद शेष रहता है और जो एक पद शेष रहता है वह भी द्विवचन मे द्वित्व का और बहुवचन मे बहुत्व का वाचक होता है। जैसे—'पुरुषश्च पुरुषश्च पुरुषौ', 'पुरुषश्च पुरुषश्च पुरुषश्च पुरुषा'।

समानार्थक विरूप पदो मे भी एकशेषसमास होता है। जैसे वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्चेति वक्रदण्डौ अथवा कुटिलदण्डौ।

एक व्यक्ति की विवक्षा मे 'एक पुरुष' और बहुत व्यक्तियो की विवक्षा होने पर 'बहव पुरुषा' प्रयोग होता है। इस बहुवचन की विवक्षा मे एक ही 'पुरुष' पद अवशिष्ट रहता है और शेष पद लुप्त हो जाते है।

बहुत व्यक्तियो की विवक्षा मे पुरुषा ऐसा बहुवचनात्मक प्रयोग होता है, किन्तु जाति की विवक्षा मे एकवचन रूप एक पुरुष प्रयोग होता है। क्योंकि जाति के एक होने से बहुवचन का प्रयोग नही होता है। इसी प्रकार एक कर्षापण, बहव कार्षापणा आदि पदो मे भी जानना चाहिये।

यह एकशेषसमास का आशय है।

मुख्य समासभेदों के बोधक सूत्र—व्याकरणशास्त्र के अनुसार सक्षेप मे इस प्रकार है—प्राय पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव, उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष, अन्यपदार्थप्रधान बहुव्रीहि, उभयपदार्थ-प्रधान द्वन्द्व और सख्याप्रधान द्विगु समास होता है। कर्मधारय तत्पुरुष का और द्विगु कर्मधारय समास का भेद है।

अब भावप्रमाण के दूसरे भेद तद्धितज नाम की प्ररूपणा करते है।

तद्धितजभावप्रमाणनाम

३०२. से किं तं तद्धियए ?

तद्धियए--

> **कम्मे १ सिप्प २ सिलोए ३ सजोग ४ समीवओ ५ य संजूहे ६।**
> **इस्सरिया ७ ऽवच्चेण ८ य तद्धितणाम तु अट्ठविह ॥ ९२ ॥**

[३०२ प्र] भगवन्! तद्धित से निष्पन्न नाम का क्या स्वरूप है ?

[३०२ उ] आयुष्मन्! १ कर्म, २ शिल्प, ३ श्लोक, ४ सयोग, ५ समीप, ६ सयूथ, ७ ऐश्वर्य, ८ अपत्य, इस प्रकार तद्धितनिष्पन्ननाम आठ प्रकार का है। ९२

विवेचन—गाथोक्त क्रमानुसार अब तद्धितज नामो का आशय स्पष्ट करते है।

कर्मनाम

३०३. से किं त कम्मणामे ?

कम्मणामे दोस्सिए सोत्तिए कप्पासिए सुत्तवेतालिए भंडवेतालिए कोलालिए। से तं कम्मनामे।

[३०३ प्र.] भगवन् ! कर्मनाम का क्या स्वरूप है ?

[३०३ उ.] आयुष्मन् ! दौष्यिक, सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैचारिक, भाडवैचारिक, कौलालिक, ये सब कर्मनिमित्तज नाम है।

विवेचन—सूत्र मे कर्म तद्धितज नाम के उदाहरण दिये है। कर्म शब्द का प्रयोग यहाँ पण्य—बेचने योग्य पदार्थ अर्थ मे हुआ है। यथा—दूष्य पण्यमस्येति दौष्यिक—वस्त्र को बेचने वाला। इसी प्रकार सूत बेचने वाला सौत्रिक आदि का आशय जानना चाहिये। ये दौष्यिक आदि शब्द 'तदस्य पण्य' सूत्र से ठक् प्रत्यय होकर 'ठस्येक' ठ के स्थान पर इक् और आदि मे वृद्धि होने से बने हैं।

पाठभेद—प्रस्तुत सूत्र मे किन्ही-किन्ही प्रतियो मे पाठभेद भी पाया जाता है, जो इस प्रकार है—

'तणहारए कट्ठहारए पत्तहारए दोसिए सोत्तिए कप्पासिए भडवेआलिए कोलालिए ।'

विशिष्ट शब्दों का अर्थ—दोस्सिए—दौष्यिक—वस्त्र का व्यापारी, **सोत्तिए**—सौत्रिक—सूत का व्यापारी, **कप्पासिए**—कार्पासिक—कपास का व्यवसायी, **सुत्तवेतालिए**—सूत्रवैचारिक—सूत बेचने वाला, **भंडवेतालिए**—भाडवैचारिक—बर्तन बेचने वाला, **कोलालिए**—कौलालिक—मिट्टी के पात्र बेचने वाला।

शिल्पनाम

३०४. से किं त सिप्पनामे ?

सिप्पनामे तुण्णिए तंतुवाइए पट्टकारिए उव्वट्टिए वरुंटिए मुंजकारिए कट्ठकारिए छत्तकारिए बज्झकारिए पोत्थकारिए चित्तकारिए दंतकारिए लेप्पकारिए सेलकारिए कोट्टिमकारिए। से तं सिप्पनामे।

[३०४ प्र.] भगवन् ! शिल्पनाम का क्या स्वरूप है ?

[३०४ उ.] आयुष्मन् ! तौन्निक तान्तुवायिक, पाट्टकारिक, औद्वृत्तिक वारुटिक मौञ्जकारिक, काष्ठकारिक छात्रकारिक वाह्यकारिक पौस्तकारिक चैत्रकारिक दान्तकारिक लैप्यकारिक शैलकारिक कौट्टिमकारिक। यह शिल्पनाम है।

विवेचन—सूत्र मे शिल्प-कला के आधार से स्थापित कुछ नामो का सकेत किया है। इसमे 'शिल्पम्' सूत्र से तद्धित प्रत्यय ठक् हुआ है और ठक् को इक् आदि होने का विधान पूर्ववत् जानना चाहिये।

सूत्रगत कतिपय शब्दों के अर्थ—तुण्णिए—तौन्निक—रफू करने वाला शिल्पी, **तंतुवाए**—तान्तुवायिक—जुलाहा, **पट्टकारिए**—पट्ट बनाने वाला शिल्पी, **उव्वट्टिए**—औद्वृत्तिक—पीठी आदि से शरीर के मैल को दूर करने वाला शिल्पी नाई, **वरुंटिए**—वारुटिक—एक शिल्प विशेष जीवी, **मुंजकारिए**—मौञ्जकारिक—मूंज की रस्सी बनाने वाला शिल्पी, **कट्ठकारिए**—काष्ठकारिक—बढई, **छत्तकारिए**—छात्रकारिक—छाता बनाने वाला शिल्पी, **बज्झकारिए**—वाह्यकारिक—रथ आदि बनाने वाला शिल्पी, **पोत्थकारिए**—पौस्तकारिक—जिल्दसाज, **चित्तकारिए**—चैत्रकारिक—

चित्र बनाने वाला शिल्पी, **दंतकारिए**—दान्तकारिक—दांत बनाने वाला शिल्पी, **लेप्पकारिए**—लेप्यकारिक—मकान बनाने वाला शिल्पी, **सेलकारिए**—शैलकारिक—पत्थर घडने वाला शिल्पी, **कोट्टिमकारिए**—कौट्टिमकारिक—खान खोदने वाला शिल्पी।

श्लोकनाम

३०५. से किं तं सिलोयनामे ?

सिलोयनामे समणे माहणे सव्वातिही। से तं सिलोयनामे।

[३०५ प्र] भगवन् ! श्लोकनाम किसे कहते हैं ?

[३०५ उ] आयुष्मन् ! सभी के अतिथि श्रमण, ब्राह्मण श्लोकनाम के उदाहरण है।

विवेचन—सूत्र मे उदाहरण द्वारा श्लोकनाम की व्याख्या की है। जिसका आशय यह है—

श्लोक अर्थात् यश के अर्थ मे तद्धित प्रत्यय होने पर निष्पन्न होने वाला नाम श्लोकनाम है। उदाहरण रूप श्रमण और ब्राह्मण शब्दो मे 'अर्शादिभ्योऽच' सूत्र द्वारा प्रशस्तार्थ मे मत्वर्थीय 'अच्' प्रत्यय हुआ है और तपश्चर्यादि श्रम से युक्त होने से श्रमण और ब्रह्म (आत्मा) के आराधक होने से ब्राह्मण प्रशस्त—सभी के अतिथि—सम्माननीय माने जाने से श्लोकनाम के उदाहरण है।

संयोगनाम

३०६. से किं तं संजोगनामे ?

संजोगनामे रण्णो ससुरए, रण्णो सालए, रण्णो सड्डुए, रण्णो जामाउए, रण्णो भगिणीवती। से तं संजोगनामे।

[३०६ प्र] भगवन् ! संयोगनाम किसे कहते हैं ?

[३०६ उ] आयुष्मन् ! संयोगनाम का रूप इस प्रकार समझना चाहिये—राजा का ससुर—राजकीय ससुर, राजा का साला—राजकीय साला, राजा का साढू—राजकीय साढू, राजा का जमाई—राजकीय जमाई (जामाता), राजा का बहनोई—राजकीय बहनोई इत्यादि संयोगनाम हैं।

विवेचन—सूत्र मे संबन्धार्थ मे तद्धित प्रत्यय लगाने से निष्पन्न-संयोगनामो का उल्लेख है।

सूत्र मे तो 'रण्णो ससुरए' इत्यादि विग्रह मात्र दिखलाया है। जिनका अर्थ यह हुआ—राज्ञ श्रय—राजकीय श्वसुर इत्यादि। इन प्रयोगो मे 'राज्ञ कच्' इस सूत्र से राजन् शब्द मे 'छ' प्रत्यय होकर 'छ' को 'इय्' प्रत्यय हुआ है। इसलिये ये और इसी प्रकार के अन्य नाम संयोगनिष्पन्न तद्धितज नाम जानना चाहिये।

समीपनाम

३०७. से किं तं समीवनामे ?

समीवनामे गिरिस्स समीवे णगरं गिरिणगरं, विदिसाए समीवे णगरं वेदिसं, वेन्नाए समीवे णगरं वेन्नायडं, तगराए समीवे णगरं तगरायडं । से तं समीवनामे ।

[३०७ प्र] भगवन् ! समीपनाम किसे कहते हैं ?

[३०७ उ] आयुष्मन् ! समीप अर्थक तद्धित प्रत्यय-निष्पन्ननाम—गिरि के समीप का नगर गिरिनगर, विदिशा के समीप का नगर वैदिश, वेन्ना के समीप का नगर वेन्नातट (वैन्न), तगरा के समीप का नगर तगरातट (तागर) आदि रूप जानना चाहिये ।

विवेचन—सूत्रोक्त नाम समीप-निकट-पास अर्थ मे तद्धित 'अण्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होने के कारण समीपार्थबोधक तद्धितज नाम है ।

संयूथनाम

३०८. से किं तं संजूहनामे ?

संजूहनामे तरंगवतिक्कारे मलयवतिकारे अत्ताणुसट्ठिकारे बिंदुकारे । से तं संजूहनामे ।

[३०८ प्र] भगवन् ! संयूथनाम किसे कहते है ?

[३०८ उ] आयुष्मन् ! तरंगवतीकार, मलयवतीकार, आत्मानुषष्ठिकार, बिन्दुकार आदि नाम संयूथनाम के उदाहरण है ।

विवेचन—सूत्र मे संयूथनाम का स्वरूप बतलाने के उदाहरणो का उल्लेख किया है । जिसका आशय इस प्रकार है—

ग्रंथरचना को संयूथ कहते है । यह ग्रंथरचना रूप संयूथ जिस तद्धित प्रत्यय से सूचित किया जाता है, वह संयूथार्थ तद्धित प्रत्यय से निष्पन्ननाम संयूथनाम कहलाता है ।

मूल मे तरंगवतीकार, मलयवतीकार जो निर्देश किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि तरंगवती नामक कथा ग्रन्थ का करनेवाला (लेखक) तरंगवतीकार, मलयवती ग्रंथ का कर्ता मलयवतीकार कहलाता है । इसी प्रकार आत्मानुषष्ठि, बिन्दुक आदि ग्रन्थो के लिये भी समझ लेना चाहिये ।

ऐश्वर्यनाम

३०९. से किं तं ईसरियनामे ?

ईसरियनामे राईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेट्ठी सत्थवाहे सेणावई । से तं ईसरियनामे ।

[३०९ प्र.] भगवन् ! ऐश्वर्यनाम का क्या रूप है ?

[३०९ उ.] आयुष्मन् ! ऐश्वर्य द्योतक शब्दों से तद्धित प्रत्यय करने पर निष्पन्न ऐश्वर्यनाम

राजेश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह, सेनापति आदि रूप हैं। यह ऐश्वर्यनाम का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे उल्लिखित ऐश्वर्यद्योतक नाम स्वार्थ मे 'कष्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुए हैं। इसीलिये ये सभी नाम ऐश्वर्यबोधक तद्धितज नाम माने गये हैं।

अपत्यनाम

३१०. से किं तं अवच्चनामे ?

अवच्चनामे तित्थयरमाया चक्कवट्टिमाया बलदेवमाया वासुदेवमाया रायमाया गणिमाया वायगमाया। से तं अवच्चनामे। से त तद्धिते।

[३१० प्र.] भगवन् ! अपत्यनाम किसे कहते है ?

[३१० उ.] आयुष्मन् ! अपत्य—पुत्र से विशेषित होने अर्थ मे तद्धित प्रत्यय लगाने से निष्पन्ननाम इस प्रकार हैं—तीर्थंकरमाता, चक्रवर्तीमाता, बलदेवमाता, वासुदेवमाता, राजमाता, गणिमाता, वाचकमाता आदि ये सब अपत्यनाम है।

इस प्रकार से तद्धितप्रत्यय से जन्य नाम की वक्तव्यता है।

विवेचन—सूत्रोक्त तीर्थंकरमाता आदि नाम अपत्यार्थबोधक तद्धितप्रत्ययनिष्पन्न है।

तित्थयरमाया अर्थात् तीर्थकरोऽपत्यं यस्या सा तीर्थकरमाता—तीर्थंकर जिनका पुत्र है, वह तीर्थंकरमाता, यहाँ तीर्थंकर रूप सुप्रसिद्ध से अप्रसिद्ध माता को विशेषित किया गया है अर्थात् तीर्थंकरादि के कारण माता विशेषित—समानार्ह हुई है। इसी प्रकार चक्रवर्तीमाता आदि नामो का अर्थ समझ लेना चाहिये।

उपर्युक्त तद्धितप्रत्ययनिष्पन्ननाम की व्याख्या है। अब धातुज नाम का स्वरूप बतलाते है।

धातुजनाम

३११. से किं तं धाउए ?

धाउए भू सत्तायां परस्मैभाषा, एध वृद्धौ, स्पर्द्ध संहर्षे, गाधृ प्रतिष्ठा-लिप्सयोर्ग्रन्थे च, बाधृ लोडने। से तं धाउए।

[३११ प्र] भगवन् ! धातुजनाम का क्या स्वरूप है ?

[३११ उ] आयुष्मन् ! परस्मैपदी सत्तार्थक भू धातु, वृद्धयर्थक एध् धातु, संघर्षार्थक स्पर्द्ध धातु, प्रतिष्ठा, लिप्सा या सचय अर्थक गाधृ और विलोडनार्थक बाधृ धातु आदि से निष्पन्न भव, एधमान आदि नाम धातुजनाम हैं।

विवेचन—सूत्र मे धातुजनाम का वर्णन किया है कि जो नाम धातु से निष्पन्न होते है वे धातुज-नाम हैं।

निरुक्तिजनाम

३१२. से किं तं निरुत्तिए ?

निरुत्तिए मह्यां शेते महिषः, भ्रमति च रौति च भ्रमरः, मुहुर्मुहुर्लसति मुसलं, कपिरिव लम्बते त्थच्च करोति कपित्थ, चिविति करोति खल्लं च भवति चिक्खल्लं, ऊर्ध्वकर्णः उलूकः, मेखस्य माला मेखला। से तं निरुत्तिए। से तं भावप्पमाणे। से तं पमाणनामे। से तं दसनामे। से तं नामे।

॥ नामे त्ति पयं सम्मत्तं ॥

[३१२ प्र] भगवन्! निरुक्तिजनाम का क्या आशय है?

[३१२ उ] आयुष्मन्! (निरुक्ति से निष्पन्ननाम निरुक्तिजनाम हैं।) जैसे—मह्या शेते महिष—पृथ्वी पर जो शयन करे वह महिष—भैंसा, भ्रमति रौति इति भ्रमर—भ्रमण करते हुए जो शब्द करे वह भ्रमर, मुहुर्मुहुर्लसति इति मुसल—जो बारबार ऊचा-नीचा हो वह मूसल, कपिरिव लम्बते त्थच्च (चेष्टा) करोति इति कपित्थ—कपि—बदर के समान वृक्ष की शाखा पर चेष्टा करता है वह कपित्थ, चिदिति करोति खल्ल च भवति इति चिक्खल्ल—पैरो के साथ जो चिपके वह चिक्खल (कीचड), ऊर्ध्वकर्ण इति उलूक—जिसके कान ऊपर उठे हो वह उलूक (उल्लू), मेखस्य माला मेखला—मेघों की माला मेखला इत्यादि निरुक्तिजतद्धितनाम है।

यह समग्र भावप्रमाणनाम का कथन है। इस प्रकार से प्रमाणनाम, दस नाम और नामाधिकार की वक्तव्यता समाप्त हुई।

विवेचन—सूत्र मे निरुक्तिजनाम की उदाहरण द्वारा व्याख्या करके भावप्रमाण आदि नामाधिकार की समाप्ति का सूचन किया है।

क्रिया, कारक, भेद और पर्यायवाची शब्दो द्वारा शब्दार्थ के कथन करने को निरुक्ति कहते है। इस निरुक्ति से निष्पन्न नाम निरुक्तिजनाम कहलाता है। उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत महिष आदि नाम पृषोदरादिगण से सिद्ध है। सूत्रोक्त से त भावप्पमाणे आदि पद उपसहारार्थक हैं।

अब उपक्रम के तीसरे भेद प्रमाणाधिकार का वर्णन करते हैं।

प्रमाण के भेद

३१३. से किं तं पमाणे ?

पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—दव्वप्पमाणे १ खेत्तप्पमाणे २ कालप्पमाणे ३ भावप्पमाणे ४।

[३१३ प्र.] भगवन्! प्रमाण का स्वरूप क्या है?

[३१३ उ.] आयुष्मन्! प्रमाण चार प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। वे चार प्रकार ये हैं—१. द्रव्यप्रमाण, २. क्षेत्रप्रमाण, ३ कालप्रमाण और ४. भावप्रमाण।

विवेचन—प्रमाण शब्द के अर्थ—प्रसंगानुसार प्रमाण शब्द का प्रयोग हमारे दैनिक कार्यकलापों मे होता है और वह प्रयोग किस-किस आशय को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है, इसका कुछ सकेत शब्दकोष मे इस प्रकार से किया है—यथार्थज्ञान, यथार्थज्ञान का साधन, नाप, माप, परिमाण, सख्या, सत्यरूप से जिसको स्वीकार किया जाये, निश्चय, प्रतीति, मर्यादा, मात्रा, साक्षी आदि।

प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति—प्रमाण शब्द 'प्र' और 'माण' इन दो शब्दो से निष्पन्न है। 'प्र' उपसर्ग है और 'माण' माङ् धातु का रूप है। व्याकरण मे माङ् धातु अवबोध और मान अर्थ के लिये प्रयुक्त होती है। 'प्र' का प्रयोग अधिक स्पष्ट अर्थ का बोध कराने के लिये किया जाता है तथा मान का अर्थ होता है ज्ञान या माप, नाप आदि। शब्दशास्त्रियो ने प्रमाण शब्द की तीन प्रकार से व्युत्पत्ति की है—प्रमिणोति, प्रमीयतेऽनेन, प्रमितिमात्र वा प्रमाणम्—जो अच्छी तरह मान करता है, जिसके द्वारा मान किया जाता है या प्रमितिमात्र—मान करना प्रमाण है। अर्थात् वस्तुओ के स्वरूप का जानना या मापना प्रमाण है। यहाँ यह जानना चाहिये कि प्रमिति प्रमाण का फल है। अतएव जब फल रूप प्रमिति को प्रमाण कहा जाता है तब उस प्रमिति के कारण-भूत अन्य साधनो को भी प्रमाण मान लिया जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रमाण शब्द के अतिविस्तृत अर्थ को लेकर उसके चार भेद किये है। इसमे दूसरे दार्शनिको की तरह केवल प्रमेयसाधक तीन, चार या छह आदि प्रमाणो का समावेश नही है।

स्थानागसूत्र मे भी इन्ही चार भेदो का नामोल्लेख है[1] और वहाँ इन भेदो की गणना के अतिरिक्त विशेष कुछ नही कहा गया है। किन्तु जैन व्याख्यापद्धति का विस्तार से वर्णन करने वाला यह अनुयोगद्वारसूत्र है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन व्याख्यापद्धति का क्या दृष्टिकोण है ? जैन शास्त्रो मे प्रत्येक शब्द की लाक्षणिक व्याख्या ही नही की है, अपितु उस शब्द का किन-किन सभावित अर्थों मे और किस रूप मे प्रयोग किया जाता है और उस समय उसका क्या अभिधेय होना है, यह भी स्पष्ट किया गया है। जो आगे किये जाने वाले वर्णन से स्पष्ट है।

प्रमाण शब्द के निर्युक्तिमूलक अर्थ के समान होने पर भी भारतीय मनीषियो ने प्रमाण के भिन्न-भिन्न लक्षण निरूपित किये हैं। फिर भी भारतीय ही नही अपितु विश्व मनीषा का इस बिन्दु पर मतैक्य है कि यथार्थ ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान और प्रमाण का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। ज्ञान व्यापक है और प्रमाण व्याप्य। ज्ञान यथार्थ और अयथार्थ दोनो प्रकार का होता है। सम्यक् निर्णायक ज्ञान यथार्थ होता है और इससे विपरीत निर्णायक ज्ञान अयथार्थ, किन्तु प्रमाण सिर्फ यथार्थ ज्ञान होता है।

प्रमाण की चतुर्विधता का कारण—जैन वाङ्मय मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का बडा महत्त्व है। किसी भी विषय की चर्चा तब तक पूर्ण नही समझी जाती जब तक उस विषय का वर्णन द्रव्यादि चार अपेक्षाओ से न किया जाये। क्योकि जगत् की प्रत्येक वस्तु प्रदेश वाली है, वह उन प्रदेशो मे सत् रूप से रहती हुई उत्पाद-व्यय (उत्पत्ति-विनाश) रूप परिणति के द्वारा एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे परिणत होती रहती है। इसीलिये लोक के पदार्थों का वर्णन द्रव्यदृष्टि से किया

१ चउव्विहे पमाणे पन्नत्ते तं जहा—दव्वप्पमाणे खेत्तप्पमाणे कालप्पमाणे भावप्पमाणे। —स्थानांग, स्थान ४

जाता है। जब प्रत्येक द्रव्य प्रदेशवान् है तो उसका अवस्थान-आधार बताने के लिये क्षेत्र का और उस द्रव्य का उसी पर्याय रूप में अवस्थित रहने के समय का निर्धारण करने के लिये काल का एव वस्तु के असाधारण भाव—स्वभाव-स्वरूप को जानने के लिये भाव का परिज्ञान होना आवश्यक है। इन चारो प्रकारो से ही पदार्थ का अस्तित्व पूर्ण या विशद रूप से जाना जा सकता है या समझाया जा सकता है। इसी कारण जैनदर्शन मे प्रत्येक विषय के वर्णन की ये चार मुख्य अपेक्षाए हैं।

साथ ही यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि प्रमाण शब्द यहाँ न्यायशास्त्रप्रसिद्ध अर्थ का वाचक नही किन्तु व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है। जिसके द्वारा कोई वस्तु मापी जाए, नापी जाए, तोली जाए या अन्य प्रकार से जानी जाए वह भी प्रमाण है। यह बात मूलपाठोक्त प्रमाण के चार भेदो से स्पष्ट है।

इस प्रकार सामान्य रूप से प्रमाण के भेदो का निर्देश करने के पश्चात् अब उनका विस्तार से वर्णन प्रारम्भ किया जाता है। द्रव्यप्रमाण प्रथम है, अतएव पहले उसी का विचार करते है।

द्रव्यप्रमाणनिरूपण

३१४. से किं तं दव्वपमाणे ?

दव्वपमाणे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—पदेसनिप्फण्णे य १ विभागनिप्फण्णे य २।

[३१४ प्र] भगवन्! द्रव्यप्रमाण का स्वरूप क्या है ?

[३१४ उ] आयुष्मन्! द्रव्यप्रमाण दो प्रकार का प्रतिपादन किया गया है, यथा—प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न।

विवेचन—शिष्य ने प्रश्न किया है कि भगवन्! प्रमाण के चार भेदो मे से प्रथम द्रव्यप्रमाण का क्या स्वरूप है ? और उत्तर मे आगमिक शैली के अनुसार बताया कि द्रव्य विषयक प्रमाण दो प्रकार का है—१ प्रदेशनिष्पन्न और २ विभागनिष्पन्न।

इस प्रकार से द्रव्यप्रमाण के दो भेदो को जानकर शिष्य पुन उन दोनो के स्वरूपविशेष को जानने के लिये पहले प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण विषयक जिज्ञासा प्रस्तुत करता है।

प्रदेशनिष्पन्नद्रव्यप्रमाण

३१५. से किं त पदेसनिप्फण्णे ?

पदेसनिप्फण्णे परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपदेसिए। से तं पदेसनिप्फण्णे।

[३१५ प्र] भगवन्! प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३१५ उ] आयुष्मन् परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् दस प्रदेशी, सख्यात प्रदेशी, असख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी से जो निष्पन्न—सिद्ध होता है, उसे प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण कहते हैं।

विवेचन—द्रव्य विषयक प्रमाण को द्रव्यप्रमाण कहते हैं, अर्थात् द्रव्य के विषय में जो प्रमाण किया जाए अथवा द्रव्यो का जिसके द्वारा प्रमाण किया जाये या जिन द्रव्यो का प्रमाण किया जाए,

उसे द्रव्यप्रमाण कहते हैं और उसमे जो एक, दो, तीन आदि प्रदेशो से निष्पन्न—सिद्ध हो उसे प्रदेश-निष्पन्न द्रव्यप्रमाण कहते हैं। इस प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण मे परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेश वाले स्कन्ध तक के सभी द्रव्यो का समावेश है।

परमाणु एक प्रदेश वाला है, उससे लेकर दो, तीन, चार आदि यावत् अनन्त परमाणुओ के सयोग से निष्पन्न स्कन्ध प्रमाण द्वारा ग्राह्य होने के कारण प्रमेय है, तथापि उनको भी, रूढिवशात् प्रमाण इसलिये कहते हैं कि लोक मे ऐसा व्यवहार देखा जाता है। यथा—जो द्रव्य धान्यादि द्रोण-प्रमाण से परिमित होता है, उसे यह 'धान्य द्रोण' है ऐसा कहते हैं। क्योकि 'प्रमीयते यत्तत् प्रमाणम्—जो मापा जाये, वह प्रमाण' इस प्रकार की कर्मसाधन रूप प्रमाण शब्द की वाच्यता इन परमाणु आदि द्रव्यो मे सगत हो जाती है। इसीलिये वे भी प्रमाण कहे जाते है।

इसके अतिरिक्त जब 'प्रमीयतेऽनेन इति प्रमाणम्' इस प्रकार से प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति करणसाधन मे की जाती है तब परमाणु आदि द्रव्यो का एक, दो, तीन आदि परमाणुओ से निष्पन्न स्वरूप मुख्य रूप से प्रमाण होता है। क्योकि वे उसके द्वारा ही जाने जाते है तथा इस स्वरूप के साथ सम्बन्धित होने के कारण परमाणु आदि द्रव्य भी उपचार से प्रमाणभूत कहे जाते है। जब प्रमाण शब्द की 'प्रमिति प्रमाणम्' इस प्रकार से भावसाधन मे व्युत्पत्ति की जाती है तब प्रमिति प्रमाण शब्द की वाच्य होती है और प्रमिति, प्रमाण एव प्रमेय के अधीन होने से प्रमाण और प्रमेय उपचार से प्रमाण शब्द के वाच्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार कर्मसाधन पक्ष मे परमाणु आदि द्रव्य मुख्य रूप से एव करण और भाव साधन पक्ष मे वे उपचार से प्रमाण है। इसीलिये परमाणु आदि को प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण कहा है।

परमाणु आदि मे प्रदेशनिष्पन्नता स्वगत प्रदेशो से ही जाननी चाहिये। क्योकि स्वगत प्रदेशो के द्वारा ही प्रदेशनिष्पन्नता का विचार किया जाना सम्भव है।

प्रदेश का लक्षण— आकाश के अविभागी अश को प्रदेश कहते है। अर्थात् आकाश के जितने भाग को एक अविभागी पुद्गल परमाणु घेरता है, उसे प्रदेश[1] तथा जो स्वय आदि, मध्य और अन्तरूप है, ऐसे निर्विभाग (पुद्गल) द्रव्य को परमाणु कहते हैं। ऐसे एक से अधिक दो आदि यावत् अनन्त परमाणुओ के स्कन्धन-सघटन से निष्पन्न होने वाला पिड स्कन्ध कहलाता है।

यहाँ प्रदेशनिष्पन्न के रूप मे मूर्त—रूपी पुद्गल द्रव्य को ग्रहण किया गया है। क्योकि उसी मे स्थूल रूप से पकडने, रखने आदि का व्यापार प्रत्यक्ष दिखलाई देता है।

जैनागमो मे मूर्त और अमूर्त सभी द्रव्यो के प्रदेशो का प्रमाण इस प्रकार बतलाया है—

धर्मास्तिकाय — असख्यात प्रदेश
अधर्मास्तिकाय — असख्यात प्रदेश
(एक) जीवास्तिकाय — असख्यात प्रदेश

---

१. द्रव्यसंग्रह गा. २७

आकाशास्तिकाय	—	अनन्त प्रदेश
काल द्रव्य	—	अप्रदेशी (एक प्रदेशमात्र)

पुद्गलास्तिकाय—सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश ।[1]

विभागनिष्पन्नद्रव्यप्रमाण

३१६. से किं तं विभागनिप्फण्णे ?

विभागनिप्फण्णे पंचविहे पण्णत्ते। त जहा—माणे १ उम्माणे २ ओमाणे ३ गणिमे ४ पडिमाणे ५ ।

[३१६ प्र.] भगवन् ! विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण क्या है ?

[३१६ उ.] आयुष्मन् ! विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण पाँच प्रकार का है। वह इस प्रकार—१ मानप्रमाण २ उन्मानप्रमाण ३ अवमानप्रमाण ४ गणिमप्रमाण और ५ प्रतिमानप्रमाण ।

विवेचन—सूत्र मे भेदो के माध्यम मे विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण का वर्णन प्रारम्भ करने का निर्देश किया है।

विशिष्ट अथवा विविध भाग—भग-विकल्प-प्रकार को विभाग कहते है। अतएव जिस द्रव्य-प्रमाण की निष्पत्ति-सिद्धि स्वगत प्रदेशो मे नही किन्तु विभाग के द्वारा होती है, वह विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि धान्यादि द्रव्यो के मान आदि का स्वरूप निर्धारण स्वगत प्रदेशो से नही किन्तु 'दो असई की एक पसई' इत्यादि विभाग से होती है, तब उसको विभाग-निष्पन्न द्रव्यप्रमाण कहते है।

मान आदि के अर्थ—इस विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण के पाचो प्रकारो के अर्थ इस प्रकार है—

मान—द्रव्य—तरल तेल आदि तथा ठोस धान्य आदि को मापने का पात्रविशेष ।

उन्मान—तोलने की तराजू आदि ।

अवमान—क्षेत्र को मापने के दण्ड, गज आदि ।

गणिम—एक, दो, तीन आदि गणना (गिनती) ।

प्रतिमान—जिसके द्वारा स्वर्ण आदि पदार्थों का वजन किया जाये अथवा आगे के मानो की व्यवस्था की आद्य इकाई ।

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे गणना प्रमाण की अपेक्षा उक्त पाच भेदो के अतिरिक्त 'तत्प्रमाण' नामक एक छठा भेद और बताया है और उसकी व्याख्या की है—मणि आदि की दीप्ति, अश्वादि की ऊचाई आदि गुणो के द्वारा मूल्यनिर्धारण करने के लिये तत्प्रमाण का उपयोग होता है। जैसे मणि की प्रभा ऊचाई मे जहाँ तक जाये, उतनी ऊचाई तक का स्वर्ण का ढेर उसका मूल्य है, इत्यादि ।

मानप्रमाण

३१७. से किं तं माणे ?

माणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—धन्नमाणप्पमाणे य १ रसमाणप्पमाणे य २ ।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ५/७-११

[३१७ प्र.] हे भगवन् ! मानप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३१७ उ] आयुष्मन् ! मानप्रमाण दो प्रकार का है—१ धान्यमानप्रमाण और २. रस-मानप्रमाण ।

विवेचन—विवेचन करने की विधा के अनुसार यहाँ मानप्रमाण का विस्तार से वर्णन करने के लिये उसके दो भेद किये है । इन दोनो भेदो मे से पहले धान्यमानप्रमाण का निरूपण किया जाता है ।

धान्यमानप्रमाण

३१८. से किं तं धण्णमाणप्पमाणे ?

धण्णमाणप्पमाणे दो असतीओ पसती, दो पसतीओ सेतिया, चत्तारि सेतियाओ कुलओ, चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढयं, चत्तारि आढयाइ दोणो, सट्ठि आढयाइं जहन्नए कुंभे, असीतिआढयाइं मज्झिमए कुंभे, आढयसतं उक्कोसए कुंभे, अट्ठआढयसतिए वाहे ।

[३१८ प्र] भगवन् ! धान्यमानप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३१८ उ] आयुष्मन् ! (वह असति, प्रसृति आदि रूप है, अतएव) दो असति की एक प्रसृति होती है, दो प्रसृति की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडब, चार कुडब का एक प्रस्थ, चार प्रस्थो का एक आढक, चार आढक का एक द्रोण, साठ आढक का एक जघन्य कुभ, अस्सी आढक का एक मध्यम कुभ, सौ आढक का एक उत्कृष्ट कुभ और आठ सौ आढको का एक वाह होता है ।

३१९. एएणं धण्णमाणप्पमाणेणं किं पयोयणं ?

एतेणं धण्णमाणप्पमाणेणं मुत्तोली-मुरव-इड्डुर-अलिंद-अपचारिससियाण धण्णाणं धण्णमाणप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवति । से तं धण्णमाणप्पमाणे ।

[३१९ प्र] भगवन् ! इस धान्यमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३१९ उ] आयुष्मन् ! इस धान्यमानप्रमाण के द्वारा मुक्तोली (ऐसी कोठी जो खडे मृदग के आकार जैसी ऊपर-नीचे सकडी और मध्य मे कुछ विस्तृत, चौडी होती है), मुरव (सूत का बना हुआ बडा बोरा, जिसे कही कही 'फट्ट' भी कहते है और उसमे अनाज भरकर बेचने के लिये मडियो, बाजारों मे लाया जाता है),इड्डर (खास—यह बकरी आदि के बालो, सूत या सूतली की बनी हुई होती है और इसमे अनाज भरकर पीठ पर लाद कर लाते है, कही-कही इसे गुण, गोन, कोथला या बोरा भी कहते है), अलिंद (अनाज को भरकर लाने का बर्तन, पात्र, डलिया आदि) और अपचारि (बडा, खती, धान्य को सुरक्षित रखने के लिये जमीन के अन्दर या बाहर बनायी गयी कोठी, आज की भाषा मे 'सायलो') में रखे धान्य के प्रमाण का परिज्ञान होता है । इसे ही धान्यमानप्रमाण कहते हैं ।

विवेचन—धान्यविषयक मान (माप) धान्यमानप्रमाण कहलाता है । वह असति, प्रसृति आदि रूप है । असति यह धान्यादि ठोस वस्तुओ के मापने की आद्य इकाई है । टीकाकार ने इसे अवाङ्मुख हथेली रूप कहा है । आगे के प्रसृति आदि मापो की उत्पत्ति का मूल यह असति है, इसी से उन सब मापो की उत्पत्ति हुई है ।

यद्यपि अधोमुख रूप से व्यवस्थापित हथेली का नाम प्रसति है, लेकिन यहाँ मानप्रमाण के प्रसग में यह अर्थ लिया जायेगा कि हथेली को अधोमुख स्थापित करके मुट्ठी में जितना धान्य समा जाये, तत्परिमित धान्य प्रसति है।

प्रसति के अनन्तर प्रसृति का क्रम है। इसका आकार नाव की आकृति जैसा होता है। अर्थात् परस्पर जुड़ी हुई नाव के आकार में फैली हुई हथेलिया (खोवा) एक प्रसृति है। इसके बाद के मानों का स्वरूप सूत्र में ही स्पष्ट कर दिया गया है।

धान्यमानप्रमाण के लिये उल्लिखित सज्ञाये मागधमान—मगधदेश में प्रसिद्ध मापो की बोधक है।

प्राचीन काल मे मागधमान और कलिंगमान, यह दो तरह के माप-तौल प्रचलित थे। यह दोनो नाम प्रभावशाली राज्यशासन के कारण प्रचलित हुए थे। इनमे भी शताब्दियों तक मगध प्रशासनिक दृष्टि से समस्त भारत देश का और मुख्य रूप से उत्तराचल भारत का केन्द्र होने से मगध के अतिरिक्त भारत के अन्यान्य प्रदेशो मे भी मागधमान का अधिक प्रचलन और मान्यता थी।

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे माप-तौल के लिये मागधमान को आधार बनाकर मान-परिमाण की चर्चा इस प्रकार की है—

तीस परमाणुओ का एक त्रसरेणु होता है। छह त्रसरेणुओ की एक मरीचि, छह मरीचि की एक राई, तीन राई का एक सरसों, आठ सरसों का एक यव (जौ), चार जौ की एक रत्ती, छह रत्ती का एक माशा, चार माशे का एक शाण, दो शाण का एक कोल, दो कोल का एक कर्ष, दो कर्ष का एक अर्धपल, दो अर्धपल का एक पल, दो पल की एक प्रसृति, दो प्रसृतियो की एक अजलि, दो अजलि की एक मानिका, दो मानिका का एक प्रस्थ, चार प्रस्थ का एक आढक, चार आढक का एक द्रोण, दो द्रोणो का एक सूर्य, दो सूर्य की एक द्रोणी, चार द्रोणी की एक खारी होती है तथा दो हजार पल का एक भार और सौ पल की एक तुला होती है।[1]

---

१. त्रसरेणुर्बुधै प्रोक्तस्त्रिशता परमाणुभि ।
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वशी निगद्यते ॥
जालान्तर्गते भानौ यत्सूक्ष्म दृश्यते रज ।
तस्य त्रिंशत्तमो भाग परमाणु स उच्यते ॥
षड्वशीभिर्मरीची स्यात्ताभि षड्भिस्तु राजिका ।
तिसृभी राजकाभिश्च सर्षप प्रोच्यते बुधै ॥
यवोऽष्टसर्षपै प्रोक्तो गुञ्जा स्याच्च चतुष्टयम् ।
षड्भिस्तु रक्तिकाभिस्स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥
माषैश्चतुर्भि शाण स्याद्धरण स निगद्यते ।
टक स एव कथितस्तद्द्वय कोल उच्यते ॥
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रक्षण स निगद्यते ।
कोलद्वय च कर्ष स्यात् स प्रोक्त पाणिमानिका ॥
अक्ष पिचु पाणितल किञ्चित् पाणिश्च तिन्दुकम् ।
विडालपदक चैव तथा षोडशिका मता ॥
करमध्यो हसपद सुवर्ण कवलग्रह ।
उदुबर च पर्यायै कर्ष एक निगद्यते ॥
स्यात् कर्षाभ्यामर्धपल शुक्तिरष्टमिका तथा ।
शुक्तिभ्या च पल ज्ञेय मुष्टिराम्र चतुर्थिका ॥
प्रकु च षोडशी बिल्व पलमेवात्र कीर्त्यते ।
पलाभ्या प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥
प्रसृतिभ्यामञ्जलि स्यात् कुडवो अर्द्धशरावक ।
अष्टमान च सज्ञेय कुडवाभ्या च मानिका ॥
शरावाभ्या भवेत्प्रस्थ चतु प्रस्थैस्तथाढकम् ।
भाजन कास्यपात्र च चतु षष्टिपल च तत् ॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोण कलशोनल्वणोन्मनौ ।
उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसज्ञका ॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतु षष्टिशरावका ।
शूर्पाभ्या च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥
द्रोणीचतुष्टय खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभि ।
चतु सहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥
पलाना द्विसहस्र च भार एक प्रकीर्तित ।
तुला पलशत ज्ञेया सर्वत्र वैष निश्चय ॥
माषटकाक्षबिल्वानि कुडव प्रस्थमाढकम् ।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा ॥

कुडव के लिये सकेत किया है—

मृद्वस्तु वेणुलोहादेर्भाण्ड यच्चतुरगुलम् ।
विस्तीर्ण च तथोच्च च तन्मान कुडव वदेत् ॥

चार अंगुल लंबे और चार अंगुल चौडे तथा चार अंगुल गहरे बांस अथवा लोहे आदि के पात्र को कुडव कहते हैं। (कुडव द्वारा दूध, जल, आदि द्रव पदार्थ मापे जाते है।)

इनको और इनके द्वारा मापे गये धान्य आदि को असति आदि कहने का कारण मान शब्द की करण और कर्म साधन निरुक्ति है। जब करणसाधन मे 'मीयते अनेन इति मानम्' अर्थात् जिसके द्वारा मापा जाये वह मान, यह निरुक्ति करते है तब असति आदि मान शब्द की वाच्य है और 'मीयते यत् तत् मानम्' अर्थात् जो मापा जाये वह मान, इस प्रकार की कर्मसाधन व्युत्पत्ति करने पर धान्य आदि वस्तुयें ही मान शब्द की वाच्य होती हैं। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

धान्यमानप्रमाण का प्रयोजन स्पष्ट है कि इससे मुक्तोली आदि मे भरे हुए धान्य, अनाज आदि के प्रमाण का ज्ञान होता है।

इस प्रकार से धान्यमान प्रमाण का आशय और उपयोग जानना चाहिये। अब रसमानप्रमाण का स्वरूप स्पष्ट करते हैं—

रसमानप्रमाण

३२०. से किं तं रसमाणप्पमाणे ?

रसमाणप्पमाणे धण्णमाणप्पमाणाओ चउभागविवड्ढिए अब्भितरसिहाजुत्ते रसमाणप्पमाणे विहिज्जति। तं जहा—चउसट्ठिया ४, बत्तीसिया ८, सोलसिया १६, अट्ठभाइया ३२, चउभाइया ६४, अद्धमाणी १२८, माणी २५६। दो चउसट्ठियाओ बत्तीसिया, दो बत्तीसियाओ सोलसिया, दो सोलसियाओ अट्ठभातिया, दो अट्ठभाइयाओ चउभाइया, दो चउभाइयाओ अद्धमाणी, दो अद्धमाणीओ माणी।

[३२० प्र.] भगवन् ! रसमानप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३२० उ.] आयुष्मन् ! (तरल पदार्थ विषय होने से) रसमानप्रमाण धान्यमानप्रमाण से चतुर्भाग अधिक और अभ्यन्तर शिखायुक्त होता है। वह इस प्रकार—चार पल की एक चतुःषष्ठिका होती है। इसी प्रकार आठ पलप्रमाण द्वात्रिंशिका, सोलह पलप्रमाण षोडशिका, बत्तीस पलप्रमाण अष्टभागिका, चौसठ पलप्रमाण चतुर्भागिका, एक सौ अट्ठाईस पलप्रमाण अर्धमानी और दो सौ छप्पन पलप्रमाण मानी होती है। अतः (इसका अर्थ यह हुआ कि) दो चतुःषष्ठिका की एक द्वात्रिंशिका, दो द्वात्रिंशिका की एक षोडशिका, दो षोडशिकाओं की एक अष्टभागिका, दो अष्टभागिकाओं की एक चतुर्भागिका, दो चतुर्भागिकाओं की एक अर्धमानी और दो अर्धमानियों की एक मानी होती है।

३२१. एतेणं रसमाणप्पमाणेणं किं पओयणं ?

एएणं रसमाणप्पमाणेणं वारग-घडग-करग-किक्किरि-दइय-करोडि-कुंडियसंसियाणं रसाणं रसमाणप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ। से तं रसमाणप्पमाणे। से तं माणे।

[३२१ प्र.] भगवन् ! इस रसमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३२१ उ.] आयुष्मन् ! इस रसमानप्रमाण से वारक (छोटा घड़ा), घट—कलश, करक (घट विशेष), किक्किरि (भांडविशेष), दृति (चमड़े से बना पात्र—कुप्पा), करोडिका (नाद—जिसका मुख

चौडा होता है ऐसा बर्तन), कुडिका (कुंडी) आदि मे भरे हुए रसों (प्रवाही पदार्थों) के परिमाण का ज्ञान होता है। यह रसमानप्रमाण है।

इस प्रकार मानप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे रसमानप्रमाण का स्वरूप, धान्यमानप्रमाण से उसका पार्थक्य, प्रवाही पदार्थों के मापने के पात्रो के नाम एव परिमाण का उल्लेख किया है।

धान्यमान और रसमान—इन दोनो प्रकार के मानप्रमाणो द्वारा वस्तु के परिमाण (माप-वजन) का परिज्ञान किया जाता है। किन्तु इन दोनो मे अतर यह है कि धान्यमानप्रमाण के द्वारा ठोस पदार्थों का माप ज्ञान किया जाता है और मापे जाने वाले ठोस पदार्थ का शिरोभाग—शिखा—ऊपरी भाग—ऊपर की ओर होता है। लेकिन रसमानप्रमाण के द्वारा तरल—द्रव—पदार्थों के परिमाण का परिज्ञान किये जाने और तरल पदार्थों की शिखा अतर्मुखी—अदर की ओर होने से वह सेतिका आदि रूप धान्यमान प्रमाण से चतुर्भागाधिक वृद्धि रूप होता है।

रसमानप्रमाण की आद्य इकाई 'चतु षष्ठिका' और अतिम 'मानी' है। चतु षष्ठिका से लेकर मानी पर्यन्त मापने के पात्रो के नाम क्रमश पूर्व-पूर्व से दुगुने-दुगुने है। जैसे कि चतु.षष्ठिका का प्रमाण चार पल है तो चार पल से दुगुनी अर्थात् आठ पल द्वात्रिशिका का प्रमाण है। इसी प्रकार शेष षोडशिका आदि के लिये समझना चाहिये। इसी बात को विशेष सुगमता से समझाने के लिये पुन इन चतु षष्ठिका आदि पात्रो के माप का प्रमाण बताया है।

पश्चानुपूर्वी अथवा प्रतिलोमक्रम से मानी से लेकर चतु षष्ठिका पर्यन्त के पात्रो का प्रमाण मानी से लेकर पूर्व-पूर्व मे आधा-आधा कर देना चाहिये। जैसे दो सौ छप्पन पल की मानी को बराबर दो भागो—एक सौ अट्ठाईस, एक सौ अट्ठाईस पलो मे विभाजित कर दिया जाये तो वह आधा भाग अर्धमानी कहलायेगा। इसी प्रकार शेष मापो के विषय मे समझ लेना चाहिये।

रसमानप्रमाण के प्रयोजन के प्रसग मे जिन पात्रो का उल्लेख किया गया है, वे तत्कालीन मगध देश मे तरल पदार्थों को भरने के उपयोग मे आने वाले पात्र है। ये पात्र मिट्टी, चमडे एव धातुओ से बने होते थे।

उन्मानप्रमाण

३२२. से किं त उम्माणे ?

उम्माणे जण्णं उम्मिणिज्जइ। तं जहा—अद्धकरिसो करिसो अद्धपलं पलं अद्धतुला तुला अद्धभारो भारो। दो अद्धकरिसा करिसो, दो करिसा अद्धपलं, दो अद्धपलाइं पलं, पंचुत्तरपलसतिया पंचपलसइया तुला, दस तुलाओ अद्धभारो, वीस तुलाओ भारो।

[३२२ प्र] भगवन्! उन्मानप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३२२ उ] आयुष्मन्! जिसका उन्मान किया जाये अथवा जिसके द्वारा उन्मान किया जाता है (जो वस्तु तुलती है और जिस तराजू, काटा आदि साधनो से तोली जाती है), उन्हे उन्मान-प्रमाण कहते है। उसका प्रमाण निम्न प्रकार है—

१ अर्धकर्ष, २ कर्ष, ३. अर्धपल, ४ पल, ५ अर्धतुला, ६ तुला, ७. अर्धभार और ८ भार ।

इन प्रमाणो की निष्पत्ति इस प्रकार होती है---दो अर्धकर्षों का एक कर्ष, दो कर्षों का एक अर्धपल, दो अर्धपलो का एक पल, एक सौ पाच अथवा पाच सौ पलो की एक तुला, दस तुला का एक अर्धभार और बीस तुला—दो अर्धभारो का एक भार होता है ।

३२३. एएण उम्माणपमाणेण किं पओयणं ?

एतेणं उम्माणपमाणेणं पत्त-अगलु-तगर-चोयय-कुंकुम-खंड-गुल-मच्छंडियादीण दव्वाणं उम्माणपमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवति । से त उम्माणपमाणे ।

[३२३ प्र] भगवन् ! इस उन्मानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३२३ उ] आयुष्मन् ! इस उन्मानप्रमाण से पत्र, अगर, तगर (गध द्रव्य विशेष) ४ चोयक — (चोक औषधि विशेष) ५ कुकुम, ६ खाड (शक्कर), ७ गुड, ८ मिश्री आदि द्रव्यो के परिमाण का परिज्ञान होता है ।

इस प्रकार उन्मानप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये ।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण के दूसरे भेद का वर्णन किया है ।

धान्यमान और रसमान इन दो प्रमाणो के द्वारा प्राय सभी स्थूल पदार्थों का परिमाण जाना जा सकता है । फिर भी कुछ ऐसे स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मस्थूल पदार्थ है, जिनका निश्चित प्रमाण उक्त दो मानो से निर्धारित नही हो पाता है । इसीलिये उन पदार्थों के सही परिमाण को जानने के लिये उन्मानप्रमाण का उपयोग होता है ।

उन्मान शब्द की व्युत्पत्ति भी कर्मसाधन और करणसाधन—दोनो पक्षो की अपेक्षा से की जा सकती है । इसीलिये सूत्र मे तेजपत्र आदि एव अर्धकर्ष आदि भारो का उल्लेख किया है । तराजू मे रखकर जो वस्तु तोली जाती है—'यत् उन्मीयते तत् उन्मानम्' इस प्रकार से कर्मसाधनपक्ष मे जब उन्मान की व्युत्पत्ति करते है तब तेजपत्र आदि उन्मान रूप होते है और 'उन्मीयते अनेन इति उन्मानम्' जिसके द्वारा उन्मान किया जाता है—तोला जाता है, वह उन्मान है, इस करणमूलक व्युत्पत्ति से अर्धकर्ष आदि उन्मान रूप हो जाते हैं ।

अर्धकर्ष तोलने का सबसे कम भार का बाट है । आजकल व्यवहार मे कर्ष को तोला भी कहा जाता है ? क्योकि मन, सेर, छटाक आदि तोलने के बाट बनाने का आधार यही है ।

अर्धकर्ष, कर्ष आदि प्राचीन मागधमान मे तोलने के बाटो के नाम है ।

तत्त्वार्थराजवार्तिक[1] मे तोलने के बाटो और उनके प्रमाण का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

चार मेहदी के फलो का एक श्वेत सर्षप फल, सोलह सर्षप फल का एक धान्यमाष फल, दो धान्यमाष फल का एक गुजाफल, दो गुजाफल का एक रूप्यमाषफल, सोलह रूप्यमाषफल का एक

---

१. तत्त्वार्थराजवार्तिक ३।३८

धरण, अढाई धरण का एक सुवर्ण या कस, चार सुवर्ण या चार कस का एक पल, सौ पल की एक तुला, तीन तुला का एक कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थ (सेर), चार प्रस्थ का एक आढक, चार आढक का एक द्रोण, सोलह द्रोण की एक खारी और बीस खारी की एक वाह होती है ।

अवमानप्रमाण

३२४. से किं तं ओमाणे ?

ओमाणे जण्णं ओमिणिज्जति । तं जहा—हत्थेण वा दंडेण वा धणुएण वा जुगेण वा णालियाए वा अक्खेण वा मुसलेण वा ।

दंडं धणू जुगं नालिया य अक्ख मुसलं च चउहत्थं ।
दसनालियं च रज्जुं वियाण ओमाणसण्णाए ॥ ९३ ॥
वत्थुम्मि हत्थमिज्जं खित्ते दंडं धणुं च पत्थम्मि ।
खायं च नालियाए वियाण ओमाणसण्णाए ॥ ९४ ॥

[३२४ प्र] भगवन् ! अवमान (प्रमाण) क्या है ?

[३२४ उ] आयुष्मन् ! जिसके द्वारा अवमान (नाप) किया जाये अथवा जिसका अवमान (नाप) किया जाये, उसे अवमानप्रमाण कहते है । वह इस प्रकार—हाथ से, दड से, धनुष से, युग से, नालिका से, अक्ष से अथवा मूसल से नापा जाता है ।

दड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष और मूसल चार हाथ प्रमाण होते है । दस नालिका की एक रज्जू होती है । ये सभी अवमान कहलाते हैं । ९३ ।

वस्तु—गृहभूमि को हाथ द्वारा, क्षेत्र—खेत को दड द्वारा, मार्ग—रास्ते को धनुष द्वारा और खाई—कुआ आदि को नालिका द्वारा नापा जाता है । इन सबको 'अवमान' इस नाम से जानना चाहिये । ९४ ।

३२५. एतेणं ओमाणप्पमाणणं किं पओयणं ?

एतेणं ओमाणप्पमाणेणं खाय-चिय-करगचित-कड-पड-भित्ति-परिक्खेवसंसियाणं दव्वाणं ओमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवति । से तं ओमाणे ।

[३२५ प्र] भगवन् ! इस अवमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३२५ उ] इस अवमानप्रमाण से खात (खाई), कुआ आदि, ईंट, पत्थर आदि से निर्मित प्रासाद—भवन, पीठ (चबूतरा) आदि, ककचित (करवत—आरी आदि से विदारित, खंडित काष्ठ) आदि, कट (चटाई), पट (वस्त्र), भीत (दीवाल), परिक्षेप (दीवाल की परिधि—घेरा) अथवा नगर की परिधि आदि में संश्रित द्रव्यों की लम्बाई-चौड़ाई, गहराई और ऊँचाई के प्रमाण का परिज्ञान होता है ।

इस प्रकार से अवमानप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—यहाँ अवमानप्रमाण की व्याख्या की गई है।

जीवित रहने के लिये मनुष्य गेहू आदि धान्य, जल आदि तरल पदार्थ और स्वास्थ्यरक्षा के लिये औषध आदि वस्तुएँ उपयोग मे लाता है। उनके परिमाण को जानने के लिये तो धान्यमान आदि प्रमाण काम मे लाये जाते है। किन्तु सुरक्षा के लिये वह मकान आदि का, नगर की रक्षा के लिये खात, परिखा आदि का निर्माण करता है। उनकी लबाई, चौडाई आदि का परिज्ञान करने के लिये अवमानप्रमाण का उपयोग किया जाता है।

आगे कहे जाने वाले क्षेत्रप्रमाण के द्वारा भी क्षेत्र की लबाई-चौडाई का नाप किया जाता है और इस अवमानप्रमाण का भी यही प्रयोजन है। लेकिन दोनो मे यह अतर है कि क्षेत्रप्रमाण के द्वारा शाश्वत, अकृत्रिम, प्राकृतिक क्षेत्र का और अवमानप्रमाण द्वारा मनुष्य द्वारा निर्मित घर, खेत आदि की सीमा का निर्धारण किया जाता है।

यहाँ अवमान शब्द कर्म और करण इन दोनो रूपो मे व्यवहृत हुआ है। जब 'अवमीयते यत् तत् अवमानम्' इस प्रकार की कर्मसाधन रूप व्युत्पत्ति करते है तब उसके वाच्य गृहभूमि, खेत आदि और 'अवमीयते अनेन इति अवमानम्' ऐसी करणसाधन व्युत्पत्ति करने पर नापने के माध्यम दड आदि अवमान शब्द के वाच्य होते है।

यद्यपि दड, धनुष आदि मूसल पर्यन्त नामो का प्रमाण चार हाथ है, फिर भी सूत्र मे इनका पृथक्-पृथक् निर्देश कारणविशेष से किया है। वास्तु—गृहभूमि को नापने मे हाथ काम मे लाया जाता है, जैसे यह घर इतने हाथ लबा-चौडा है। क्षेत्र—खेत दड (चार हाथ लबे बास) द्वारा नापा जाता है। मार्ग को नापने के लिये धनुष प्रमाणभूत गिना जाता है। अर्थात् मार्ग की लबाई आदि के प्रमाण का बोध धनुष से होता है। खात, कुआ आदि की गहराई का प्रमाण चार हाथ जितनी लबी नालिका (लाठी) से जाना जाता है। उक्त वस्तुओ को नापने के लिये लोक मे इसी प्रकार की रूढि है। इसीलिये वास्तु—गृहभूमि आदि नापे जाने वाले पदार्थो मे भेद होने से उनके नाप के लिये दड आदि का पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है।

तिलोयपण्णत्ति (१/१०२-१०६) मे भी क्षेत्र नापने के प्रमाणो का इसी प्रकार से कथन किया गया है। किन्तु इतना विशेष है कि वहाँ 'किष्कु' नाम अधिक है तथा उसका प्रमाण दो हाथ का बताया गया है। तत्रस्थ वर्णन का क्रम इस प्रकार है—छह अगुल का एक पाद, दो पाद की एक वितस्ति (वालिश्त), दो वितस्ति का एक हाथ, दो हाथ का एक किष्कु, दो किष्कु का एक दड-युग-धनुष, मूसल-नाली, दो हजार धनुष का एक कोस और चार कोस का एक योजन होता है।

इस प्रकार अन्न, वस्त्र, आवास आदि के परिमाण के बोधक प्रमाणो का वर्णन करने के पश्चात् अब अर्थशास्त्र से सम्बन्धित प्रमाण का निरूपण किया जाता है।

गणिमप्रमाण

३२६. से किं त गणिमे ?

गणिमे जण्ण गणिज्जति। तं जहा—एक्को दसगं सतं सहस्सं दससहस्साइ सतसहस्सं दससत-सहस्साइ कोडी।

[३२६ प्र] भगवन् ! गणिमप्रमाण क्या है ?

[३२६ उ] आयुष्मन् ! जो गिना जाए अथवा जिसके द्वारा गणना की जाए, उसे गणिम-प्रमाण कहते है । वह इस प्रकार है—एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़ इत्यादि ।

३२७. एतेणं गणिमप्पमाणेणं किं पओयणं ?

एतेणं गणिमप्पमाणेण भितग-भिति-भत्त-वेयण-आय-व्वयनिव्विसंसियाणं दव्वाण गणिमप्प-माणनिव्वित्तिलक्खणं भवति । से त गणिमे ।

[३२७ प्र] भगवन् ! इस गणिमप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३२७ उ] आयुष्मन् ! इस गणिमप्रमाण से भृत्य—नौकर, कर्मचारी आदि की वृत्ति, भोजन, वेतन के आय-व्यय से सम्बन्धित (रुपया, पैसा आदि) द्रव्यो के प्रमाण की निष्पत्ति होती है । यह गणिमप्रमाण का स्वरूप है ।

विवेचन--माप, तौल और नापने से जिन वस्तुओ के परिमाण का निश्चय नही किया जा सकता, उनको जानने के लिये गणिम (गणना) प्रमाण का उपयोग होता है ।

जैसे आम के वृक्ष को और आम के फल को आम कहते है, वैसे ही गणिमप्रमाण के द्वारा जिस वस्तु की गणना होती है और जिस साधन द्वारा उस वस्तु की गणना की जाती है, दोनो गणिम कहलाते हैं । इस अपेक्षा से गणिम शब्द की भी व्युत्पत्ति के दो रूप है- कर्मसाधन और करणसाधन । 'गण्यते सख्यायते यत् तत् गणिमम्' जिसकी गणना की जाती है, वह गणिम है, इस प्रकार से कर्म-साधन मे गणिम की व्युत्पत्ति की जाती है तब रुपया आदि गणनीय वस्तुएं गणिम शब्द की वाच्यार्थ होती है और 'गण्यते सख्यायये वस्त्वनेनेति गणिमम्' जिसके द्वारा वस्तु गिनी जाती है वह गणिम है, इस प्रकार करणसाधन व्युत्पत्ति करने पर रुपया आदि जिस सख्या के द्वारा गिने जाते है, वह एक, दो, तीन, दस, सौ आदि सख्या गणिम शब्द की वाच्यार्थ होती है ।

इस प्रकार से गणिम शब्द की कर्म और करण साधन मे व्युत्पत्ति सभव होने पर भी सूत्र मे गणिम शब्द मुख्य रूप से कर्मसाधन मे ग्रहण किया है और गणनीय वस्तुएं जिनके द्वारा गिनी जाती है, उसके लिये एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड आदि सख्या का सकेत किया है ।

सूत्र मे गणना के लिये जिस क्रम से सख्याओ का उल्लेख किया है, वे सब पूर्व-पूर्व से दस गुनी है । इससे यह ज्ञात हो जाता है कि विश्व मे आज तो दसमलवप्रणाली प्रचलित है, उसका प्रयोग भारत मे प्राचीन समय से होता चला आ रहा था । प्राचीन भारत इस प्रणाली का प्रस्तावक रहा और आर्थिक क्षेत्र की उपलब्धियो का मानदड यही प्रणाली थी ।

यहाँ गणना के लिये करोड पर्यन्त की सख्या का सकेत किया है । इससे आगे की सख्याओ के नाम इस प्रकार है—दस करोड, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, शख, दस

शख, पद्म, दस पद्म इत्यादि और यह सर्वगणनीय सख्या गणनाप्रमाण का विषय १९४ अक प्रमाण है। जिसका सकेत काल प्रमाण के वर्णन के प्रसग मे किया जाएगा।

षट्खण्डागम, धवला टीका आदि मे गणनीय सख्याओ के नामो का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

एक, दस, शत, सहस्र, दस सहस्र, दस शतसहस्र, कोटि, पकोटि, कोटिप्पकोटि, नहुत्त, निन्नहुत्त, अखोभिनी, बिन्दु, अब्बुद, निरब्बुद, अहह, अब्ब, अटट, सोगन्धिक उप्पल, कुमुद, पुडरीक, पदुम, कथान, महाकथान, असख्येय, पणट्ठी, बादाल, एकट्ठी। क्रम के अनुसार ये सभी सख्याये उत्तर उत्तर मे दस गुनी हैं।[1]

गणिमप्रमाण का प्रयोजन बताने के प्रसग मे 'भितग-भिति' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ यह है कि प्राचीनकाल मे भृत्य, कर्मचारी और पदाति सेना आदि को कुछ-न-कुछ धन—मुद्राये भी दी जाती थी। दैनिक मजदूरी नकद दी जाती थी। जिसका सकेत 'वेयण' शब्द से मिलता है। शासनव्यवस्था और व्यापार-व्यवसाय का आय-व्यय, हानि-लाभ का तलपट मुद्राओ के रूप में निर्धारित किया जाता था। आर्थिकक्षेत्र के जो सिद्धान्त आज पश्चिम की देन माने जाते है, वे सब हमारे देश में प्राचीन समय से चले आ रहे थे, ऐसा 'आयव्वयनिव्विसससियाण' पद से स्पष्ट है।

प्रतिमानप्रमाण

३२८. से किं तं पडिमाणे ?

पडिमाणे जण्णं पडिमिणिज्जइ। तं जहा—गुंजा कागणी निप्फावो कम्ममासओ मंडलओ सुवण्णो। पंच गुंजाओ कम्ममासओ, कागण्यपेक्षया चत्तारि कागणीओ कम्ममासओ। तिण्णि निप्फावा कम्ममासओ, एवं चउक्को कम्ममासओ। बारस कम्ममासया मंडलओ, एवं अडयालीसाए [कागणीए] मंडलओ। सोलस कम्ममासया सुवण्णो, एवं चउसट्ठीए [कागणीए] सुवण्णो।

[३२८ प्र] भगवन्! प्रतिमान (प्रमाण) क्या है?

[३२८ उ] आयुष्मन्! जिसके द्वारा अथवा जिसका प्रतिमान किया जाता है, उसे प्रतिमान कहते हैं। वह इस प्रकार है—१ गुजा-रत्ती, २ काकणी, ३ निष्पाव, ४ कर्ममाषक, ५ मडलक, ६ सुवर्ण।

पाच गुजाओ—रत्तियो का, काकणी की अपेक्षा चार काकणियो का अथवा तीन निष्पाव का एक कर्ममाषक होता है। इस प्रकार कर्ममाषक चार प्रकार से निष्पन्न (चतुष्क) होता है।

बारह कर्ममाषको का एक मडलक होता है। इसी प्रकार अड़तालीस काकणियो के बराबर एक मडलक होता है।

---

१ (क) धवला ५/प्र/२२
(ख) ति पण्णत्ति ४/३०९-३११
(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिक ३/३८
(घ) त्रिलोकसार २८-५१

सोलह कर्ममाषक अथवा चौसठ काकणियो का एक स्वर्ण (मोहर) होता है।

३२९. एतेण पडिमाणप्पमाणेण किं पओयणं ?

एतेणं पडिमाणप्पमाणेणं सुवण्ण-रजत-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालादीणं दव्वाणं पडिमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खण भवति। से त पडिमाणे। से त विभागनिप्फण्णे। से तं दव्वपमाणे।

[३२९ प्र] भगवन्! इस प्रतिमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३२९ उ] आयुष्मन्! इस प्रतिमानप्रमाण के द्वारा सुवर्ण, रजत (चादी), मणि, मोती, शख, शिला, प्रवाल (मूगा) आदि द्रव्यो का परिमाण जाना जाता है। इसे ही प्रतिमानप्रमाण कहते हैं।

यही विभागनिष्पन्नप्रमाण और द्रव्यप्रमाण की वक्तव्यता है।

विवेचन—सूत्र मे प्रतिमानप्रमाण एव उसके प्रयोजन के साथ द्रव्यप्रमाण के वर्णन की समाप्ति का प्रतिपादन किया है।

तोलने योग्य स्वर्ण आदि को एव तोलने वाले गुजा आदि के माप को प्रतिमान कहते है।

तात्पर्य यह है कि जब प्रतिमान शब्द की करणसाधन मे व्युत्पत्ति करते है—'प्रतिमीयते अनेन इति प्रतिमानम्' तब प्रतिमान शब्द के वाच्य प्रतिमानक-वजन करने वाले गुजादि होते है। क्योकि सुवर्ण आदि द्रव्यो का वजन गुजादि से तोल कर जाना जाता है। जब 'प्रतिमीयते यत्तत् प्रतिमानम्'—जिसका प्रतिमान-वजन किया जाये, वह प्रतिमान, इस प्रकार कर्मसाधन व्युत्पत्ति की जाती है तब सुवर्ण आदि द्रव्य प्रतिमान कहलाते है।

करणसाधन और कर्मसाधन दोनो प्रकार की व्युत्पत्तियो के अनुसार गुजा आदि और सुवर्ण आदि प्रतिमानक एव प्रतिमेय दोनो को प्रतिमान कहा है, फिर भी यहाँ मुख्य रूप से प्रतिमान शब्द का कर्मसाधन रूप व्युत्पत्तिमूलक अर्थ लिया गया है। इसीलिये उन-उन सुवर्ण आदि को तौलने के लिये गुजा आदि रूप बाटो का उल्लेख किया है।

तराजू के पलडे मे रखकर सुवर्ण आदि को तोले जाने से यह जिज्ञासा हो सकती है कि उन्मान एव प्रतिमान प्रमाण के आशय मे कोई अन्तर नही है। क्योकि चाहे तराजू से शक्कर, मिश्री आदि को तोला जाये या सुवर्ण आदि तोला जाये, तराजू के उपयोग और तोलने की क्रिया दोनो में एक जैसी है। फिर दोनो का पृथक्-पृथक् निर्देश करने का क्या कारण है ? इसका समाधान यह है कि लोक-व्यवहार मे शक्कर आदि मन, सेर, छटाक आदि के द्वारा तौले जाते है। उनकी तोल के लिये तोला, माशा, रत्ती प्रयोग मे नही आते है, जबकि सारभूत धन के रूप मे माने गये स्वर्ण, चादी, मणि-माणक आदि को तोलने के लिये तोला, माशा आदि का उपयोग किया जाता है। यदि सोना सेर से भी तोला जाये तो उस सोने को अस्सी तोला है, ऐसा कहेगे। दूसरी बात यह है कि वस्तु के मूल्य के कारण भी उनके मान के लिये अलग-अलग मानक निर्धारित किये जाते है। इसलिये उन्मान और प्रतिमान के मूल अर्थ मे अतर नही है, लेकिन उनके द्वारा मापे-तोले जाने वाले पदार्थों के मूल्य मे अन्तर है। इसी कारण उन्मान और प्रतिमान का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है।

सूत्र मे कर्ममाषक से पूर्व के गुंजा आदि के वजन को नही बताया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

गुंजा, रत्ती, घोंगची और चणोटी ये चारो समानार्थक नाम है। गुंजा एक लता का फल है। इसका आधा भाग काला और आधा भाग लाल रंग का होता है। इसके भार के लिये पूर्व में कहा जा चुका है। सवा गुंजाफल (रत्ती) की एक काकणी होती है। त्रिभागन्यून दो गुंजा अर्थात् पौने दो गुंजा का एक निष्पाव होता है। इसके बाद के कर्ममाषक आदि का प्रमाण सूत्र मे उल्लिखित है।

कर्ममाषक, मंडलक और सुवर्ण के भारप्रमाण का विवरण भिन्न-भिन्न रीति से बताने का कारण यह है कि वक्ता और श्रोता, क्रेता और विक्रेता को अपने अभीष्ट प्रमाण मे सुवर्ण आदि लेने-देने में एकरूपता रहे। जैसे जो व्यक्ति सौ की संख्या को न जानता हो, मात्र बीस तक की संख्या गिनना जानता हो, उसे संतुष्ट और आश्वस्त करने के लिये बीस-बीस को पांच बार अलग-अलग गिनकर समझाया जाता है। कर्ममाषक आदि का अलग-अलग रूप से प्रमाण बताने का भी यही आशय है। कथनभेद के सिवाय अर्थ मे कोई अन्तर नही है।

सुवर्ण, चांदी को तो सभी जानते है। शास्त्रो मे रत्नो के नाम इस प्रकार बतलाये है—

१ कर्केतनरत्न, २ वज्ररत्न, ३ वैडूर्यरत्न, ४ लोहिताक्षरत्न, ५ मसारगल्लरत्न, ६ हंसगर्भरत्न, ७ पुलकरत्न, ८ सौगन्धिकरत्न, ९ ज्योतिरत्न, १० अञ्जनरत्न, ११ अंजनपुलकरत्न, १२ रजतरत्न, १३ जातरूपरत्न, १४ अंकरत्न, १५ स्फटिकरत्न, १६ रिष्टरत्न।

'से त विभागनिप्फण्णे' पद द्वारा सूचित किया है कि मान से लेकर प्रतिमान तक विभाग-निष्पन्न द्रव्यप्रमाण के पांच भेद है और उनका वर्णन उपर्युक्त प्रकार से जानना चाहिये तथा 'से त दव्वप्पमाणे' यह पद द्रव्यप्रमाण के वर्णन का उपसंहारबोधक है कि प्रदेशनिष्पन्न और विभाग-निष्पन्न के भेदो का वर्णन करने के साथ द्रव्यप्रमाण समग्ररूपेण निरूपित हो गया।

अब क्रमप्राप्त प्रमाण के दूसरे भेद क्षेत्रप्रमाण की प्ररूपणा करते है।

क्षेत्रप्रमाणप्ररूपण

३३०. से किं तं खेत्तप्पमाणे ?

खेत्तप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पदेसनिप्फण्णे य १ विभागणिप्फण्णे य २।

[३३० प्र] भगवन्! क्षेत्रप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[३३० उ] आयुष्मन्! क्षेत्रप्रमाण दो प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। वह इस प्रकार—१ प्रदेशनिष्पन्न और २ विभागनिष्पन्न।

विवेचन—द्रव्यप्रमाण के मुख्य भेदो की तरह इस क्षेत्रप्रमाण के भी दो भेद है और उन भेदो के नाम भी वही है जो द्रव्यप्रमाण के भेदो के हैं।

स्वगुणो की अपेक्षा प्रमेय होने से द्रव्य का निरूपण द्रव्यप्रमाण के द्वारा किया जाता है। किन्तु क्षेत्रप्रमाण के द्वारा पुन उसी द्रव्य का वर्णन इसलिये किया जाता है कि क्षेत्र एक, दो, तीन,

सख्यात, असख्यात आदि रूप अपने निर्विभाग भागात्मक अशो-प्रदेशो से निष्पन्न है। प्रदेशों से निष्पन्न होना ही इसका निजस्वरूप है और इसी रूप से वह जाना जाता है। अतएव प्रदेशों से निष्पन्न होने वाले प्रमाण का नाम प्रदेशनिष्पन्न है तथा विभाग-भग-विकल्प से निष्पन्न होने वाले अर्थात् स्वगत प्रदेशो को छोडकर दूसरे विशिष्ट भाग, भग या विकल्प द्वारा निष्पन्न होने वाले को विभागनिष्पन्न कहते है।

उक्त दोनो प्रकार के क्षेत्रप्रमाणो का विशेष वर्णन इस प्रकार है—

प्रदेशनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण

३३१. से किं तं पवेसणिप्फण्णे ?

पवेसणिप्फण्णे एगपदेसोगाढे दुपदेसोगाढे जाव संखेज्जपदेसोगाढे असंखिज्जपदेसोगाढे। से तं पएसणिप्फण्णे।

[३३१ प्र] भगवन् ! प्रदेशनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण का स्वरूप क्या है ?

[३३१ उ] आयुष्मन् ! एक प्रदेशावगाढ, दो प्रदेशावगाढ यावत् सख्यात प्रदेशावगाढ, असख्यात प्रदेशावगाढ क्षेत्ररूप प्रमाण को प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण कहते है।

विवेचन—सूत्र मे क्षेत्रप्रमाण के प्रथम भेद प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण का स्वरूप बतलाया है।

क्षेत्र का अविभागी अश (जिसका विभाग न किया जा सके और न हो सके ऐसे) भाग को प्रदेश कहते है। ऐसे प्रदेश से जो क्षेत्रप्रमाण निष्पन्न हो, वह प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण कहलाता है।

यहाँ क्षेत्र शब्द आकाश के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्य जितने आकाश रूप क्षेत्र मे अवगाढ होकर स्थित है, उसे लोकाकाश और इसके अतिरिक्त कोरे आकाश को अलोकाकाश कहते है। यद्यपि अलोकाकाश मे आकाशास्तिकाय द्रव्य का सद्भाव है, फिर भी उसे अलोकाकाश इसलिये कहते है कि लोक और अलोक के नियामक धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य वहाँ नही हैं। इनका सद्भाव और असद्भाव ही आकाश के लोकाकाश, अलोकाकाश विभाग का कारण है।

प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण एकप्रदेशावगाढादि रूप है। क्योकि वह एक प्रदेशादि अवगाढरूप क्षेत्र एक आदि क्षेत्रप्रदेशो मे निष्पन्न हुआ है और ये एकादि प्रदेश अपने निजस्वरूप से ही प्रतीति मे आते है, अतएव इनमे प्रमाणता जानना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि क्षेत्र स्वप्रदेशों की अपेक्षा जब स्वस्वरूप से जाना जाता है तब 'प्रमीयते यत् तत् प्रमाणम्'— जो जाना जाये वह प्रमाण है, इस प्रकार के कर्मसाधन रूप प्रमाण शब्द की वाच्यता से वह एकादि प्रदेश रूप क्षेत्र प्रमाण होता है, परन्तु जब 'प्रमीयतेऽनेन यत्तत् प्रमाणम्' इस प्रकार प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति करणसाधन मे की जाती है तब क्षेत्र स्वय प्रमाण रूप न होकर एक प्रदेशादि उसका स्वरूप प्रमाण होता है।

यद्यपि आकाश रूप क्षेत्र तो एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेशात्मक है। लेकिन सूत्र मे 'एगपदेसोगाढे, दुपदेसोगाढे जाव सखेज्जपदेसोगाढे असखिज्जपदेसोगाढे' पद देने का कारण यह है कि

यहाँ लोकाकाश रूप क्षेत्र को ग्रहण किया है और लोकाकाश के असख्यात ही प्रदेश होते है और उन्ही मे जीव, पुद्गल आदि द्रव्य अवगाढ होते है ।

द्रव्य की अपेक्षा आकाश एक है और उसमे प्रदेशो की कल्पना का आधार है पुद्गलद्रव्य । पुद्गलद्रव्य के दो रूप हैं—परमाणु और स्कन्ध । परमाणु और स्कन्ध का स्वरूप पहले बताया जा चुका है । एक परमाणु जितने क्षेत्र को अवगाढ करके रहता है, उतने क्षेत्र को एक प्रदेश कहते है । आकाश का स्वभाव अवगाहना देने के कारण उसके एक प्रदेश मे परमाणु से लेकर अनन्त परमाणुओ के पिंड रूप स्कन्ध का भी अवगाह हो सकता है । इसी बात की ओर सकेत करने के लिये सूत्र मे एकप्रदेशावगाढ से लेकर असख्यातप्रदेशावगाढ तक पद दिये है । यही प्रदेशनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण है ।

अब विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण का विचार करते है—

विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण

३३२. से किं तं विभागणिप्फण्णे ?

विभागणिप्फण्णे—

अंगुल विहत्थि रयणी कुच्छी धणु गाउय च बोद्धव्व ।
जोयणसेढी पयरं लोगमलोगे वि य तहेव ॥ ९५ ॥

[३३२ प्र] भगवन् ! विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[३३२ उ] आयुष्मन् ! अगुल, वितस्ति (बेत, वालिश्त), रत्नि (हाथ) कुक्षि, धनुष, गाऊ (गव्यूति), योजन, श्रेणि, प्रतर, लोक और अलोक को विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण जानना चाहिये ।९५

विवेचन—सूत्र मे विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण का वर्णन किया है। इसका पृथक् रूप से निरूपण करने का कारण यह है कि क्षेत्र यद्यपि स्वगत प्रदेशो की अपेक्षा प्रदेशनिष्पन्न ही है, परन्तु जब स्वरूप से उसका वर्णन न किया जाकर सुगम बोध के लिये उन प्रदेशो का कथन अगुल आदि विभागो के द्वारा किया जाता है, तब उसे विभागनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण कहते है। अर्थात् क्षेत्रनिष्पन्नता से इस विभागनिष्पन्नता मे यह अन्तर है कि क्षेत्रनिष्पन्नता मे क्षेत्र अपने प्रदेशो द्वारा जाना जाता है, लेकिन विभागनिष्पन्नता मे उसी क्षेत्र को विविध अगुल, वितस्ति आदि से जानते हैं । यह अतर प्रमाण शब्द की करणसाधन रूप व्युत्पत्ति की अपेक्षा से जानना चाहिये ।

विभागनिष्पन्न की आद्य इकाई अगुल है। अतएव अब अगुल का विस्तार से विवेचन करते हैं ।

अंगुलस्वरूपनिरूपण

३३३. से किं तं अंगुले ?

अंगुले तिविहे पण्णत्ते । तं जहा—आयगुले १ उस्सेहगुले २ पमाणगुले ३ ।

[३३३ प्र.] भगवन् ! अगुल का क्या स्वरूप है ?

[३३३ उ.] आयुष्मन् ! अगुल तीन प्रकार का है, यथा—१. आत्मांगुल, २ उत्सेधागुल और ३ प्रमाणागुल।

विवेचन—अगुल के मुख्य तीन प्रकार हैं। अब क्रम से उनका विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

आत्मांगुल

३३४. से किं तं आयंगुले ?

आयंगुले जे णं जया मणुस्सा भवंति तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालस अंगुलाइं मुहं, नवमुहाइ पुरिसे पमाणजुत्ते भवति, दोणिए पुरिसे माणजुत्ते भवति, अद्धभारं तुलमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवति।

माणुम्माण-पमाणे जुत्ता लक्खण-वंजण-गुणेहिं उववेया।
उत्तमकुलप्पसूया उत्तमपुरिसा मुणेयव्वा ॥ ९६ ॥
होंति पुण अहियपुरिसा अट्ठसतं अंगुलाण उव्विद्धा।
छण्णउति अहमपुरिसा चउरुत्तर मज्झिमिल्ला उ ॥ ९७ ॥
होणा वा अहिया वा जे खलु सर-सत्त सारपरिहीणा।
ते उत्तमपुरिसाणं अवसा पेसत्तणमुवेंति ॥ ९८ ॥

[३३४ प्र] भगवन् ! आत्मागुल किसे कहते है ?

[३३४ उ] जिस काल मे जो मनुष्य होते है (उस काल की अपेक्षा) उनके अगुल को आत्मागुल कहते है।

उनके अपने-अपने अगुल से बारह अगुल का एक मुख होता है।

नौ मुख प्रमाण वाला (अर्थात् एक सौ आठ आत्मागुल की ऊचाई वाला) पुरुष प्रमाणयुक्त माना जाता है, द्रोणिक पुरुष मानयुक्त माना जाता है और अर्धभारप्रमाण तौल वाला पुरुष उन्मानयुक्त होता है।

जो पुरुष मान-उन्मान और प्रमाण से सपन्न होते हैं तथा (शख आदि शारीरिक शुभ) लक्षणो एव (तिल मसा आदि) व्यजनो से और (उदारता, करुणा आदि) मानवीय गुणो से युक्त होते है एव (उग्र, भोग आदि) उत्तम कुलो मे उत्पन्न होते है, ऐसे (चक्रवर्ती आदि) पुरुषो को उत्तम पुरुष समझना चाहिते। ९६

ये उत्तम पुरुष अपने अगुल से एक सौ आठ अगुल प्रमाण ऊचे होते हैं। अधम पुरुष छियानवे अगुल और मध्यम पुरुष एक सौ चार अगुल ऊचे होते हैं। ९७

ये हीन (छियानवे अगुल की ऊचाई वाले) अथवा उससे अधिक ऊचाई वाले (मध्यम पुरुष) जनोपादेय एव प्रशसनीय स्वर से, सत्त्व से—आत्मिक-मानसिक शक्ति से तथा सार से अर्थात् शारीरिक क्षमता, सहनशीलता, पुरुषार्थ आदि से हीन और उत्तम पुरुषो के दास होते है। ९८

३३५. एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पावो, दो पाया विहत्थी, दो विहत्थीओ रयणी, दो रयणीओ कुच्छी, दो कुच्छीओ दंड धणू जुगे नालिया अक्ख-मुसले, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

[३३५] इस आत्मागुल से छह अगुल का एक पाद होता है। दो पाद की एक वितस्ति, दो वितस्ति की एक रत्नि और दो रत्नि की एक कुक्षि होती है। दो कुक्षि का एक दड, धनुष, युग, नालिका अक्ष और मूसल जानना चाहिये। दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होना है।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे अगुल के तीन प्रकारो मे से प्रथम आत्मागुल के स्वरूप आदि का वर्णन किया है।

आत्मागुल मे 'आत्मा' शब्द 'स्व' अर्थ का सूचक है। अतएव अपना जो अगुल उसे आत्मागुल कहते है। यह कालादि के भेद से अनवस्थित प्रमाण वाला है। इसका कारण यह है कि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के भेद से मनुष्यो के शरीर की ऊचाई आदि बढती-घटती रहती है। अतएव जिस काल मे जो पुरुष होते है, उस काल मे उनका अगुल आत्मागुल कहलाता है। इसी अपेक्षा से आत्मागुल को अनियत प्रमाण वाला कहा है।

आत्मागुल से नापने पर बारह अगुल का जितना प्रमाण हो उसकी 'मुख' यह सज्ञा है। ऐसे नौ मुखो अर्थात् एक सौ आठ अगुल ऊचाई वाला पुरुष प्रमाणपुरुष कहलाता है। दूसरे प्रकार से भी प्रमाणयुक्त पुरुष की परीक्षा करने के कुछ नियम बताये है—एक बडी जलकुडिका को जल से परिपूर्ण भरकर उसमे किसी पुरुष को बैठाने पर जब द्रोणप्रमाण जल उससे छलक कर बाहर निकल जाये तो वह पुरुष मानयुक्त माना जाता है और उस पुरुष की द्रोणिकपुरुष यह सज्ञा होती है। अथवा द्रोणपरिमाण न्यून जल से कुडिका मे पुरुष के प्रवेश करने पर यदि वह कुडिका पूर्ण रूप से किनारो तक भर जाती है तो ऐसा पुरुष भी मानयुक्त माना जाता है। तीसरी परीक्षा यह है कि तराजू से तौलने पर जो पुरुष अर्धभारप्रमाण वजनवाला हो, वह पुरुष उन्मान से प्रमाणयुक्त माना जाता है। ऐसे पुरुष लोक मे उत्तम माने जाते है।

ये उत्तम पुरुष प्रमाण, मान और उन्मान से सपन्न होने के साथ ही शरीर मे पाये जाने वाले स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि शुभ लक्षणो तथा तिल, मसा आदि व्यजनो से युक्त होते है। इनका जन्म लोकमान्य कुलो मे होता है। वे उच्चगोत्रकर्म के विपाकोदय के कारण लोक में आदर-समान के पात्र माने जाते है, आज्ञा, ऐश्वर्य, सपत्ति से सपन्न-समृद्ध होते हैं।

उपर्युक्त माप-तौल से हीन पुरुषो की गणना मध्यम अथवा जघन्य पुरुषो मे की जाती है।

सूत्रोक्त उत्तम पुरुष के मानदड को हम प्रत्यक्ष भी देखते है। सेना और सेना के अधिकारियो का चयन करते समय व्यक्ति की ऊचाई, शारीरिक क्षमता, साहस आदि की परीक्षा करने पर निर्धारित मान मे उत्तीर्ण व्यक्ति का चयन कर लिया जाता है।

इस प्रकार से आत्मागुल की व्याख्या करने के पश्चात् उसका उपयोग कहाँ और किस के नापने में किया जाता है, इसे स्पष्ट करते हैं।

आत्मांगुल का प्रयोजन

३३६. एएणं आयंगुलप्पमाणेणं किं पओयणं ?

एतेणं आयंगुलप्पमाणे जे णं जया मणुस्सा भवंति तेसि ण तया अप्पणो अगुलेणं अगड-दह-नदी-तलाग-वावी-पुक्खरिणि-दीहिया-गुंजालियाओ सरा सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतियाओ आरामुज्जाण-काणण-वण-वणसंड-वणराईओ देवकुल-सभा-पवा-थूभ-खाइय-परिहाओ पागार-अट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरण-पासाद-घर-सरण-लेण-आवण-सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर- चउमुह-महापह-पहा सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिय-लोही-लोहकडाह-कडुच्छुय-आसण-सतण-खंभ-भंड-मत्तोवगरणमादीणि अज्जकालिगाइं च जोयणाइं मविज्जंति।

[३३६ प्र] भगवन् ! इस आत्मागुलप्रमाण का क्या प्रयोजन है ?

[३३६ उ.] आयुष्मन् ! इस आत्मागुलप्रमाण से कुआ, तडाग (तालाब), द्रह (जलाशय), वापी (चतुष्कोण वाली बावडी), पुष्करिणी (कमलयुक्त जलाशय), दीर्घिका (लम्बी-चौडी बावडी), गुजालिका (वक्राकार बावडी), सर (अपने-आप बना जलाशय—झील), सरपक्ति (श्रेणी—पक्ति रूप मे स्थित जलाशय), सर-सरपक्ति (नालियो द्वारा सबन्धित जलाशयो की पक्ति), विलपक्ति (छोटे मुख वाले कूपो की पक्ति—कुडिया), आराम (बगीचा), उद्यान (अनेक प्रकार के पुष्प-फलो वाले वृक्षो से युक्त बाग), कानन (अनेक वृक्षो से युक्त नगर का निकटवर्ती प्रदेश), वन (जिसमे एक ही जाति के वृक्ष हो), वनखड (जिसमे अनेक जाति के उत्तम वृक्ष हो), वनराजि (जिसमे एक या अनेक जाति के वृक्षो की श्रेणिया हो), देवकुल (यक्षायनन आदि), सभा, प्रपा (प्याऊ), स्तूप, खातिका (खाई), परिखा (नीचे सकडी और ऊपर विस्तीर्ण खाई), प्राकार (परकोटा), अट्टालक (परकोटे पर बना आश्रय-विशेष—अटारी), चरिका(खाई और प्राकार के बीच बना आठ हाथ चौडा मार्ग), द्वार, गोपुर (नगर मे प्रवेश करने का मुख्य द्वार), तोरण, प्रासाद (राजभवन), घर (सामान्य जनो के निवास स्थान), शरण (घास-फूस से बनी झोपडी), लयन (पर्वत मे बनाया गया निवासस्थान), आपण (बाजार), शृगाटक (सिंघाडे के आकार का त्रिकोण मार्ग), त्रिक (तिराहा), चतुष्क (चौराहा), चत्वर (चौगान, चौक, मैदान), चतुर्मुख (चार द्वार वाला देवालय आदि), महापथ (राजमार्ग), पथ (गलियां), शकट (गाडी, बैलगाडी), रथ, यान (साधारण गाडी), युग्य (डोली—पालखी), गिल्लि (हाथी पर रखने का हौदा), थिल्लि (यान-विशेष, बहली), शिविका (पालखी), स्यदमानिका (इक्का), लोही (लोहे की छोटी कडाही), लोहकटाह (लोहे की बडी कडाही—कडाहा), कुडछी (चमचा), आसन (बैठने के पाट आदि), शायन(शय्या), स्तम्भ, भाड (पात्र आदि) मिट्टी, कासे आदि से बने भाजन गृहोपयोगी बर्तन, उपकरण आदि वस्तुओ एव योजन आदि का माप किया जाता है।

विवेचन—सूत्रोक्त भवनादि का निर्माण मनुष्य अपने समय को ध्यान मे रखकर करते है। इसीलिये सूत्र में मनुष्यो द्वारा बनाई गई एव अशाश्वत वस्तुओ की लम्बाई-चौडाई-ऊचाई आदि का माप आत्मांगुल से किये जाने का उल्लेख किया गया है।

'अज्जकालिगाइ' अर्थात् आज-कल शब्द वर्तमान का बोधक है। अर्थात् जिस काल मे जितनी ऊचाई, चौडाई आदि वाले मनुष्य हो, उनकी अपेक्षा ही आत्मागुल का प्रमाण निर्धारित होता है।

आत्मागुल का प्रयोजन बतलाने के अनन्तर अब उसके अवान्तर भेदो का निर्देश करते हैं।

आत्मांगुल के भेद

३३७. से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सूतिअंगुले १ पयरंगुले २ घणंगुले ३।

अंगुलायता एगपदेसिया सेढी सूइअगुले १ सूयी सूयीए गुणिया पयरगुले २ पयरं सूईए गुणितं घणंगुले ३।

[३३७] आत्मागुल सामान्य से तीन प्रकार का है--१ सूच्यगुल, २ प्रतरागुल, ३ घनागुल।

१ एक अगुल लम्बी और एक प्रदेश चौडी आकाश-प्रदेशो की श्रेणि-पक्ति का नाम सूच्यगुल है। २ सूच्यगुल को सूच्यगुल से गुणा करने पर प्रतरागुल बनता है। ३ प्रतरागुल को सूच्यगुल से गुणित करने पर घनागुल होता है।

विवेचन—सूत्र मे आत्मागुल के भेदत्रिक का वर्णन किया है।

सूच्यगुल की निष्पन्नता मे श्रेणी शब्द आया है। इस शब्द के अनेक अर्थ होते है। यहाँ क्षेत्रप्रमाण के निरूपण का प्रसग होने से श्रेणि शब्द का अर्थ 'आकाशप्रदेशो की पक्ति' ग्रहण किया गया है।

शास्त्र मे श्रेणि के सात प्रकार कहे गये है—१ ऋजुआयता, २ एकतोवक्रा, ३. द्वितोवक्रा, ४ एकत खहा, ५ द्वित खहा, ६ चक्रवाला, ७ अर्धचक्रवाला।[1]

इन सात भेदो मे से प्रस्तुत मे ऋजुआयता श्रेणि प्रयोजनीय है। अतएव सूच्यगुल का अर्थ यह हुआ कि सूची—सूई के आकार मे दीर्घता की अपेक्षा एक अगुल लबी तथा बाहल्य की अपेक्षा एक प्रदेश ऋजुआयता आकाशप्रदेशो की पक्ति सूच्यगुल कहलाती है।

यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से सूच्यगुलप्रमाण आकाश मे असख्य प्रदेश होते है, लेकिन कल्पना से इनका प्रमाण तीन मान लिया जाए और इन तीन प्रदेशो को समान पक्ति मे ००० इस प्रकार स्थापित किया जाए तो इसका आकार सूई के समान एक अगुल लम्बा होने से इसे सूच्यगुल कहते है।

प्रतरांगुल—प्रतर वर्ग को कहते है और किसी राशि को दो बार लिखकर परस्पर गुणा करने पर जो प्रमाण आए वह वर्ग है। जैसे दो की सख्या को दो बार लिखकर उनका परस्पर गुणा करने पर २ × २ = ४ हुए। यह चार की सख्या दो की वर्गराशि हुई। इसीलिये सूत्र में प्रतरागुल

---

१. ठाणाग पद ७

का लक्षण बताया है—'सूयी सूयीए गुणिया पयरगुले' अर्थात् सूच्यगुल को सूच्यगुल से गुणा करने पर जो प्रमाण हो वह प्रतरागुल है। यद्यपि यह प्रतरागुल भी असख्यात प्रदेशात्मक होता है, लेकिन असत्कल्पना से पूर्व मे सूच्यगुल के रूप मे स्थापित तीन प्रदेशो को तीन प्रदेशो से गुणा करने पर जो नौ प्रदेश हुए, उन नौ प्रदेशो को प्रतरागुल के रूप मे जानना चाहिये। असत्कल्पना से इसकी स्थापना का प्रारूप इस प्रकार होगा—

o o o
o o o
o o o

सूच्यगुल और प्रतरागुल मे यह अतर है कि सूच्यगुल मे दीर्घता तो होती है किन्तु बाहल्य—विष्कभ एक प्रदेशात्मक ही होता है और प्रतरागुल मे दीर्घता एव विष्कम्भ—चौड़ाई समान होती है।

घनांगुल—गणितशास्त्र के नियमानुसार तीन सख्याओ का परस्पर गुणा करने को घन कहते है। ऐसा करने से उस वस्तु की दीर्घता—लम्बाई, विष्कम्भ—चौडाई और पिंडत्व—मोटाई का ज्ञान होता है। घनागुल के द्वारा यही कार्य निष्पन्न किया जाता है। इसीलिये सूत्र मे घनागुल का लक्षण बताया है कि प्रतरागुल को सूच्यगुल से गुणा करने पर घनागुल निष्पन्न होता है—'पयरं सूईए गुणित घणगुले।' प्रकारान्तर से इस प्रकार भी कहा जा सकता है—सूच्यगुल की राशि का परस्पर तीन बार गुणा करने पर प्राप्त राशि—गुणनफल घनागुल है।

यद्यपि यह घनागुल भी असख्यात प्रदेशात्मक होता है, लेकिन असत्कल्पना से उसे यो समझना चाहिये कि पूर्व मे बताये गये नौ प्रदेशात्मक प्रतरागुल मे सूच्यगुल सूचक तीन का गुणा करने पर प्राप्त सत्ताईस सख्या घनागुल की बोधक है। इसकी स्थापना पूर्वोक्त नवप्रदेशात्मक प्रतर के नीचे और ऊपर नौ-नौ प्रदेशों को देकर करनी चाहिये।

o o o
o o o
o o o

o o o
o o o
o o o

o o o
o o o
o o o

यह स्थापना आयाम-विष्कम्भ-पिंड (लम्बाई-चौडाई-मोटाई) की बोधक है और इन सबमे तुल्यता होती है।

उक्त कथन का साराश यह हुआ कि सूच्यगुल द्वारा वस्तु की दीर्घता, प्रतरागुल द्वारा दीर्घता और विष्कभ एव घनागुल द्वारा दीर्घता, विष्कभ और पिंड को जाना जाता है।

अंगुलत्रिक का अल्पबहुत्व—

३३८. एतेसि णं भंते! सूतिअंगुल-पयरंगुल-घणगुलाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा?

सव्वत्थोवे सूतिअगुले, पतरगुले असंखेज्जगुणे, घणगुले असंखेज्जगुणे। से तं आयंगुले।

[३३८ प्र] भगवन्! इन सूच्यगुल, प्रतरागुल और घनागुल मे से कौन किससे अल्प, कौन किससे अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[३३८ उ] आयुष्मन्! इनमे सूच्यगुल सबसे अल्प है, उससे प्रतरागुल असख्यातगुणा है और उससे घनागुल असख्यातगुणा है।

इस प्रकार आत्मांगुल का स्वरूप जानना चाहिए।

विवेचन—सूच्यंगुल आदि अंगुलत्रिक का अल्पबहुत्व उनके स्वरूप से स्पष्ट है। क्योंकि सूच्यंगुल में केवल दीर्घता ही होती है, अतएव वह अपने उत्तरवर्ती दो अंगुलों की अपेक्षा अल्प परिमाण वाला है। प्रतरांगुल में दीर्घता के साथ विष्कंभ भी होने से सूच्यंगुल की अपेक्षा उसका असंख्यात गुणाधिक प्रदेशपरिमाण होना स्वाभाविक है। घनांगुल में लम्बाई और चौड़ाई के साथ मोटाई का भी समावेश होने से उसमें प्रतरांगुल से असंख्यातगुणाधिकता स्पष्ट है। इसी कारण सूच्यंगुल आदि अंगुलत्रिक में पूर्व की अपेक्षा उत्तर अंगुल को असंख्यात-असंख्यात गुणा अधिक कहा है। 'से तं आयंगुले' पद आत्मांगुल के वर्णन की समाप्ति का सूचक है।

उत्सेधांगुल

३३९. से किं तं उस्सेहंगुले ?

उस्सेहंगुले अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—

परमाणू तसरेणू रहरेणू अग्गयं च वालस्स।
लिक्खा जूया य जवो अट्ठगुणविवड्डिया कमसो ॥ ९९ ॥

[३३९ प्र.] भगवन् ! उत्सेधांगुल का क्या स्वरूप है ?

[३३९ उ.] आयुष्मन् ! उत्सेधांगुल अनेक प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—

परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र (बाल का अग्र भाग), लिक्षा (लीख), यूका (जूं) और यव (जौ) ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर आठ गुणे जानना चाहिए। ९९

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में उत्सेधांगुल का स्वरूप बताया है। उत्सेध कहते हैं बढ़ने को। अतएव जो अनन्त सूक्ष्म परमाणु, त्रसरेणु इत्यादि के क्रम से बढ़ता है, वह उत्सेधांगुल कहलाता है। अथवा नारकादि चतुर्गति के जीवों के शरीर की उच्चता-ऊंचाई का निर्धारण करने के लिये जिस अंगुल का उपयोग किया जाता है, उसे उत्सेधांगुल कहते हैं।

उत्सेधांगुल तो एक है किन्तु उसकी अनेकप्रकारता परमाणु, त्रसरेणु आदि की विविधता की अपेक्षा से जानना चाहिए। किन्तु परमाणु, त्रसरेणु आदि स्वयं उत्सेधांगुल नहीं है। उनसे निष्पन्न होने वाला अंगुल उत्सेधांगुल कहलाता है।

उत्सेधांगुल की निष्पत्ति की आद्य इकाई परमाणु है, अतः अब परमाणु आदि के क्रम से उत्सेधांगुल का सविस्तार वर्णन करते हैं।

परमाणुनिरूपण

३४०. से किं तं परमाणू ?

परमाणू दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सुहुमे य १ वावहारिए य २।

[३४० प्र.] भगवन् ! परमाणु क्या है ?

[३४० उ] आयुष्मन् ! परमाणु दो प्रकार का कहा है, यथा—१ सूक्ष्म परमाणु और २ व्यवहार परमाणु।

३४१. तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

[३४१] इनमे से सूक्ष्म परमाणु स्थापनीय है अर्थात् यहाँ वह अधिकृत नही है।

३४२. से किं तं वावहारिए?

वावहारिए अणंताणं सुहुमपरमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं से एगे वावहारिए परमाणुपोग्गले निप्फज्जति।

[३४२ प्र] भगवन् ! व्यवहार परमाणु किसे कहते है?

[३४२ उ] आयुष्मन् ! अनन्तानत सूक्ष्म परमाणुओ के समुदाय-समागम (एकीभाव रूप मिलन) से एक व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है।

विवेचन—सूत्र मे उत्सेधांगुल की आद्य इकाई परमाणु का स्वरूप बतलाया है।

परम+अणु=परमाणु, अर्थात् सब द्रव्यो मे जिसकी अपेक्षा अन्य कोई अणुत्तर (अधिक छोटा) न हो, जिसमे चरमतम अणुत्व हो या जिसका पुन विभाग न हो सके, ऐसे अविभागी अंश को परमाणु कहते है।

परमाणु सामान्यतया पुद्गलद्रव्य की अविभागी पर्याय है, किन्तु कही-कही अन्य द्रव्यो के भी सूक्ष्मतम बुद्धिकल्पित भाग को परमाणु कहा जाता है। इस दृष्टि से परमाणु के चार प्रकार है—१ द्रव्यपरमाणु, २ क्षेत्रपरमाणु, ३ कालपरमाणु, ४ भावपरमाणु। परमाणु से जो आशय ग्रहण किया जाता है, उसके लिए कर्मसाहित्य मे **अविभागप्रतिच्छेद** शब्द का प्रयोग किया जाता है।

परमाणु, पुद्गलद्रव्य की पर्याय होने से रूपी—मूर्त है। उसमे पौद्गलिक गुण—वर्ण, गध, रस और स्पर्श पाये जाते है। तथापि अपनी सूक्ष्मता के कारण वह सामान्य ज्ञानियो द्वारा इन्द्रिय-ग्राह्य नही है—दृष्टिगोचर नही होता है। लेकिन पारमार्थिक प्रत्यक्ष वाले केवलज्ञानी और क्षायोपशमिक ज्ञानी (परम अवधिज्ञानी) उसे जानते-देखते है।

सामान्यतया तो एक आकाशप्रदेश मे एक परमाणु रहता है, लेकिन इसके साथ ही परमाणु मे सूक्ष्म परिणाम व अवगाहन रूप ऐसी विलक्षण शक्ति रही हुई है कि जिस आकाश-प्रदेश को एक परमाणु ने व्याप्त कर लिया है, उसी आकाशप्रदेश मे दूसरा परमाणु भी पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ रह सकता है। इतना ही नही, उसी आकाशप्रदेश मे सूक्ष्म रूप से परिणत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रह सकता है। जैसे एक कमरे मे एक दीपक का प्रकाश पर्याप्त है, किन्तु उसमे अन्य सैकडो दीपको का प्रकाश भी समा जाता है। इसी प्रकार उस एक दीपक के अथवा सैकडो दीपको के प्रकाश को एक लघु बर्तन से आच्छादित कर दिया जाए तो उसी मे वह प्रकाश सिमट जाता है। इससे स्पष्ट है कि उन प्रकाशपरमाणुओ की तरह पुद्गल मे सकोच-विस्तार

रूप में परिणत होने की शक्ति है, अतएव परमाणु या परमाणुओं का पिंड-स्कन्ध जिस स्थान में अवस्थित होता है, उसी स्थान में अन्य परमाणु और स्कन्ध भी रह सकते है ।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी परमाणु की सूक्ष्मता का कुछ अनुमान लग सकता है । पचास शंख परमाणुओ का भार ढाई तोले के लगभग और व्यास एक इंच का दस करोडवां भाग होता है । धूल के एक लघुतम कण मे दस पद्म से भी अधिक परमाणु होते है । सिगरेट को लपेटने के पतले कागज की मोटाई मे एक से एक को सटाकर रखने पर एक लाख परमाणु आ जायेंगे ।

सोडावाटर को गिलास मे डालने पर उसमे जो नन्ही-नन्ही बूंदें उत्पन्न होती है, उनमे से एक बूंद के परमाणुओ की गणना करने के लिये तीन अरब व्यक्तियो को बैठा दे और वे निरन्तर बिना खाये, पीये और सोये प्रतिमिनट यदि तीन सौ की गति से परिगणना करे तो उस बूंद के परमाणुओ की समस्त संख्या को गिनने मे चार माह का समय लग जायेगा ।

बारीक केश को उखाडते समय उसकी जड पर जो रक्त की सूक्ष्म बूंद लगी रहेगी, उसे अणुवीक्षण यन्त्र के माध्यम से इतना बडा रूप दिया जा सकता है कि वह बूंद छह या सात फीट के व्यास वृत्त मे दिखलाई दे तो भी उसके भीतर के परमाणु का व्यास $\frac{1}{५००००}$ इंच ही होगा ।[1]

उपर्युक्त कथन का यह आशय हुआ कि जो परम अणु रूप है, उसी को परमाणु कहते है । जैनदर्शन मे इस परमाणु की विभिन्न अपेक्षाओ से व्याख्या इस प्रकार की गई है—

कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।
एकरसगंधवर्णो द्विस्पर्शः कार्यलिंगश्च ।।[2]

अर्थात् परमाणु किसी से उत्पन्न नही होता अतः वह कारण ही है । उससे छोटी दूसरी कोई वस्तु नही है अतः वह अन्त्य है, सूक्ष्म है और नित्य है । एक रस, एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श वाला है तथा कार्य देखकर ही उसका अनुमान किया जा सकता है—प्रत्यक्ष नही होता है ।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियगेज्झं ।
जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं वियाणाहि ।।[3]

अर्थात् जिसका आदि, मध्य और अन्त स्वयं वही है और जिसे इन्द्रियां ग्रहण नही कर सकती, ऐसे विभागरहित द्रव्य को परमाणु समझना चाहिये ।

परमाणु के उपर्युक्त स्वरूप-निर्देश से यह स्पष्ट है कि परमाणु परम-अणु रूप है । उसके भेद नही हैं, लेकिन सामान्य जनो को समझाने के लिये वीतराग विज्ञानियो ने परमाणु के उपाधिकृत भेदो की कल्पना इस प्रकार की है—१ सूक्ष्म-व्यावहारिक, २ कारणरूप-कार्यरूप ।

---

१ जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान पृ ४७

२. तत्त्वार्थभाष्य, तत्त्वार्थराजवार्तिक, अनुयोगद्वारसूत्र टीका पत्र १६१

३ सर्वार्थसिद्धि पृ. २२१ मे उद्धृत

सूक्ष्म और व्यावहारिक परमाणु के विषय मे विस्तार से आगे विचार किया जा रहा है। अत. यहाँ शेष भेदो के लक्षणों का ही निर्देश करते है—

कारणरूप-कार्यरूप परमाणु—जो पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार धातुओ का हेतु है, वह कारणपरमाणु और स्कन्ध से पृथक् हुए अविभागी अन्तिम अश को कार्यपरमाणु कहते है। अथवा स्कन्ध के विघटन से उत्पन्न होने वाला कार्यपरमाणु है और जिन परमाणुओ के मिलने से कोई स्कन्ध बने वह कारणपरमाणु है।[1]

परमाणु के उपर्युक्त औपाधिक भेदो मे से अब सूक्ष्म और व्यावहारिक परमाणु के विषय मे विचार करते है—

कारण के बिना कार्य नही होता और परमाणुजन्य कार्य—स्कन्ध प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने से सूक्ष्म परमाणु है तो अवश्य किन्तु वह प्रकृत मे अनुपयोगी है। अतएव उसके अस्तित्व को स्वीकार करके भी उसे स्थापनीय मानकर अनन्तानन्त सूक्ष्म पुद्गल-परमाणुओ के एकीभाव रूप सयोग से उत्पन्न होने वाले व्यावहारिक परमाणु का विवेचन करते है।

व्यावहारिक परमाणु

३४३. [१] से ण भंते ! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा।

हंता ओगाहेज्जा।

से ण तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ? नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमति।

[३४३-१ प्र] भगवन् ! व्यावहारिक परमाणु तलवार की धार या छुरे की धार को अवगाहित कर सकता है ?

[३४३-१ उ] हाँ, कर सकता है।

[प्रश्न] तो क्या वह उस (तलवार या छुरे से) छिन्न-भिन्न हो सकता है ?

[उत्तर] यह अर्थ समर्थ नही है अर्थात् ऐसा नही होता। शस्त्र इसका छेदन-भेदन नही कर सकता।

विवेचन—पुद्गल द्रव्य के परमाणु और स्कन्ध ये दो मुख्य भेद है। प्रकारान्तर से छह भेद भी होते हैं—

१. **स्थूल-स्थूल**—मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि ठोस पदार्थ।

२ **स्थूल**—दूध-दही, पानी, तेल आदि तरल पदार्थ।

३ **स्थूल-सूक्ष्म**—प्रकाश, उष्णता आदि।

---

१. नियमसार तात्पर्यवृत्ति २५

४ सूक्ष्म-स्थूल—वायु-वाष्प आदि।

५ सूक्ष्म—कर्मवर्गणा आदि।

६ सूक्ष्म-सूक्ष्म—अन्तिम निरंश पुद्गल परमाणु।[1]

पुद्गल के उक्त छह भेदो मे से व्यवहार परमाणु का समावेश पाचवे सूक्ष्मवर्ग में होता है।

[२] से णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेण वीतीवदेज्जा ? हंता वितीवदेज्जा। से णं तत्थ डहेज्जा ? नो तिणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थ कमति।

[३४३-२ प्र] भगवन् ! क्या वह व्यावहारिक परमाणु अग्निकाय के मध्य भाग से होकर निकल जाता है ?

[३४३-२ उ] आयुष्मन् ! हाँ, निकल जाता है।

[प्र] तब क्या वह उससे जल जाता है ?

[उ] यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि अग्निरूप शस्त्र का उस पर असर नही होता।

विवेचन—अग्नि के द्वारा भस्म नही होने पर शिष्य सोचता है कि जल तो उसे अवश्य ही नष्ट कर देता होगा। अत पुन प्रश्न पूछता है—

[३] से णं भंते ! पुक्खलसवट्टयस्स महामेहस्स मज्झमज्झेणं वीतीवदेज्जा ? हंता वीतीवदेज्जा। से णं तत्थ उदउल्ले सिया ? नो तिणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थ कमति।

[३४३-३ प्र] भगवन् ! क्या व्यावहारिक परमाणु पुष्करसवर्तक नामक महामेघ के मध्य मे से होकर निकल सकता है ?

[३४३-३ उ] आयुष्मन् ! हाँ, निकल सकता है।

[प्र] तो क्या वह वहाँ पानी से गीला हो जाता है ?

[उ] नही, यह अर्थ समर्थ नही है, वह पानी से भीगता नही, गीला नही होता है। क्योकि अप्कायरूप शस्त्र का उस पर प्रभाव नही पडता।

विवेचन—पुष्करसवर्तक एक महामेघ का नाम है, जो उत्सर्पिणीकाल के २१ हजार वर्ष प्रमाण वाले दुषम-दुषम नामक प्रथम आरे की समाप्ति के अनन्तर दूसरे आरे के प्रारम्भ मे सर्वप्रथम बरसता है।

जैन मान्यता के अनुसार व्यवहार काल के दो भेद हैं—उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल। उत्सर्पिणीकाल मे मनुष्यादिक के बल, वैभव, श्री आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि और अवसर्पिणी में

---

१. बादरबादर-बादर बादरसुहुम च सुहुमथूल च।
सुहुम च सुहुमसुहुम धरादिय होदि छब्भेय॥ —गो. जीवकाड ६०३

उत्तरोत्तर ह्रास होता है। ये दोनो प्रत्येक दस-दस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण के होते हैं और प्रत्येक छह-छह विभागो मे विभाजित हैं। जिनको आरा या आरक कहते हैं। उत्सर्पिणी के अनन्तर अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के अनन्तर उत्सर्पिणी का क्रम भी निरन्तर परिवर्तित होता रहता है एव इन दोनो के कुल मिलाकर बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण कालमान को एक कालचक्र कहते है। ऐसे कालचक्र अतीत मे अनन्त हो चुके है और अनागत मे अनन्त होगे। क्योकि काल अनन्त है।

सर्पिणीद्वय काल के छह भेद और कालप्रमाण—१. दुषमादुषमा (२१०० वर्ष), २ दुषमा (२१००० वर्ष), ३ दुषमासुषमा (४२०० वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम), ४ सुषमादुषमा (दो कोडाकोडी सागरोपम), ५. सुषमा (तीन कोडाकोडी सागरोपम), ६ सुषमासुषमा (चार कोडा-कोडी सागरोपम)। ये उत्सर्पिणी काल के छह आरो के नाम है। इनके नामक्रम से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले आरे से लगाकर उत्तरोत्तर सुख के साधनों की वृद्धि होती जाती है। इसके विपरीत अवसर्पिणी काल के भेदो के नाम इस प्रकार है— १ सुषमासुषमा (४ कोडाकोडी सागरोपम), २ सुषमा (तीन कोडाकोडी सागरोपम), ३. सुषमादुषमा (दो कोडाकोडी सागरोपम), ४ दुषम-सुषमा (४२००० वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम), ५ दुषमा (२१००० वर्ष), ६ दुषमादुषमा (२१००० वर्ष)। इन कालभेदो मे क्रमश उत्तरोत्तर जीवो की आयु, श्री आदि मे ह्रास होता जाता है।

अवसर्पिणी कालगत चरम ह्रास के पश्चात् तथा उत्सर्पिणी काल का जब प्रथम आरा दुषमदुषम समाप्त हो जाता है और द्वितीय आरक दुषमा के लगते ही सकल जनो के अभ्युदय के निमित्त पुष्करसवर्तक आदि महामेघ प्रकट होते हैं[1]। पुष्करसवर्तक नामक मेघ भूमिगत समस्त रूक्षता, आतप आदि अशुभ प्रभाव को शात-प्रशात करके धान्यादि का अभ्युदय करता है। इस मेघ मे जल बहुत होता है। इसीलिये शिष्य ने जिज्ञासा व्यक्त की थी कि क्या व्यवहारपरमाणु पुष्कर-सवर्तक मेघ से प्रभावित होता है?

[४] से ण भते! गगाए महाणईए पडिसोय हव्वमागच्छेज्जा? हंता हव्वमागच्छेज्जा। से ण तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा? नो तिणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमति।

[३४३-४ प्र] भगवन्! क्या वह व्यावहारिक परमाणु गगा महानदी के प्रतिस्रोत (विपरीत प्रवाह) मे शीघ्रता से गति कर सकता है?

[३४३-४ उ] आयुष्मन्! हाँ, वह प्रतिकूल प्रवाह मे शीघ्र गति कर सकता है।

[प्र] तो क्या वह उसमे प्रतिस्खलना (रुकावट) प्राप्त करता है?

[उ] यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि (किसी भी) शस्त्र का उस पर असर नही होता है।

विवेचन—प्रतिकूल प्रवाह मे भी उस व्यावहारिक परमाणु के प्रतिस्खलित न होने के उत्तर को सुनकर शिष्य ने पुन अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—

[५] से णं भंते! उदगावत्त वा उदगबिंदु वा ओगाहेज्जा? हता ओगाहेज्जा। से णं तत्थ कुच्छेज्ज वा परियावज्जेज्ज वा? णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमति।

---

१. अनुयोगद्वारसूत्रवृत्ति पृ १६१

सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं भेत्तुं व जं किर न सक्का ।
तं परमाणू सिद्धा वयंति आदी पमाणाणं ॥ १०० ॥

[३४३-५ प्र.] भगवन् ! क्या वह व्यावहारिक परमाणु उदकावर्त (जलभवर) और जलबिन्दु मे अवगाहन कर सकता है ?

[३४३-५ उ.] आयुष्मन् ! हाँ, वह उसमे अवगाहन कर सकता है ।

[प्र.] तो क्या वह उसमे पूतिभाव को प्राप्त हो जाता है—सड जाता है ?

[उ.] यह यथार्थ नही है । उस परमाणु को जलरूपी शस्त्र आक्रांत नही कर सकता है ।

अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र से भी कोई जिसका छेदन-भेदन करने मे समर्थ नही है, उसको ज्ञानसिद्ध केवली भगवान् परमाणु कहते हैं । वह सर्व प्रमाणो का आदि प्रमाण है अर्थात् व्यावहारिक परमाणु प्रमाणो की आद्य इकाई है । १००

विवेचन—परमाणु पुद्‍गलद्रव्य की पर्याय है । अतएव प्रस्तुत सूत्र मे शिष्य ने पुद्‍गल के सडन-गलन धर्म को ध्यान मे रखकर अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है ।

उत्तर मे आचार्य ने बतलाया कि ऐसा कहना, मानना, सोचना यथार्थ नही है । क्योकि शस्त्र का प्रभाव तो स्थूल स्कन्धो—पदार्थों पर ही पडता है, सूक्ष्म रूप मे परिणत पदार्थों पर नही । यद्यपि यह व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म (निश्चय) परमाणुओ का पिड होने से स्कन्ध रूप है, किन्तु स्वभावत· सूक्ष्म रूप मे परिणत होने के कारण उस स्कन्ध (व्यवहारपरमाणु) पर अग्नि, जल आदि किसी भी प्रतिपक्षी का प्रभाव नही पडता है ।

गाथोक्त 'सिद्धा' पद से सिद्धगति को प्राप्त हुए सिद्ध भगवन्त गृहीत नही हुए हैं । मुक्ति मे विराजमान सिद्ध भगवान् वचन-योग से रहित है । इसलिये यहाँ पर सिद्ध शब्द का अर्थ ज्ञानसिद्ध-भवस्थकेवली भगवान् जानना चाहिए ।[1]

परमाणु की विशेषता बतलाने के बाद अब उसके द्वारा निष्पन्न होने वाले कार्यों का वर्णन करते हैं ।

व्यावहारिक परमाणु का कार्य

३४४. अणंताणं वावहारियपरमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेण सा एगा उस्सण्हसण्हिया ति वा सण्हसण्हिया ति वा उड्ढरेणू ति वा तसरेणू ति वा रहरेणू ति वा । अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया । अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू । अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू । अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू । अट्ठ रहणूओ देवकुरु-उत्तरकुरुयाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे । अट्ठ देवकुरु-उत्तरकुरुयाणं मणुयाणं वालग्गा हरिवास-रम्मगवासाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे । अट्ठ हरिवस्स-रम्मयवासाणं मणुस्साण वालग्गा हेमवय-हेरण्णवयवासाण मणुस्साणं से एगे वालग्गे । अट्ठ हेमवय-हेरण्णवयवासाणं मणुस्साणं वालग्गा पुव्वविदेह-अवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे ।

---

१ सिद्धत्ति-ज्ञानसिद्धा. केवलिनो, न तु सिद्धा· सिद्धिगता , तेषा वदनस्यासम्भवादिति ।—अनुयोगद्वारवृत्ति पत्र १६१

अट्ठ पुव्वविदेह-अवरविदेहाणं मणूसाणं वालग्गा भरहेरवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे। अट्ठ भरहेरवयाणं मणूसाणं वालग्गा सा एगा लिक्खा। अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया। अट्ठ जूयातो से एगे जवमज्झे। अट्ठ जवमज्झे से एगे उस्सेहंगुले।

[३४४] उन अनन्तानन्त व्यावहारिक परमाणुओ के समुदयसमितिसमागम (समुदाय के एकत्र होने) से एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु और रथरेणु उत्पन्न होता है।

आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका का एक ऊर्ध्वरेणु होता है। आठ ऊर्ध्वरेणुओ का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओ का एक रथरेणु, आठ रथरेणुओ का एक देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यो का बालाग्र, आठ देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यो के बालाग्रो का एक हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष के मनुष्यो का बालाग्र होता है। आठ हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष के मनुष्यो के बालाग्रो के बराबर हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यो के आठ बालाग्रो के बराबर पूर्व महाविदेह और अपर महाविदेह के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। आठ पूर्वविदेह-अपरविदेह के मनुष्यो के बालाग्रो के बराबर भरत-एरावत क्षेत्र के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। भरत और एरावत क्षेत्र के मनुष्यो के आठ बालाग्रो की एक लिक्षा (लीख) होती है। आठ लिक्षाओ की एक जूँ, आठ जुओं का एक यवमध्य और आठ यवमध्यो का एक उत्सेधागुल होता है।

३४५. एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अगुलाइ कुच्छी, छन्नउती अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा धणू इ वा जुगे इ वा नालिया इ वा अक्खे इ वा मुसले इ वा, एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

[३४५] इस अगुलप्रमाण से छह अगुल का एक पाद होता है। बारह अगुल की एक वितस्ति, चौबीस अगुल की एक रत्नि, अडतालीस अगुल की एक कुक्षि और छियानवै अगुल का एक दड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है। इस धनुषप्रमाण से दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होता है।

विवेचन--इन दो सूत्रो मे बताया गया है कि उत्सेधागुल की निष्पत्ति कैसे होती है? पहले तो सामान्य रूप से कथन किया है कि अनन्त व्यावहारिक परमाणुओ के सयोग से एक उत्श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका आदि की निष्पत्ति होती है और उसके बाद उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका आदि को पूर्व-पूर्व की अपेक्षा आठ-आठ गुणा बतलाया गया है। इन दोनो में से पहले कथन द्वारा यह प्रकट किया गया है कि ये सब अनन्त परमाणुओ द्वारा निष्पन्न होने की दृष्टि से समान हैं और दूसरे प्रकार द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि अनन्त परमाणुओ से निष्पन्न होने की समानता होने पर भी पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर मे अष्टगुणाधिकता रूप विशेषता है। इस प्रकार प्रथम कथन सामान्य रूप एव द्वितीय कथन विशेष रूप समझना चाहिये।

उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका और श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका ये दोनो भी अनन्त परमाणुओ की सूक्ष्म परिणाम-परिणत स्कन्ध अवस्थायें हैं और व्यवहारपरमाणु की अपेक्षा कुछ स्थूल होती है। अत व्यवहार-परमाणु से भिन्नता बताने के लिये इनका पृथक्-पृथक् नामकरण किया है। स्वत या पर के निमित्त से ऊपर, नीचे और तिरछे रूप में उडने वाली रेणु-धूलि का नाम ऊर्ध्वरेणु है। हवा आदि के निमित्त से इधर-उधर उडने वाले धूलिकण त्रसरेणु और रथ के चलने पर चक्र के जोर से उखड़ कर उडने वाली धूलि रथरेणु कहलाती है। बालाग्र, लिक्षा आदि शब्दो के अर्थ प्रसिद्ध हैं।

रथरेणु के पश्चात् देवकुरु-उत्तरकुरु, हरिवर्ष-रम्यक्वर्ष आदि क्षेत्रों के क्रमोल्लेख से उस-उस क्षेत्र संबन्धी शुभ अनुभाव की न्यूनता बताई गई है।

प्रस्तुत सूत्र मे मगध देश में व्यवहृत योजन का माप बताया है—'चत्तारि गाउयाइ जोयण'—चार गव्यूतो का एक योजन होता है। गव्यूत का शब्दार्थ है—वह दूरी जिसमे गाय का रभाना सुना जा सके।[1] सामान्यत गाय का रंभाना एक फर्लांग तक सुना जा सकता है। अत सभव है कि उस समय चार फर्लांग का एक योजन होता हो। इससे यह भी फलित होता है कि अन्यान्य देशो मे योजन के भिन्न-भिन्न माप प्रचलित थे। जिस देश मे सोलह सौ धनुषो का एक गव्यूत होता है, वहाँ छह हजार चार सौ धनुषों का एक योजन होगा।[2]

दिगबर परपरा मे अगुल का प्रमाण इस प्रकार बतलाया है—अनन्तानन्त सूक्ष्म परमाणुओ की एक अवसन्नासन्न, आठ अवसन्नासन्न की एक सन्नासन, आठ सन्नासन का एक त्रुटरेणु (व्यवहाराणु), आठ त्रुटरेणु का एक त्रसरेणु (त्रसजीव के पाव से उडने वाला अणु), आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु, आठ रथरेणु का उत्तम भोगभूमिज का बालाग्र, आठ उत्तम भोगभूमिज के बालाग्र का एक मध्यम भोगभूमिज का बालाग्र, आठ मध्यम भोगभूमिज के बालाग्र का एक जघन्य भोगभूमिज का बालाग्र, आठ जघन्य भोगभूमिज के बालाग्र का एक कर्मभूमिज का बालाग्र, आठ कर्मभूमिज के बालाग्र की एक लिक्षा (लीख), आठ लीख की एक जू, आठ जू का एक यव और आठ यव का एक अगुल, इसके आगे का वर्णन एक-सा है।[3]

उत्सेधांगुल का प्रयोजन

३४६. एएणं उस्सेहंगुलेण किं पओयण ?

एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणूसदेवाण सरीरोगाहणाओ मविज्जंति।

[३४६ प्र] भगवन्! इस उत्सेधागुल से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है?

[३४६ उ] आयुष्मन्! इस उत्सेधागुल से नारको, तिर्यंचो, मनुष्यो और देवो के शरीर की अवगाहना मापी जाती है।

---

१ बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ४१

२ मागधग्रहणात् क्वचिदन्यदपि योजन स्यादिति प्रतिपादित, तत्र यस्मिन् देशे षोडशभिर्धनु शतैर्गव्यूत स्यात्तत्र षड्भिः सहस्रैश्चतुर्भि शतैर्धनुषा योजनं भवतीति। —स्थानांग पद ७. वृत्ति पत्र ४१२

३ तिलोयपण्णत्ति १।१०२।११६, तत्त्वार्थराजवार्तिक, हरिवशपुराण, गो जीवकांड आदि।

विवेचन—सूत्र में उत्सेधागुल के उपयोग का प्रयोजन बताया है कि उससे नारकादिकों के शरीर की अवगाहना मापी जाती है।

जीव दो प्रकार के हैं—मुक्त और ससारी। मुक्त जीवों की अटल अवगाहना होती है, अर्थात् सिद्ध तो जिस मनुष्यशरीर से मुक्ति प्राप्त की उससे त्रिभागन्यून अवगाहना वाले होते है। इनकी यह अवगाहना सादि अपर्यंवसित है। किन्तु ससारी जीव जन्म-मरण रूप ससरण के कारण एक गति से गत्यन्तर मे गमन करते हैं और वहाँ अपने कर्मोदयवशात् जितनी अवगाहना वाला जैसा शरीर प्राप्त होता है, तदनुरूप भवपर्यन्त रहते है। उनकी यह अवगाहना अनियत होती है। इसलिये उनकी अवगाहना का प्रमाण जानना आवश्यक है और यह कार्य उत्सेधागुल द्वारा सपन्न होता है। अतएव अब प्रश्नोत्तरो के द्वारा नारकादि जीवों की अवगाहना का वर्णन करते है।

नारक-अवगाहना निरूपण

३४७. [१] णेरइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोतमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

[३४७-१ प्र] भगवन्! नारको के शरीर की कितनी अवगाहना कही गई है?

[३४७-१ उ] गौतम! नारक जीवो की शरीर-अवगाहना दो प्रकार से प्ररूपित की गई है,—१ भवधारणीय (शरीर-अवगाहना) और २ उत्तरवैक्रिय (शरीर-अवगाहना)। उनमें से भवधारणीय (शरीर) की अवगाहना जघन्य अंगुल के असख्यातवे भागप्रमाण और उत्कृष्ट पाच सौ धनुषप्रमाण है।

उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग एव उत्कृष्ट एक हजार धनुषप्रमाण है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में नारक जीवो की अवगाहना का प्रमाण बताया है। वर्णन करने की दो शैलिया हैं—सामान्य और विशेष। यहाँ सामान्य से समस्त नारक जीवो की भवधारणीय शरीरापेक्षया और उत्तरवैक्रियशरीरापेक्षया अवगाहना का निरूपण किया है।

नारक आदि के शरीर द्वारा अवगाढ आकाश रूप क्षेत्र अथवा नारक आदि जीवो का शरीर अवगाहना शब्द का वाच्यार्थ है। गतिनामकर्म के उदय से नर-नारकादि भव मे जिस शरीर की उपलब्धि होती है और उसकी जो ऊंचाई हो, वह भवधारणीय अवगाहना है। उस प्राप्त शरीर से प्रयोजनविशेष से अन्य शरीर की जो विकुर्वणा की जाती है, वह उत्तरवैक्रिय-अवगाहना कहलाती है।[1]

---

१. भवे-नारकादिपर्यायभवनलक्षणे आयु समाप्ति यावत्सतत ध्रियते या सा भवधारणीया, सहजशरीरगतेत्यर्थः या तु तद्ग्रहणोत्तरकाल कार्यमाश्रित्य क्रियते सा उत्तरवैक्रिया। —अनुयोगद्वारवृत्ति, पत्र १६४

नारको और देवों का भवधारणीय शरीर वैक्रिय होता है। तिर्यंचो एव मनुष्यो का भवधारणीय शरीर तो औदारिक है, किन्तु किन्ही-किन्ही मनुष्यो और तिर्यंचयोनिक जीवों में लब्धिवशात् वैक्रियशरीर भी पाया जाता है।

यद्यपि प्रकृत मे सामान्यत नारको के शरीर की अवगाहना की जिज्ञासा की गई है लेकिन उत्तर मे भेदपूर्वक उस अवगाहना का निर्देश इसलिये किया है कि भेद किये बिना शरीर की अवगाहना के प्रमाण को स्पष्ट रूप से बताना सभव नही है।

इस प्रकार सामान्य से नारको की अवगाहना का प्रमाण कथन करने के पश्चात् अब विशेष रूप से भिन्न-भिन्न पृथ्वियो के नारको की अवगाहना बतलाते हैं।

[२] रयणप्पभापुढवीए नेरइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता ! तं जहा—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभाग उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ य।

[३४७-२ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की कितनी शरीरावगाहना कही है ?

[३४७-२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है—१ भवधारणीय और २. उत्तरवैक्रिय। उनमे से भवधारणीय-शरीरावगाहना तो जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन रत्नि तथा छह अगुलप्रमाण है।

दूसरी उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भागप्रमाण और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष, अढाई रत्नि—दो रत्नि और बारह अगुल है।

[३] सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेण पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ य।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एक्कत्तीसं धणूइं रयणी य।

[३४७-३ प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको की शरीरावगाहना कितनी कही है ?

[३४७-३ उ] गौतम ! उनकी अवगाहना का प्रतिपादन दो प्रकार से किया है। यथा १ भवधारणीय और २ उत्तरवैक्रिय। उनमे से भवधारणीय अवगाहना तो जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष दो रत्नि और बारह अगुल प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्ट इकतीस धनुष और एक रत्नि है।

[४] वालुयपभापुढवीए णेरइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं एक्कतीसं धणूइं रयणी य।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं बासट्ठि धणूइं दो रयणीओ य।

[३४७-४ प्र.] भगवन् ! बालुकाप्रभापृथ्वी के नारको की शरीरावगाहना कितनी बडी प्रतिपादन की गई है ?

[३४७-४ उ] गौतम ! उनकी शरीरावगाहना दो प्रकार से प्रतिपादन की गई हैं। यथा—१ भवधारणीय और २ उत्तरवैक्रिय। इन दोनो में से प्रथम भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट इकतीस धनुष तथा एक रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्ट बासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है।

[५] एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा—पंकप्पभाए भवधारणिज्जा जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जतिभाग उक्कोसेण बासट्ठि धणूइं दो रयणीओ य, उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं पणुवीसं धणुसय।

धूमप्पभाए भवधारणिज्जा जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पणुवीसं धणुसयं, उत्तरवेउव्विया जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभाग उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं।

तमाए भवधारणिज्जा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेण अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं।

[३४७-५] इसी प्रकार समस्त पृथ्वियो के विषय मे अवगाहना सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिये। उत्तर इस प्रकार है—

पंकप्रभापृथ्वी मे भवधारणीय जघन्य अवगाहना अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट बासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग एव उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है।

धूमप्रभापृथ्वी मे भवधारणीय जघन्य (शरीरावगाहना) अगुल के असख्यातवे भाग तथा उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है। उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्यत अगुल के सख्यातवें भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ (दो सौ पचास) धनुष प्रमाण है।

तम:प्रभापृथ्वी में भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ धनुष प्रमाण है। उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष है।

[६] तमतमापुढविनेरइयाणं भते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता। त जहा—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंच धणुसयाइ।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेणं अंगुलस्स सखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

[३४७-६ प्र] भगवन्! तमस्तम पृथ्वी के नैरयिको की शरीरावगाहना कितनी बड़ी निरूपित की गई है?

[३४७-६ उ] गौतम! वह दो प्रकार की कही है—१ भवधारणीय और २ उत्तरवैक्रिय रूप।

उनमे से भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की है तथा उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार धनुष प्रमाण है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे विशेषापेक्षया सातो नरकपृथ्वियो के नैरयिको की भवधारणीय एव उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना की प्ररूपणा की गई है।

सातो पृथ्वियो मे बताई गई उत्कृष्ट भवधारणीय अवगाहना उन-उन पृथ्वियो के अन्तिम प्रस्तरो मे होती है। भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना से उत्तरवैक्रिय अवगाहना का प्रमाण सर्वत्र दूना जानना चाहिये।

दिगम्बर साहित्य में भी नारको की उत्कृष्ट भवधारणीय शरीरावगाहना का प्रमाण यहाँ बतलाए गए प्रमाण के समान ही है। पृथक्-पृथक् प्रस्तरो की अपेक्षा किया गया पृथक्-पृथक् निर्देश इस प्रकार है—

प्रस्तर	प्रथम पृ	द्वि पृथ्वी	तृ पृथ्वी	चतु पृथ्वी	पचम पृथ्वी	षष्ठ पृथ्वी	सप्तम पृथ्वी
सख्या	ध र अ*	ध र अ	ध र अ	ध र अ	ध र अ	ध र अ	ध र अ
१	०,३,०	८,२,२ २/११	१७,१,१० २/३	३५,२,२० ४/७	७५,०,०	१६६,२,१६	५००,०,०[१]
२	१,१,८ १/२	९,०,२२ ४/११	१९,०,९ १/३	४०,०,१७ १/७	८७,२,०	२०८,१,८	
३	१,३,१७	९,३,१८ ६/११	२०,३,८	४४,२,१३ ५/७	१००,०,०	२५०,०,०	
४	२,२,१ १/२	१०,२,१४ ८/११	२२,२,६ २/३	४९,०,१० २/७	११२,२,०		
५	३,०,१०	११,१,१० १०/११	२४,१,५ १/३	५३,२,६ ६/७	१२५,०,०		

१ आधार—तिलोयपण्णत्ति २/२१७-२७०, राजवार्तिक ३/३

* सकेत—ध धनुष, र- रत्नि (हाथ), अ. अगुल (गणना-१ धनुष = ४ हाथ, = २४ अगुल)

६.	३,२,१८ १/२	१२,०,७ १/११	२६,०,४	५८,०,३ ३/७
७.	४,१,३	१२,३,३ ३/११	२७,३,२ २/३	६२,२,०
८.	४,३,११ १/२	१३,१,२३ ५/११	२९,२,१ १/३	
९	५,१,२०	१४,७,१९ ७/११	३१,१,०	
१०.	६,०,४ १/२	१४,३,१५ ९/११		
११.	६,२,१३	१५,२,१२		
१२.	७,०,२१ १/२			
१३	७,३,६			

भवनपति देवों की शरीरावगाहना

३४८. [१] असुरकुमाराणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोतमा ! दुविहा पण्णत्ता ! तं०—भवधारणिज्जा य १ उत्तरवेउव्विया य २ ।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ । तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसत-सहस्सं ।

[३४८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो की कितनी शरीरावगाहना है ?

[३४८-१ उ] गौतम ! वह दो प्रकार की है, यथा—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय अवगाहना ।

उनमे से भवधारणीय शरीरावगाहना तो जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट सात रत्नि प्रमाण है । उत्तरवैक्रिय जघन्य अवगाहना अगुल के सख्यातवे भाग एव उत्कृष्ट एक लाख योजन प्रमाण है ।

[२] एवं असुरकुमारगमेणं जाव थणितकुमाराणं ताव भाणियव्वं ।

[३४८-२] असुरकुमारो की अवगाहना के अनुरूप ही नागकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो पर्यन्त समस्त भवनवासी देवो की दोनो प्रकार की अवगाहना का प्रमाण जानना चाहिये ।

पंच स्थावरों की शरीरावगाहना

३४९. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग । एव सुहुमाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाणं बादराणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाणं च भाणियव्वं । एवं जाव बादरवाउक्काइयाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाणं भाणियव्वं ।

[३४९-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की शरीरावगाहना कितनी कही है ?

[३४९-१ उ.] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीवो की शरीरावगाहना) जघन्य भी अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट भी अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है ।[1] इसी प्रकार सामान्य

१ असख्यात के असख्यात भेद होने से जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट अवगाहना अधिक है । यही अपेक्षा सर्वत्र जानना चाहिये ।

रूप से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की और (विशेष रूप से) सूक्ष्म अपर्याप्त और पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की तथा सामान्यत बादर पृथ्वीकायिको एव विशेषत अपर्याप्त और पर्याप्त पृथ्वीकायिकों की यावत् पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवो की शरीरावगाहना जानना चाहिये।

[२] वणस्सइकाइयाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण सातिरेगं जोयणसहस्सं।

सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहियाण १ अपज्जत्तयाणं २ पज्जत्तगाणं ३ तिण्ह वि जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं।

बादरवणस्सतिकाइयाणं जहन्नेण अंगुलस्स असखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयण-सहस्सं; अपज्जत्तयाण जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाण जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्सं।

[३४९-२ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवो की शरीरावगाहना कितनी है ?

[३४९-२ उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की है।

सामान्य रूप मे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और (विशेष रूप मे) अपर्याप्त तथा पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

औघिक रूप से बादर वनस्पतिकायिक जीवो की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण और उत्कृष्ट साधिक एक हजार योजन प्रमाण है। विशेष—अपर्याप्त बादर वनस्पति-कायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

पर्याप्त (बादर वनस्पतिकायिक जीवो) की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट साधिक एक हजार योजन प्रमाण होती है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तिर्यंचगति के त्रस और स्थावर रूप दो भेदो मे से पृथ्वीकायिक आदि पाच स्थावर जीवो की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है।

द्वीन्द्रिय जीवों की अवगाहना

३५०. [१] एवं बेइंदियाण पुच्छा भाणियव्वा—बेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं; अपज्जत्तयाण जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जइभाग, उक्कोसेण वि अगुलस्स असखेज्जइभाग; पज्जत्तयाण ज० अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं।

[३५०-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की अवगाहना कितनी है ?

[३५०-१ उ] गौतम ! (सामान्य रूप से) द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण है।

अपर्याप्त (द्वीन्द्रिय जीवों) की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

पर्याप्त (द्वीन्द्रिय जीवो) की जघन्य शरीरावगाहना अगुल के असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण है।

विवेचन—द्वीन्द्रिय जीवो की अवगाहनावर्णन के प्रसग मे पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण बतलाई है, वह स्वयभूरमणसमुद्र मे उत्पन्न शखो आदि की अपेक्षा से जानना चाहिये।

किसी-किसी प्रति मे द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो की जघन्य अवगाहना अगुल के सख्यातवे भाग की लिखी है, यह चिन्तनीय है।

त्रीन्द्रिय जीवों की शरीरावगाहना

[२] तेइंदियाणं पुच्छा गो० ! जहन्नेणं अगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइ; अपज्जत्तयाणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाण जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

[३५०-२ प्र] भगवन्! त्रीन्द्रिय जीवो की अवगाहना का मान कितना है?

[३५०-२ उ] गौतम! सामान्यत त्रीन्द्रिय जीवो की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस की है।

अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तको की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूत प्रमाण है।

विवेचन—पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की बताई गई तीन गव्यूत प्रमाण उत्कृष्ट अवगाहना अढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकीखड और अर्धपुष्कर द्वीप) के बाहर के द्वीपो मे रहने वाले कर्णश्रृगाली आदि त्रीन्द्रिय जीवो की अपेक्षा जानना चाहिये।

चतुरिन्द्रिय जीवों की शरीरावगाहना

[३] चउरिंदियाणं पुच्छा, गो० ! जहन्नेण अगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं; अपज्जत्तयाणं जहन्नेणं उक्कोसेण वि अगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाण पुच्छा, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं।

[३५०-३ प्र] भगवन्! चतुरिन्द्रिय जीवो की अवगाहना कितनी है?

[३५०-३ उ.] गौतम! औघिक रूप से चतुरिन्द्रिय जीवो की जघन्य शरीरावगाहना अगुल के असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार गव्यूत प्रमाण है।

अपर्याप्त (चतुरिन्द्रिय जीवों) की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र है। पर्याप्तकों की जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग एवं उत्कृष्टतः चार गव्यूत प्रमाण है।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का चार गव्यूत प्रमाण अढाई द्वीप से बाहर के भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से बताया गया है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की शरीरावगाहना

३५१. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

[३५१-१ प्र] भगवन् ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना कितनी है ?

[३५१-१ उ] गौतम ! (सामान्य रूप में तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की) जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

[२] जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! एवं चेव। सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियाणं एवं चेव।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियाणं पुच्छा, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असं०।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियाणं पुच्छा, जहन्नेणं अंगु० असंखे० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियाणं पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असं० उक्कोसेण अंगु० असं०।

पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंगु० असंखे०, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

[३५१-२ प्र] भगवन् ! जलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना के विषय में पृच्छा है ?

[३५१-२ उ] गौतम ! इसी प्रकार है। अर्थात् जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

[प्र] सम्मूर्च्छिम जलचरतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना के लिये जिज्ञासा है ?

[उ] गौतम ! सम्मूर्च्छिम जलचरतिर्यंचयोनिकों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की जानना चाहिये।

[प्र] अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचरतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उनकी (अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचरतिर्यंचयोनिकों की) जघन्य शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रातजलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! उनकी शरीरावगाहना जघन्यत अगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्टत योजनसहस्र की है।

[प्र] अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रातजलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! उनकी शरीरावगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट भी अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भजजलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य शरीरावगाहना अगुल के असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजनप्रमाण है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम सामान्य रूप से पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिको की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है, तत्पश्चात् उनके जलचर, स्थलचर और खेचर, इन तीन प्रकारो में से जलचर पचेन्द्रिय तिर्यंच जीवो की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है । उनके सात अवगाहना-स्थान हैं—१ सामान्य जलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, २ सामान्य संमूर्च्छिम जलचरपचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिक, ३ अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, ४ पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर-पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक ५ सामान्य गर्भज जलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक, ६ अपर्याप्त गर्भज जलचर-पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक, ७ पर्याप्त गर्भज जलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक । इसी प्रकार के अवगाहना-स्थान स्थलचर और खेचर पचेन्द्रियतिर्यचयोनिको के भी जानना चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यच चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन तीन भेदों वाले होने से और प्रत्येक के सात-सात अवगाहनास्थान होने से कुल मिलाकर स्थलचर के इक्कीस अवगाहनास्थान हो जाते हैं तथा एक अवगाहनास्थान सामान्य पचेन्द्रिय तिर्यचो का है। इस प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के कुल मिलाकर अवगाहनास्थान छत्तीस होते हैं।

जलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको के उक्त सात अवगाहनास्थानो मे से जो उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण की बताई है, वह स्वयभूरमणसमुद्र के मत्स्यो की अपेक्षा जानना चाहिये।

स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक तीन प्रकार के हैं—१ चतुष्पद, २ उरपरिसर्प, ३ भुज-परिसर्प । इन तीन प्रकारो मे से अब चतुष्पदो की अवगाहना का प्रमाण बतलाते हैं—

[३] चउप्पयथलयराणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगुलस्स असं०, उक्कोसेणं छ गाउयाइं।

सम्मुच्छिमचउप्पयथलयराणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असं०, उक्कोसेणं गाउयपुहत्तं।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयराणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असं० उक्को० अंगु० असं०।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयराणं पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगु० असंखे०, उक्को० गाउयपुहत्तं।

गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! जह० अंगु० अस०, उक्को० छ गाउयाइं।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपचेंदियाणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं अंगु० असं०।

पज्जत्तयाणं जहन्नेणं अंगु० असखे०, उक्कोसेण छ गाउयाइ।

उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियाणं पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अंगु० असं० उक्कोसेण जोयणसहस्स।

सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपचेंदियाणं पुच्छा, गो० ! जहन्नेणं अगु० असंखे० उक्कोसेणं जोयणपुहत्तं।

अपज्जत्तयाण जह० अंगु० असं०, उक्कोसेणं अंगुल० असं०।

पज्जत्तयाणं जह० अंगु० असंखे०, उक्कोसेणं जोयणपुहत्तं।

गब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयर० जह० अंगु० असं० उक्कोसेण जोयणसहस्स;

अपज्जत्तयाणं जह० अगु० असं०, उक्कोसेण अंगु० अस।

पज्जत्तयाणं जह० अंगु० असंखे०, उक्कोसेणं जोयणसहस्स।

भुयपरिसप्पथलयराणं पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असंखे० उक्कोसेण गाउयपुहत्त।

सम्मुच्छिमभुय० जाव जह० अंगु० अस० उक्को० धणुपुहत्त।

अपज्जत्तगसम्मुच्छिमभुय० जाव पुच्छा, गो० ! जह० अगु० असं०, उक्को० अगु० असं०।

पज्जत्तयाणं जह० असंगु० संखे०, उक्कोसेण धणुपुहत्तं।

गब्भवक्कतियभुय० जाव पुच्छा, गो० ! जह० अगु० अस०, उक्कोसेणं गाउयपुहत्त।

अपज्जत्तयाणं जह० अंगु० असं०, उक्कोसेणं अगु० अस०।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतिय० जाव पुच्छा, गो० ! जह० अंगु० असखे०, उक्को० गाउयपुहत्तं।

[३५१-३ प्र] भगवन् ! चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की अवगाहना के विषय मे जिज्ञासा है ?

[३५१-३ उ] गौतम ! सामान्य रूप मे (चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंचो की) जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग एव उत्कृष्ट छह गव्यूति की है।

[प्र.] सम्मूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट गव्यूतिपृथक्त्व (दो से नौ गव्यूति) प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंचो की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य एव उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की कितनी शरीरावगाहना है ?

[उ.] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट गव्यूतिपृथक्त्व की है ।

[प्र] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की कितनी अवगाहना है ?

[उ.] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट छह गव्यूति प्रमाण शरीरावगाहना है ।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की कितनी शरीरावगाहना है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट भी अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण है ।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की शरीराव-गाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण और उत्कृष्ट छह गव्यूति प्रमाण है ।

विवेचन—यहाँ चतुष्पदस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंच जीवो की सात अवगाहनास्थानो की अपेक्षा प्रत्येक की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण बतलाया है । गर्भज चतुष्पदो की छह गव्यूतिप्रमाण उत्कृष्ट अवगाहना देवकुरु आदि उत्तम भोगभूमिगत गर्भज हाथियो की अपेक्षा जानना चाहिये ।

अब स्थलचर के दूसरे भेद उरपरिसर्पों की अवगाहना का प्रमाण बतलाते है—

[प्र] भगवन् ! उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट योजनसहस्र (एक हजार योजन) की है ।

[प्र] भगवन् ! सम्मूच्छिम उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण और उत्कृष्ट योजनपृथक्त्व है ।

[प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूच्छिम उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंचो की अवगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की है ।

[प्र.] पर्याप्त सम्मूच्छिम उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंचो की कितनी अवगाहना है ?

[उ.] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट योजनपृथक्त्व की है ।

[प्र.] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्त उरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की अवगाहना का प्रमाण कितना है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अवगाहना अगुल का असख्यातवा भाग है और उत्कृष्ट अवगाहना एक सहस्र योजन की है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भजउरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यंचों की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक उरपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है।

विवेचन—प्रस्तुत प्रश्नोत्तरो में स्थलचर के दूसरे भेद उरपरिसर्पपचेन्द्रिय तिर्यचो के सात अवगाहनास्थानो मे जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है। इनमे गर्भज पर्याप्त उरपरिसर्पो की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन मनुष्यक्षेत्रबहिर्द्वीपवर्ती गर्भज सर्पों की अपेक्षा जानना चाहिए।

[प्र] भगवन् ! अब भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिको की अवगाहना जानने की जिज्ञासा है ?

[उ] गौतम ! सामान्य से भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रिय तिर्यचो की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूतिपृथक्त्व की है।

[प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिको की अवगाहना का प्रमाण क्या है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की अवगाहना है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिको की अवगाहना का प्रमाण क्या है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना का प्रमाण अगुल का असख्यातवा भाग है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिको की अवगाहना का प्रमाण कितना है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की है।

[प्र.] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्त भुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना का प्रमाण क्या है ?

[उ.] गौतम ! उनकी शरीरावगाहना का प्रमाण जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट गव्यूतपृथक्त्व है।

[प्र.] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्त अपर्याप्त भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ.] गौतम ! उनकी शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल का असंख्यातवें भाग है।

[प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट गव्यूतपृथक्त्व प्रमाण है।

विवेचन—प्रस्तुत प्रश्नोत्तरों में भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अपेक्षाओं से सात अवगाहनास्थानों में प्रमाण बतलाया है। आगे खेचर-पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाते हैं।

[४] खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण०, गो० ! जह० अंगु० असं० उक्को० धणुपुहत्तं।
सम्मुच्छिमखहयराणं जहा भुयपरिसप्पसम्मुच्छिमाणं तिसु वि गमेसु तहा भाणियव्वं।
गब्भवक्कंतियाण जह० अंगु० अस०, उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।
अपज्जत्तयाण जहन्नेण अंगु० अस०, उक्को० अंगु० असं०।
पज्जत्तयाणं जह० अंगु० असंखे०, उक्को० धणुपुहत्तं।

[३५१-४ प्र] भगवन् ! खेचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[३५१-४ उ] गौतम ! उनकी जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व प्रमाण है तथा सामान्य सम्मूर्च्छिम खेचरपंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना सम्मूर्च्छिम जन्म वाले भुजपरिसर्प पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के तीन अवगाहना-स्थानों के बराबर समझ लेना चाहिये।

[प्र] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्त खेचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त खेचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की अवगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज खेचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ?

[उ] गौतम! उनकी जघन्य शरीरावगाहना का प्रमाण अगुल का असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व है।

[५] **एत्थ संगहणिगाहाओ भवति। तं जहा—**

जोयणसहस्स गाउयपुहत्त तत्तो य जोयणपुहत्तं।
दोण्हं तु धणुपुहत्तं सम्मुच्छिम होइ उच्चत्तं॥ १०१॥
जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्स।
गाउयपुहत्त भुयगे पक्खीसु भवे धणुपुहत्त॥ १०२॥

[३५१-५] उक्त समग्र कथन की सग्राहक गाथाए इस प्रकार हैं—

सर्मूच्छिम जलचरतिर्यंचपचेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन, चतुष्पदस्थलचर की गव्यूतिपृथक्त्व, उरपरिसर्पस्थलचर की योजनपृथक्त्व, भुजपरिसर्पस्थलचर की एव खेचरतिर्यंचपचेन्द्रिय की धनुषपृथक्त्व प्रमाण है। १०१

गर्भज तिर्यच पचेन्द्रिय जीवो मे से जलचरो की एक हजार योजन, चतुष्पदस्थलचरो की छह गव्यूति उरपरिसर्पस्थलचरो की एक हजार योजन, भुजपरिसर्पस्थलचरो की गव्यूति-पृथक्त्व और पक्षियो (खेचरो) की धनुषपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट शरीरावगाहना जानना चाहिये। १०२

विवेचन—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरो मे खेचरपचेन्द्रिय तिर्यंचो की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है। इसके साथ ही एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त के समस्त तिर्यंचगति के जीवो की अवगाहना का वर्णन समाप्त हुआ।

उपर्युक्त कथन को निम्नलिखित प्रारूप द्वारा सुगमता से समझा जा सकता है—

अवगाहना क्रम	नाम	जघन्य अवगाहना	उत्कृष्ट अवगाहना
१	सामान्य पचेन्द्रिय	अगु के असख्यातवे भाग	एक हजार योजन प्रमाण
जलचर			
१	सामान्य जलचर	अगु के अस भाग	एक हजार योजन
२	सर्मूच्छिम जलचर	अगु के असख्या भाग	एक हजार योजन
३	अपर्या ,,	,, ,, ,, ,,	अगुल के असख्यातवे भाग
४	पर्याप्त ,,	,, ,, ,, ,,	एक हजार योजन
५	सामान्य गर्भज	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,
६	अपर्याप्त ,,	,, ,, ,, ,,	अगुल के असख्यातवे भाग
७	पर्याप्त ,,	,, ,, ,, ,,	एक हजार योजन प्रमाण
स्थलचर (क) चतुष्पद			
१	सामान्य चतुष्पद	अगुल के असंख्या भाग	छह गव्यूति प्रमाण
२	संमू ,,	,, ,, ,, ,,	गव्यूतिपृथक्त्व

अवगाहना क्रम	नाम	जघन्य अवगाहना	उत्कृष्ट अवगाहना
३	अप समू ,,	अगुल के असख्यातवे भाग	अगुल के असख्यातवे भाग
४	पर्या ,, ,,	,, ,, ,, ,,	गव्यूतपृथक्त्व
५	सामान्य गर्भज	,, ,, ,, ,,	छह गव्यूति प्रमाण
६.	अप. ,,	,, ,, ,, ,,	अगुल के असख्यातवे भाग
७.	पर्या ,,	,, ,, ,, ,,	छह गव्यूति प्रमाण
(ख) उरपरिसर्प			
१	सामान्य उरपरिसर्प	अगुल के अस भाग	एक हजार योजन प्रमाण
२	समू ,,	,, ,, ,, ,,	योजनपृथक्त्व
३	,, अप	,, ,, ,, ,,	अगुल के असख्यातवे भाग
४	,, पर्या	,, ,, ,, ,,	योजनपृथक्त्व
५	सामान्य गर्भज	,, ,, ,, ,,	एक हजार योजन प्रमाण
६	अप ग	,, ,, ,, ,,	अगुल का असख्यातवा भाग
७.	पर्या ग	,, ,, ,, ,,	एक हजार योजन प्रमाण
(ग) भुजपरिसर्प			
१	सामान्य भुजपरिसर्प	अगु का असख्यातवे भा	गव्यूतिपृथक्त्व
२	सामान्य भुज समू	,, ,, ,, ,,	धनुषपृथक्त्व
३	समू ,, अपर्याप्त	,, ,, ,, ,,	अगुल का अस भाग
४	,, ,, पर्याप्त	,, ,, ,, ,,	धनुषपृथक्त्व
५	सामान्य भुज गर्भज	,, ,, ,, ,,	गव्यूतिपृथक्त्व
६	गर्भ भुज. अप	,, ,, ,, ,,	अंगुल का असख्या भाग
७	,, ,, पर्याप्त	,, ,, ,, ,,	गव्यूतिपृथक्त्व
खेचर			
१	सामान्य खेचर	,, ,, ,, ,,	धनुषपृथक्त्व
२	,, समू खेचर	,, ,, ,, ,,	,, ,,
३	समू खेचर अप	,, ,, ,, ,,	अगुल का अस भाग
४	,, ,, पर्याप्त	,, ,, ,, ,,	धनुषपृथक्त्व
५	सामान्य गर्भज खेचर	,, ,, ,, ,,	,, ,,
६	गर्भज खेचर अप	,, ,, ,, ,,	अगुल का असं भाग
७	,, ,, पर्याप्त	,, ,, ,, ,,	धनुषपृथक्त्व

इस प्रकार तिर्यंच पचेन्द्रियो के छत्तीस अवगाहनास्थानो का जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाण जानना चाहिए।

मनुष्यगति-अवगाहनानिरूपण

३५२. [१] मणुस्साणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं ।

[३५२-१ प्र] भगवन् ! मनुष्यो की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

[३५२-१ उ.] गौतम (सामान्य रूप मे) मनुष्यों की अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट तीन गव्यूति है ।

[२] सम्मुच्छिममणुस्साणं जाव गोयमा ! जहन्नेणं अंगु० असं०, उक्को० अंगु० असं० ।

[३५२-२ प्र.] भगवन् ! सम्मूच्छिम मनुष्यो की अवगाहना कितनी है ?

[३५२-२ उ.] गौतम ! सम्मूच्छिम मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण है ।

[३] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव गोयमा ! जह० अंगु० अस०, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं ।

अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा, गो० ! जह० अगु० असं० उक्कोसेण वि अगु० असं० ।

पज्जत्तयग० पुच्छा गो० ! जह० अंगु० असंखे०, उक्कोसेणं तिन्नि गाउआइं ।

[३५२-३ प्र] भगवन् ! गर्भव्युत्क्रान्त मनुष्यो की अवगाहना की पृच्छा है ?

[३५२-३ उ.] गौतम ! सामान्य रूप मे गर्भज मनुष्यो की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट तीन गव्यूति प्रमाण है ।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त मनुष्यो की अवगाहना कितनी है ?

[उ] उनकी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है ।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यो की अवगाहना का प्रमाण कितना है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य अवगाहना अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण है ।

विवेचन—प्रस्तुत प्रश्नोत्तरो मे मनुष्यो की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है । मनुष्यो के पाच अवगाहनास्थान हैं—१ सामान्य मनुष्य, २ सम्मूच्छिम मनुष्य, ३ गर्भज मनुष्य, ४ पर्याप्त गर्भज मनुष्य और ५ अपर्याप्त गर्भज मनुष्य । संमूच्छिम तिर्यंचो की तरह सम्मूच्छिम मनुष्यो मे अपर्याप्त और पर्याप्त ये दो विकल्प नही होते । सम्मूच्छिम मनुष्य गर्भज मनुष्यो के शुक्र, शोणित आदि में ही उत्पन्न होते हैं और वे अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते है । अत उनमें पर्याप्त, अपर्याप्त विकल्प सभव न होने से तज्जन्य अवगाहनास्थान भी नही बताये हैं ।

सामान्य पद में मनुष्यों की जो उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण कही गई है, वह देवकुरु आदि के मनुष्यों की अपेक्षा जानना चाहिए।

दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में मनुष्यगति सम्बन्धी शरीरावगाहना का प्रमाण क्षेत्रापेक्षा और सुषमासुषमा आदि कालों की अपेक्षा से भी पृथक्-पृथक् बतलाया है। ज्ञातव्य होने से उसको यहाँ उद्धृत करते हैं।

भरतादि क्षेत्रों तथा भूमि की अपेक्षा अवगाहना का प्रमाण इस प्रकार है[1]—

गणना—२००० धनुष का एक कोस

क्रम	अधिकरण		अवगाहना	
	क्षेत्रनिर्देश	भूमिनिर्देश	जघन्य	उत्कृष्ट
१	भरत, ऐरवत	कर्मभूमि	३½ हाथ	५२५ धनुष
२	हैमवत, हैरण्यवत	जघन्य भोगभूमि	५२५,५०० धनुष	२००० धनुष
३	हरि, रम्यक	मध्यम भोगभूमि	२००० धनुष	४००० धनुष
४	विदेह	उत्तम कर्मभूमि	५०० धनुष	५०० धनुष
५	देवकुरु, उत्तरकुरु	उत्तम भोगभूमि	४००० धनुष	६००० धनुष
६	अन्तर्द्वीप	कुभोगभूमि	५०० धनुष	२००० धनुष

छह आरो की अपेक्षा मनुष्यो की अवगाहना[2]—

कालनिर्देश	अवसर्पिणी		कालनिर्देश	उत्सर्पिणी	
	जघन्य	उत्कृष्ट		जघन्य	उत्कृष्ट
सुषमासुषमा	४००० ध	६००० ध	दुषमादुषमा	१ हाथ	३ या ३½ हाथ
सुषमा	२००० ध	४००० ,,	दुषमा	३ या ३½ हाथ	७ हाथ
सुषमासुषमा	५२५ ध	२००० ,,	दुषमासुषमा	७ हाथ	५२५ धनुष
दुषमासुषमा	७ हाथ	५२५ ,,	सुषमादुषमा	५२५ धनुष	२००० धनुष
दुषमा	३ या ३½ हाथ	७ हाथ	सुषमा	२००० धनुष	४००० धनुष
दुषमादुषमा	१ हाथ	३ या ३½ हाथ	सुषमासुषमा	४००० धनुष	६००० धनुष

इस प्रकार से मनुष्यो की अवगाहना बतलाने के बाद भवनपति देवो का वर्णन पूर्व मे कर दिये जाने से अब देवगति के वाणव्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिक निकाय के देवो की अवगाहना का निरूपण किया जाता है।

१ आधार—मूलाचार १०६३,१०८७, सर्वार्थसिद्धि ३/२९-३१, तत्त्वार्थराजवार्तिक ३/२९-३१, धवला ४/१,३,२/४५, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ११/५४, तत्त्वार्थसार २/१३७

२ आधार—तिलोयपण्णत्ति ४।३३५, ३९६, ४०४, १२७७, १४७५, १५३६, १५६४, १५६८, १५७६, १५९५ १५९७, १५९८, १६००, १६०१, १६०२, १६०४ गाथायें।

वाण-व्यंतर और ज्योतिष्क देवों की अवगाहना

३५३. वाणमंतराणं भवधारणिज्जा उत्तरवेउव्विया य जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वं ।

[३५३] वाणव्यंतरो की भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रियशरीर की अवगाहना असुरकुमारो जितनी जानना चाहिये ।

३५४. जहा वाणमंतराणं तहा जोतिसियाणं ।

[३५४] जितनी (भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय रूप) अवगाहना वाणव्यतरो की है, उतनी ही ज्योतिष्क देवो की भी है ।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देवनिकायो की शरीरावगाहना का प्रमाण पूर्व मे कथित असुरकुमारो की अवगाहना के अतिदेश द्वारा बतलाया है। जिसका तात्पर्य यह हुआ कि असुरकुमारो की जो भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अगल के असख्यातवे भाग तथा उत्कृष्ट सात रत्नि और उत्तरवैक्रिय की जघन्य अवगाहना अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की कही है, इतनी ही अवगाहना इन व्यतरो एव ज्योतिष्क देवो की भी है ।

लब्धि की अपेक्षा देव पर्याप्तक ही होते है। अतएव पर्याप्त, अपर्याप्त विकल्प सभव नही होने से इनकी पृथक्-पृथक् अवगाहना का प्रमाण नही बताया है, किन्तु वैक्रियशरीरी होने से विविध प्रकार के उत्तरवैक्रिय रूप निष्पन्न करने की क्षमता वाले होने से तत्सबन्धी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाया है ।

वैमानिक देवों की अवगाहना

३५५. [१] सोहम्मयदेवाणं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा प० । तं०—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य । तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभाग उक्कोसेणं सत्त रयणीओ ।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेण अगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसत-सहस्सं ।

[३५५-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प के देवो की शरीरावगाहना कितनी है ?

[३५५-१ उ] गौतम ! (सौधर्मकल्प के देवो की अवगाहना) दो प्रकार की कही गई है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । इनमे से भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सात रत्नि है ।

उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन प्रमाण है ।

[२] जहा सोहम्मे तहा ईसाणे कप्पे वि भाणियव्वं ।

[३५५-२] ईशानकल्प मे भी देवो की अवगाहना का प्रमाण सौधर्मकल्प जितना ही जानना चाहिये ।

[३] जहा सोहम्मयदेवाणं पुच्छा तहा सेसकप्पाणं देवाणं पुच्छा भाणियव्वा जाव अच्चुय-कप्पो—

सणंकुमारे भवधारणिज्जा जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं छ रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे ।

जहा सणंकुमारे तहा माहिंदे ।

बंभलोग-लंतएसु भवधारणिज्जा जह० अंगुल० असं०, उक्को० पंच रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे ।

महासुक्क-सहस्सारेसु भवधारणिज्जा जहन्नेणं अंगु० असं०, उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे ।

आणत-पाणत-आरण-अच्चुतेसु चउसु वि भवधारणिज्जा जह० अंगु० असं०, उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे ।

[३५५-३] सौधर्मकल्प के देवो की शरीरावगाहना विषयक प्रश्न की तरह ईशानकल्प को छोडकर शेष अच्युतकल्प तक के देवो की अवगाहना सबन्धी प्रश्न पूर्ववत् जानना चाहिये। उत्तर इस प्रकार हैं—

सनत्कुमारकल्प मे भवधारणीय जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट छह रत्नि प्रमाण है, उत्तरवैक्रिय अवगाहना सौधर्मकल्प के बराबर है।

सनत्कुमारकल्प जितनी अवगाहना माहेन्द्रकल्प मे जानना।

ब्रह्मलोक और लातक—इन दो कल्पो मे भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट अवगाहना पाच रत्नि प्रमाण है तथा उत्तरवैक्रिय अवगाहना का प्रमाण सौधर्मकल्पवत् है।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पो मे भवधारणीय अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट चार रत्नि प्रमाण है तथा उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना सौधर्मकल्प के समान है।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत—इन चार कल्पो मे भवधारणीय अवगाहना जघन्य अगुल का असंख्यातवा भाग और उत्कृष्ट तीन रत्नि की है। इनकी उत्तरवैक्रिय अवगाहना सौधर्मकल्प के ही समान है।

विवेचन—देवो के चार निकाय हैं—भवनपति, वाण-व्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिक। इनमें से आदि के तीन निकाय इन्द्र आदि कृत भेदकल्पना पाये जाने से निश्चितरूपेण कल्पोपपन्न ही हैं। फिर भी रूढि से 'कल्प' शब्द का व्यवहार वैमानिकों के लिये ही किया जाता है। सौधर्म आदि अच्युत पर्यन्त के देव इन्द्रादि भेद वाले होने से कल्पोपपन्न है और इनसे ऊपर ग्रैवेयक आदि सर्वार्थसिद्ध तक के विमानो मे इन्द्रादि की कल्पना नही होने से वहाँ के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

उपर्युक्त सूत्र मे कल्पोपपन्न वैमानिक देवों के सौधर्म से लेकर अच्युत पर्यन्त के देवो की

भवधारणीय एवं उत्तरवैक्रिय अवगाहना का प्रमाण जघन्य तथा उत्कृष्ट इन दोनों अपेक्षाओं से बतलाया है।

इन सभी कल्पवासी देवो की उत्तरवैक्रिय जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना समान अर्थात् जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है। यह उत्तरवैक्रिय उत्कृष्ट शरीरावगाहना का प्रमाण उनकी योग्यता—क्षमता की अपेक्षा से ही जानना चाहिए। लेकिन भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना मे अन्तर है। इसका कारण यह है कि ऊपर-ऊपर के प्रत्येक कल्प मे वैमानिक देवो की आयुस्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति-काति, लेश्याओं की विशुद्धि, विषयो को ग्रहण करने की ऐन्द्रियक शक्ति एव अवधिज्ञान की विशदता अधिक है।[1] किन्तु एक देश से दूसरे देश मे गमन करने रूप गति, शरीरावगाहना, परिग्रह-ममत्वभाव और अभिमान भावना उत्तरोत्तर ऊपर-ऊपर के देवो मे हीन-हीन होती है।[2] इसी कारण सौधर्मकल्प मे देवो की शरीरावगाहना सात रत्नि प्रमाण है तो वह बारहवे अच्युतकल्प मे जाकर तीन रत्नि प्रमाण रह जाती है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर शरीरावगाहना की हीनता का क्रम ग्रैवेयक से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान तक के कल्पातीत देवो के लिये भी जानना चाहिये।

'जहा सोहम्मयदेवाण पुच्छा तहा सेसकप्पाण देवाण पुच्छा भाणियव्वा जाव अच्चुयकप्पो' इस वाक्य मे इस प्रकार के प्राश्निक पदो का समावेश किया गया है—'सणकुमारे कप्पे देवाण भते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, त जहा भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ ण जा सा · · ।' इसी प्रकार से शेष कल्पो के नामो का उल्लेख करके उन-उनके प्रश्न की उद्भावना कर लेना चाहिये।

इस प्रकार से कल्पोपपन्न वैमानिक देवो की शरीरावगाहना का प्रमाण बतलाने के अनन्तर अब कल्पातीत वैमानिको की शरीरावगाहना का निरूपण करते है।

[४] गेवेज्जयदेवाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता?

गो०! गेवेज्जगदेवाण एगे भवधारणिज्जए सरीरए, से जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं दो रयणीओ।

[३५५-४ प्र] भगवन्! ग्रैवेयकदेवो की शरीरावगाहना कितनी है?

[३५५-४ उ] गौतम! ग्रैवेयकदेवो के एकमात्र भवधारणीय शरीर ही होता है। उस शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना दो हाथ की होती है।

[५] अणुत्तरोववाइयदेवाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता?

गोयमा! अणुत्तरोववाइयदेवाणं एगे भवधारणिज्जए सरीरए, से जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं एक्का रयणी।

---

१ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका।

२. गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना। —तत्त्वार्थसूत्र ४।२०,२१

[३५५-५ प्र.] भगवन् ! अनुत्तरोपपातिक देवो के शरीर की कितनी अवगाहना होती है ?

[३५५-५ उ] गौतम ! अनुत्तरविमानवासी देवो के एकमात्र भवधारणीय शरीर ही कहा गया है। उसकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हाथ की होती है।

विवेचन—यहाँ ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देवो की अवगाहना का प्रमाण बतलाया है। ये देव उत्तरविक्रिया नही करते हैं, अतएव इनकी भवधारणीय शरीर की अवगाहना का ही प्रमाण बतलाया है।

चतुर्विध देवनिकायो की शरीरावगाहना के प्रमाण का सुगमता से बोध कराने वाला प्रारूप इस प्रकार है—

क्रम	देवनाम	भवधारणीय		उत्तरवैक्रिय	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
१.	भवनपति	अगु असं भाग	सात हाथ	अगु स भाग	एक लाख यो.
२	वाण-व्यतर	”	”	”	”
३	ज्योतिष्क	”	”	”	”
४	सौधर्म-ईशान	”	”	”	”
५	सनत्कुमार-माहेन्द्र	”	छह हाथ	”	”
६	ब्रह्मलोक-लान्तक	”	पाच हाथ	”	”
७	महाशुक्र-सहस्रार	”	चार हाथ	”	”
८	आनत-प्राणत	”	तीन हाथ	”	”
९	आरण-अच्युत	”	तीन हाथ	”	”
१०	ग्रैवेयक	”	दो हाथ	×	×
११	अनुत्तर	”	एक हाथ	×	×

यह सर्व अवगाहना उत्सेधागुल से मापी जाती है।

उत्सेधांगुल के भेद और भेदों का अल्पबहुत्व

३५६. से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सूईअंगुले पयरगुले घणंगुले। अंगुलायता एगपदेसिया सेढी सूईअंगुले, सूई सूईए गुणिया पयरगुले, पयरं सूईए गुणियं घणगुले।

[३५६] वह उत्सेधागुल सक्षेप से तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—सूच्यगुल, प्रतरागुल और घनांगुल।

एक अगुल लम्बी तथा एक प्रदेश चौड़ी आकाशप्रदेशो की श्रेणी (पक्ति—रेखा) को सूच्यगुल कहते हैं। सूची से सूची को गुणित करने पर प्रतरागुल निष्पन्न होता है, सूच्युगल से गुणित प्रतरागुल घनागुल कहलाता है।[1]

१. सूच्यगुल मे केवल लम्बाई का, प्रतरागुल मे लम्बाई और चौडाई का तथा घनागुल मे लम्बाई, चौडाई और मोटाई—तीनो का ग्रहण होता है।

३५७. एएसि णं सूचीअंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाण कतरे कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

सव्वत्थोवे सूईअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे। से तं उस्सेहंगुले।

[३५७ प्र.] भगवन् ! इन सूच्यगुल, प्रतरागुल और घनागुल मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३५७ उ] इनमे सर्वस्तोक (सबसे छोटा) सूच्यगुल है, उससे प्रतरागुल असख्यातगुणा और प्रतरागुल से घनागुल असख्यातगुणा है।

इस प्रकार यह उत्सेधागुल का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—आत्मागुल की तरह यह उत्सेधागुल भी सूची, प्रतर और घन के भेद से तीन प्रकार का है। इनका स्वरूप तथा अल्पबहुत्व एव अल्पबहुत्व के कारण को आत्मागुलवत् समझ लेना चाहिए।

प्रमाणांगुलनिरूपण

३५८. से किं तं पमाणंगुले ?

पमाणंगुले एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ सोवण्णिए कागणिरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तस्स ण एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा, तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवति।

[३५८ प्र] भगवन् ! प्रमाणागुल का क्या स्वरूप है ?

[३५८ उ] आयुष्मन् ! (परम प्रकर्ष रूप परिमाण को प्राप्त—सबसे बडे अगुल को प्रमाणागुल कहते हैं।) भरतक्षेत्र पर अखण्ड शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा के अष्ट स्वर्णप्रमाण, छह तल वाले, बारह कोटियो और आठ कर्णिकाओ से युक्त अधिकरण सस्थान (सुनार के एरण जैसे आकार वाले) काकणीरत्न की एक-एक कोटि उत्सेधागुल प्रमाण विष्कभ (चौडाई) वाली है, उसकी वह एक कोटि श्रमण भगवान् महावीर के अर्धांगुल प्रमाण है। उस अर्धांगुल से हजार गुणा (अर्थात् उत्सेधागुल से हजार गुणा) एक प्रमाणागुल होता है।

३५९. एतेणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, दो पाया—दुवालस अंगुलाइं विहत्थी, दो विहत्थीओ रयणी, दो रयणीओ कुच्छी, दो कुच्छीओ धणू, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं।

[३५९] इस अगुल से छह अगुल का एक पाद, दो पाद अथवा बारह अगुल की एक वितस्ति, दो वितस्तियो की रत्नि (हाथ), दो रत्नि की एक कुक्षि होती है। दो कुक्षियो का एक धनुष, दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होता है।

विवेचन—इन दो सूत्रो मे से पहले मे प्रमाणागुल का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बतला कर उसके यथार्थ मान का निर्देश किया है। इसी प्रसग मे चक्रवर्ती राजा का स्वरूप, उसके प्रमुख रत्न काकणी

का प्रमाण और श्रमण भगवान् महावीर के आत्मागुल का मान बता दिया है। इस तरह एक ही प्रसग मे अनेक वस्तुओ का निर्देश करके जिज्ञासुओ को सुगमता से बोध कराया है।

प्रमाणागुल का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ सुगम है।

चक्रवर्ती राजा का लक्षण बताने से लिये 'एगमेगस्स' और 'चाउरतचक्कवट्टिस्स' यह षष्ठी विभक्त्यन्त दो विशेषण दिये है। इनमे से एगमेगस्स विशेषण का अर्थ यह है कि एक समय मे एक क्षेत्र मे एक ही चक्रवर्ती राजा होता है, अधिक नही।

जम्बूद्वीप मे कर्मभूमिक क्षेत्र भरत और ऐरवत ये दो हैं। इनके सिवाय शेष क्षेत्र अकर्मभूमिक (भोगभूमिक) हैं। उनमे शासक, शासित आदि व्यवस्था नही होती है। अतएव भरतक्षेत्रापेक्षा दक्षिण, पूर्व और पश्चिम इन तीन दिशाओं मे फैले हुए लवणसमुद्र और उत्तर मे हिमवन्पर्वत पर्यन्त तक पाच म्लेच्छ और एक आर्यखड इस प्रकार छह खण्डो से मडित सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को विजित कर एकच्छत्र शासन करने वाले राजा चातुरतचक्रवर्ती कहलाते है।[1]

तीर्थंकरो की तरह चक्रवर्ती राजा भी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के तीसरे, चौथे आरे मे होते है।

प्रत्येक चकवर्ती सात एकेन्द्रिय और सात पचेन्द्रिय, कुल चौदह रत्नो का स्वामी होता है। अपनी-अपनी जाति मे सर्वोत्कृष्ट होने के कारण इन्हे रत्न कहा जाता है। प्रस्तुत मे उल्लिखित काकणीरत्न पार्थिव है और वह आठ सुवर्ण जितना भारी (वजन वाला) होता है। सुवर्ण उस समय का एक तोल था। इसका विवरण पूर्व मे बताया जा चुका है। साथ ही उसके आकार—सस्थान आदि का उल्लेख करते हुए बताया है कि वह चारो ओर से सम होता है। उसकी आठ कर्णिकाये और बारह कोटिया होती है। प्रत्येक कोटि एक उत्सेधागुल विष्कभ प्रमाण[2] होती है।

काकणीरत्न विष को नष्ट करने वाला होता है। यह सदा चक्रवर्ती के स्कन्धावार मे स्थापित रहता है। इसकी किरणे बारह योजन तक फैलती है। जहाँ चद्र, सूर्य, अग्नि आदि अधकार को नष्ट करने मे समर्थ नही होते, ऐसी तमिस्रा गुफा मे यह काकणी रत्न अधकार को समूल नष्ट कर देता है।

'चउरगुलप्पमाणा सुवण्णवरकागणी नेये ति'[3] अर्थात् चतुरगुल प्रमाण काकणीरत्न जानना चाहिये, ऐसा किसी-किसी ग्रन्थ मे कहा गया है। लेकिन तथाविध सप्रदाय की उपलब्धि न

---

१ ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा मे फैले लवणसमुद्र और दक्षिण दिशा मे शिखरी पर्वत पर्यन्त के ऐरवत क्षेत्र को विजित करने वाले समझना चाहिये।

२ विष्कभ शब्द का प्रयोग काकिणीरत्न की समचतुरस्रता का बोध कराने के लिये किया है कि इसका आयाम—लम्बाई और विष्कभ—चौडाई समान है और प्रत्येक उत्सेधागुल प्रमाण है। क्योकि ऊची करने पर जो कोटि अभी आयाम वाली—लम्बी है, वही तिरछी करने पर विष्कभ वाली—चौडी हो जाती है। अतएव आयाम और विष्कभ इनमे से किसी एक का निर्णय हो जाने पर दूसरा स्वय निर्णीत हो जाता है।

३ अनुयोगद्वारसूत्रवृत्ति, पत्र १७१

होने से विशेष स्पष्टीकरण नही किया जा सकता परन्तु प्रत्येक उत्सेधागुल भगवान् महावीर के अर्धांगुल के बराबर होता है, यह निश्चित है और उससे हजार गुणा एक प्रमाणागुल होता है।

प्रमाणांगुल का प्रयोजन

३६०. एतेणं पमाणगुलेणं कि पओयण ?

एएण पमाणंगुलेण पुढवीणं कडाण पायालाणं भवणाण भवणपत्थडाण निरयाण निरयावलियाणं निरयपत्थडाणं कप्पाण विमाणाण विमाणावलियाणं विमाणपत्थडाणं टकाण कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराण विजयाणं वक्खाराणं वासाण वासहराण वासहरपव्वयाणं वेलाणं वेइयाणं दाराणं तोरणाणं दीवाण समुद्दाणं आयाम-विक्खंभ-उच्चत्तोव्वेह-परिक्खेवा मविज्जंति।

[३६० प्र] भगवन्! इस प्रमाणागुल से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है?

[३६० उ] आयुष्मन्! इस प्रमाणागुल से (रत्नप्रभा आदि नरक) पृथ्वियो की, (रत्नकाड आदि) काडो की, पातालकलशो की, (भवनवासियो के) भवनो की, भवनो के प्रस्तरो की, नरकावासो की, नरकपक्तियो की, नरक के प्रस्तरो की, कल्पो की, विमानो की, विमानपक्तियो की, विमानप्रस्तरो की, टको की, कूटो की, पर्वतो की, शिखर वाले पर्वतो की, प्राग्भारो (नमित पर्वतो) की, विजयो की, वक्षारो की, (भरत आदि) क्षेत्रो की, (हिमवन् आदि) वर्षधर पर्वतो की, समुद्रो की, वेलाओ की, वेदिकाओ की, द्वारो की, तोरणो की, द्वीपो की तथा समुद्रो की लबाई, चौडाई, ऊचाई, गहराई और परिधि नापी जाती है।

विवेचन—लोक मे तीन प्रकार के रूपी पदार्थ है—१ मनुष्यकृत, २ उपाधिजन्य और ३ शाश्वत। मनुष्यकृत पदार्थों की लबाई, चौडाई आदि का माप आत्मागुल के द्वारा जाना जाता है।

उपाधिजन्य पदार्थ से यहाँ शरीर अभिप्रेत है। इसका माप उत्सेधागुल द्वारा किया जाता है। शाश्वत पदार्थो की लम्बाई-चौडाई आदि प्रमाणागुल के द्वारा मापी जाती है। जैसे नरकभूमिया शाश्वत है, उनकी लम्बाई-चौडाई मे किंचिन्मात्र भी अन्तर नही आता, अत प्रमाणागुल का परिमाण भी सदैव एक जैसा रहता है।

प्रमाणांगुल के भेद, अल्पबहुत्व

३६१. से समासओ तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सेढीअगुले पयरगुले घणंगुले।

असखेज्जाओ ओयणकोडाकोडीओ सेढी, सेढी सेढीए गुणिया पतरं, पतरं सेढीए गुणित लोगो, सखेज्जएणं लोगो गुणितो संखेज्जा लोगा, असंखेज्जएण लोगो गुणिओ असखेज्जा लोगा।

[३६१] वह (प्रमाणागुल) सक्षेप मे तीन प्रकार का कहा गया है—१ श्रेण्यगुल, २ प्रतरागुल, ३ घनागुल।

(प्रमाणागुल से निष्पन्न) असख्यात कोडाकोडी योजनो की एक श्रेणी होती है। श्रेणी को श्रेणी से गुणित करने पर प्रतरागुल और प्रतरागुल को श्रेणी के साथ गुणा करने से (एक) लोक होता

है। सख्यात राशि से गुणित लोक 'सख्यातलोक', असख्यात राशि से गुणित लोक 'असख्यातलोक' और अनन्त राशि से गुणित लोक 'अनन्तलोक' कहलाता है।

३६२. एतेसि ण सेढीअगुल-पयरंगुल-घणगुलाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

सव्वत्थोवे सेढिअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे। से तं पमाणंगुले। से तं विभागनिप्फण्णे। से तं खेत्तप्पमाणे।

[३६२ प्र] भगवन्! इन श्रेण्यगुल, प्रतरागुल और घनागुल मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[३६२ उ] आयुष्मन्! श्रेण्यगुल सर्वस्तोक (सबसे छोटा—अल्प) है, उससे प्रतरागुल असख्यात गुणा है और प्रतरागुल से घनागुल असख्यात गुणा है।

इस प्रकार से प्रमाणागुल की, साथ ही विभागनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण और क्षेत्रप्रमाण की वक्तव्यता पूर्ण हुई।

विवेचन—प्रस्तुत मे 'असखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी' पद का यह आशय है कि जो योजन प्रमाणागुल से निष्पन्न हो वही योजन यहाँ ग्रहण करना चाहिये और ऐसे प्रमाणागुल से निष्पन्न योजन की असख्यात कोडाकोडी सर्वतित चतुरस्त्रीकृत लोक की एक श्रेणी होती है। एक करोड को एक करोड से गुणा करने पर प्राप्त संख्या को कोडाकोडी कहते हैं।

यद्यपि सूत्र मे घनागुल के स्वरूप का सकेत नही किया है लेकिन, यह पहले बताया जा चुका है कि घनागुल से किसी भी वस्तु की लम्बाई, चौडाई और मोटाई का परिमाण जाना जाता है। अतएव यहाँ घनीकृत लोक के उदाहरण द्वारा घनागुल का स्वरूप स्पष्ट किया है।

लोक को घनाकार समचतुरस्र रूप करने की विधि इस प्रकार है—समग्र लोक ऊपर से नीचे तक चौदह राजू प्रमाण है। उसका विस्तार नीचे सात राजू, मध्य मे एक राजू, ब्रह्मलोक नामक पाचवे देवलोक तक के मध्यभाग मे पाच राजू और शिरोभाग मे एक राजू[1] है। यही शिरोभाग लोक का अन्त है।

इस प्रकार की लम्बाई, चौडाई प्रमाण वाले लोक की आकृति दोनो हाथ कमर पर रखकर नाचते हुए पुरुष के समान है। इसीलिये लोक को पुरुषाकार सस्थान से सस्थित कहा है। इस लोक के ठीक मध्यभाग मे एक राजू चौडा और चौदह राजू ऊचा क्षेत्र त्रसनाडी कहलाता है। इसे त्रसनाडी कहने का कारण यह है कि द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के त्रससज्ञक जीवो का यही वास स्थान है।

अब इस चौदह राजू प्रमाण वाले ऊचे लोक के कल्पना से अधोदिशावर्ती लोकखड का पूर्व दिशा वाला भाग जो कि अधस्तनभाग मे साढे तीन राजू प्रमाण विस्तृत है और फिर क्रम से ऊपर

---

१. मध्यलोकवर्ती असख्यात द्वीप समुद्रो मे सबसे अन्तिम स्वयभूरमण समुद्र की पूर्व तटवर्ती वेदिका के अन्त से लेकर उसकी पश्चिम तटवर्ती वेदिका के अन्त तक को राजू का प्रमाण समझना चाहिये।

की ओर हीयमान विस्तार वाला होता हुआ अर्धराजू प्रमाण एवं सात राजू ऊंचा है, को लेकर पश्चिम दिशा वाले पार्श्व में ऊपर का भाग नीचे की ओर और नीचे का भाग ऊपर की ओर करके इकट्ठा रख दिया जाये, फिर ऊर्ध्वलोक मे भी समभाग करके पूर्व दिशावर्ती दो त्रिकोण रूप दो खण्ड हैं, जो कि प्रत्येक साढे तीन राजू ऊंचे होते है, उन्हे भी कल्पना मे लेकर विपरीत रूप मे अर्थात् दक्षिण भाग को उल्टा और उत्तर भाग को सीधा करके इकट्ठा रख दिया जाए। इसी प्रकार पश्चिम दिशावर्ती दोनो त्रिकोणों को भी इकट्ठा किया जाए, ऐसा करने पर लोक का वह अर्धभाग भी साढे तीन राजू का विस्तार वाला और सात राजू की ऊंचाई वाला होगा। तत्पश्चात् उस ऊपर के अर्धभाग को नीचे के अर्धभाग के साथ जोड दिया जाये। ऐसा करने पर लोक सात राजू ऊंचा और सात राजू चौडा घनरूप बन जाता है। इस लम्बाई, चौडाई और मोटाई का परस्पर गुणा करने पर (७×७×७=३४३) तीन सौ तेतालीस राजू घनफल लोक का होता है।

सिद्धान्त मे जहाँ कही भी बिना किसी विशेषता के सामान्य रूप से श्रेणी अथवा प्रतर का उल्लेख हो वहाँ सर्वत्र इस घनाकार लोक की सात राजू प्रमाण श्रेणी अथवा प्रतर समझना चाहिये।

इसी प्रकार जहाँ कही भी सामान्य रूप से लोक शब्द आए, वहाँ इस घनरूप लोक का ग्रहण करना चाहिये। सख्यात राशि से गुणित लोक की सख्यातलोक, असख्यात राशि से गुणित लोक की असख्यातलोक तथा अनन्त राशि से गुणित लोक की अनन्तलोक सज्ञा है।

यद्यपि अनन्तलोक के बराबर अलोक है और उसके द्वारा जीवादि पदार्थ नही जाने जाते है, तथापि वह प्रमाण इसलिये है कि उसके द्वारा अपना—अलोक का स्वरूप तो जाना ही जाता है। अन्यथा अलोकविषयक बुद्धि ही उत्पन्न नही हो सकती है।

इस प्रकार से विभागनिष्पन्न एव समस्त क्षेत्रप्रमाण की प्ररूपणा जानना चाहिये।

कालप्रमाण प्ररूपण

३६३. से किं त कालप्पमाणे?

कालप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पदेसनिप्फण्णे य विभागनिप्फण्णे य।

[३६३ प्र] भगवन्! कालप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[३६३ उ] आयुष्मन्! कालप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है—१ प्रदेशनिष्पन्न, २ विभागनिष्पन्न।

३६४. से किं त पदेसनिप्फण्णे?

पदेसनिप्फण्णे एगसमयट्ठितीए दुसमयट्ठितीए तिसमयट्ठितीए जाव दससमयट्ठितीए सखेज्जसमयट्ठितीए असखेज्जसमयट्ठिईए। से त पदेसनिप्फण्णे।

[३६४ प्र] भगवन्! प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[३६४ उ] आयुष्मन्! एक समय की स्थिति वाला, दो समय की स्थिति वाला, तीन समय की स्थिति वाला, यावत् दस समय की स्थिति वाला, सख्यात समय की स्थिति वाला, असख्यात

समय की स्थिति वाला (परमाणु या स्कन्ध) प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण है। इस प्रकार से प्रदेशनिष्पन्न (अर्थात् काल के निर्विभाग अश से निष्पन्न) कालप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

३६५. से किं तं विभागनिप्फण्णे ?

विभागनिप्फण्णे—

समयाऽऽवलिय-मुहुत्ता दिवस-अहोरत्त-पक्ख मासा य।
संवच्छर-जुग-पलिया सागर-ओसप्पि-परिअट्टा ॥ १०३ ॥

[३६५ प्र] भगवन्! विभागनिष्पन्न कालप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[३६५ उ] आयुष्मन्! समय, आवलिका, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, सवत्सर, युग, पल्योपम, सागर, अवसर्पिणी (उत्सर्पिणी) और (पुद्गल) परावर्तन रूप काल को विभागनिष्पन्न कालप्रमाण कहते हैं। १०३

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे कालप्रमाण के मुख्य दो भेदो का उल्लेख किया है।

काल के निर्विभाग अश (समय) को यहाँ 'प्रदेश' कहा गया है। अतएव इन निर्विभाग अशो—प्रदेशो से निष्पन्न होने वाला कालप्रमाण प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण है। एक समय की स्थिति वाला परमाणु या स्कन्ध एक कालप्रदेश से, दो समय की स्थिति वाला परमाणु या स्कन्ध दो कालप्रदेशो से निष्पन्न होता है। इसी प्रकार तीन आदि समय से लेकर असख्यात समय की स्थिति वाले परमाणु या स्कन्ध आदि सब काल के उतने-उतने ही अविभागी अशो (प्रदेशो) से निष्पन्न होते है। असख्यात अशो (प्रदेशो) से असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल निष्पन्न होते है। इससे आगे पुद्गलो की एक रूप से स्थिति ही नही होती है, अर्थात् पुद्गल पर्याय की अधिक से अधिक स्थिति असंख्यात काल की ही होती है।

समय, आवलिका आदि रूप काल विभागात्मक होने मे वे विभागनिष्पन्न कालप्रमाण कहलाते है। विभागनिष्पन्न कालप्रमाण की आद्य इकाई 'समय' है। अत अब उसी का विस्तार से वर्णन किया जाता है।

समयनिरूपण

३६६. से किं त समए ?

समयस्स णं परूवणं करिस्सामि—से जहाणामए तुण्णागदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पातंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणते तलजमलजुयलपरिघणिभबाहू चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठियसमाहयनिचियगत्तकाये लंघण-पवण-जइणवायामसमत्थे उरस्सबलसमण्णागए छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए एगं महतिं पडसाडियं वा पट्टसाडियं वा गहाय सयराहं हत्थमेत्तं ओसारेज्जा।

तत्थ चोयए पण्णवयं एवं वयासी—

जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए से समए भवइ ?

नो इणमट्ठे समट्ठे ?

कम्हा ?

जम्हा संखेज्जाणं तंतूणं समुदयसमितिसमागमेणं पडसाडिया निप्पज्जइ, उवरिल्लम्मि तंतुम्मि अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले तंतू ण छिज्जइ, अण्णम्मि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ अण्णम्मि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ, तम्हा से समए न भवति ।

एवं वयंतं पण्णवगं चोयए एवं वयासि—जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा उवरिल्ले तंतू छिण्णे से समए ?

ण भवति ।

कम्हा ?

जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे तंतू निप्फज्जइ, उवरिल्ले पम्हम्मि अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले पम्हे न छिज्जति, अण्णम्मि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जति अण्णम्मि काले हेट्ठिल्ले पम्हे छिज्जति, तम्हा से समए ण भवति ।

एवं वदंतं पण्णवगं चोयए एवं वदासि—जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे छिण्णे से समए ?

ण भवति ।

कम्हा ?

जम्हा अणंताणं संघाताणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे पम्हे णिप्फज्जइ, उवरिल्ले संघाते अविसंघातिए हेट्ठिल्ले संघाते ण विसंघाडिज्जति, अण्णम्मि काले उवरिल्ले संघाए विसंघातिज्जइ अण्णम्मि काले हेट्ठिल्ले संघाए विसंघाडिज्जइ, तम्हा से समए ण भवति । एत्तो वि णं सुहुमतराए समए पण्णत्ते समणाउसो !

[३६६ प्र] भगवन् ! समय किसे कहते है ?

[३६६ उ] आयुष्मन् ! समय की (विस्तार से) प्ररूपणा करूगा । वह इस प्रकार—जैसे कोई एक तरुण, बलवान्, युगोत्पन्न (सुषमदुषम आदि तीसरे-चौथे आरे मे उत्पन्न) नीरोग, स्थिर-हस्ताग्र (मजबूत पहुचा) वाला, सुदृढ-विशाल हाथ-पैर, पृष्ठभाग (पीठ), पृष्ठान्त (पसली) और उरु (जघा) वाला, दीर्घता, सरलता एव पीनत्व की दृष्टि से समान, समश्रेणी मे स्थित तालवृक्ष-युगल अथवा कपाट-अर्गला तुल्य दो भुजाओ का धारक, चर्मेष्टक (प्रहरणविशेष), मुद्गर मुष्टिका-मुष्टिबन्ध आदि के व्यायामो के अभ्यास, आघात-प्रतिघातो से सुदृढ—सघन शारीरिक अवयव वाला, सहज आत्मिक-मानसिक बलसम्पन्न, कूदना, तैरना, दौडना आदि व्यायामो से अर्जित सामर्थ्य-शक्ति से सम्पन्न, छेक (कार्यसिद्धि के उपाय का ज्ञाता), दक्ष, प्रतिष्ठप्रवीण, कुशल (विचारपूर्वक कार्य करने वाला), मेधावी (बुद्धिमान्), निपुण (चतुर), अपनी शिल्पकला मे निष्णात, तुन्नवायदारक (दर्जी का पुत्र) एक बडी सूती अथवा रेशमी शाटिका (साडी) को लेकर अतिशीघ्रता से एक हाथ प्रमाण फाड देता है ।

[प्र] भगवन् ! तो जितने काल मे उस दर्जी के पुत्र ने शीघ्रता से उस सूती अथवा रेशमी शाटिका को एक हाथ प्रमाण फाड दिया है, क्या उतने काल को 'समय' कहते हैं ?

[उ] आयुष्मन् ! यह अर्थ समर्थ नही है। अर्थात् वह समय का प्रमाण नही है।

[प्र] क्यो नही है ?

[उ] क्योकि सख्यात तंतुओ के समुदाय रूप समिति के सयोग से एक सूती शाटिका अथवा रेशमी शाटिका निष्पन्न होती है—बनती है। अतएव जब तक ऊपर का तन्तु छिन्न न हो तब तक नीचे का तन्तु छिन्न नही हो सकता। अत ऊपर के तन्तु के छिदने का काल दूसरा है और नीचे के तन्तु के छिदने का काल दूसरा है। इसलिये वह एक हाथ प्रमाण शाटिका के फटने का काल समय नही है।

इस प्रकार से प्ररूपणा करने पर शिष्य ने पुन प्रश्न पूछा—

[प्र] भदन्त ! जितने काल मे दर्जी के पुत्र ने उस सूती शाटिका अथवा रेशमी शाटिका के ऊपर के तन्तु का छेदन किया, क्या उतना काल समय है ?

[उ] उतना काल समय नही है।

[प्र] क्यो नही है ?

[उ] क्योकि सख्यात पक्ष्मो (सूक्ष्म अवयवो—रेशाओ) के समुदाय रूप समिति के सम्यक् समागम से एक तन्तु निष्पन्न होता है—निर्मित होता है। इसलिये ऊपर के पक्ष्म के छिन्न न होने तक नीचे का पक्ष्म छिन्न नही हो सकता है। अन्य काल मे ऊपर का पक्ष्म और अन्य काल मे नीचे का पक्ष्म छिन्न होता है। इसलिये उसे समय नही कहते है।

इस प्रकार की प्ररूपणा करने वाले गुरु से शिष्य ने पुन. निवेदन किया—

[प्र] जिस काल मे उस दर्जी के पुत्र ने उस तन्तु के उपरिवर्ती पक्ष्म का छेदन किया तो क्या उतने काल को समय कहा जाए ?

[उ] उतना काल भी समय नही है।

[प्र] क्यो नही है ?

[उ] इसका कारण यह है कि अनन्त सघातो के समुदाय रूप समिति के सयोग से पक्ष्म निर्मित होता है, अत जब तक उपरिवर्ती सघात पृथक् न हो, तब तक अधोवर्ती सघात पृथक् नही होता है। उपरिवर्ती सघात के पृथक् होने का काल अन्य है और अधोवर्ती सघात के पृथक् होने का काल अन्य है। इसलिये उपरितन पक्ष्म के छेदन का काल समय नही है। आयुष्मन् ! समय इससे भी अतीव सूक्ष्मतर कहा गया है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे समय का स्वरूप स्पष्ट किया है। जिस प्रकार पुद्गल द्रव्य के अविभाज्य चरम अश को परमाणु कहते है, उसी प्रकार काल द्रव्य के निर्विभाग अश की 'समय' सज्ञा है। समय कितना सूक्ष्म है ? इसका निर्देश करने के लिये कतिपय उदाहरणो का उल्लेख किया है। लेकिन वे सब आशिक हैं और समय उनसे भी सूक्ष्म अश है।

यद्यपि लोक मे घटा, दिन, वर्ष आदि को ही काल कहने का व्यवहार प्रचलित है पर यह काल वस्तुभूत—पारमार्थिक नही है। वस्तुभूत काल तो वह सूक्ष्म अश है जिसके निमित्त से सर्व द्रव्य परिणमन करते रहते है। यदि वह न हो तो उपर्युक्त प्रकार से आरोपित काल का व्यवहार ही न हो। समय से छोटा कालाश सम्भव नही है, क्योकि सूक्ष्म से सूक्ष्म पर्याय भी उस एक समय से पूर्व नही बदलता है। इसलिये शास्त्रो मे समय की परिभाषा इस प्रकार की है—

जघन्य गति से एक परमाणु सटे हुए द्वितीय परमाणु तक जितने काल मे जाता है, उसे समय कहते है। अथवा तत्प्रायोग्य वेग से एक के ऊपर की ओर जाने वाले और दूसरे के नीचे की ओर आने वाले दो परमाणुओ के स्पर्श होने मे लगने वाला काल समय कहलाता है।

यद्यपि आत्मा, पदार्थसमूह और सिद्धात के अर्थ मे भी समय शब्द प्रयुक्त होता है, किन्तु यहाँ कालद्रव्य और उसकी पर्याय का बोध कराने के लिये समय शब्द का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत सूत्र मे 'समयस्स ण परूवण करिस्सामि' से लेकर 'एत्तोऽवि · · पण्णत्ते समणाउसो' पद तक का कथन विशिष्ट आशय को अभिव्यक्त करने के लिये किया गया है कि समय काल का सबसे अधिक सूक्ष्म अश है। उसका स्वरूप सामान्य रूप से कथन करने पर बुद्धिग्राह्य नही हो सकता है। उसके स्वरूप को समझने के लिये विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है।

जब अनन्त परमाणुओ के सघात (समुदाय) से एक पक्ष्म (रेशा) निष्पन्न होता है और वे सघात क्रमश ही छिन्न होते हैं, तब उस पक्ष्म के विदारण मे अनन्त समय लगना चाहिये। लेकिन सिद्धान्त मे जो असख्यात समय लगना कहा है, उसका कारण यह है कि पक्ष्म फाडने मे प्रवृत्त पुरुष का प्रयत्न अचिन्त्य शक्ति वाला होने से असख्यात समयो मे अनन्त सघातो का छेदन हो जाता है। उन सघातो से बना हुआ एक स्थूल पक्ष्म यहाँ विवक्षित है और ऐसे स्थूल पक्ष्म असख्यात ही होते है, अनन्त नही। अतः उनका क्रम से छेदन होने मे अनन्त नही किन्तु असख्यात समय लगेगा।

यद्यपि असख्यात समय लगने का सकेत सूत्र मे नही किया है, किन्तु प्रकरणानुसार उसे यहाँ समझ लेना चाहिये। सूत्र मे सकेत न करने का कारण यह है कि छद्‌मस्थ जनो के ज्ञान का विषयभूत हो सके और उससे समय की चरम सूक्ष्मता का बोध हो जाए ऐसा दृष्टान्त दिया जाना सम्भव नही है। इसीलिये समय की सूक्ष्मता बताने के लिये सामान्य रूप मे सूत्रकार ने सकेत किया है—'एत्तोऽवि ण सुहुमतराए समए—समय इससे भी अधिक सूक्ष्मतर होता है।' अर्थात् उपरितन पक्ष्म के छेदन-काल का असख्यातवा अश समय है।

पुरुष का प्रयत्न अचिन्त्य शक्ति वाला होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। जैसे कोई पुरुष दूसरे किसी स्थान पर जाने के लिये प्रस्थान करे और यदि गमन रूप प्रयत्न मे प्रवृत्ति करता रहता है तो वह अपने गन्तव्य स्थान पर बहुत जल्दी पहुच जाता है। उसी प्रकार फाडने की क्रिया मे प्रवृत्त पुरुष भी अपने प्रयत्न से अनन्त परमाणुओ के समुदाय से बने पक्ष्म (रेशे) को असख्यात समय मे छेदन कर दे, यह स्वाभाविक है।

इस प्रकार से समय का स्वरूपनिर्देश करने के बाद अब उसके समूह रूप कालविभागों का वर्णन करते है।

समयसमूहनिष्पन्न कालविभाग

३६७. असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलिय त्ति पवुच्चइ। संखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो। संखेज्जाओ आवलियाओ नीसासो।

हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसास-नीसासे एस पाणु त्ति वुच्चति ॥ १०४ ॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥ १०५ ॥
तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाणि तेहत्तरिं च उस्सासा।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १०६ ॥

एतेण मुहुत्तपमाणेण तीसं मुहुत्ता अहोरत्ते, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ अयणं, दो अयणाइं संवच्छरे, पंचसंवच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससताइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं वाससतसहस्सं, चउरासीई वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे, चउरासीतिं पुव्वंगसतसहस्साइं से एगे पुव्वे, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे तुडियंगे, चउरासीइं तुडियंगसयसहस्साइं से एगे तुडिए, चउरासीइं तुडियसयसहस्साइं से एगे अडडंगे, चउरासीइं अडडंगसयसहस्साइं से एगे अडडे, चउरासीइं अडडसयसहस्साइं से एगे अववंगे, चउरासीइं अववंगसयसहस्साइं से एगे अववे, चउरासीतिं अववसतसहस्साइं से एगे हूहुयंगे, चउरासीइं हूहुयंगसतसहस्साइं से एगे हूहुए, एवं उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे नलिणंगे नलिणे अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे अउयंगे अउए णउयंगे णउए पउयंगे पउए चूलियंगे चूलिया, चउरासीतिं चूलियासतसहस्साइं से एगे सीसपहेलियंगे, चउरासीतिं सीसपहेलियंगसतसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया।

एताव ताव गणिए, एयावए चेव गणियस्स विसए, अतो परं ओवमिए।

[३६७] असंख्यात समयों के समुदाय समिति के संयोग से (असंख्यात समयों के समुदाय रूप संयोग से) एक आवलिका निष्पन्न होती है। संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास और संख्यात आवलिकाओं का एक निःश्वास[1] होता है।

हृष्ट (प्रसन्न), वृद्धावस्था से रहित, (भूतकालिक एवं वर्तमानकालिक) व्याधि से रहित मनुष्य आदि के एक उच्छ्वास और निःश्वास के 'काल' को प्राण कहते हैं। १०४

ऐसे सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव और सतहत्तर लवों का एक मुहूर्त जानना चाहिये। १०५ अथवा—

---

१. कोष्ठगत वायु को बाहर निकालने को उच्छ्वास और बाहर की वायु को अन्दर कोष्ठ (कोठे) में ले जाने को निःश्वास कहते हैं। एक उच्छ्वास में स्थूलगणना से $\frac{3460}{3773}$ सैकेण्ड होते हैं, इतने ही निःश्वास में भी।

सर्वज्ञ—अनन्तज्ञानियो ने तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वास-निश्वासों का एक मुहूर्त कहा है। १०६

इस मुहूर्त प्रमाण से तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र (दिनरात) होता है, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षो का एक मास, दो मासो की एक ऋतु, तीन ऋतुओ का एक अयन, दो अयनो का एक सवत्सर (वर्ष), पाच सवत्सर का एक युग और बीस युग का वर्षशत (एक सौ वर्ष) होता है। दस सौ वर्षों का एक सहस्र वर्ष, सौ सहस्र वर्षों का एक लक्ष (लाख) वर्ष होता है, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगो का पूर्व, चौरासी लाख पूर्वो का त्रुटिताग, चौरासी लाख त्रुटितागो का एक त्रुटित, चौरासी लाख त्रुटितो का एक अडडाग, चौरासी लाख अडडागो का एक अडड, चौरासी लाख अडडो का एक अववाग, चौरासी लाख अववागो का एक अवव, चौरासी लाख अववो का एक हूहुअग चौरासी लाख हूहुअगो का एक हूहु, इसी प्रकार उत्पलाग, उत्पल, पद्माग, पद्म, नलिनाग, नलिन, अच्छनिकुराग, अच्छनिकुर, अयुताग, अयुत, नयुताग, नयुत, प्रयुताग, प्रयुत, चूलिकाग, चूलिका, चौरासी लाख चूलिकाओ की एक शीर्षप्रहेलिकाग होता है एव चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकागो की एक शीर्षप्रहेलिका होती है।

एतावन्मात्र ही गणित (गणना) है। इतना ही गणित का विषय है, इसके आगे उपमा काल की प्रवृत्ति होती है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे गणनीय काल का वर्णन किया है। इसकी प्रारम्भिक इकाई आवलिका है और अन्तिम सख्या का नाम शीर्षप्रहेलिका है।

आवलिका का कालमान निश्चित अमुक गणनीय सख्या के द्वारा निर्धारण किया जाना शक्य नही होने से उसके मान के लिये बताया कि असख्यात समयो के समुदाय की एक आवलिका होती है। लेकिन इसके बाद के उच्छ्वास, नि श्वास आदि से लेकर शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त का मान निश्चित गणनीय सख्या मे बतलाया है। इसमे भी जहाँ तक के कालमान को सामान्य निर्धारित सज्ञाओ द्वारा कहा जाना शक्य है, उन-उनके लिये दिन, रात, पक्ष, अयन आदि के द्वारा बताया है। लेकिन उसके बाद के कालमान को बताने के लिये पूर्वांग, पूर्व आदि सज्ञाये निर्धारित की और प्रत्येक को पूर्व-पूर्व से चौरासी लाख—चौरासी लाख वर्ष अधिक-अधिक बताया है। इसके लिये निर्धारित सज्ञाओ के नाम सूत्र मे बताए गए है। लेकिन ग्रन्थान्तरो मे इन सज्ञाओ के क्रम और नामो मे अन्तर है। जैसे—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे अयुत, नयुत और प्रयुत पाठ है और ज्योतिष्करण्डक के अनुसार इनका क्रम इस प्रकार है—

पूर्वांग, पूर्व, लताग, लता, महालताग, महालता, नलिनाग, नलिन, महानलिनाग, महानलिन, पद्माग, पद्म, महापद्माग, महापद्म, कमलाग, कमल, महाकमलाग, महाकमल, कुमुदाग, कुमुद, महाकुमुदाग, महाकुमुद, त्रुटिताग, त्रुटित, महात्रुटिताग, महात्रुटित, अडडाग, अडड, महाअडडाग, महाअडड, अहाग, अह, महाअहाग, महाअह, शीर्षप्रहेलिकाग, शीर्षप्रहेलिका।

इस प्रकार की विभिन्नता के कारण के विषय मे काललोकप्रकाशकार का मतव्य है कि अनुयोगद्वारसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि माथुरवाचना से अनुगत हैं और ज्योतिष्करण्डक आदि बलभी-वाचना से अनुगत हैं। इसी से दोनो नामो मे अन्तर है।

दिगम्बर साहित्य मे भी कालगणना के प्रमाण का निरूपण किया गया है। यहाँ किये गये वर्णन से उस वर्णन मे समानता अधिक है, विभिन्नता कतिपय अशों मे ही है। साथ ही वहाँ भी संज्ञाओ के क्रम एवं नामो में अन्तर पाया जाता है। अतएव परस्पर तुलना करने की दृष्टि से दिगम्बर साहित्यगत वर्णन का साराश परिशिष्ट मे देखिए।

इस प्रकार व्यवहार मे जितनी राशि की गणना की जा सकती है, उतना ही गणित का विषय है। इसके बाद गणना करने के लिये उपमा का आश्रय लिया जाता है।

औपमिक कालप्रमाणनिरूपण

३६८. से किं तं ओवमिए ?

ओवमिए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पलिओवमे य सागरोवमे य।

[३६८ प्र] भगवन् ! औपमिक (काल) प्रमाण क्या है ? अर्थात् औपमिक (काल) किसे कहते है ?

[३६८ उ] आयुष्मन् ! औपमिक (काल) प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—१. पल्योपम और २ सागरोपम।

विवेचन—औपमिक काल उसे कहते है जो गणित का विषय न हो, केवल उपमा के द्वारा जिसका वर्णन किया जाए। वह दो प्रकार का है—पल्योपम और सागरोपम। पल्य (धान्य को भरने का गड्ढा) की उपमा के द्वारा जिस कालमान का वर्णन किया जाए उसे पल्योपम और सागर (समुद्र) की उपमा द्वारा जिसका स्वरूप समझाया जाए उसे सागरोपम काल कहते है।

पल्योपम-सागरोपमप्ररूपण

३६९ से किं तं पलिओवमे ?

पलिओवमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—उद्धारपलिओवमे य अद्धापलिओवमे य खेत्तपलिओवमे य।

[३६९ प्र] भगवन् ! पल्योपम किसे कहते है ?

[३६९ उ] आयुष्मन् ! पल्योपम के तीन प्रकार हैं—१ उद्धारपल्योपम, २ अद्धापल्योपम और ३ क्षेत्रपल्योपम।

३७०. से किं तं उद्धारपलिओवमे ?

उद्धारपलिओवमे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सुहुमे य वावहारिए य।

[३७० प्र.] भगवन् ! उद्धारपल्योपम किसे कहते है ?

[३७० उ] आयुष्मन् ! उद्धारपल्योपम दो प्रकार से वर्णित किया गया है, यथा—सूक्ष्म उद्धारपल्योपम और व्यावहारिक उद्धारपल्योपम।

३७१. तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

[३७१] इन दोनों में सूक्ष्म उद्धारपल्योपम अभी स्थापनीय है। अर्थात् उसको यहाँ व्याख्या न करके आगे करेंगे।

३७२. तत्थ णं जे से वावहारिए से जहानामए पल्ले सिया—जोयणं आयाम-विक्खंभेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं ।

से णं एगाहिय-बेहिय-तेहिय जाव उक्कोसेण सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिते भरिए बालग्गकोडीण । ते णं बालग्गा नो अग्गी डहेज्जा, नो वाऊ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसिज्जा णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा । तओ ण समए समए एगमेगं बालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिते भवति, से तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे ।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिता ।
तं वावहारियस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाण ॥ १०७ ॥

[३७२] व्यावहारिक उद्धारपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है— उत्सेधागुल से एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन ऊचा एव कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला एक पल्य हो । उस पल्य को (सिर का मुडन कराने के बाद) एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अधिक से अधिक सात दिन के उगे हुए बालाग्रो से इस प्रकार ठसाठस भरा जाए कि फिर उन बालाग्रो को अग्नि जला न सके, वायु उडा न सके, न वे सड-गल सकें, न उनका विध्वस हो, न उनमे दुर्गन्ध उत्पन्न हो—सडे नही । तत्पश्चात् एक-एक समय मे एक-एक बालाग्र का अपहरण किया जाए—उन्हे बाहर निकाला जाए तो जितने काल मे वह पल्य क्षीण, नीरज निर्लेप और निष्ठित (खाली) हो जाए, उतने काल को व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं ।

ऐसे दस कोडाकोडी पल्योपमो का एक व्यावहारिक उद्धार सागरोपम होता है । १०७

विवेचन—यहाँ पल्योपम और सागरोपम के प्रथम भेद उद्धार पल्योपम और उद्धार सागरोपम के सूक्ष्म एव व्यावहारिक इन दो भेदो मे से व्यावहारिक भेद का वर्णन किया है ।

यहाँ पल्य की उपमा से वर्णन करने का कारण यह है कि धान्य के मापपात्र को सभी जानते है । प्रस्तुत मे उत्सेधागुल से निष्पन्न एक योजन प्रमाण की लम्बाई, चौडाई और ऊचाई वाले पल्य को स्वीकार किया है । इससे अल्पाधिक परिमाण वाला पल्य उपयोगी नही है । जिसकी लम्बाई-चौडाई समान होती है, उसका व्यास (परिधि) कुछ अधिक तिगुनी होती है । इसलिये यहाँ पल्य का व्यास बताने के लिये पद दिया है 'त तिगुण सविसेस परिरएण ।' यहाँ किंचित् अधिक का तात्पर्य किंचित् न्यून षड्भागाधिक एक योजन तथा तीन योजन पूरे ग्रहण करने चाहिये । अर्थात् उस पल्य की परिधि किंचित् न्यून षड्भागाधिक तीन योजन प्रमाण होती है ।

उस पल्य को जिन बालाग्रो से भरे जाने का कथन किया है, उनके लिये प्रयुक्त एगाहिय, बेहिय आदि विशेषणो का यह आशय है कि शिर को मुडन कराने के पश्चात् एक दिन मे जितने प्रमाण मे बाल उग सकते है, बढ सकते है, उनके अग्रभागो की एकाहिक बालाग्र सज्ञा है । इसी प्रकार द्वयाहिक, त्र्याहिक आदि विशेषणो का अर्थ समझ लेना चाहिये और 'जाव सत्तरत्तपरूढाण' पद द्वारा यह स्पष्ट किया है कि सात से अधिक दिनो के बालाग्रो से पल्य को न भरा जाए ।

वे बालाग्र पल्य में किस प्रकार से भरे जाए ? इसके लिये दो विशेषण दिये है— 'सम्मट्ठे सन्निचिते ।' इनका आशय यह है कि वह पल्य इस प्रकार पूरित किया जाये कि उसका ऊपरी भाग

का चरम प्रदेश भी बालाग्रो से रहित न हो, वह खचाखच भरा हुआ हो और साथ ही इस प्रकार से भरा जाए कि रचमात्र भी स्थान खाली न रहे किन्तु निविडता से भरा जाए। वे बालाग्र ऐसी निविडता से भरे हुए हो कि आग उन्हे जला न सके, पवन उडा न सके, वे सड-गल न सके। द्रव्यलोक-प्रकाश मे कहा है—

वे केशाग्र इतनी सघनता से भरे हों कि यदि चक्रवर्ती की सेना उन पर से निकल जाए तो भी वे जरा भी दब न सके।

उन बालाग्रो को प्रतिसमय एक-एक करके निकालने पर जितने समय मे वह पल्य पूरी तरह खाली हो जाए, उतने कालमान को एक व्यवहार उद्धारपल्योपम कहते है और ऐसे दस कोटि व्यवहार उद्धारपल्योपमो का एक उद्धारसागरोपम काल कहलाता है।

द्रव्यलोकप्रकाश में लिखा है कि उत्तरकुरु के मनुष्यो का सिर मुडा देने पर एक से सात दिन तक के अन्दर जो केशाग्र राशि उत्पन्न हो, यह समझना चाहिये। क्षेत्रविचार की सोपज्ञटीक मे लिखा है कि देवकुरु, उत्तरकुरु मे जन्मे सात दिन के मेष (भेड) के उत्सेधागुल प्रमाण रोम लेकर उनके सात बार आठ-आठ खण्ड करना चाहिये। इस प्रकार के खण्डों से उस पल्य को भरना चाहिये।

दिगम्बर साहित्य मे एक दिन से सात दिन तक जन्मे हुए मेष बालाग्रो का ही उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार से विभिन्न ग्रन्थो मे बालाग्र विषयक पृथक्-पृथक् निर्देश है, तथापि उन सबके मूल आशय मे कोई मौलिक अन्तर प्रतीत नही होता।

३७३. एतेहिं वावहारियउद्धारपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं ?

एतेहिं वावहारियउद्धारपलिओवम-सागरोवमेहि णत्थि किंचि पओयणं, केवलं पण्णवणा पण्णविज्जति। से त वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

[३७३ प्र] भगवन्! इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है? अथवा इनसे किस प्रयोजन की सिद्धि होती है?

[३७३ उ] आयुष्मन्! इन व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम से किसी प्रयोजन की सिद्धि नही होती है। ये दोनो केवल प्ररूपणामात्र के लिये हैं।

यह व्यावहारिक उद्धारपल्योपम का स्वरूप है।

विवेचन—इस सूत्र मे व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम के प्रयोजन के विषय में प्रश्नोत्तर है।

यहाँ जिज्ञासा होती है कि जब कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता तो फिर इनकी प्ररूपणा ही क्यो की गई? उत्तर यह है कि प्रयोजन के दो प्रकार है—साक्षात् और परम्परा। परम्परा रूप से तो प्रयोजन यह है कि व्यावहारिक-बादर पल्योपम आदि का स्वरूप समझ लेने पर ही सूक्ष्म पल्योपमादि की प्ररूपणा सरलता से समझ मे आती है। इस प्रकार से सूक्ष्म की प्ररूपणा मे उपयोगी होने से व्यावहारिक की प्ररूपणा निरर्थक नही है। किन्तु साक्षात् रूप से इसके द्वारा किसी वस्तु का कालमान ज्ञात नही किया जाता। अत: सूत्रकार ने उसकी विवक्षा न करके मात्र प्ररूपणायोग्य बतलाया है।

३७४. से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे ?

सुहुमे उद्धारपलिओवमे से जहानामए पल्ले सिया—जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय० उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिते भरिते बालग्गकोडीणं। तत्थ णं एगमेगे बालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जति। ते णं बालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जतिभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा। ते णं बालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, णो वाऊ हरेज्जा, णो कुच्छेज्जा, णो पलिविद्धंसेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा। तओ णं समए समए एगमेगं बालग्गं अवहाय जावतितेणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवति, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे।

एतेसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स उ एगस्स भवे परीमाणं ॥ १०८ ॥

[३७४ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का क्या स्वरूप है ?

[३७४ उ] आयुष्मन् ! सूक्ष्म उद्धारपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है—धान्य के पल्य के समान कोई एक योजन लंबा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा एवं कुछ अधिक तीन योजन की परिधि वाला पल्य हो। इस पल्य को एक, दो, तीन यावत् उत्कृष्ट सात दिन तक के उगे हुए बालाग्रों से खूब ठसाठस भरा जाये और उन एक-एक बालाग्र के (कल्पना से) ऐसे असंख्यात—असंख्यात खंड किये जाएं जो निर्मल चक्षु से देखने योग्य पदार्थ की अपेक्षा भी असंख्यातवें भाग प्रमाण हों और सूक्ष्म पनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यातगुणे हों,[1] जिन्हें अग्नि जला न सके, वायु उडा न सके, जो सड-गल न सकें, नष्ट न हो सकें और न दुर्गंधित हो सकें। फिर समय-समय में उन बालाग्रखंडों को निकालते-निकालते जितने काल में वह पल्य बालाग्रों की रज से रहित, बालाग्रों के संश्लेष से रहित और पूरी तरह खाली हो जाए, उतने काल को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहते हैं।

इस पल्योपम की दस गुणित कोटाकोटि का एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम का परिमाण होता है। (अर्थात् दस कोटाकोटि सूक्ष्म उद्धारपल्योपमों का एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम होता है)। १०८

३७५. एएहिं सुहुमेहिं उद्धारपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पओयणं ?

एतेहिं सुहुमेहिं उद्धारपलिओवम-सागरोवमेहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारे घेप्पति।

[३७५ प्र] भगवन् ! इस सूक्ष्म उद्धारपल्योपम और सूक्ष्म उद्धारसागरोपम से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है ?

[३७५ उ] सूक्ष्म उद्धारपल्योपम और सूक्ष्म उद्धारसागरोपम से द्वीप-समुद्रों का उद्धार किया जाता है—द्वीप-समुद्रों का प्रमाण जाना जाता है।

---

१. पर्याप्त बादर पृथिवीकायिक के शरीर के बराबर—बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तशरीरतुल्यानीति वृद्धवादः।
—अनुयोगद्वारटीका पत्र १८२

३७६. केवतिया णं भंते ! दीव-समुद्दा उद्धारेणं पन्नत्ता ?

गो० ! जावइया णं अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोवमाणं उद्धारसमया एवतिया णं दीव-समुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता । से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे । से तं उद्धारपलिओवमे ।

[३७६ प्र] भगवन् ! कियत्प्रमाण द्वीप-समुद्र उद्धार प्रमाण से प्रतिपादन किये गये हैं ?

[३७६ उ] गौतम ! अढाई उद्धार सूक्ष्म सागरोपम के उद्धार समयो के बराबर द्वीप समुद्र हैं ।

यही सूक्ष्म उद्धारपल्योपम का और साथ ही उद्धारपल्योपम का स्वरूप है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे सूक्ष्म उद्धार पल्योपम और सागरोपम का कालमान एव उसका प्रयोजन बतलाया है ।

यद्यपि व्यावहरिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम के वर्णन से यह कतिपय अशो मे मिलता-जुलता है, लेकिन आशिक भिन्नता भी है और वह इस प्रकार कि सूक्ष्म पल्योपम का प्रमाण निर्देश करने के लिये जो एक से सात दिन तक के बालाग्र लिये गये हैं, उनके ऐसे खड किये जाएँ जो निर्मल चक्षु से देखने योग्य वस्तु की अपेक्षा भी असख्यातवे भाग हो और सूक्ष्म पनक जीव की शरीरा-वगाहना से असख्यातगुण प्रमाण हो । उनको प्रत्येक समय निकालने पर जितना काल व्यतीत हो वह कालप्रमाण एक सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहलाता है और जब दस कोटाकोटी प्रमाण पल्य खाली हो जाए तब एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम काल होता है ।

इसके प्रतिपादन करने का मुख्य प्रयोजन यह बतलाना है कि अढाई उद्धारसागरोपमो अर्थात् पच्चीस सूक्ष्म उद्धारपल्योपमो में से बालाग्र खडो को उद्धृत करने—निकालने मे जितने समय लगते है, उतने द्वीप-समुद्र है ।

अद्धापल्योपम-सागरोपमनिरूपण

३७७. से किं त अद्धापलिओवमे ?

अद्धापलिओवमे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सुहुमे य वावहारिए य ।

[३७७ प्र] भगवन् (पल्योपम प्रमाण के द्वितीय भेद) अद्धापल्योपम का क्या स्वरूप है ?

[३७७ उ] आयुष्मन् ! अद्धापल्योपम के दो भेद है—१ सूक्ष्म अद्धापल्योपम और २ व्यावहारिक अद्धापल्योपम ।

३७८. तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे ।

३७९. तत्थ णं जे से वावहारिए से जहानामए पल्ले सिया जोयणं विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय जाव भरिये वालग्गकोडीणं । ते णं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा, नो वाऊ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसेज्जा, नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा । ततो णं वाससते वाससते गते एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवति, से तं वावहारिए अद्धापलिओवमे ।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हविज्ज दसगुणिया ।
तं वावहारियस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ।। १०९ ।।

[३७८, ३७९] उनमें से सूक्ष्म अद्धापल्योपम अभी स्थापनीय है (अर्थात् वह बाद में प्ररूपित किया जायेगा) । व्यावहारिक का वर्णन निम्न प्रकार है—

धान्य के पल्य के समान एक योजन प्रमाण दीर्घ, एक योजन प्रमाण विस्तार और एक योजन प्रमाण ऊर्ध्वता से युक्त तथा साधिक तीन योजन की परिधि वाला कोई पल्य हो । उस पल्य को एक, दो, तीन दिवस यावत् सात दिवस के उगे हुए बालाग्रो से इस प्रकार से पूरित कर दिया जाए कि वे बालाग्र अग्नि से जल न सके, वायु उन्हे उडा न सके, वे सड-गल न सके, उनका विध्वस भी न हो सके और उनमे दुर्गन्ध भी उत्पन्न न हो सके । तदनन्तर उस पल्य मे से सौ-सौ वर्ष के पश्चात् एक-एक बालाग्र निकालने पर जितने काल मे वह पल्य उन बालाग्रो से रहित, रजरहित और निर्लेप एव निष्ठित—पूर्ण रूप से खाली हो जाए, उतने काल को व्यावहारिक अद्धापल्योपम कहते है ।

दस कोटाकोटि व्यावहारिक अद्धापल्योपमो का एक व्यावहारिक सागरोपम होता है । १०५

३८०. एएहिं वावहारिएहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं किं पओयणं ?

एएहिं जाव नत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं तु पण्णवणा पण्णविज्जति । से त्तं वावहारिए अद्धापलिओवमे ।

[३८० प्र] भगवन् ! व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम मे किस प्रयोजन की सिद्धि होती है ?

[३८० उ.] आयुष्मन् ! व्यावहारिक अद्धा पल्योपम एव सागरोपम से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होना है । ये केवल प्ररूपणा के लिये है ।

इस प्रकार से व्यावहारिक अद्धापल्योपम का स्वरूप जानना चाहिये ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम के स्वरूप का निरूपण करते हुए इन दोनो के प्रयोजन का कथन किया है । इन दोनो के स्वरूप का निरूपण पूर्वोक्त व्यावहारिक उद्धार पल्योपम एव सागरोपम के तुल्य ही है, किन्तु इतना अन्तर है कि व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम मे एक-एक बालाग्र को प्रत्येक समय न निकाल कर सौ-सौ वर्ष के बाद निकालने पर जितना समय लगता है उतना काल व्यावहारिक अद्धापल्योपम का है और दस कोटा-कोटि व्यावहारिक अद्धापल्योपमो का एक व्यावहारिक अद्धासागरोपम होता है ।

इस व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम का साक्षात् प्रयोजन तो कुछ नही है, लेकिन परम्परा रूप मे सूक्ष्म अद्धा पल्योपम और सागरोपम का ज्ञान कराने मे सहायक हैं । इसलिये इनकी प्ररूपणा की गई है ।

३८१. से किं तं सुहुमे अद्धापलिओवमे ?

सुहुमे अद्धापलिओवमे से जहानामते पल्ले सिया—जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं; से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं । तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जति । ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जति-

भागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा। ते णं बालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, नो वाऊ हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो पलिविद्धंसेज्जा, नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा। ततो णं वाससते वाससते गते एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेण से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवति, से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सुहुमस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं॥ ११०॥

[३८१ प्र] भगवन्! सूक्ष्म अद्धापल्योपम का क्या स्वरूप है?

[३८१ उ] आयुष्मन्! सूक्ष्म अद्धापल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है— एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा, एक योजन ऊचा एव साधिक (कुछ न्यून षष्ठ भाग अधिक) तीन योजन की परिधि वाला एक पल्य हो। उस पल्य को एक-दो-तीन दिन के यावत् बालाग्र कोटियो से पूरी तरह भर दिया जाए। फिर उनमे से एक-एक बालाग्र के ऐसे असख्यात असख्यात खण्ड किये जाएँ कि वे खण्ड दृष्टि के विषयभूत होने वाले पदार्थों की अपेक्षा असख्यात भाग हो और सूक्ष्म पनक जीव की शरीरावगाहना से असख्यात गुणे अधिक हो। उन खण्डो मे से सौ-सौ वर्ष के पश्चात् एक-एक खण्ड को अपहृत करने—निकालने पर जितने समय मे वह पल्य बालाग्रखण्डो से विहीन, नीरज, सश्लेषहित और सपूर्ण रूप से निष्ठित—खाली हो जाए, उतने काल को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते है।

इस अद्धापल्योपम को दस कोटाकोटि से गुणा करने से अर्थात् दस कोटाकोटि सूक्ष्म अद्धापल्योपमो का एक सूक्ष्म अद्धासागरोपम होता है। ११०

३८२. एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं?

एतेहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवम-सागरोवमेहिं णेरतिय-तिरियजोणिय-मणूस-देवाणं आउयाइं मविज्जति।

[३८२ प्र] भगवन्! इस सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है?

[३८२ उ] आयुष्मन्! इस सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवो के आयुष्य का प्रमाण जाना जाता है।

विवेचन—यहाँ सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम का स्वरूप बताया है। व्यावहारिक अद्धापल्योपम से इस सूक्ष्म अद्धापल्योपम के वर्णन मे यह अन्तर है कि पल्य मे भरे बालाग्रो के असख्यात-असख्यात खण्ड बुद्धि से कल्पित करके उन खण्डो को सौ-सौ वर्ष बाद पल्य मे से निकाला जाता है। जितने काल मे वे बालाग्रखण्ड निकल जाते है उतने काल को एक सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते है। व्यावहारिक अद्धापल्योपम मे सख्यात करोड वर्ष और सूक्ष्म अद्धापल्योपम मे असख्यात करोड वर्ष होते है।

इसके द्वारा नारक आदि चातुर्गतिक जीवो की भवस्थिति और साथ मे कायस्थिति, कर्मस्थिति

आदि का मान ज्ञात किया जाता है। अतएव अब चतुर्गति के जीवो की भवस्थिति—आयुष्य का प्रमाणनिरूपण करते हैं।

नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव ये चार गतिया है। अत इसी क्रम से उनकी स्थिति का निर्देश करने के लिए जिज्ञासु प्रश्न करता है--

नारकों की स्थिति

३८३. [१] **णेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?**

गो० ! जहन्नेण दसवाससहस्साइ उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइ।

[३८३-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो की स्थिति (आयु) कितने काल की कही गई है ?

[३८३-१ उ] गौतम ! सामान्य रूप मे (नारक जीवो की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही है।

विवेचन—सूत्र मे सामान्य रूप मे नैरयिक जीवो की स्थिति बताई है किन्तु रत्नप्रभा आदि नाम वाली नरकपृथ्विया सात हैं। अत अब पृथक्-पृथक पृथ्वी के नारको की स्थिति का निरूपण करते हैं।

[२] **रयणप्पभापुढविणेरइयाणं भंते ! केवतिय काल ठिती प० ? गो० ! जहन्नेण दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं एक्क सागरोवम, अपज्जत्तगरयणप्पभापुढविणेरइयाण भंते ! केवतिकाल ठिती पं० ?**

गो० ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० अतो०, पज्जत्तग जाव जह० दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं अतोमुहुत्तूण।

[३८३-२ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ?

[३८३-२ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नारको की स्थिति कितने काल की है ?

[उ] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है।

[प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नारको की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त न्यून दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून एक सागरोपम की होती है।

[३] **सक्करपभापुढविणेरइयाण भंते ! केवतिकालं ठिती पं० ? गो० ! जहन्नेणं सागरोवम उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।**

[३८३-३ प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको की स्थिति कितनी है ?

[३८३-३ उ] गौतम (सामान्य रूप मे) शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको की जघन्य स्थिति एक सागरोपम और उत्कृष्ट तीन सागरोपम प्रमाण कही गई है।

[४] एवं सेसपढ़ासु वि पुच्छा भाणियव्वा—वालुयपभापुढविणेरइयाणं जह० तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

पंकपभापुढविनेरइयाणं जह० सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेण दस सागरोवमाइं।

धूमप्पभापुढविनेरइयाण जह० दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

तमपुढविनेरइयाण भंते ! केवतिकाल ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जहन्नेण सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

तमतमापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिकालं ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जहन्नेण बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३८३-४] इसी प्रकार के प्रश्न शेष पृथ्वियो के विषय मे भी पूछना चाहिये। जिनके उत्तर क्रमश इस प्रकार है—

बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

(चतुर्थ) पकप्रभा पृथ्वी के नारको की जघन्य स्थिति सात सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही है।

धूमप्रभा (नामक पचम) पृथ्वी के नारको की जघन्य स्थिति दस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागरोपम प्रमाण जानना चाहिये।

[प्र] भगवन् ! तम प्रभा पृथ्वी के नारको की स्थिति कितने काल की है ?

[उ] गौतम ! तम प्रभा नामक षष्ठ पृथ्वी के नारको की जघन्य स्थिति सत्रह सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! तमस्तम प्रभा पृथ्वी के नारको की आयु-स्थिति कितने काल की बताई है ?

[उ] आयुष्मन् ! तमस्तम प्रभा (नामक सप्तम) पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।[1]

---

१ सातो नरकपृथ्वियो के नारको की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति दर्शक सग्रहणी गाथाएँ इस प्रकार है—

सागरमेग तिय सत्त दस य सत्तरस तह य बावीसा।
तेतीस जाव ठिई सत्तसु वि कमेण पुढवीसु॥
जा पढमाए जेट्ठा सा बीयाए कणिट्ठिया भणिया।

प्रथम नरकपृथ्वी से लेकर सप्तम पृथ्वी तक अनुक्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है तथा जो पूर्व पृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति है, वह उसकी उत्तरवर्ती पृथ्वी की जघन्य स्थिति जानना चाहिये।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकगति के जीवो की सामान्य एव प्रत्येक भूमि के नारको की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बतलाया है।

जीव को जो नारकादि भवो मे रोक कर रखती है, उसे स्थिति कहते हैं। कर्मपुद्गलों का बधकाल से लेकर निर्जरणकाल तक आत्मा में अवस्थान रहने के काल का बोध करने के लिये भी कर्मशास्त्र मे स्थिति शब्द का प्रयोग होता है लेकिन यहाँ आयुकर्म के निषेको का अनुभवन—भोगने के अर्थ मे स्थिति शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसलिये जब तक विवक्षित भव का आयुकर्म उदयावस्था मे रहता है, तब तक जीव उस पर्याय मे रहता है। विवक्षित पर्याय मे आयुकर्म के सद्भाव तक रहना इसी का नाम जीवित या जीवन है और यहाँ इस जीवन के अर्थ मे स्थिति शब्द रूढ है।[1] इसीलिये नारको की दस हजार वर्ष आदि की जो स्थिति कही है, उसका तात्पर्य यह है कि जीव इतने काल तक विवक्षित नारक अवस्था मे रहेगा।

ज्ञानावरण आदि अन्य कर्मों की स्थिति की तरह आयुकर्म की स्थिति के भी दो प्रकार है—१ कर्मरूपतावस्थानलक्षणा और २ अनुभवयोग्या।

भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यच तथा देव और नारक अपनी-अपनी आयु के छह मास शेष रहने पर परभव की आयु बाधते है तथा कर्मभूमिज मनुष्यो और तिर्यचो के प्राय अपनी आयु के त्रिभाग मे परभव की आयु का बध होता है।

इस प्रकार से आयुकर्म के बध की विशेष स्थिति होने के कारण एव बध की अनिश्चितता के कारण आयुकर्म की स्थिति मे उसका अबाधाकाल सम्मिलित नही किया जाता है, जिससे उसकी कर्मरूपतावस्थानलक्षणा स्थिति का निश्चित प्रमाण बताया जा सके, इसीलिये उसकी जो भी स्थिति कही जाती है वह शुद्ध स्थिति (भुज्यमान स्थिति) होती है। उसमे अबाधाकाल सम्मिलित नही रहता है। अतएव यहाँ जो नारक जीवो की आयुरूप स्थिति कही गई है तथा आगे के सूत्रो मे तिर्यच आदि जीवो की स्थिति कही जाएगी, वह अनुभवयोग्या-भुज्यमान आयु की अपेक्षा कही गई जानना चाहिये।

अपर्याप्त अवस्था की आयुस्थिति का काल सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त ही है। सामान्य स्थिति मे से अपर्याप्त काल को कम कर देने पर जो स्थिति शेष रहती है, वह पर्याप्तको की स्थिति जानना चाहिये।

देव, नारक और असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य, तिर्यच करण की अपेक्षा ही अपर्याप्तक माने गये हैं, लब्धि की अपेक्षा नही। लब्धि की अपेक्षा तो ये सब पर्याप्तक ही होते है। इनके अतिरिक्त शेष जीव लब्धि से पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो प्रकार के होते है।

यहाँ नारको की भवधारणीय स्थिति का मान निरूपित किया गया है। अब भवनपति देवो की स्थिति का कथन किया जाता है—

---

१ यद्यपि कर्मपुद्गलाना बधकालादारभ्यनिर्जरणकाल यावत्सामान्येनावस्थिति कर्मशास्त्रेषु स्थिति प्रतीता, तथाऽप्यायु कर्मपुद्गलानुभवनमेव जीवित रूढम्। —अनुयोगद्वारटीका, पत्र १८४

भवनपति देवों की स्थिति

३८४. असुरकुमाराण भंते ! देवाणं केवतिकालं ठिती पं० ?

गो० ! जहन्नेण दसवाससहस्साइं, उक्कोसेण सातिरेगं सागरोवम ।

असुरकुमारीणं भंते ! देवीण केवतिकाल ठिती पं० ?

गो० ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं ।

[३८४-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ?

[३८४-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम प्रमाण है ।

[प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ] गौतम ! जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की कही है ।

[२] नागकुमाराण जाव गो० ! जहन्नेण दसवाससहस्साइ, उक्कोसेणं देसूणाइं दोण्णि पलिओवमाइ ।

नागकुमारीणं जाव गो० ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेण देसूणं पलिओवमं ।

[३] एवं जहा णागकुमाराण देवाण देवीण य तहा जाव थणियकुमाराणं देवाणं देवीण य भाणियव्वं ।

[३८४-२, ३ प्र] भगवन् ! नागकुमार देवो की स्थिति कितनी है ।

[३८४-२, ३ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है ।

[प्र] भगवन् ! नागकुमारदेवियो की स्थिति कितने काल प्रमाण है ?

[उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम की होती है एव जितनी नागकुमार देव, देवियो की स्थिति कही गई है, उतनी ही शेष—सुपर्णकुमार से स्तनितकुमार तक के देवो और देवियो की स्थिति जानना चाहिये ।

विवेचन—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरो मे चार देवनिकायो मे से पहले भवनपति देवनिकाय के असुरकुमार आदि स्तनितकुमार पर्यन्त सभी दस भेदो के देव और देवियो की आयुस्थिति का प्रमाण बतलाया है । इन सभी देवों और देवियो की सामान्य से जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है किन्तु उत्कृष्ट स्थिति मे अन्तर है, जो मूल पाठ से स्पष्ट है ।

पंच स्थावरों की स्थिति

३८५. [१] पुढवीकाइयाणं भंते ! केवतिकालं ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्सा ।

सुहुमपुढविकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य तिण्ह वि पुच्छा ।

गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

बादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गो० ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं ।

अपज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गो० ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक होती है ?

[३८५-१ उ] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीवों की) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है।

[प्र] भगवन् ! सामान्य सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की तथा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त और पर्याप्तों की स्थिति कितनी है ?

[उ] गौतम ! इन तीनों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

[प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति के लिये पृच्छा है ?

[उ] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष की होती है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ?

[उ] गौतम ! (अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है तथा पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून बाईस हजार वर्ष की है।

[२] एवं सेसकाइयाणं पि पुच्छावयणं भाणियव्वं—आउकाइयाणं जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण सत्तवाससहस्साइं ।

सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं तिण्ह वि जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

बादरआउकाइयाणं जाव गो० ! जहा ओहियाणं ।

अपज्जत्तयबादरआउकाइयाणं जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

पज्जत्तयबादरआउ० जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण सत्तवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८५-२] इसी प्रकार से शेष कायिकों (अप्कायिक से वनस्पतिकायिक पर्यन्त) जीवों की स्थिति के विषय में भी प्रश्न कहना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जानने के लिये प्रश्न किये है, उसी प्रकार से शेष कायिक जीवों के विषय में प्रश्न करना चाहिये। उत्तर इस प्रकार है—

गौतम ! अप्कायिक जीवो की औघिक जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की है।

सामान्य रूप मे सूक्ष्म अप्कायिक तथा अपर्याप्त और पर्याप्त अप्कायिक जीवो की जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

गौतम ! बादर अप्कायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सामान्य अप्कायिक जीवो के तुल्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष है।

गौतम ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

गौतम ! पर्याप्तक बादर अप्कायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून सात हजार वर्ष की है।

[३] तेउकाइयाण भते ! जाव गो० ! जह अतोमुहुत्त उक्कोसेण तिण्णि राइदियाइ।

सुहुमतेउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य तिण्ह वि जह० अतो० उक्को० अतो०।

बादरतेउकाइयाण भते ! जाव गो० ! जह० अतोमुहुत्तं उक्कोसेण तिण्णि राइदियाइ।

अपज्जत्तयबायरतेउकाइयाण जाव गो० ! जह० अतो० उक्कोसेण अतो०।

पज्जत्तयबायरतेउकाइयाण जाव गो० ! जह० अतो० उक्कोसेण तिण्णि राइदियाइ अतोमुहुत्तूणाइ।

[३८५-३ प्र] भगवन् ! (सामान्य रूप मे) तेजस्कायिक जीवो की कितनी स्थिति कही गई है ?

[३८५-३ उ] आयुष्मन् ! सामान्य तेजस्कायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात-दिन की बताई है।

औघिक सूक्ष्म तेजस्कायिक और पर्याप्त, अपर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[प्र] भगवन् ! बादर तेजस्कायिक जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

[उ] गौतम ! बादर तेजस्कायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन रात्रि-दिन की होती है।

[प्र] भगवन् ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का कालप्रमाण कितना है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

[प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवो की स्थिति कितनी होती है ?

[उ] गौतम ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन रात्रि-दिन की होती है।

[४] वाउकाइयाणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि वाससहस्साइं।

सुहुमवाउकाइयाण ओहियाण अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य तिण्ह वि जह अतो० उक्को० अंतोमुहुत्तं।

बादरवाउकाइयाण जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयबादरवाउकाइयाण जाव गो० ! जह० अतोमुहुत्त उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

पज्जत्तयबादरवाउकातियाण जाव गो० ! जह० अतोमुहुत्तं उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ।

[३८५-४ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की होती है ?

[३८५-४ उ] गौतम ! वायुकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की होती है। किन्तु सामान्य रूप मे सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की तथा उसके अपर्याप्त और पर्याप्त भेदो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है।

गौतम ! बादर वायुकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की होती है।

अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। और—

गौतम ! पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन हजार वर्ष की है।

[५] वणस्सइकाइयाण जाव गो० ! जह० अतो० उक्को० दसवाससहस्साइ।

सुहुमाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य तिण्हि वि जह० अतो० उक्कोसेण अतोमुहुत्त।

बादरवणस्सइकाइयाण भते ! केवइयं काल ठिती पन्नत्ता ? गो० ! जह० अतो० उक्को० दस वाससहस्साइ, अपज्जत्तयाणं जाव गो० ! जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयबादरवणस्सइकाइयाणं जाव गो० ! जह० अतो० उक्को० दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइं।

[३८५-५ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३८५-५ उ] गौतम ! सामान्य रूप से वनस्पतिकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की होती है।

सामान्य सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके अपर्याप्तक और पर्याप्तक भेदो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

[प्र] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक जीवो की कितनी स्थिति बताई है ?

[उ] गौतम ! बादर वनस्पतिकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की कही है यावत् गौतम ! अपर्याप्तको की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। किन्तु गौतम ! पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून दस हजार वर्ष की जानना चाहिए।

विवेचन—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरो मे पहले तो सामान्य से पृथ्वीकायिक आदि पाच स्थावरो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बताया है। किन्तु पृथ्वीकायिक आदि ये पाचो स्थावर सूक्ष्म और बादर के भेद से दो-दो प्रकार के है और ये प्रत्येक भेद भी अपर्याप्तक एव पर्याप्तक इन दो अवस्थाओ वाले होते है।

उक्त भेदो मे से पाचो सूक्ष्म स्थावरो की औघिक, पर्याप्त और अपर्याप्त भेदो तथा बादर अपर्याप्तको की जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, लेकिन पर्याप्त बादरो की उनके अपर्याप्तकाल की स्थिति कम करके शेष स्थिति इस प्रकार जानना चाहिये—

नाम	ज स्थि	उ स्थि
पृथ्वी	अन्तर्मुहूर्त	बाईस हजार वर्ष (अन्त० न्यून)
अप्	,,	सात ,, ,, ,,
तेज	,,	तीन दिन-रात ,,
वायु	,,	तीन हजार वर्ष ,,
वनस्पति	,,	दस ,, ,, ,,

सूक्ष्म और बादर अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक आदि की सामान्य से तथा जघन्य और उत्कृष्ट एव इन्ही के पर्याप्तक भेद की जघन्य स्थिति का ठीक-ठीक परिमाण क्षुद्रभव रूप अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इसका कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्त के बहुत भेद है और निगोदिया जीव के भव की आयु को क्षुद्रभव कहते है। क्योकि सब भवो की अपेक्षा उसकी स्थिति अति अल्प होती है। इतनी स्थिति मनुष्य तिर्यंचो मे सभव होने से मनुष्य और तिर्यच की जघन्य स्थिति का ठीक-ठीक प्रमाण क्षुद्रभव रूप अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए।

विकलेन्द्रियों की स्थिति

३८६. [१] बेइंदियाणं जाव

गो० जह० अंतो० उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि।

अपज्जत्तय जाव गोतमा ! जह० अंतो० उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

पज्जत्तयाण जाव गोतमा ! जह० अंतो० उक्कोसेण बारस संवच्छराणि अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८६-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-१ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की है।

अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

पर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तन्यून बारह वर्ष की है।

[२] तेइंदियाणं जाव
गो० ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० एकूणपण्णासं राइंदियाइं।
अपज्जत्तय जाव गोतमा ! जह० अंतो० उक्कोसेणं अंतो०।
पज्जत्तय जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेणं एकूणपण्णास राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८६-२ प्र] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट उनपचास (४९) दिन-रात्रि की होती है।

अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून उनपचास दिन-रात्रि की होती है।

[३] चउरिंदियाणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० छम्मासा।
अपज्जत्तय जाव गो० ! जह० अंतोमुहुत्त उक्को० अंतो०।
पज्जत्तयाणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा।

[३८६-३ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३८६-३ उ] गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छह मास की होती है।

अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।

पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून छह मास की होती है।

विवेचन—ऊपर औघिक रूप मे विकलेन्द्रियत्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो की और उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेदो की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बतलाया है। सामान्य से तथा अपर्याप्त जीवो की जघन्य स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होती है किन्तु पर्याप्त जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति अपर्याप्त अवस्थाभावी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को कम करके शेष जानना चाहिये, जिसका दर्शक प्रारूप इस प्रकार है—

नाम	ज स्थि	उ स्थि
द्वीन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	बारह वर्ष (अन्त न्यून)
त्रीन्द्रिय	,,	उनपचास दिन (,,)
चतुरिन्द्रिय	,,	छह मास (,,)

पंचेन्द्रियतिर्यंचों को स्थिति

३८७. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव

गो० ! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं।

[३८७-१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की बताई है ?

[३८७-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तर मे सामान्य से तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निर्देश किया है, लेकिन जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव तीन प्रकार के है और ये तीनो प्रकार भी प्रत्येक सम्मूर्च्छिम तथा गर्भज के भेद से दो-दो प्रकार के हैं। अतएव अब इन प्रत्येक की स्थिति का पृथक्-पृथक् कथन करते है—

जलचर पंचेन्द्रियतिर्यंचों को स्थिति

[२] जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव

गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गोयमा ! जह० अंतो० उक्कोसेण अतो०।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

गब्भवक्कंतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जह० अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

अपज्जत्तयगब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० अतो०।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव गोयमा ! जह० अतो० उक्को० पुव्वकोडी अतोमुहुत्तूणा।

[३८७-२ प्र] भगवन् ! जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति कितनी कही गई है ?

[३८७-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण की होती है तथा सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की होती है।

अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यँचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तन्यून पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण जानना चाहिये।

सामान्य से गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष जितनी है।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है।

पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरपचेन्द्रियतिर्यँचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि वर्ष की है।

विवेचन—यहाँ जलचरपचेन्द्रियतिर्यच जीवो की स्थिति का वर्णन किया है। पानी के अदर रहने वाले जीवो को जलचर कहते है। ये दो प्रकार के है—सम्मूर्च्छिम और गर्भज। दिशा-विदिशा आदि से इधर-उधर से शरीरयोग्य पुद्‌गलो का ग्रहण होकर शरीराकार रूप परिणत हो जाने को सम्मूर्च्छिम जन्म और स्त्री के उदर मे शुक्र-शोणित के परस्पर गरण अर्थात् मिश्रण को गर्भ कहते है। इस गर्भ से उत्पन्न होने वाले जीव गर्भज कहलाते है। यह जन्मभेद मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यचगति के जीवो मे पाया जाता है। इनमे कोई पर्याप्तक होते है और कोई अपर्याप्तक। इसीलिये तिर्यच पचेन्द्रिय के भेद जलचर जीवो की स्थिति सम्मूर्च्छिम और गर्भज तथा इन दोनो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेदो की अपेक्षा पृथक्-पृथक् बतलाई है।

पूर्व का प्रमाण पहले बताया जा चुका है कि चौरासी लाख वर्ष को एक पूर्वांग कहते है और चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व कहलाता है। अको मे जिसकी गणना का प्रमाण ७०५६०००००००००० वर्ष होता है।[1] इस प्रकार के वर्ष प्रमाण वाले एक पूर्व के हिसाब से करोड पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति जलचरपचेन्द्रियतिर्यच जीवो की होती है।

चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से स्थलचर जीव तीन प्रकार के है। क्रम से उनकी स्थिति इस प्रकार है—

स्थलचर पचेन्द्रियतिर्यंचों की स्थिति

[३] चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण भंते ! केवतिकाल ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जह० अतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइ।

सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जह० अतो० उक्को० चउरासीतिवाससहस्साइ।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जहन्नेण अतो० उक्को० अतो०।

---

१ पुव्वस्स हु परिमाण सत्तरि खलु कोडिसदसहस्साइ।
छप्पण्ण च सहस्सा बोद्‌धव्वा वासकोडीण ॥ —सर्वार्थसिद्धि पृ. १६५ से उद्‌धृत

पज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० चउरासीतिवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं ।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पय० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण अंतोमुहुत्तं ।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतिकालं ठिती पं० ? गो० ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

सम्मुच्छिमउरपरिसप्प० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० तेवन्नं वाससहस्साइं ।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमउरपरिसप्प० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण अंतो० ।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमउरपरिसप्प० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियउरपरिसप्प० जाव गोतमा ! जह० अंतो० उक्को० अंतो० ।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

भुयपरिसप्पथलयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

सम्मुच्छिमभुयपरिसप्प० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेण बायालीस वाससहस्साइं ।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० अंतो० ।

पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदिय० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० बायालीस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियाण जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी ।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्को० अंतोमुहुत्तं ।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयर० जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३८७-३ प्र] भगवन् ! चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ?

[३८७-३ उ] गौतम ! सामान्य रूप से जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है ।

गौतम ! सम्मूर्च्छिमचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति चौरासी हजार वर्ष की है ।

अपर्याप्तक सम्मूच्छिम चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना चाहिये । तथा—

पर्याप्तक सम्मूच्छिमचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त हीन चौरासी हजार वर्ष की जानना चाहिये ।

गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है ।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

पर्याप्तक गर्भजचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त हीन तीन पल्योपम की जानना चाहिये ।

[प्र] भगवन् ! उरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंयोनिक जीवों की स्थिति कितनी है ?

[उ] गौतम ! सामान्य रूप से उरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट करोड पूर्व वर्ष की है ।

[प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिमउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति त्रेपन हजार वर्ष की है ।

अपर्याप्तक सम्मूच्छिमउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ।

पर्याप्तक सम्मूच्छिमउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून त्रेपन हजार वर्ष की है । तथा—

[प्र] भगवन् ! गर्भजउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ] गौतम ! गर्भजउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति कोटि पूर्व वर्ष की है ।

गौतम ! अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकउरपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ।

पर्याप्तक गर्भजउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटि वर्ष की है ।

[प्र] भगवन् ! भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ?

[उ] गौतम ! सामान्य से तो भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व वर्ष की है ।

सम्मूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की होती है। तथा—

अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की जानना चाहिये। और—

गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून बयालीस हजार वर्ष की होती है।

गौतम! गर्भव्युत्क्रान्तिकभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की औधिक जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट करोड पूर्व वर्ष की है।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।

पर्याप्तक गर्भजभुजपरिसर्पस्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून करोड पूर्व वर्ष प्रमाण है।

विवेचन—यहाँ पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक के दूसरे भेद स्थलचर के चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन तीन प्रकारो की प्रभेदो सहित जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बतलाया है।

सामान्य से सभी की जघन्य स्थिति और अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है। लेकिन उत्कृष्ट स्थिति के प्रमाण मे अतर है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

गाय, भैस आदि चार पैर वाले तिर्यंच चतुष्पदपचेन्द्रियतिर्यंच, पेट के सहारे रेगने वाले—चलने वाले सर्प आदि जीव उरपरिसर्प और पैरो के सहारे रेगने वाले नेवला आदि जीव भुजपरिसर्प कहलाते है।

सामान्य से तो पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम है, जो भोगभूमिजो की अपेक्षा समझना चाहिये।

सम्मूर्च्छिम स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचो की उत्कृष्ट स्थिति सामान्य से चौरासी हजार वर्ष और गर्भज चतुष्पदो की तीन पल्योपम की है। पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम स्थलचरो की अन्तर्मुहूर्त न्यून चौरासी हजार वर्ष तथा गर्भजो की अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन पल्योपम प्रमाण है। क्योंकि अपर्याप्तकाल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही है। इसीलिये उसको कम करने का सकेत किया है।

स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचो के दूसरे भेद उरपरिसर्पो की सामान्य से उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। सम्मूर्च्छिम की उत्कृष्ट स्थिति त्रेपन हजार वर्ष और गर्भज की पूर्वकोटि वर्ष है। किन्तु पर्याप्त की अपेक्षा सम्मूर्च्छिम की अन्तर्मुहूर्तन्यून त्रेपन हजार वर्ष और गर्भज की अन्तर्मुहूर्त-न्यून पूर्वकोटि वर्ष जानना चाहिये।

स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यंचों के तीसरे भेद भुजपरिसर्पो की सामान्य से उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष तथा सम्मूर्च्छिमो की बयालीस हजार वर्ष और गर्भजो की पूर्वकोटि वर्ष है। पर्याप्त की अपेक्षा सम्मूर्च्छिमों की अन्तर्मुहूर्त न्यून बयालीस (४२) हजार वर्ष तथा गर्भजो की अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटि वर्ष है।

यहाँ सामान्य से तथा पृथक्-पृथक् भेदों की अपेक्षा जो जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बताया है, उसमे जघन्य से ऊपर और उत्कृष्ट काल से न्यून सभी स्थितिया मध्यम स्थितिया कहलाती हैं। जिनके अनेक भेद होते है।

खेचरपंचेन्द्रियतिर्यंचों की स्थिति

[४] खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! केवतिकाल ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जह० अतो० उक्को० पलिओवमस्स असखेज्जइभाग।

सम्मुच्छिमखहयर० जाव गो० ! जह० अतो० उक्को० बावत्तरिं वाससहस्साइ।

अपज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयर० जाव गो० ! जह० अतो० उक्कोसेण अतो०।

पज्जत्तगसम्मुच्छिमखहयर० जाव गोतमा ! जह० अतो० उक्कोसेण बावत्तरिं वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ।

गब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्ख० जाव गो० ! जह० अतो० उक्को० पलिओवमस्स असखेज्जइभाग।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयर० जाव गो० ! जह० अतोमुहुत्त उक्कोसेणं अतोमुहुत्त,

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्ख० जाव गोयमा ! जह० अतो० उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभाग अतोमुहुत्तूण।

[३८७-४ प्र] भगवन् ! खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की होती है ?

[३८७-४ उ] गौतम ! सामान्य से खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण होती है।

सम्मूर्च्छिम खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो की औधिक स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो की स्थिति जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट मे भी अन्तर्मुहूर्त की है।

पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून बहत्तर हजार वर्ष की जानना चाहिये।

सामान्य रूप मे गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो को जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

अपर्याप्तक गर्भज खेचरपचेन्द्रियतिर्यचयोनिको की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है। तथा—

पर्याप्तक गर्भजखेचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण होती है।

विवेचन—यहाँ खेचरपचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की स्थिति का प्रमाण बतलाया है। पूर्वनिर्धारित प्रणाली के अनुसार पहले सामान्य से, फिर उनके समूच्छिम और गर्भज भेद की अपेक्षा और फिर इन दोनो के भी अपर्याप्तक और पर्याप्तक प्रकारो की अपेक्षा स्थिति का निरूपण किया है। जघन्य स्थिति तो सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है लेकिन उत्कृष्ट स्थिति समूच्छिमो की बहत्तर हजार वर्ष और गर्भजो की पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है।

पर्याप्तको की उत्कृष्ट स्थिति मे से अन्तर्मुहूर्त न्यून करने का कारण यह है कि समस्त ससारी जीव अन्तर्मुहूर्त काल में यथायोग्य अपनी-अपनी पर्याप्तियो को पूर्ण कर पर्याप्त हो जाते है। अपर्याप्त अवस्था अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल तक नही रहती।

संग्रहणी गाथायें

[५] **एत्थ एतेसिं संगहणिगाहाओ भवंति। तं जहा—**

सम्मुच्छ पुव्वकोडी, चउरासीति भवे सहस्साइं।
तेवण्णा बायाला, बावत्तरिमेव पक्खीणं॥ १११॥
गब्भम्मि पुव्वकोडी, तिण्णि य पलिओवमाइ परमाउ।
उर-भुयग पुव्वकोडी, पलिउवमासंखभागो य॥ ११२॥

[३८७-५] पूर्वोक्त कथन की सग्रहणी गाथायें इस प्रकार है—

समूच्छिम तिर्यचपचेन्द्रिय जीवो मे अनुक्रम से जलचरो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष, स्थलचरचतुष्पद समूच्छिमो की चौरासी हजार वर्ष, उरपरिसर्पो की त्रेपन हजार वर्ष, भुजपरिसर्पों की बियालीस हजार वर्ष और पक्षी (खेचरो) की बहत्तर हजार वर्ष की है। १११

गर्भज पचेन्द्रियतिर्यंचो मे अनुक्रम से जलचरो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष, स्थलचरों की तीन पल्योपम, उरपरिसर्पो और भुजपरिसर्पों की पूर्वकोटि वर्ष और खेचरो की पल्योपम के असख्यातवें भाग की है। ११२

विवेचन—पूर्व मे सप्रभेद पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है। उनमे से इन दो गाथाओ मे सामान्य से उन्ही की उत्कृष्ट स्थिति का उल्लेख किया है।

इस पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो की आयु-स्थिति के कथन के साथ तिर्यंचगति के समस्त जीवों की स्थिति का वर्णन पूर्ण हुआ।

मनुष्यों की स्थिति

३८८. [१] मणुस्साण भंते! केवइकालं ठिई प०?

गो०! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।

[३८८-१ प्र] भगवन्! मनुष्यो की स्थिति कितने काल की बताई है?

[३८८-१ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही है।

[२] **सम्मुच्छिममणुस्साण जाव गो०! जह० अंतो० उक्को० अंतो०।**

[३८८-२] समूच्छिम मनुष्यो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव गो० ! जह० अंतो० उक्कोसेणं अंतो०।

पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८८-३] गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यो की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यो की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की ही जानना चाहिए।

पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन पल्योपम प्रमाण है।

विवेचन—सूत्र मे मनुष्यगति के जीवो की आयुस्थिति का जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा निरूपण किया है। जम्बूद्वीप, धातकीखड और अर्धपुष्करवरद्वीप मनुष्यक्षेत्र हैं। इतने क्षेत्र मे ही मनुष्यो का निवास है। ये द्वीप अनेक खडो (भरत आदि क्षेत्रो) मे विभक्त है।

भरत, ऐरवत तथा देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर विदेह क्षेत्र मे कालपरिवर्तन के अनुसार अकर्मभूमि रूप अवस्था भी होती है और कर्मभूमि रूप भी।

यहाँ जो मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बताई है वह उत्तम भोगभूमि क्षेत्र देवकुरु और उत्तरकुरु की अपेक्षा जानना चाहिये। ये दोनो विदेहक्षेत्रान्तर्वर्ती स्थानविशेष हैं। यहाँ सदैव उत्तम भोगभूमि रूप स्थिति रहती है और कालापेक्षया सुषमासुषमा काल प्रवर्तमान रहता है।

व्यंतर देवों की स्थिति

३८९. वाणमंतराण भंते ! देवाण केवतिकालं ठिती पण्णत्ता ? गो० ! जहन्नेण दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवम।

वाणमंतरीणं भंते ! देवीण केवतिकालं ठिती पण्णत्ता ? गो० ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेण अद्धपलिओवम।

[३८९ प्र] भगवन् ! वाणव्यतर देवो की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ?

[उ ३८९] गौतम ! जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! वाणव्यतरो की देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अर्धपल्योपम की होती है।

विवेचन—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरो मे व्यतर देवनिकाय के देव-देवियो की जघन्य और उत्कृष्ट

स्थिति का निरूपण किया है। व्यतर देवो और देवियों की जघन्य स्थिति तो एक समान दस हजार वर्ष की है, किन्तु उत्कृष्ट स्थिति मे अन्तर है। देवो की स्थिति एक पल्योपम किन्तु देवियो की अर्धपल्योपम प्रमाण है।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति

३९०. [१] जोतिसियाणं भंते ! देवाणं जाव।

गोयमा ! जह० सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं।

जोइसीणं भंते ! देवीणं जाव गो० ! जह० अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं।

[३९०-१ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवो की स्थिति कितने काल की बताई है ?

[३९०-१ उ] गौतम ! जघन्य कुछ अधिक पल्योपम के आठवे भाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवियो की स्थिति कितने काल की बताई है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवा भाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की होती है।

[२] चदविमाणाणं भंते ! देवाणं जाव जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्साहियं।

चंदविमाणाणं भंते ! देवीणं जाव जहन्नेणं चउभागपलिओवम उक्को० अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं।

[३९०-२ प्र] भगवन् ! चद्रविमानो के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९०-२ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! चद्रविमानो की देवियो की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ?

[उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की होती है।

[३] सूरविमाणाणं भंते ! देवाणं जाव जह० चउभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं वाससहस्साहिय।

सूरविमाणाणं भंते ! देवीणं जाव जह० चउभागपलिओवमं उक्को० अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अधियं।

[३९०-३ प्र] भगवन् ! सूर्यविमानो के देवो की स्थिति कितने काल की बताई है ?

[३९०-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! सूर्यविमानो की देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[उ] गौतम ! सूर्यविमानों की देवियो की जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति पाँचसौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की होती है।

[४] गहविमाणाणं भंते ! देवाणं जाव जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्को० पलिओवमं।

गहविमाणाणं भंते ! देवीण जाव जह० चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवम।

[३९०-४ प्र] भगवन् ! ग्रहविमानो के देवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३९०-४ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की है।

[प्र] भगवन् ! ग्रहविमानो की देवियो की स्थिति कितने काल की बताई है ?

[उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण अर्धपल्योपम का है।

[५] णक्खत्तविमाणाणं भंते ! देवाण जाव गोयमा ! जह० चउभागपलिओवम उक्को० अद्धपलिओवम।

णक्खत्तविमाणाणं भंते ! देवीण जाव गो० ! जहन्नेणं चउभागपलिओवम उक्को० सातिरेग चउभागपलिओवम।

[३९०-५ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमानो के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९०-५ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति अर्धपल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमानो की देवियो की स्थिति का प्रमाण क्या है ?

[उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट स्थिति साधिक पल्योपम का चतुर्थ भाग प्रमाण है।

[६] ताराविमाणाणं भंते ! देवाणं जाव गो० ! जह० सातिरेग अट्ठभागपलिओवम उक्को० चउभागपलिओवम।

ताराविमाणाणं भंते ! देवीणं जाव गो० ! जहन्नेण अट्ठभागपलिओवम उक्को० सातिरेग अट्ठभागपलिओवम।

[३९०-६ प्र] भगवन् ! ताराविमानो के देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३९०-६ उ] गौतम ! कुछ अधिक पल्योपम का अष्टमांश भाग जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग है।

[प्र] भगवन् ! ताराविमानो की देवियो की स्थिति का काल कितना कहा है ?

[उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवा भाग और उत्कृष्ट स्थिति साधिक पल्योपम का आठवा भाग है।

विवेचन—उपर्युल्लिखित प्रश्नोत्तरों में ज्योतिष्क देवनिकाय के देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण बतलाया है। सूर्य, चद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये ज्योतिष्क देवो के पाच प्रकार हैं। इन पाचों के समुदाय को सामान्य भाषा मे ज्योतिष्कमडल कहते हैं। इनका अवस्थान हमारे इस समतल भूमिभाग से सात सौ नब्बे योजन ऊपर जाकर नौ सौ योजन तक के अन्तराल मे है। जिसका क्रम इस प्रकार है—समतल भूमिभाग से सात सौ नब्बे योजन ऊपर ताराओ के विमान हैं। ये सब ज्योतिष्क देवो के विमानो से अधोभाग मे स्थित है। इससे दस योजन ऊपर सूर्यविमान है, इससे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रविमान है, इससे चार योजन ऊपर अश्वनी, भरणी आदि नक्षत्रो के विमान हं, इनसे चार योजन ऊपर बुधग्रह का, इससे तीन योजन ऊपर शुक्रग्रह का, इससे तीन योजन ऊपर बृहस्पतिग्रह का, इससे तीन योजन ऊपर मगलग्रह का और इससे तीन योजन ऊपर शनिग्रह का विमान है। यह ज्योतिष्क देवो से व्याप्त नभ प्रदेश एक सौ दस योजन मोटा और घनोदधिवातवलय पर्यन्त असख्यात द्वीप-समुद्र पर्यन्त लबा है।

ये ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक मे मेरु की प्रदक्षिणा करने वाले और निरतर गतिशील है। जो मेरुपर्वत से चारो ओर ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर रहकर गोलाई मे विचरण करते है। इनकी इस निरतर गमनक्रिया के द्वारा मनुष्यक्षेत्र मे दिन-रात्रि आदि का कालविभाग होता है। मनुष्यक्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क देवो के विमान अवस्थित रहते है। वे गतिशील नही है।

पुष्करवरद्वीप के मध्यभाग मे स्थित मानुषोत्तरपर्वत के भीतर का क्षेत्र मनुष्यक्षेत्र कहलाता है। मानुषोत्तरपर्वत की एक बाजू से लेकर दूसरी बाजू तक कुल मिलाकर विस्तार पैंतालीस लाख योजन है।

वैमानिक देवो की स्थिति

३९१. [१] वेमाणियाण भते ! देवाणं जाव गो० ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ ।

वेमाणीण भते ! देवीण जाव गो० ! जह० पलिओवमं उक्को० पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[३९१-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३९१-१ उ] गौतम ! वैमानिक देवो की स्थिति जघन्य एक पल्य की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[प्र] भगवन् ! वैमानिक देवियो की स्थिति कितनी होती है ?

[उ] गौतम ! वैमानिक देवियो की जघन्य स्थिति एक पल्य की और उत्कृष्ट स्थिति पचपन (५५) पल्योपम की है।

विवेचन—ऊपर के प्रश्नोत्तरो मे सामान्य से वैमानिक देवो और देवियो की जघन्यतम और उत्कृष्टतम स्थिति का प्रमाण बतलाया है। शास्त्र मे देवो की सामान्य से जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष बतलाई है, किन्तु यहाँ वैमानिक देवो की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की बताने पर यह शका हो सकती है कि देवगति वाले होने पर भी इन वैमानिक देवो की जघन्य स्थिति का पृथक् से निर्देश करने का क्या कारण है ? इसका उत्तर यह है कि वैमानिक देव चतुर्विध देवनिकायो में विशुद्धतर

लेश्या-परिणाम-द्युति आदि से सपन्न हैं। इनकी अपेक्षा भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क देव विशुद्धि आदि में हीन हैं। अतएव वैमानिक देवो की पृथक् रूप से जघन्य स्थिति का निर्देश किया है। देवों की जो जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की बताई है, वह भवनपति और व्यंतर देवों की होती है और ये भवनपति व व्यंतर भी देवगति व देवायु वाले हैं। अतएव जब सामूहिक रूप में देवगति की जघन्य स्थिति का कथन करते हैं तो वह दस हजार वर्ष की बताई जाती है।

सौधर्म से लेकर अच्युत पर्यन्त के देव इन्द्र आदि दस भेदो की कल्पना होने से कल्पोपपन्न और इनके ऊपर ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देव उक्त प्रकार की कल्पना न होने से कल्पातीत सज्ञा वाले हैं। यहाँ जो जघन्य स्थिति एक पल्योपम की बताई है, वह पहले सौधर्म देवों की अपेक्षा से है और तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति सर्वार्थसिद्ध देवो की होती है। अब अनुक्रम से एक-एक कल्प और कल्पातीत देवो की स्थिति का वर्णन करते हैं।

सौधर्म आदि अच्युत पर्यन्त कल्पों की स्थिति

[२] सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवतिकालं ठिती प० ?

गो० ! जह० पलिओवमं उक्कोसेणं दोन्नि सागरोवमाइं ।

सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवीणं जाव गोयमा ! जहन्नेण पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ।

सोहम्मे णं भंते ! कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं जाव गो० ! जह० पलिओवमं उक्कोसेणं पन्नासं पलिओवमाइं ।

[३९१-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प के देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३९१-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की है।

[प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में (परिगृहीता) देवियो की स्थिति कितने काल की है ?

[उ] गौतम ! सौधर्मकल्प में (परिगृहीता) देवियो की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है।

[प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति पचास पल्योपम की होती है।

[३] ईसाणे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवतिकालं ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जहन्नेणं सातिरेगं पलिओवमं उक्को० सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ।

ईसाणे णं भंते ! कप्पे देवीणं जाव गो० ! जह० सातिरेगं पलिओवमं उक्को० नव पलिओवमाइं ।

ईसाणे णं भंते ! कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं जाव गो० ! जहन्नेणं साइरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[३९१-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१-३ उ] गौतम ! ईशानकल्प के देवो की जघन्य स्थिति साधिक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति साधिक दो सागरोपम की है।

[प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प की (परिगृहीता) देवियो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति साधिक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की होती है।

[प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितनी है ?

[उ] गौतम ! जघन्य कुछ अधिक पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है।

[४] सणंकुमारे णं भते ! कप्पे देवाणं केवइकालं ठिती पन्नत्ता ?

गो० ! जह० दो सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

[३९१-४ प्र] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प के देवो की स्थिति कितनी होती है ?

[३९१-४ उ] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्टत सात सागरोपम की है।

[५] माहिंदे णं भंते ! कप्पे देवाणं जाव गोतमा ! जह० साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्को० साइरेगाइ सत्त सागरोवमाइ।

[३९१-५ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प मे देवो की स्थिति का प्रमाण कितना है ?

[३९१-५ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति साधिक दो सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम प्रमाण है।

[६] बम्भलोए णं भते ! कप्पे देवाणं जाव गोतमा ! जहं० सत्त सागरोवमाइं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइ।

[३९१-६ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प के देवो की स्थिति कितनी है ?

[३९१-६ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति सात सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

[७] एव कप्पे कप्पे केवतिकाल ठिती पन्नत्ता ? गो० ! एवं भाणियव्वं—

लंतए जह० दस सागरोवमाइं उक्को० चोद्दस सागरोवमाइं।

महासुक्के जह० चोद्दस सागरोवमाइ उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

सहस्सारे जह० सत्तरस सागरोवमाइं उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं।

आणए जह० अट्ठारस सागरोवमाइं उक्को० एक्कूणवीसं सागरोवमाइं।

पाणए जह० एक्कूणवीसं सागरोवमाइं उक्को० वीसं सागरोवमाइं।

आरणे जह० वीसं सागरोवमाइं उक्को० एक्कवीसं सागरोवमाइं।

अच्चुए जह० एक्कवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

[३९१-७ प्र.] भगवन् ! इसी प्रकार प्रत्येक कल्प की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३९१-७ उ.] गौतम ! वह इस प्रकार कहना जानना चाहिये—

लातककल्प में देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम, उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की होती है।

महाशुक्रकल्प के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागरोपम की है।

सहस्रारकल्प के देवों की जघन्य स्थिति सत्रह सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम की है।

आनतकल्प मे जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम की है।

प्राणतकल्प मे जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की है।

आरणकल्प के देवो की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की स्थिति है।

अच्युतकल्प के देवो की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति होती है।

विवेचन—पूर्व मे सामान्य से वैमानिक देवो की स्थिति बताने के बाद यहाँ विशेष रूप से स्थिति का निर्देश किया है। वैमानिक देवो के छब्बीस लोक है। उनमे सौधर्म आदि अच्युत पर्यन्त बारह देवलोक कल्पसंज्ञक है। इनकी सामान्य से जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है। देवियो की जघन्य स्थिति एक पल्य की और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है। किन्तु दूसरे ईशानकल्प से ऊपर देविया उत्पन्न नही होती हैं, इसलिये दूसरे कल्प तक ही देवियो की स्थिति का कथन किया है। इनके दो भेद है—परिगृहीता और अपरिगृहीता। इन दोनो की जघन्य स्थिति प्रथम देवलोक मे एक पल्योपम की और दूसरे देवलोक मे साधिक एक पल्योपम की है, लेकिन प्रथम देवलोक की परिगृहीता देवियो की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की और अपरिगृहीता की पचास पल्य की होती है। द्वितीय देवलोक की परिगृहीता देवियो की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की अपरिगृहीताओं की पचपन पल्योपम की होती है।

ईशानकल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति सौधर्मकल्प के देवो से कुछ अधिक दो सागरोपम और सनत्कुमारकल्प की अपेक्षा माहेन्द्रकल्प के देवो की उत्कृष्ट स्थिति साधिक सात सागरोपम है। लेकिन इसके बाद ब्रह्मलोक से लेकर अच्युत कल्प तक पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति उत्तर की जघन्य स्थिति जानना चाहिये।

ग्रैवेयक और अनुत्तर देवो की स्थिति

[८] हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइकालं ठिती पं० ?

गो० ! जह० बावीसं सागरोवमाइं उक्को० तेवीसं सागरोवमाइं।

हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता? गो०! जह० तेवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं।

हेट्ठिमउवरिमगेवेज्ज० जाव जह० चउवीसं सागरोवमाइं उक्को० पणुवीसं सागरोवमाइं।

मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणेसु णं जाव गोयमा! जह० पणुवीसं सागरोवमाइं उक्को० छव्वीसं सागरोवमाइं।

मज्झिममज्झिमगेवेज्ज० जाव जह० छव्वीसं सागरोवमाइं उक्को० सत्तावीसं सागरोवमाइं।

मज्झिमउवरिमगेवेज्जविमाणेसु णं जाव गोतमा! जह० सत्तावीसं सागरोवमाइं उक्को० अट्ठावीसं सागरोवमाइं।

उवरिमहेट्ठिमगेवेज्ज० जाव जह० अट्ठावीसं सागरोवमाइं उक्को० एक्कूणतीसं सागरोवमाइं।

उवरिममज्झिमगेवेज्ज० जाव जह० एक्कूणतीसं सागरोवमाइं उक्को० तीसं सागरोवमाइं।

उवरिमउवरिमगेवेज्ज० जाव जह० तीसं सागरोवमाइं उक्को० एक्कतीसं सागरोवमाइं।

[३९१-८ प्र] भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान मे देवों की स्थिति कितनी कही गई है?

[३९१-८ उ] गौतम! जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम की है।

[प्र] भगवन्! अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमान के देवो की स्थिति कितनी कही है?

[उ] गौतम! जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम की है।

अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक के देवो की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम की है। तथा—

गौतम! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक के देवो की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम की होती है। तथा—

मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम की, उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। तथा—

गौतम! मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों मे देवो की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की होती है। तथा—

उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानो के देवो की जघन्य स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम की है।

उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम की है। तथा—

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानो के देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागरोपम की है।

[९] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजितविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइकालं ठिती पण्णत्ता ?

गो० ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

सव्वट्ठसिद्धे णं भंते ! महाविमाणे देवाणं केवइकाल ठिती पण्णत्ता ?

गो० ! अजहण्णमणुक्कोस तेत्तीसं सागरोवमाइं । से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे । से तं अद्धापलिओवमे ।

[३९१-९ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानो के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१-९ उ] गौतम ! जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

[प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[उ] गौतम ! उनकी अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है।

इस प्रकार से सूक्ष्म अद्धापल्योपम के अभिधेय का वर्णन करने के साथ अद्धापल्योपम का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन—ऊपर कल्पातीत देवलोको के देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन किया है। ये देवलोक दो वर्गों मे विभक्त है—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान। 'ग्रैवेयक' नाम का कारण यह है कि पुरुषाकार लोक के ग्रीवा रूप स्थान मे ये अवस्थित है तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित एवं सर्वार्थसिद्ध महाविमान सर्वोत्तम होने के कारण 'अनुत्तर' कहलाते है।

अनुत्तर विमानो का तो पृथक्-पृथक् नामनिर्देश किया है, वैसा ग्रैवेयक विमानो का नामोल्लेख नही किया है। लेकिन शास्त्रो मे अधस्तनत्रिक, मध्यमत्रिक और उपरितनत्रिक के नाम इस प्रकार बताये हैं—अधस्तनत्रिक—भद्र, सुभद्र, सुजात, मध्यमत्रिक—सौमनस, प्रियदर्शन, सुदर्शन, उपरितनत्रिक—अमोह, सुमति, यशोधर।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान के अतिरिक्त शेष देवलोको मे जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति होती है। लेकिन सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे यह भेद नही होने से वहाँ तेतीस सागरोपम की ही स्थिति है। इसी का बोध कराने के लिये सूत्र मे 'अजहण्णमणुक्कोस' पद दिया है।

यहाँ पर्याप्तको की अपेक्षा व्यन्तरो से लेकर वैमानिक देवो तक की स्थिति का वर्णन किया गया है, लेकिन इन सभी की अपर्याप्त अवस्था भावी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की समझना चाहिये। क्योकि अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् वे अवश्य पर्याप्तक हो जाते है।

इस प्रकार से अद्धापल्योपम का वर्णन करने के बाद अब क्षेत्रपल्योपम का कथन करते है।

क्षेत्रपल्योपम का निरूपण

३९२. से किं तं खेत्तपलिओवमे ?

खेत्तपलिओवमे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सुहुमे य वावहारिए य ।

[३९२ प्र] भगवन् ! क्षेत्रपल्योपम का क्या स्वरूप है ?

[३९२ उ] गौतम ! क्षेत्रपल्योपम दो प्रकार का कहा है—सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम ।

३९३. तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे ।

[३९३] उनमें से सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम स्थापनीय है । अर्थात् उसका यहाँ वर्णन नहीं किया जाएगा । किन्तु—

३९४. तत्थ णं जे से वावहारिए से जहानामए पल्ले सिया—जोयणं आयाम-विक्खंभेणं,जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं; से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय० जाव भरिए वालग्गकोडीणं । ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, णो वातो हरेज्जा, जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा । जे णं तस्स पल्लस्स आगासपदेसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना ततो णं समए समए गते एगमेगं आगासपएस अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव निट्ठिए भवइ । से तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे ।

> **एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।**
> **तं वावहारियस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ॥ ११३ ॥**

[३९४] उन दोनो मे से व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—जैसे कोई एक योजन आयाम-विष्कम्भ और एक योजन ऊंचा तथा कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला धान्य मापने के पल्य के समान पल्य हो । उस पल्य को दो, तीन यावत् सात दिन के उगे बालाग्रो की कोटियो से इस प्रकार से भरा जाए कि उन बालाग्रो को अग्नि जला न सके, वायु उडा न सके आदि यावत् उनमें दुर्गन्ध भी पैदा न हो । तत्पश्चात् उस पल्य के जो आकाशप्रदेश बालाग्रो से व्याप्त है, उन प्रदेशो मे से समय-समय (प्रत्येक समय) एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए—निकाला जाए तो जितने काल मे वह पल्य खाली यावत् विशुद्ध हो जाए, वह एक व्यावहारिक क्षेत्र-पल्योपम है ।

इस (व्यावहारिक क्षेत्र-)पल्योपम की दस गुणित कोटाकोटि का एक व्यावहारिक क्षेत्र-सागरोपम का परिमाण होता है । अर्थात् दस कोटाकोटि व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपमो का एक व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है । ११३

विवेचन—यहाँ व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का प्रमाण बताकर व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम का स्वरूप बताया है ।

पूर्व मे जो व्यावहारिक उद्धारपल्योपम और अद्धापल्योपम का स्वरूप बताया है, उन्ही के समान बालाग्रकोटियो से पल्य को भरने की प्रक्रिया यहाँ भी ग्रहण की गई है । किन्तु उनसे इसमे अन्तर यह है कि पूर्व के दोनो पल्यों मे समय की मुख्यता है, जबकि यहाँ क्षेत्र मुख्य है ।

इस प्रकार से व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और क्षेत्र सागरोपम का स्वरूप बतलाने के बाद अब उसके प्रयोजन का कथन करते है ।

३९५. एएहिं वावहारिएहिं खेत्तपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं ?

एएहिं० नत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं तु पण्णवणा पण्णविज्जइ ।

से तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे ।

[३९५ प्र.] भगवन् ! इन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है अर्थात् इनका कथन किसलिये किया गया है ?

[३९५ उ] गौतम ! इन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता । मात्र इनके स्वरूप की प्ररूपणा ही की गई है ।

इस प्रकार से यह व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम एव सागरोपम का स्वरूपवर्णन समाप्त हुआ ।

विवेचन—सूत्र मे व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम एव सागरोपम के स्वरूप और प्रयोजन का सकेत करने के बाद अब—'तत्थ ण जे से सुहुमे से ठप्पे' की सूचनानुसार सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप बतलाते हैं ।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम-सागरोपम

३९६. से किं तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे ?

सुहुमे खेत्तपलिओवमे से जहाणामए पल्ले सिया—जोयण आयाम-विक्खम्भेण, जोयणं उड्ढ उच्चत्तेण, तं तिगुण सविसेस परिक्खेवेण; से णं पल्ले एगाहिय-बेहिय-तेहिय० जाव उक्कोसेणं सत्तरत्त-परूढाणं सम्मट्ठे सन्निचिते भरिए वालग्गकोडीणं । तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खडाइं कज्जइ, ते ण वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असखेज्जगुणा । ते ण वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, णो कुच्छेज्जा, णो पलिविद्धसेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा । जे णं तस्स पल्लस्स आगासपदेसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना वा अणप्फुण्णा वा तओ णं समए समए गते एगमेगं आगासपदेस अवहाय जावइएण कालेण से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवति । से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे ।

[३९६ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का क्या स्वरूप है ?

[३९६ उ] आयुष्मन् ! सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—जैसे धान्य के पल्य के समान एक पल्य हो जो एक योजन लम्बा-चौडा, एक योजन ऊचा और कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला हो । फिर उस पल्य को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् सात दिन के उगे हुए बालाग्रो से भरा जाए और उन बालाग्रो के असख्यात-असख्यात ऐसे खण्ड किये जाएँ, जो दृष्टि के विषयभूत पदार्थ की अपेक्षा असख्यात भाग-प्रमाण हो एव सूक्ष्मपनक जीव की शरीरावगाहना से असख्यात गुणे हो । उन बालाग्रखण्डो को न तो अग्नि जला सके और न वायु उडा सके, वे न तो सड-गल सके और न जल से भीग सके, उनमें दुर्गन्ध भी उत्पन्न न हो सके । उस पल्य के बालाग्रो से जो आकाशप्रदेश स्पृष्ट हुए हो और स्पृष्ट न हुए हो (दोनो प्रकार के प्रदेश यहाँ ग्रहण करना चाहिये) उनमे से प्रति समय एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए तो जितने काल मे वह पल्य क्षीण, नीरज, निर्लेप एव सर्वात्मना विशुद्ध हो जाये, उसे सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम कहते है ।

३९७. तत्थ णं चोयए पण्णवगं एवं वयासी—
अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणप्फुण्णा ?
हंता अत्थि,
जहा को दिट्ठंतो ?

से जहाणामते कोट्ठए सिया कोहंडाणं भरिए, तत्थ णं माउलुंगा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं बिल्ला पक्खित्ता ते वि माता, तत्थ णं आमलया पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं बयरा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं चणगा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं मुग्गा पक्खित्ता ते वि माया, तत्थ णं सरिसवा पक्खित्ता ते वि माता, तत्थ णं गंगावालुया पक्खित्ता सा वि माता, एवामेव एएणं दिट्ठंतेणं अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणप्फुण्णा।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ॥ ११४ ॥

[३९७] इस प्रकार प्ररूपणा करने पर जिज्ञासु शिष्य ने पूछा—

भगवन् ! क्या उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश हैं जो उन वालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट हो ?

आयुष्मन् ! हां, (ऐसे आकाशप्रदेश भी रह जाते) हैं।

इस विषय मे कोई दृष्टान्त है ?

हां है। जैसे कोई एक कोष्ठ (कोठा) कूष्माड के फलो से भरा हुआ हो और उसमें बिजौराफल डाले गए तो वे भी उसमे समा गए। फिर उसमें बिल्बफल डाले तो वे भी समा जाते है। इसी प्रकार उसमे आवला डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं। फिर वहाँ बेर डाले जाएँ तो वे भी समा जाते है। फिर चने डाले तो वे भी उसमे समा जाते हैं। फिर मूग के दाने डाले जाएँ तो वे भी उसमे समा जाते हैं। फिर सरसो डाले जाये तो वे भी समा जाते है। इसके बाद गगा महानदी की बालू डाली जाए तो वह भी उसमे समा जाती है। इस दृष्टान्त से उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश होते हैं जो उन वालाग्रखण्डो से अस्पृष्ट रह जाते है।

इन पल्यो को दस कोटाकोटि से गुणा करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है। ११४

विवेचन—सूत्र मे सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम का स्वरूप बतलाया है। व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम मे तो पल्यान्तर्वर्ती बालाग्रो से स्पृष्ट आकाशप्रदेशो का अपहरण किया जाता है और उन बालाग्रो के अपहरण मे ही असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणिया समाप्त हो जाती है। किन्तु सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम मे पल्य स्थित बालाग्रो के असख्यात खण्ड किये जाते है, जिनसे आकाशप्रदेश अस्पृष्ट भी होते हैं और स्पृष्ट भी। कूष्माण्डफल आदि से युक्त कोठे के दृष्टान्त द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है। इसमे स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो प्रकार के आकाशप्रदेशो का अपहरण किये जाने से इसका काल व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम से असख्यात गुणा अधिक होता है।

बालाग्रखण्डो से अस्पृष्ट और स्पृष्ट दोनों प्रकार के आकाशप्रदेशो को ग्रहण करने का कारण

यह है कि उन बालाग्रो के असंख्यात खण्ड कर दिये जाने पर भी वे बादर—स्थूल है। अतएव उन बालाग्रखण्डो से अस्पृष्ट प्रदेश सम्भवित हैं और बादरो में अन्तराल होना स्वाभाविक है। जो कूष्मांड से लेकर गगा की बालुका तक के कोठे में समा जाने के दृष्टान्त से स्पृष्ट है।

असख्यात आकाशप्रदेशों के अस्पृष्ट रहने को हम एक दूसरे दृष्टान्त से भी समझ सकते हैं। जैसे काष्ठस्तम्भ ठोस दिखता है और प्रदेशो को सघनता से हमे उसमे पोल प्रतीत नही होती है। फिर भी उसमे कील समा जाती है। इससे यह सिद्ध है कि उस काष्ठ मे ऐसे अनेक अस्पृष्ट प्रदेश हैं जिनमें कील ने प्रवेश किया। अत यह स्पष्ट है कि इस पल्य मे भी ऐसे असख्यात आकाशप्रदेश रह जाते हैं जो उन बादर बालाग्रखण्डो से अस्पृष्ट हैं। इसीलिये सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम के स्वरूपवर्णन के लिये स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो प्रकार के आकाशप्रदेशो का ग्रहण किया है।

सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम-सागरोपम का प्रयोजन

३९८. एतेहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पओयण ?

एतेहिं सुहुमेहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं दिट्ठिवाए दव्वाइ मविज्जति।

[३९८ प्र] भगवन्! इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है?

[३९८ उ.] आयुष्मन्! इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम द्वारा दृष्टिवाद मे वर्णित द्रव्यो का मान (गणन) किया जाता है।

विवेचन—सूत्र मे सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम के प्रयोजन का कथन किया है। अतएव अब द्रव्यो का वर्णन करते हैं।

अजीव द्रव्यों का वर्णन

३९९. कइविधा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता ?

गो०! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—जीवदव्वा य अजीवदव्वा य।

[३९९ प्र] भगवन्! द्रव्य कितने प्रकार के कहे गये है?

[३९९ उ.] गौतम! द्रव्य दो प्रकार के है, वे इस प्रकार—जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य।

४००. अजीवदव्वा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता ?

गो०! दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—अरूविअजीवदव्वा य रूविअजीवदव्वा य।

[४०० प्र] भगवन्! अजीवद्रव्य कितने प्रकार के है?

[४०० उ] गौतम! अजीवद्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—अरूपी अजीवद्रव्य और रूपी अजीवद्रव्य।

४०१. अरूविअजीवदव्वा ण भते! कतिविहा पण्णत्ता ?

गो०! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसा धम्मत्थिकायस्स पदेसा, अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसा अधम्मत्थिकायस्स पदेसा, आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसा आगासत्थिकायस्स पदेसा, अद्धासमए।

[४०१ प्र.] भगवन् ! अरूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के हैं ?

[४०१ उ] गौतम ! अरूपी अजीवद्रव्य दस प्रकार के कहे गये है यथा—१. धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय के देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय, ५. अधर्मास्तिकायदेश, ६ अधर्मास्तिकायप्रदेश, ७. आकाशास्तिकाय, ८ आकाशास्तिकायदेश, ९ आकाशास्तिकायप्रदेश और १०. अद्धासमय ।

४०२. रूविअजीवदव्वा णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गो० ! चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—खंधा खंधदेसा खंधप्पदेसा परमाणुपोग्गला ।

[४०२ प्र] भगवन् ! रूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के प्रज्ञप्त किये गये हैं ?

[४०२ उ] गौतम ! वे चार प्रकार के है, यथा—१ स्कन्ध, २. स्कन्धदेश, ३ स्कन्धप्रदेश और ४ परमाणु ।

४०३. ते णं भते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणता ?

गोतमा ! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति— ते ण नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणंता ?

गो० ! अणता परमाणुपोग्गला अणता दुपएसिया खधा जाव अणंता अणंतपदेसिया खंधा, से एतेणं अट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति— ते णं नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

[४०३ प्र] भगवन् ! ये स्कन्ध आदि सख्यात हैं, असख्यात हैं अथवा अनन्त है ?

[४०३ उ] गौतम ! ये स्कन्ध आदि सख्यात नही हैं, असख्यात भी नही है किन्तु अनन्त हैं।

[प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या अर्थ है कि स्कन्ध आदि सख्यात नही हैं, असख्यात नही है, किन्तु अनन्त है ?

[उ] गौतम ! परमाणु पुद्गल अनन्त है, द्विप्रदेशिकस्कन्ध अनन्त है यावत् अनन्तप्रदेशिक-स्कन्ध अनन्त है । इसीलिये गौतम ! यह कहा है कि वे न सख्यात है, न असख्यात है किन्तु अनन्त है ।

विवेचन—सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम सागरोपम से दृष्टिवाद-अग मे वर्णित द्रव्यो का स्वरूप जाना जाता है । द्रव्य दो प्रकार के हैं—अजीवद्रव्य और जीवद्रव्य । इनमें से उपर्युक्त सूत्रो मे अल्पवक्तव्य होने से पहले अजीवद्रव्यो का वर्णन किया है ।

इस विराट् विश्व के मूल मे दो ही तत्त्व हैं । इन दो तत्त्वो का विस्तार यह जगत् है । इन दोनो मे से जीवद्रव्य ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता है जबकि अजीवद्रव्य अचेतन है, जड है ।

इनको द्रव्य कहने का कारण यह है कि ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव वाले है । उत्पाद-व्यय स्वभाव के कारण पर्याय से पर्यायान्तर होते हुए भी ध्रुव स्वभाव के कारण सदैव अपने मौलिक रूप मे स्थिर रहते हैं । कितना भी परिवर्तन आ जाए लेकिन अपने मूल गुणधर्म से कभी भी च्युत नही होते । जीव चेतना स्वभाव को छोडकर अचेतन रूप मे परिवर्तित नही होता है और अजीव अनेक सहकारी कारणो के मिलने पर भी अपने जडरूपत्व का त्याग नही करता है । इस स्थिति के कारण इनको द्रव्य कहा जाता है ।

इन दोनों प्रकार के द्रव्यों में से पहले अजीवद्रव्य का वर्णन किया है। अजीवद्रव्य के मुख्य पांच भेद हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अद्धासमय और पुद्‌गलास्तिकाय। इनमें से आदि के चार द्रव्य अरूपी-अमूर्त्त हैं और पुद्‌गल रूपी-मूर्त्त है। पुद्‌गल को रूपी, मूर्त्त इसलिये कहते हैं कि रूप, रस, गध, स्पर्श गुणयुक्त होने से यह द्रव्य विभिन्न आकारो को धारण करके हमें दृष्टिगोचर होता है।

उक्त पाच भेदों में से अद्धासमय को छोडकर शेष चारो के साथ 'अस्तिकाय' विशेषण लगाया है। इसका कारण यह है कि ये द्रव्य प्रदेशप्रचय रूप या अनेक प्रदेशो के पिण्ड हैं। अद्धासमय मात्र एक समय रूप होने से उसमें प्रदेशप्रचय नही है। उसका अपने रूप मे एकप्रदेशात्मक (समयात्मक) अस्तित्व है। इसी कारण सूत्र मे काल को छोडकर शेष अरूपी द्रव्यो के तीन-तीन भेद कहे गए हैं। पुद्‌गलास्तिकाय रूपी है और इसके चार भेद हैं। इस प्रकार अजीवद्रव्यो के अवान्तर भेद सब मिल कर चौदह होते है।

अरूपी अजीवद्रव्य के दस प्रकार नयविवक्षाओ से कहे गये है। विस्तृत विवेचन इस प्रकार है—

यद्यपि धर्मास्तिकाय मूलत एक द्रव्य है किन्तु सग्रहनय, व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनय इन तीनो नयो की विवक्षा के भेद से भेद हो जाता है। इन तीनो नयो का अभिप्राय अलग-अलग है। सग्रहनय धर्मास्तिकाय को एक ही द्रव्य मानता है। व्यवहारनय उस द्रव्य के देश और ऋजुसूत्रनय उसके निर्विभाग रूप प्रदेश मानता है। सग्रहनय वस्तु के सामान्य अश को ग्रहण करता है। व्यवहारनय वस्तुगत विशेष अशो को स्वीकार करता है और ऋजुसूत्रनय की दृष्टि मे वर्तमानवर्ती अवस्था ही वस्तु है। व्यवहारनय की मान्यता है कि जिस प्रकार सपूर्ण धर्मास्तिकाय जीव, पुद्‌गल की गति मे सहायक—निमित्त बनता है, उसी प्रकार से उसके देश-प्रदेश भी जीव और पुद्‌गल की गति मे निमित्त होते है। इसी कारण वे भी पृथक् द्रव्य हैं। ऋजुसूत्रनय की मान्यता है कि केवलिप्रज्ञाकल्पित प्रदेश रूप निर्विभाग भाग ही स्वसामर्थ्य से जीव और पुद्‌गल की गति मे निमित्त होते है। अतएव वे स्वतन्त्र द्रव्य हैं।

इसी प्रकार से अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के तीन-तीन प्रकारो के विषय मे भी समझ लेना चाहिये।

अद्धासमय को एक ही मानने का कारण यह है कि निश्चयनय के मत से वर्तमान काल रूप 'समय' का ही परमार्थत सत्त्व है, अतीत-अनागत का नही। क्योकि अनागत अनुत्पन्न है और अतीत विनष्ट हो चुका है। इसलिये उसमे देश, प्रदेश रूप विशेष नही हो सकते।

रूपी अजीवद्रव्य पुद्‌गल के चार भेदो मे से स्कन्ध के बुद्धिकल्पित दो भाग, तीन भाग आदि देश हैं। द्वयणुक से लेकर अनताणुक पर्यन्त सब स्कन्ध हो हैं। स्कन्ध के अवयवभूत निर्विभाग भाग प्रदेश हैं तथा जो स्कन्धदशा को प्राप्त नही हैं—स्वतन्त्र हैं, ऐसे निरश पुद्‌गल 'परमाणु' कहलाते हैं। ये सभी स्कन्धादि भी प्रत्येक अनन्त-अनन्त हैं।

इस प्रकार अजीवद्रव्य का वर्णन करके अब जीवद्रव्य का वर्णन करते हैं।

जीवद्रव्यप्ररूपणा

४०४. जीवदव्वा णं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?

गो० ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवदव्वा णं नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! असंखेज्जा णेरइया, असंखेज्जा असुरकुमारा जाव असंखेज्जा थणियकुमारा, असंखेज्जा पुढवीकाइया जाव असंखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणस्सइकाइया, असंखेज्जा बेंदिया जाव असंखेज्जा चउरिंदिया, असंखेज्जा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जा मणूसा, असंखेज्जा वाणमंतरिया, असंखेज्जा जोइसिया, असंखेज्जा वेमाणिया,: अणंता सिद्धा, से एएणं अट्ठेणं गोतमा ! एवं वुच्चइ जीवदव्वा णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

[४०४ प्र] भगवन् ! क्या जीवद्रव्य संख्यात है, असंख्यात हैं अथवा अनन्त है ?

[४०४ उ] गौतम ! जीवद्रव्य संख्यात नही है, असंख्यात नही है, किन्तु अनन्त है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि जीवद्रव्य संख्यात नही, असंख्यात नही किन्तु अनन्त है ?

[उ] गौतम ! अनन्त कहने का कारण यह है—असंख्यात नारक हैं, असंख्यात असुरकुमार यावत् असंख्यात स्तनितकुमार देव है, असंख्यात पृथ्वीकायिक जीव है यावत् असंख्यात वायुकायिक जीव हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक जीव है, असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं यावत् असंख्यात चतुरिन्द्रिय, असंख्यात पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव है, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यतर देव है, असंख्यात ज्योतिष्क देव है, असंख्यात वैमानिक देव है और अनन्त सिद्ध जीव है । इसीलिये गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जीवद्रव्य संख्यात नही, असंख्यात भी नही किन्तु अनन्त है ।

विवेचन—यहाँ जीवद्रव्य की अनन्तता का वर्णन किया गया है ।

जो जीता था, जीता है और जीयेगा, इस प्रकार के त्रैकालिक जीवनगुणयुक्त द्रव्य को जीव कहते हैं । अर्थात् जो ज्ञान, दर्शन आदि भावप्राणो से अथवा भावप्राणो के साथ इन्द्रियादि रूप द्रव्य-प्राणो से जीता था, जीता है और जियेगा वह जीव है ।

जीव दो प्रकार के है—मुक्त और ससारी । मुक्त जीव ज्ञान, दर्शन आदि भावप्राणो से ही युक्त है किन्तु ससारी जीव द्रव्यप्राणो की अल्पाधिकता एव गति, शरीर आदि की विभिन्नता के कारण अनेक प्रकार के है । फिर भी सामान्यत ससारी जीवो के मुख्य दो प्रकार हैं—त्रस और स्थावर । त्रसनामकर्मोदय से प्राप्त इन्द्रियादि प्राणो से युक्त जीव त्रस और स्थावरनामकर्म के उदय से प्राप्त इन्द्रियादि प्राणो से युक्त जीव स्थावर कहलाते है ।

ससारी जीवो की संख्या अनन्त है, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं और अकेले मुक्त जीव भी अनन्त है । इसीलिये सामान्यत जीवद्रव्यो की संख्या अनन्त बताई है ।

ससारी जीवों की जो जो संख्या सामान्य रूप से कही गई, वे सभी शरीरधारी हैं अत अब उनके शरीरों का वर्णन करते है ।

शरीरनिरूपण

४०५. कति णं भंते ! सरीरा पं० ?

गो० ! पंच सरीरा पण्णत्ता । तं जहा—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए ।

[४०५ प्र.] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गये है ?

[४०५ उ.] गौतम ! शरीर पाच प्रकार के कहे गये है, यथा—१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ५. कार्मण ।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तर में शरीर के पाच भेदो का नामोल्लेख किया गया है ।

शरीर—जो शीर्ण-जर्जरित होता है अर्थात् उत्पत्तिसमय से लेकर निरतर जर्जरित होता रहता है उसे शरीर कहते है । ससारी जीवो के शरीर की रचना शरीरनामकर्म के उदय से होती है । शरीरनामकर्म कारण है और शरीर कार्य है । औदरिक आदि वर्गणाएँ उनका उपादानकारण हैं और औदारिकशरीरनामकर्म आदि निमित्तकारण है । इनके लक्षण क्रमश इस प्रकार हैं—

औदारिकशरीर—इसमे मूल शब्द 'उदार' है । शास्त्रो मे 'उदार' के तीन अर्थ बताये हैं—१ जो शरीर उदार अर्थात् प्रधान है । औदारिकशरीर की प्रधानता तीर्थकरो और गणधरो के शरीर की अपेक्षा समझना चाहिए । अथवा औदारिक शरीर से मुक्ति प्राप्त होती है एव औदारिक शरीर मे रहकर ही जीव मुक्तिगमन मे सहायक उत्कृष्ट सयम की आराधना कर सकता है । इस कारण उसे प्रधान माना गया है । २ उदार अर्थात् विस्तारवान्—विशाल शरीर । औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कुछ अधिक एक हजार योजन की है, जबकि वैक्रियशरीर का इतना प्रमाण नही है । उसकी अधिक से अधिक अवगाहना पाच सौ धनुष की है और वह मात्र सातवी नरकपृथ्वी के नारको की होती है, अन्य की नही । यद्यपि उत्तरवैक्रियशरीर एक लाख योजन तक का होता है, किन्तु वह भवान्त पर्यन्त स्थायी नही होता । अथवा शेष शरीरो की वर्गणाओ की अपेक्षा औदारिक शरीर की वर्गणाओ की अवगाहना अधिक है । इसलिये यह उदार-विस्तारवान् है । ३ उदार का अर्थ होता है—मास, हड्डियो, स्नायु आदि से बद्ध शरीर । मास-मज्जा आदि सप्त धातु-उपधातुए औदारिकशरीर मे ही होती है । इस शरीर के स्वामी मनुष्य और तिर्यंच है ।

वैक्रियशरीर—विविध क्रियाओ को करने मे सक्षम शरीर अथवा विशिष्ट (विलक्षण) क्रिया करने वाला शरीर वैक्रिय कहलाता है । प्राकृत मे 'वेउव्विए' शब्द है, जिसका सस्कृत रूप 'वैकुर्विक' होता है । विकुर्वणा के अर्थ मे विकु धातु से वैकुर्विक शब्द बनता है । यह वैक्रियशरीर दो प्रकार का है—लब्धिप्रत्ययिक और भवप्रत्ययिक । तपोविशेष आदि विशिष्ट निमित्तो से जो प्राप्त हो उसे लब्धिप्रत्ययिक और जो भव-जन्म के निमित्त से प्राप्त हो उसे भवप्रत्ययिक वैक्रिय-शरीर कहते हैं । लब्धिजन्य मनुष्यो और तिर्यंचो को तथा भवजन्य देव-नारको को होता है ।

आहारकशरीर—चतुर्दशपूर्वविद् मुनियो के द्वारा विशिष्ट प्रयोजन के होने पर योगबल से जिस शरीर का निर्माण किया जाता है अथवा जिसके द्वारा केवलज्ञानी के सामीप्य से सूक्ष्म पदार्थ सबधी शकाओ का समाधान प्राप्त किया जाता है, उसे आहारकशरीर कहते हैं । आहारक-

ऋद्धिसपन्न सयत अपने क्षेत्र मे केवलज्ञानी का अभाव होने और दूसरे क्षेत्र में उनके विद्यमान होने किन्तु उस क्षेत्र मे औदारिकशरीर से पहुचना सभव नही होने से इस शरीर को निष्पन्न करते हैं। इसका निर्माण प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती मुनि करते हैं।

तैजसशरीर—जो शरीर मे दीप्ति और प्रभा का कारण हो। तेजोमय होने से भक्षण किये गये भोजनादि के परिपाक का कारण हो अथवा तेज का विकार हो उसे तैजसशरीर कहते हैं। यह सभी ससारी जीवो मे पाया जाता है। यह दो प्रकार का है—नि सरणात्मक और अनि सरणात्मक। अनि सरणात्मक तैजसशरीर भुक्त अन्न-पान आदि का पाचक होकर शरीरान्तर्वर्ती रहता है तथा औदारिक, वैक्रिय और आहारकशरीरों में तेज, प्रभा, काति का निमित्त है। नि सरणात्मक तैजस शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का है। शुभ तैजस सुभिक्ष, शाति आदि का कारण बनता है और अशुभ इसके विपरीत स्वभाव वाला है। यह शरीर तैजसलब्धिप्रत्ययिक होता है।

कार्मणशरीर—अष्टविध कर्मसमुदाय से जो निष्पन्न हो, औदारिक आदि शरीरो का जो कारण हो तथा जो जीव के साथ परभव मे जाए वह कार्मणशरीर है।

पांच शरीरों का क्रमनिर्देश—औदारिक आदि शरीरो का क्रमविन्यास करने का कारण उनकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मता है। औदारिकशरीर स्वल्प पुद्गलो से निष्पन्न होता है और इसका परिणमन शिथिल एव बादर रूप है। इसके अनन्तर बहुत और बहुतर पुद्गलपरमाणुओ से आगे-आगे के शरीर निष्पन्न होते है किन्तु उनका परिणमन सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होता जाता है। कार्मणशरीर इतना सूक्ष्म है कि उसको चर्मचक्षुओ से नही देखा जा सकता। परमावधिज्ञानी और केवलज्ञानी ही उसको जानते—देखते है। उत्तरोत्तर परमाणुस्कन्धो की बहुलता के साथ इनकी सघनता भी क्रमश अधिक-अधिक है। तैजस और कार्मणशरीर समस्त ससारी जीवो को प्राप्त होते है और इनका सबन्ध अनादिकालिक है। मुक्ति प्राप्त नही होने तक ये रहते है।

इस प्रकार सामान्य रूप से औदारिक आदि शरीरो का निरूपण करके अब चौबीस दडकवर्ती जीवो मे उनका विचार करते है।

चौबीस दंडकवर्ती जीवों की शरीरप्ररूपणा

४०६. णेरइयाणं भंते ! कति सरीरा पन्नत्ता ?

गो० ! तयो सरीरा पं०। तं०—वेउव्विए तेयए कम्मए।

[४०६ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने शरीर कहे गये है ?

[४०६ उ] गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गये है। वे इस प्रकार—वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर।

४०७ असुरकुमाराण भंते ! कति सरीरा पं० ?

गो० ! तओ सरीरा पण्णत्ता। तं जहा—वेउव्विए तेयए कम्मए। एवं तिण्णि तिण्णि एते चेव सरीरा जाव थणियकुमाराणं भाणियव्वा।

[४०७ प्र] भगवन् ! असुरकुमारों के कितने शरीर होते है ?

[४०७ उ.] गौतम ! उनके तीन शरीर कहे हैं । यथा—वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इसी प्रकार यही तीन-तीन शरीर स्तनितकुमार पर्यन्त सभी भवनपति देवो के जानना चाहिये ।

४०८. [१] पुढवीकाइयाणं भंते ! कति सरीरा पण्णत्ता ? गो० ! तयो सरीरा पण्णत्ता । तं जहा—ओरालिए तेयए कम्मए ।

[४०८-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो के कितने शरीर होते हैं ?

[४०८-१ उ.] गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गये है—औदारिक, तैजस और कार्मण ।

[२] एवं आउ-तेउ-वणस्सइकाइयाण वि एते चेव तिण्णि सरीरा भाणियव्वा ।

[४०८-२] इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के भी यही तीन-तीन शरीर जानना चाहिए ।

[३] वाउकाइयाणं जाव गो० ! चत्तारि सरीरा पन्नत्ता । तं०—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए ।

[४०८-३ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक जीवो के कितने शरीर होते हैं ?

[४०८-३ उ.] गौतम ! वायुकायिक जीवो के चार शरीर होते हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर ।

४०९. बेंदिय-तेंदिय-चउरिंदियाण जहा पुढवीकाइयाण ।

[४०९] पृथ्वीकायिक जीवो के समान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के भी (औदारिक, तैजस, कार्मण यह तीन शरीर) जानना चाहिये ।

४१०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण जाव गो० ! जहा—वाउकाइयाणं ।

[४१० प्र.] पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीवो के कितने शरीर होते हैं ?

[४१० उ.] गौतम ! पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिको के शरीर वायुकायिक जीवो के समान जानना चाहिए। अर्थात् इनके भी औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये चार शरीर होते हैं।

४११. मणूसाणं जाव गो० ! पंच सरीरा पन्नत्ता । त०—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए ।

[४११] गौतम ! मनुष्यो के पाच शरीर कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर ।

४१२. वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं, वेउव्विय-तेयग-कम्मगा तिन्नि तिन्नि सरीरा भाणियव्वा ।

[४१२] वाणव्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के नारको के समान वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये तीन-तीन शरीर होते हैं ।

विवेचन—ऊपर चौबीस दडकवर्ती जीवो मे पाये जाने वाले शरीरों की प्ररूपणा की है।

तैजस और कार्मण शरीर तो सभी संसारी जीवों में होते ही हैं। उनके अतिरिक्त मनुष्यों और तिर्यंचों में भवस्वभाव से औदारिक और देव-नारकों में वैक्रियशरीर होते हैं। आहारकशरीर मनुष्यों को लब्धिविशेष से प्राप्त होता है और किन्हीं विशिष्ट मनुष्यो के ही होता है। यहाँ सामान्य रूप से ही मनुष्यों में उसके होने का निर्देश किया है।

वायुकायिक और पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों मे जो वैक्रियशरीर का सद्भाव कहा है, उसका तात्पर्य यह है कि वैक्रियशरीर जन्मसिद्ध और कृत्रिम दो प्रकार का है। जन्मसिद्ध वैक्रिय-शरीर देवो और नारको के ही होता है अन्य के नही और कृत्रिम वैक्रिय का कारण लब्धि है। लब्धि एक प्रकार की शक्ति है, जो कतिपय गर्भज मनुष्यो और तिर्यचो मे भी सभवित है तथा कुछ बादर वायुकायिक जीवो मे भी वैक्रियशरीर पाया जाता है। इसलिये वायुकायिक जीवो में चार शरीरो के होने का विधान किया है।

पांच शरीरों का संख्यापरिमाण

४१३. केवतिया ण भंते ! ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

गो० ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागो।

[४१३ प्र.] भगवन् ! औदारिकशरीर कितने प्रकार के प्ररूपित किये है ?

[४१३ उ.] गौतम ! औदारिकशरीर दो प्रकार के प्ररूपित किये हैं। वे इस प्रकार—१. बद्ध औदारिकशरीर, २ मुक्त औदारिकशरीर। उनमे जो बद्ध औदारिकशरीर हैं वे असख्यात हैं। वे कालत असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो द्वारा अपहृत होते हैं और क्षेत्रत असख्यात लोकप्रमाण है। जो मुक्त है, वे अनन्त है। कालत वे अनन्त उत्सर्पिणियोअवसर्पिणियो से अपहृत होते हैं और क्षेत्रत अनन्त लोकप्रमाण हैं। द्रव्यत वे मुक्त औदारिकशरीर अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवो से अनन्त गुणे और सिद्धो के अनन्तवे भागप्रमाण है।

विवेचन—ऊपर बद्ध और मुक्त प्रकारो से औदारिकशरीरो की सख्या का परिमाण बतलाया है।

बद्ध—बधे हुए। बद्ध उसे कहते हैं जो पृच्छा के समय जीव के साथ सबद्ध है और मुक्त वह है जिसे जीव ने पूर्वभवो मे ग्रहण करके त्याग दिया है।

यहाँ औदारिकशरीर के प्रकारों के विषय मे पूछे जाने पर उत्तर मे बद्ध और मुक्त कहने का कारण यह है कि बद्ध और मुक्त शरीरो की पृथक्-पृथक् संख्या कही जाएगी और बद्ध तथा मुक्त औदारिकशरीरो की सख्या कही द्रव्य से, कही क्षेत्र से तथा कही काल से (समय, आवलिका आदि से) कही जायेगी। भाव की विवक्षा द्रव्य के अतर्गत कर लेने से उसकी अपेक्षा संख्या का कथन सूत्र मे नही किया है।

बद्ध औदारिकशरीरों की संख्या—बद्ध औदारिकशरीर असख्यात है। यद्यपि बद्ध औदारिक-शरीर के धारक जीव अनन्त है। क्योंकि औदारिकशरीर मनुष्यो और पृथ्वीकायिक आदि पाच प्रकार के एकेन्द्रियो से लगाकर पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे पाया जाता है। इनमे भी अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं। किन्तु औदारिकशरीरधारी जीव दो प्रकार के है—१ प्रत्येकशरीरी, २ अनन्तकायिक। प्रत्येकशरीरी जीवो का अलग-अलग औदारिकशरीर होता है। उनकी सख्या असख्यात है और जो अनन्तकायिक है, उनका औदारिकशरीर पृथक्-पृथक् नही होता किन्तु अनन्त जीवो का एक ही होता है। इसलिए औदारिकशरीरी जीव अनन्तानन्त होते हुए भी उनके शरीरों की सख्या असख्यात ही है।

कालापेक्षया बद्ध औदारिकशरीरो की सख्या असख्यात उत्सर्पिणियो और असख्यात अवसर्पिणियो[1] से अपहृत होने योग्य बताई है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के एक-एक समय मे एक-एक औदारिकशरीर का अपहरण किया जाए तो समस्त औदारिकशरीरों का अपहरण करने मे असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी व्यतीत हो जाए। असख्यात के असख्यात भेद होने से असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी काल के समय असख्यात है, अतएव बद्ध औदारिकशरीर भी असख्यात ही है।

क्षेत्रापेक्षया बद्ध औदारिक—शरीरों की सख्या का प्रमाण बताने के लिये सूत्र मे कहा है—बद्ध औदारिकशरीर असख्यात लोक-प्रमाण है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि समस्त बद्ध औदारिक-शरीरो को अपनी-अपनी अवगाहना से परस्पर अपिंड रूप मे (पृथक्-पृथक्) आकाशप्रदेशो मे स्थापित किया जाए तो असख्यात लोकाकाश उन पृथक्-पृथक् स्थापित शरीरों से व्याप्त हो जाएँ। अर्थात् एक-एक लोकाकाशप्रदेश पर एक-एक शरीर रखा जाए तो क्रमश रखने पर भी वे बद्ध औदारिकशरीर इतने और बचे रहते हैं कि जिन्हे क्रमश एक-एक प्रदेश पर रखने के लिये असख्यात लोको की आवश्यकता होगी।

मुक्त औदारिकशरीरों की संख्या—मुक्त औदारिकशरीरो का अनन्तत्व काल, क्षेत्र और द्रव्य की अपेक्षा इस प्रकार समझना चाहिये—

कालापेक्षया उन मुक्त औदारिकशरीरो का परिमाण अनन्त उत्सर्पिणिया-अवसर्पिणियों के अपहरण काल के बराबर है। अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालो के एक-एक समय मे एक-एक मुक्त औदारिकशरीर का अपहरण किया जाए तो अपहरण करने मे अनन्त उत्सर्पिणिया और अनन्त अवसर्पिणिया व्यतीत हो जाएगी।

क्षेत्रापेक्षया मुक्त औदारिकशरीरो का प्रमाण अनन्त लोक-प्रमाण है। अर्थात् एक लोक मे असख्यात प्रदेश है। ऐसे-ऐसे अनन्त लोको के जितने आकाशप्रदेश हो, इतने मुक्त औदारिकशरीर हैं।

द्रव्यापेक्षया मुक्त औदारिक शरीर अभव्यो से अनन्तगुणे और सिद्धो के अनन्तवे भाग प्रमाण हैं। एतद्विषयक शका-समाधान इस प्रकार है—

१ दस कोडाकोडी सागरोपम काल का एक उत्सर्पिणी काल और उतने ही सागरोपमो का एक अवसर्पिणी काल होता है।

शंका—जिन जीवो ने पहले सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया और बाद में मिथ्यादृष्टि हो गये ऐसे प्रतिपतित सम्यग्दृष्टि जीवो की सख्या अभव्यो से अनन्तगुणी और सिद्धो के अनन्तवें भाग प्रमाण बतलाई है।[1] तो क्या ये मुक्त औदारिकशरीर इन्ही के बराबर है ?

समाधान—यदि ये उनकी समान सख्या वाले होते तो उनका सूत्र मे निर्देश होता, किन्तु सूत्र में सकेत नही है। अतएव यह जानना चाहिये कि ये मुक्त औदारिकशरीर प्रतिपतित सम्यग्-दृष्टियों की राशि की अपेक्षा कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक भी होते है।[2]

ये अनन्तानन्त औदारिकशरीर एक ही लोक मे दीपक के प्रकाश के समान अवगाढ होकर रहे हुए हैं। जैसे एक दीपक का प्रकाश समग्र भवन मे व्याप्त होकर रहता है और अन्य अनेक दीपको का प्रकाश भी उसी भवन मे रह सकता है, वैसे ही अनन्तानन्त मुक्त औदारिकशरीर भी एक लोकाकाश मे समाविष्ट होकर रहते हैं।

बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरों की संख्या

४१४. केवतिया णं भंते ! वेउव्वियसरीरा पं० ?

गोतमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जइभागो। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, सेस जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा एते वि भाणियव्वा।

[४१४ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर कितने प्रकार के कहे गये है ?

[४१४ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है। यथा—बद्ध और मुक्त। उनमे से जो बद्ध है, वे असख्यात है और कालत असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो द्वारा अपहृत होते है। क्षेत्रत वे असख्यात श्रेणीप्रमाण है तथा वे श्रेणिया प्रतर के असख्यातवे भाग है तथा मुक्त वैक्रियशरीर अनन्त हैं। कालत वे अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो द्वारा अपहृत होते है। शेष कथन मुक्त औदारिकशरीरो के समान जानना चाहिए।

विवेचन—यहाँ सामान्य रूप से वैक्रियशरीर के बद्ध-मुक्त प्रकारो की सख्या का परिमाण बतलाया है। वैक्रियशरीर नारको और देवो के सर्वदा ही बद्ध रहते है। परन्तु मनुष्य और तिर्यंचो के जो कि वैक्रियलब्धिशाली है, उत्तरवैक्रिय करने के समय ही बद्ध होते है। यह वर्णन पूर्वोक्त औदारिकशरीर के कथन से प्राय मिलता-जुलता है। परन्तु क्षेत्रापेक्षया बद्ध वैक्रियशरीरो की सख्या का निर्देश करने मे कुछ विशेषता है। जो इस प्रकार जानना चाहिये—

क्षेत्रापेक्षया बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात श्रेणी प्रमाण है और उन श्रेणियो का प्रमाण प्रतर का असख्यातवा भाग है। जिसका आशय यह हुआ कि प्रतर के असख्यातवे भाग मे जितनी श्रेणिया है और उन श्रेणियो में जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने ही बद्ध वैक्रियशरीर है।

मुक्त वैक्रियशरीरो का वर्णन मुक्त औदारिकशरीरो के समान है। अत उनकी अनन्तता भी पूर्वोक्त मुक्त औदारिकशरीरों के समान समझ लेनी चाहिये।

१-२. अनुयोगद्वार मलधारीया टीका पत्र १९७

बद्ध-मुक्त आहारकशरीरों का परिमाण

४१५. केवइया णं भंते ! आहारगसरीरा प० ?

गोयमा ! दुविहा पं० । तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिया अत्थि सिया नत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं । मुक्केल्लया जहा ओरालियसरीरस्स तहा भाणियव्वा ।

[४१५ प्र] भगवन् ! आहारकशरीर कितने कहे गये हैं ?

[४१५ उ] गौतम ! आहारकशरीर दो प्रकार के कहे गये है । वे इस प्रकार—बद्ध और मुक्त । उनमे से बद्ध स्यात्– कदाचित् होते है कदाचित् नही होते है । यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते है । मुक्त अनन्त हैं, जिनकी प्ररूपणा औदारिकशरीर के समान जानना चाहिए ।

विवेचन—यहां बद्ध और मुक्त आहारकशरीरो का परिमाण बतलाया है । बद्ध आहारकशरीर चतुर्दशपूर्वधारी सयत मनुष्य के होते है । बद्ध आहारकशरीर के कदाचित् होने और कदाचित् नही होने का कारण यह है कि आहारकशरीर का अतर (विरहकाल) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास का है । यदि आहारकशरीर होते है तो उनकी सख्या जघन्यत एक, दो या तीन होती है और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) सहस्रपृथक्त्व हो सकती है । दो से नौ तक की संख्या का नाम पृथक्त्व है और सहस्र कहते है, दस सौ (हजार) को । अतएव इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी उत्कृष्ट सख्या दो हजार से नौ हजार तक हो सकती है । अर्थात् एक समय मे (पृच्छा काल मे) उत्कृष्टत एक साथ दो हजार से लेकर नौ हजार तक आहारकशरीरधारक हो सकते है ।

मुक्त आहारकशरीरो का परिमाण मुक्त औदारिकशरीरो की तरह समझना चाहिये ।

बद्ध-मुक्त तैजसशरीरों का परिमाण

४१६. केवतिया णं भंते ! तेयगसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा प० । त०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते ण अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, दव्वओ सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वजीवाणं अणंतभागूणा । तत्थ ण जे ते मुक्केल्लया ते णं अणता, अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालतो, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सव्वजीवेहिं अणतगुणा जीववग्गस्स अणंतभागो ।

[४१६ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर कितने कहे गये है ?

[४१६ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है—बद्ध और मुक्त । उनमें से बद्ध अनन्त हैं, जो कालत अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो से अपहृत होते हैं । क्षेत्रत वे अनन्त लोकप्रमाण हैं । द्रव्यत सिद्धो से अनन्तगुणे और सर्व जीवो मे अनन्तभाग न्यून है । मुक्त तैजसशरीर अनन्त है, जो कालत अनन्त उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो मे अपहृत होते हैं । क्षेत्रत अनन्त लोकप्रमाण है, द्रव्यत समस्त जीवो से अनन्तगुणे तथा जीववर्ग के अनन्तवे भाग हैं ।

विवेचन—यहां तैजसशरीरो का परिमाण बताया है । यह भी बद्ध और मुक्त के भेद से दो प्रकार के हैं । बद्ध तैजसशरीर अनन्त इसलिये है कि साधारणशरीरी निगोदिया जीवो के भी

तैजसशरीर पृथक्-पृथक् होते हैं, औदारिकशरीर की तरह एक नहीं। उसकी अनन्तता का कालत परिमाण—अनन्त उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो के समयो के बराबर है। क्षेत्रत अनन्त लोकप्रमाण है अर्थात् अनन्त लोकाकाशो मे जितने प्रदेश हों, इतने प्रदेशप्रमाण वाले हैं। द्रव्य की अपेक्षा बद्ध तैजसशरीर सिद्धो से अनन्तगुणे और सर्वजीवो की अपेक्षा से अनन्तभाग न्यून होते हैं। इसका कारण यह है—तैजसशरीर समस्त ससारी जीवों के होते है और ससारी जीव सिद्धों से अनन्त-गुणे हैं, इसलिये तैजसशरीर भी सिद्धो से अनन्तगुणे हुए। किन्तु सर्वजीवराशि की अपेक्षा विचार करने पर समस्त जीवो से अनन्तवे भाग कम इसलिये है कि सिद्धों के तैजसशरीर नही होता और सिद्ध सर्वजीवराशि के अनन्तवे भाग है। अत उन्हे कम कर देने से तैजसशरीर सर्वजीवो के अनन्तवे भाग न्यून हो जाते हैं। इस प्रकार बद्ध तैजसशरीर चाहे सिद्धो से अनन्तगुणे हैं, ऐसा कहो, चाहे सर्वजीवराशि के अनन्तवे भाग न्यून है, ऐसा कहो, अर्थ समान है। साराश यह कि बद्ध तैजस-शरीर सर्व ससारी जीवो की सख्या के बराबर हैं, समस्त जीवराशि की सख्या के बराबर नही है।

मुक्त तैजसशरीर भी सामान्यत अनन्त हैं। काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालो के समयो के बराबर है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण है। अर्थात् अनन्त लोकों की प्रदेशराशि के बराबर अनन्त है। द्रव्यत मुक्त तैजसशरीर सर्वजीवो से अनन्तगुणे है तथा सर्व जीववर्ग के अनन्तवे भागप्रमाण है।

मुक्त तैजसशरीरो का परिमाण समस्त जीवो से अनन्तगुणा मानने का कारण यह है कि प्रत्येक जीव भूतकाल मे अनन्त-अनन्त तैजसशरीरो का त्याग कर चुके हैं। जीवो के द्वारा जब उनका परित्याग कर दिया जाता है, उन शरीरो का असंख्यात काल पर्यन्त उस पर्याय मे अवस्थान रह सकता है। अत उन सबकी सख्या समस्त जीवो से अनन्तगुणी कही गई है तथा जो जीववर्ग के अनन्तवे भागप्रमाण कही गई है, उसको इस रीति से समझना चाहिये—

मुक्त तैजसशरीर जीववर्ग के अनन्तवे भागप्रमाण है। इसका कारण यह है कि समस्त मुक्त तैजसशरीर जीववर्ग प्रमाण तो तब हो पाते जब कि एक-एक जीव के तैजसशरीर सर्वजीव-राशिप्रमाण होते या उससे कुछ अधिक होते और उनके साथ सिद्ध जीवो के अनन्त भाग की पूर्ति होती। परन्तु सिद्ध जीवो के तो तैजसशरीर होता नही, अत उनको मिलाया नहीं जा सकता है तथा एक-एक जीव के मुक्त तैजसशरीर सर्व जीवराशिप्रमाण या उससे कुछ अधिक नही अपितु उससे बहुत कम ही होते है और वे भी असख्यात काल तक ही उस पर्याय मे रहते है, उसके बाद तैजसशरीर रूप परिणाम—पर्याय का परित्याग करके नियम से दूसरी पर्याय को प्राप्त हो जाते है। इसलिये प्रतिनियत काल तक अवस्थित होने के कारण उनकी सख्या उत्कृष्ट से भी अनन्त रूप ही है, इससे अधिक नही। उतने काल मे जो अन्य मुक्त तैजसशरीर होते है, वे भी थोडे ही होते है, क्योंकि काल थोडा है। इस कारण मुक्त तैजसशरीर जीववर्गप्रमाण नही होते किन्तु जीववर्ग के अनन्तभाग मात्र ही होते है।

द्रव्य की अपेक्षा उपर्युक्त मुक्त तैजसशरीर सर्वजीवो से अनन्तगुणे अथवा सर्व जीववर्ग के अनन्तवे भागप्रमाण होने को असत्कल्पना से स्पष्ट करते हैं—

किसी एक राशि को उसी राशि से गुणा करने पर वर्ग होता है। जैसे ४ को ४ से गुणा

करने पर ४×४=१६ सोलह सख्या वाला वर्ग होता है। इसी प्रकार जीवराशि से जीवराशि को गुणा करने पर प्राप्त राशि जीववर्ग है। सर्व जीवराशि अनन्त है। उसे कल्पना से दस हजार और अनन्त का प्रमाण १०० मान लिया जाए तो दस हजार के साथ १०० का गुणा करने पर दस लाख हुए। यह हुआ मुक्त तैजस शरीरो का सर्वजीवो से अनन्तगुणा परिमाण। जीववर्ग का अनन्त भाग इस प्रकार होगा कि सर्व जीवराशि कल्पना से १०००० मानकर वर्ग के लिये इस दस हजार को दस हजार से गुणा करे। इस प्रकार गुणा करने मे दस करोड की राशि आई। वह जीववर्ग का प्रमाण हुआ। अब अनन्त के स्थान पर पूर्वोक्त १०० रखकर दस करोड मे उनका भाग देने पर दस लाख आये। वही जीवराशि के वर्ग का अनन्तवा भाग हुआ। इस प्रकार से मुक्त तैजसशरीर इतने प्रमाण में जीवराशि के वर्ग के अनन्तवे भाग रूप है, ऐसा असत्कल्पना से समझ लेना चाहिये।

मुक्त तैजसशरीर द्रव्य की अपेक्षा सर्वजीवो से अनन्तगुणे है या जीववर्ग के अनन्तवे भागप्रमाण है, इन दोनो कथनो का एक ही तात्पर्य है। केवल कथन की भिन्नता है, अर्थ की नही है।

बद्ध-मुक्त कार्मणशरीरों की संख्या

४१७. केवइया णं भंते! कम्मयसरीरा पन्नत्ता ?

गो०! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। जहा तेयगसरीरा तहा कम्मगसरीरा वि भाणियव्वा।

[४१७ प्र] भगवन्! कार्मणशरीर कितने कहे गये है?

[४१७ उ] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये है, यथा—बद्ध और मुक्त। जिस प्रकार से तैजसशरीर की वक्तव्यता पूर्व मे कही गई है, उसी प्रकार कार्मणशरीर के विषय मे भी कहना चाहिये।

विवेचन—तैजसशरीरो के समान ही कार्मणशरीरो की वक्तव्यता जान लेने का निर्देश करने का कारण यह है कि तैजस और कार्मण शरीरो की सख्या एव स्वामी समान है तथा ये दोनो शरीर एक साथ रहते है—अतएव इतनी समानता होने से विशेष कथनीय शेष नही रह जाता है।

इस प्रकार पाच शरीरो का सामान्य रूप से कथन करके अब नारकादि चौबीस दडको मे उनकी प्ररूपणा की जानी है।

नारकों में बद्ध-मुक्त पंच शरीरों की प्ररूपणा

४१८. [१] नेरइयाणं भंते! केवतिया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गोतमा! दुविहा पण्णत्ता। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं नत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा।

[४१८-१ प्र] भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने औदारिकशरीर कहे गये है?

[४१८-१ उ] गौतम! औदारिकशरीर दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त। उनमें से बद्ध औदारिकशरीर उनके नही होते है और मुक्त औदारिकशरीर पूर्वोक्त सामान्य मुक्त औदारिकशरीर के बराबर जानना चाहिये।

[२] नेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य । तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूयी अंगुलपढमवग्गमूलं बितियवग्गमूल-पडुप्पण्णं अहव णं अंगुलबितियवग्गमूलघणपमाणमेत्ताओ सेढीओ । तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा ।

[४१८-२ प्र] भगवन् ! नारक जीवों के वैक्रियशरीर कितने कहे गये है ?

[४१८-२ उ] गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध और मुक्त । उनमे से बद्ध वैक्रियशरीर तो असख्यात है जो कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो के समयप्रमाण हैं । क्षेत्रत वे असख्यात श्रेणीप्रमाण है। वे श्रेणिया प्रतर का असख्यात भाग है। उन श्रेणियो की विष्कम्भ, सूची[1] अगुल के प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल से गुणित करने पर निष्पन्न राशि जितनी होती है। अथवा अगुल के द्वितीय वर्गमूल के घनप्रमाण श्रेणियों जितनी है। मुक्त वैक्रियशरीर सामान्य से मुक्त औदारिकशरीरो के बराबर जानना चाहिये ।

[३] णेरइयाणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य । तत्थ ण जे ते बद्धेल्लया ते णं नत्थि । तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा ।

[४१८-३ प्र] भगवन् ! नारक जीवों के कितने आहारकशरीर कहे गये हैं ?

[४१८-३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—बद्ध और मुक्त । बद्ध आहारक-शरीर तो उनके नही होते हैं तथा मुक्त जितने सामान्य औदारिक शरीर कहे गये हैं, उतने जानना चाहिये ।

[४] तेयग-कम्मगसरीरा जहा एतेसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा ।

[४१८-४] तैजस और कार्मण शरीरो के लिये जैसा इनके वैक्रियशरीरो के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार समझना चाहिये ।

विवेचन—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरो मे नारक जीवो मे बद्ध और मुक्त औदारिक आदि पच शरीरो के परिमाण की प्ररूपणा की गई है ।

वैक्रियशरीर वाले होने से नारको मे बद्ध औदारिकशरीर नही होते है । मुक्त औदारिक-शरीर सामान्य से बताये गये मुक्त औदारिकशरीरो के समान अनन्त है । क्योकि पूर्वप्रज्ञापननय की अपेक्षा नारक जीवो के औदारिकशरीर होते है। नारक जीव जब पूर्व भवो मे तिर्यंच या मनुष्य पर्याय मे था, तब वहाँ औदारिकशरीर था और अब उसे छोडकर नरकपर्याय मे आया है । इसीलिये नारक जीवों के मुक्त औदारिकशरीर सामान्यत अनन्त कहे हैं ।

नैरयिक जीवो का भवस्थ शरीर वैक्रिय होता है । अतएव नैरयिकों के बद्ध वैक्रियशरीर उतने

१. विस्तार की अपेक्षा—लम्बाई को लिये हुई एक प्रादेशिकी श्रेणी ।

ही है जितने नैरयिक हैं। नैरयिको की सख्या असख्यात है, अत एक-एक नारक के एक-एक वैक्रियशरीर होने से उनके वैक्रियशरीरो की सख्या भी असख्यात है।

इस असख्याततता की शास्त्रकार ने कालत और क्षेत्रतः प्ररूपणा की है। कालत· प्ररूपणा का अर्थ यह है कि असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो के जितने समय है, उतने ही नारको के बद्ध वैक्रियशरीर है।

क्षेत्रत: बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात श्रेणी प्रमाण है। यहाँ श्रेणी की व्याख्या के लिये सकेत किया है—पयरस्स असखेज्जइभागो—प्रतर का असख्यातवा भाग ही श्रेणी कहलाता है। ऐसी असंख्यात श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश हे, उतने ही नारको के बद्ध वैक्रियशरीर होते है।

अब यहाँ प्रश्न है कि प्रतर के असख्यातवे भाग में असख्यात योजन कोटिया भी आ जाती है तो क्या इतने क्षेत्र मे जो आकाश-श्रेणिया है, उनको यहाँ ग्रहण किया गया है? इस जिज्ञासा का समाधान करने के लिये शास्त्र मे सकेन दिया है—प्रतर के असख्येय भाग मे वर्तमान असख्यात श्रेणियो की विस्तारसूची—श्रेणी यहाँ ग्रहण की गई है किन्तु प्रतर के असख्येय भाग मे रही हुई असख्यात योजन कोटि रूप क्षेत्रवर्ती नभ श्रेणी ग्रहण नही की गई है। इस विष्कम्भसूची का प्रमाण द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल जितना ग्रहण किया गया है। इसका आशय यह हुआ कि अगुल प्रमाण क्षेत्र मे जो प्रदेशराशि है, उसमे असख्यात वर्गमूल हैं, उनमे प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल[1] से गुणा करने पर जितनी श्रेणिया लभ्य हो, उतनी प्रमाण वाली विष्कम्भसूची यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इसे यो समझना चाहिए कि वस्तुत असख्येयप्रदेशात्मक प्रतरक्षेत्र मे असत्कल्पना से मान ले कि २५६ श्रेणिया है। इन २५६ का प्रथम वर्गमूल सोलह (१६ × १६ = २५६) अथवा (२ × ५ + ६ = १६) हुआ और दूसरा वर्गमूल ४ एव तीसरा वर्गमूल २ होता है। प्रथम वर्गमूल १६ के साथ द्वितीय वर्गमूल ४ का गुणा करने पर (१६ × ४ = ६४) चौसठ हुए। बस इतनी ही (६४) उसकी श्रेणिया हुई। ऐसी श्रेणिया यहाँ ग्रहण की गई है।

प्रकारान्तर से इसी बात को सूत्र मे इस प्रकार कहा गया है—अगुल के द्वितीय वर्गमूल के घनप्रमाण श्रेणिया समझना चाहिये। इसका आशय हुआ कि अगुल मात्र क्षेत्र मे जितने प्रदेश है, उस राशि के द्वितीय वर्गमूल का घन करे, उतने प्रमाण वाली श्रेणिया समझना चाहिये। जिस राशि का जो वर्ग हो उसे उसी राशि से गुणा करने पर घन होता है। यहाँ असत्कल्पना से असख्यात प्रदेशराशि को २५६ माना था। उसका प्रथम वर्गमूल १६ और द्वितीय वर्गमूल ४ हुआ। अत इस द्वितीय वर्ग की राशि का घन करने से ४ × ४ × ४ = ६४ हुआ। सो ये ६४ प्रमाण रूप श्रेणिया यहाँ जानना चाहिए। इस प्रकार के कथन मे वर्णनशैली की विचित्रता है, अर्थ मे कोई अन्तर नही है। यह असत्कल्पना से कल्पित हुई ६४ सख्या रूप श्रेणियो की जो प्रदेशराशि है, जिन्हे सैद्धान्तिक दृष्टि से असख्यात माना है, उस राशिगत प्रदेशो की सख्या के बराबर नारकों के बद्ध वैक्रियशरीर होते है।

नारको के बद्ध वैक्रियशरीरो को असख्यात मानने का कारण यह भी है कि प्रत्येकशरीरी होने से नारको की सख्या इतनी ही—असख्यात है। अतएव उनके बद्ध वैक्रियशरीर इतने ही हो सकते

१ प्रथम वर्गमूल के भी वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल कहते है, इसी प्रकार तृतीय आदि वर्गमूलो के विषय मे जानना चाहिये।

हैं, अल्पाधिक नही । इसी प्रकार अन्यत्र भी जो जीव प्रत्येकशरीरी हो—स्वतन्त्र एक-एक शरीर के स्वामी हों—उनके बद्ध शरीरो की सख्या भी तत्प्रमाण समझ लेना चाहिये।

नारको के मुक्त वैक्रियशरीरो की प्ररूपणा औघिक मुक्त औदारिकशरीर के समान जानने के कथन का आशय यह है कि मुक्त औदारिकशरीरो की सख्या सामान्यत अनन्त कही गई है, उतनी ही सख्या वाले नारक जीवों के मुक्त वैक्रियशरीर है।

नारको के बद्ध औदारिकशरीर की तरह बद्ध आहारकशरीर के विषय से भी जानना चाहिये। क्योकि नारको के बद्ध आहारकशरीर नही होते हैं तथा जैसे पूर्व मे मुक्त औदारिकशरीरो की सख्या सामान्यत अनन्त कही है, उतनी ही सख्या मुक्त आहारकशरीरो की है।

बद्ध और मुक्त तैजस-कार्मण शरीरो की सख्या बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरो के बराबर बताने का कारण यह है कि ये दोनो शरीर सभी नारको के होते है, अतएव इनकी सख्या तत्प्रमाण समझना चाहिये।

भवनवासियों के बद्ध-मुक्त शरीर

४१९. [१] असुरकुमाराणं भंते ! केवतिया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहा नेरइयाणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

[४१९-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने औदारिकशरीर कहे गये है ?

[४१९-१ उ] गौतम ! जैसी नारको के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा की, उसी प्रकार इनके विषय भी जानना चाहिए।

विवेचन—वैक्रियशरीर वाले होने से जैसे नारको के बद्ध औदारिकशरीर नही हैं, उसी प्रकार असुरकुमारो के भी बद्ध औदारिकशरीर नही होते। उनके वैक्रियशरीर होता है। परन्तु मुक्त औदारिकशरीर जैसे नारकों के अनन्त कहे है इसी प्रकार इनके भी जानना चाहिये।

[२] असुरकुमाराणं भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा असंखेज्जाहि उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहि अवहीरंति कालतो, खेत्तो असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जतिभागो। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

[४१९-२ प्र.] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने वैक्रियशरीर कहे गये हैं ?

[४१९-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्ध असख्यात हैं। जो कालत असख्यात उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियों में अपहृत होते है। क्षेत्र की अपेक्षा वे असख्यात श्रेणियो जितने हैं और वे श्रेणिया प्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण है। उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची अगुल के प्रथम वर्गमूल के असख्यातवे भाग प्रमाण है तथा मुक्त वैक्रियशरीरो के लिये जैसे सामान्य से मुक्त औदारिकशरीरो के लिये कहा गया है, उसी तरह कहना चाहिये।

विवेचन—यहाँ असुरकुमारो के बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरो का परिमाण बताया है। सामान्यत तो असुरकुमारो के बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात है किन्तु वे असख्यात, कालत असख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के जितने समय होते है, उतने हैं। क्षेत्रत असख्यात का परिमाण इस प्रकार बताया है कि प्रतर के असख्यातवे भाग मे वर्तमान असख्यात श्रेणियो के जितने प्रदेश होते हैं, उतने हैं। यहाँ उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची ली गई है जो अगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल का असख्यातवा भाग है। यह विष्कम्भसूची नारको की विष्कम्भसूची की अपेक्षा उसके भाग प्रमाण वाली है। इस प्रकार असुरकुमार, नारको की अपेक्षा उनके असख्यातवे भागप्रमाण होते हैं। प्रज्ञापनासूत्र के महादण्डक मे रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की सख्या की अपेक्षा समस्त भवनवासी देव असख्यातवे भागप्रमाण कहे गये है। अत समस्त नारको की अपेक्षा असुरकुमार उनके असख्यातवे भागप्रमाण है, अर्थात् अल्प है यह सिद्ध हो जाता है।

असुरकुमारो के मुक्त वैक्रियशरीरो की प्ररूपणा औधिक मुक्त औदारिकशरीरो के तुल्य समझने का सकेत किया है, अर्थात् सामान्य रूप से मुक्त औदारिकशरीर के समान अनन्त है।

[३] असुरकुमाराणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

[४१९-३ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने आहारकशरीर कहे गये है ?

[४१९-३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये है— बद्ध और मुक्त। ये दोनो प्रकार के आहारकशरीर इन असुरकुमार देवो मे औदारिकशरीर के जैसे जानने चाहिये। तथा—

[४] तेयग-कम्मगसरीरा जहा एतेसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा।

[४१९-४] तैजस और कार्मण शरीर जैसे इनके (असुरकुमारो के) वैक्रियशरीर बताये, उसी प्रकार जानना चाहिये।

[५] जहा असुरकुमाराण तहा जाव थणियकुमाराण ताव भाणियव्वं।

[४१९-५] असुरकुमारो मे जैसे इन पाच शरीरो का कथन किया है, वैसा ही स्तनितकुमार पर्यन्त के सब भवनवासी देवो के विषय मे जानना चाहिये।

विवेचन—यहाँ असुरकुमारो के बद्ध और मुक्त आहारकशरीर आदि शरीरत्रय की तथा असुरकुमारो के अतिरिक्त शेष नौ प्रकार के भवनपति देवो के बद्ध-मुक्त औदारिक आदि पाच शरीरो की प्ररूपणा की है।

बद्ध और मुक्त आहारकशरीर असुरकुमार देवो मे औदारिकशरीरवत् जानने के कथन का यह आशय है कि जिस प्रकार बद्ध औदारिकशरीर असुरकुमार देवो के नहीं होते उसी प्रकार बद्ध आहारकशरीर भी नहीं होते हैं। मुक्त औदारिकशरीर जिस प्रकार असुरकुमारों के अनन्त होते हैं, उसी प्रकार मुक्त आहारकशरीर भी अनन्त जानने चाहिये।

तैजस-कार्मण शरीर बद्ध असख्यात और मुक्त अनन्त जानने चाहिए। स्पष्टीकरण पूर्व में किया जा चुका है।

असुरकुमारों के बद्ध और मुक्त शरीरों का जो परिमाण बताया है, वही तज्जातीय होने से शेष भवनवासियों के शरीरों का भी समझ लेना चाहिये।

पृथ्वी-अप्-तेजस्कायिक जीवों के बद्ध-मुक्त शरीर

४२०. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पं०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। एवं जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पं०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

आहारगसरीरा वि एवं चेव भाणियव्वा। तेयग-कम्मगसरीराणं जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा।

[४२०-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के कितने औदारिकशरीर कहे गये हैं ?

[४२०-१ उ] गौतम ! इनके औदारिकशरीर दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध और मुक्त। इनके दोनों शरीरों की संख्या सामान्य बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरों जितनी जानना चाहिये।

[प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के वैक्रियशरीर कितने कहे गये हैं ?

[उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध और मुक्त। इनमें से बद्ध तो इनके नहीं होते हैं और मुक्त के लिए औदारिकशरीरों के समान जानना चाहिये।

आहारकशरीरों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इनके बद्ध और मुक्त तैजस-कार्मण शरीरों की प्ररूपणा भी इनके बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरों के समान समझना चाहिए।

[२] जहा पुढविकाइयाणं एवं आउकाइयाणं तेउकाइयाण य सव्वसरीरा भाणियव्वा।

[४२०-२] जिस प्रकार की वक्तव्यता पृथ्वीकायिकों के पांच शरीरों की है, वैसी ही वक्तव्यता अर्थात् उतनी ही संख्या अप्कायिक और तेजस्कायिक जीवों के पांच शरीरों की जाननी चाहिए।

विवेचन—ऊपर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक जीवों के बद्ध और मुक्त शरीरों का परिमाण बतलाया है।

पृथ्वीकायिकों के बद्ध-मुक्त शरीरों का परिमाण बताने के लिये औघिक औदारिकशरीरों का संकेत दिया गया है। प्रज्ञापनासूत्र के शरीरपद के अनुसार उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

बद्ध शरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा वे असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः वे असंख्यलोक प्रमाण हैं। मुक्त औदारिकशरीर अनन्त हैं। कालतः अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्रतः वे अनन्त लोकप्रमाण हैं तथा द्रव्यतः वे अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं।

अप्कायिक और तेजस्कायिक जीवो के बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरो का परिमाण भी इतना ही जानना चाहिये ।

पृथ्वीकायिक आदि जीवो के बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरो का क्रमश जो असख्यात और अनन्त परिमाण बताया है, उसका विशदता के साथ स्पष्टीकरण पूर्व मे सामान्य से बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा के प्रसग मे किया जा चुका है, तदनुरूप वह समस्त वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिए ।

बद्ध वैक्रिय और आहारक शरीर इनको भवस्वभाव से ही नही होते हैं । किन्तु मुक्त शरीर होते है । वैक्रियशरीर सामान्य मुक्त औदारिकशरीरो के समान अनन्त और मुक्त आहारकशरीर भूतकालिक मनुष्यभवो की अपेक्षा अनन्त होते है ।

पृथ्वीकायिको आदि के बद्ध और मुक्त तैजस-कार्मण शरीरो के लिये जो औदारिक शरीरो के परिमाण का सकेत किया है, उसका तात्पर्य यह है कि बद्ध तैजस-कार्मण बद्ध औदारिकवत् असख्यात और मुक्त तैजस-कार्मण मुक्त औदारिकवत् अनन्त है ।

वायुकायिकों के बद्धमुक्त शरीर

[३] वाउकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गो० ! जहा पुढविकाइयाण ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा ।

वाउकाइयाणं भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरा पन्नत्ता ?

गो० ! दुविहा प० । त०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य । तत्थ ण जे ते बद्धेल्लया ते ण असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा २ पलिओवमस्स असखेज्जइभागमेत्तेण कालेण अवहीरति । नो चेव णं अवहिया सिया । मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियमुक्केल्लया । आहारयसरीरा जहा पुढविकाइयाणं वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा ।

तेयग-कम्मयसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा ।

[४२०-३ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवो के औदारिकशरीर कितने कहे गये है ?

[४२०-३ उ] गौतम ! जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो के औदारिक शरीरो की वक्तव्यता है, वैसी ही यहाँ जानना चाहिये ।

[प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवो के वैक्रियशरीर कितने है ?

[उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त । उनमे से बद्ध असख्यात है । यदि समय-समय मे एक-एक शरीर का अपहरण किया जाये तो (क्षेत्र) पल्योपम के असख्यातवे भाग मे जितने प्रदेश है, उतने काल मे पूर्णत अपहृत हो । किन्तु उनका किसी ने कभी अपहरण किया नही है और मुक्त औधिक औदारिक के बराबर हैं और आहारकशरीर पृथ्वीकायिको के वैक्रियशरीर के समान कहना चाहिये ।

बद्ध, मुक्त तैजस, कार्मण, शरीरो की प्ररूपणा पृथ्वीकायिक जीवो के बद्ध एवं मुक्त तैजस और कार्मण शरीरो जैसी समझना चाहिये ।

विवेचन—वायुकायिक जीवों के बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरो के परिमाण मे तो कोई विशेषता नहीं है। वे क्रमशः पृथ्वीकायिक जीवो के समान असख्यात और अनन्त है। लेकिन इनमे वैक्रियशरीर भी सभव होने से तत्सम्बन्धित स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वायुकायिक जीवो के बद्ध वैक्रियशरीर असख्यात है और उस असख्यात का परिमाण बताने के लिये कहा है कि यदि ये शरीर एक-एक समय मे निकाले जाएँ तो क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतने समयो मे इनको निकाला जा सकता है। तात्पर्य यह है कि क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवे भाग के आकाश मे जितने प्रदेश है, उतने ये बद्ध वैक्रियशरीर होते हैं। परन्तु यह प्ररूपणा समझने के लिये है। वस्तुत आज तक किसी ने इस प्रकार अपहरण करके निकाला नही है।

कदाचित् यह कहा जाए कि असख्यात लोकाकाशो के जितने प्रदेश हैं, उतने वायुकायिक जीव हैं, ऐसा शास्त्रो मे उल्लेख है, तो फिर उनमे से वैक्रियशरीरधारी वायुकायिक जीवो की इतनी अल्प सख्या बताने का क्या कारण है? इसका समाधान यह है कि वायुकायिक जीव चार प्रकार के है—१ सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक, २ सूक्ष्म पर्याप्त वायुकायिक, ३. बादर अपर्याप्त वायुकायिक और ४ बादर पर्याप्त वायुकायिक। इनमे से आदि के तीन प्रकार के वायुकायिक जीव तो असख्यात लोकाकाशो के प्रदेशो जितने है और उनमे वैक्रियलब्धि नही होती है। बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव प्रतर के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतने है, किन्तु वे सभी वैक्रियलब्धि-सम्पन्न नही होते है। इनमे भी असख्यातवे भागवर्ती जीवो के ही वैक्रियलब्धि होती है। वैक्रियलब्धि-सम्पन्नो मे भी सब बद्ध वैक्रियशरीरयुक्त नही होते, किन्तु असख्येय भागवर्ती जीव ही बद्धवैक्रिय शरीरधारी होते है। इसलिये वायुकायिक जीवो मे जो बद्धवैक्रियशरीरधारी जीवो की सख्या कही गई है, वही सम्भव है। इससे अधिक बद्धवैक्रियशरीरधारी वायुकायिक जीव नही होते हैं।

वायुकायिक जीवो के बद्ध-मुक्त आहारकशरीर के विषय में पृथ्वीकायिक जीवो के मुक्त वैक्रियशरीर के समान जानना चाहिये। अर्थात् वायुकायिक जीवो के आहारकलब्धि का अभाव होने से बद्धआहारकशरीर तो होते ही नही किन्तु अनन्त मुक्त आहारकशरीर हो सकते है। बद्ध-मुक्त तैजस-कार्मणशरीरो की सख्या पृथ्वीकायिको के इन्ही दो शरीरो के बराबर क्रमश असख्यात और अनन्त जानना चाहिये।

वनस्पतिकायिकों के बद्ध-मुक्त शरीर

[४] **वणस्सइकाइयाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा।**

वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइया तेयग-कम्मगसरीरा पण्णत्ता ?

गो० ! जहा ओहिया तेयग-कम्मगसरीरा तहा वणस्सइकाइयाण वि तेयग-कम्मगसरीरा भाणियव्वा।

[४२०-४] वनस्पतिकायिक जीवों के औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरो को पृथ्वी-कायिक जीवो के औदारिकादि शरीरों के समान समझना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के बद्ध-मुक्त शरीर

४२२. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण वि ओरालियसरीरा एवं चेव भाणियव्वा।

[४२२-१] पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो के भी औदारिकशरीर इसी प्रकार (द्विन्द्रिय जीवो के औदारिकशरीरो के समान ही) जानना चाहिये।

[२] पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पं०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ जाव विक्खंभसूयी अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जइभागो। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया। आहारयसरीरा जहा बेइंदियाणं। तेयग-कम्मगसरीरा जहा ओरालिया।

[४२२-२ प्र] भगवन्! पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो के वैक्रियशरीर कितने कहे गये है?

[४२२-२ उ] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्धवैक्रिय-शरीर असख्यात है' जिनका कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो से अपहरण होता है और क्षेत्रत यावत् (श्रेणियो की) विष्कम्भसूची अगुल के प्रथम वर्गमूल के असख्यातवे भाग मे वर्त्तमान श्रेणियो जितनी है। मुक्तवैक्रियशरीरो का प्रमाण सामान्य औदारिकशरीरो के प्रमाण तथा इनके आहारकशरीरो का प्रमाण द्वीन्द्रियो के आहारकशरीरो के बराबर है। तैजस-कार्मण शरीरो का परिमाण औदारिकशरीरो के प्रमाणवत् है।

विवेचन—यहाँ पचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवो के बद्ध-मुक्त औदारिक आदि शरीरो की प्ररूपणा की है। बद्ध-मुक्त औदारिक, आहारक, तेजस और कार्मण शरीरो के विषय मे विशेष वर्णनीय नही है। क्योकि इनके बद्ध और मुक्त औदारिकशरीर द्वीन्द्रिय जीवो के बराबर हैं। इनके बद्धआहारकशरीर नही होते है और मुक्तआहारकशरीर द्वीन्द्रियो के समान है। बद्ध तैजस-कार्मण शरीर इनके बद्धऔदारिकशरीरवत् है। किन्तु किन्ही-किन्ही के वैक्रियलब्धि सभव होने से वैक्रिय-शरीर को लेकर जो विशेषता है, इसका सक्षिप्त साराश इस प्रकार है—

पचेन्द्रियतिर्यचयोनिको के बद्धवैक्रियशरीर असख्यात है, अर्थात् काल की अपेक्षा असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो के समयो जितने प्रमाण वाले है तथा क्षेत्र की अपेक्षा ये प्रतर के असख्यातवे भाग मे वर्तमान असख्यात श्रेणी रूप है और उन श्रेणियो की विष्कम्भसूची अगुल के प्रथम वर्गमूल के असख्यातवे भाग मे वर्तमान श्रेणियो जितनी है। मुक्तवैक्रियशरीर औधिक मुक्तऔदारिकशरीरवत् अनन्त है।

यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि यहाँ त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रियो के लिये सामान्य से असख्यात कहा गया है। लेकिन असख्यात के असख्यात भेद होने से विशेषापेक्षा उनकी सख्या मे अल्पाधिकता है। वह इस प्रकार—पचेन्द्रिय जीव अल्प हैं, उनसे कुछ अधिक चतुरिन्द्रिय, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक और एकेन्द्रिय अनन्त गुणे है। इसलिये उनके शरीरो की असख्यातता मे भी भिन्नता होती है।

मनुष्यों के बद्ध-मुक्त पंच शरीर

४२३. [१] मणूसाण भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गो० ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा, जहण्णपदे संखेज्जा संखेज्जाओ कोडीओ, एगुणतीसं ठाणाइं तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठा, अहवणं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो, अहवणं छण्णउतिछेयणगदाइरासी, उक्कोसपदे असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ उक्कोसपए रूवपक्खित्तेहिं मणूसेहिं सेढी अवहीरति, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं ततियवग्गमूलपडुप्पण्णं। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

[४२३-१ प्र] भदन्त ! मनुष्यो के औदारिकशरीर कितने कहे गये है ?

[४२३-१ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्ध तो स्यात् सख्यात और स्यात् असख्यात होते है। जघन्य पद मे सख्यात कोटाकोटि होते है अर्थात् उनतीस अकप्रमाण होते है। ये उनतीस अंक तीन यमल पद के ऊपर तथा चार यमल पद से नीचे है, अथवा पचमवर्ग से गुणित छठे वर्गप्रमाण होते है, अथवा छियानवै (९६) छेदनकदायी राशि जितनी सख्या प्रमाण है। उत्कृष्ट पद मे वे शरीर असख्यात हैं। जो कालत. असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियो द्वारा अपहृत होते है और क्षेत्र की अपेक्षा एक रूप प्रक्षिप्त किये जाने पर मनुष्यो से श्रेणी अपहृत होती है। कालत असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो से अपहार होता है और क्षेत्रत तीसरे मूलवर्ग से गुणित अगुल के प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते है। उनके मुक्तऔदारिकशरीर औघिक मुक्तऔदारिकशरीरो के समान जानना चाहिए।

[२] मणूसाण भंते ! केवतिया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गो० दुविहा प०। त०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ ण जे ते बद्धेल्लया ते णं संखेज्जा समए २ अवहीरमाणा २ संखेज्जेण कालेण अवहीरंति, नो चेव ण अवहिया सिया। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

[४२३-२ प्र] भगवन् ! मनुष्यो के वैक्रियशरीर कितने कहे है ?

[४२३-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्ध सख्यात हैं जो समय-समय मे अपहृत किये जाने पर सख्यात काल मे अपहृत होते है किन्तु अपहृत नहीं किये गये है। मुक्तवैक्रियशरीर मुक्त औघिक औदारिकशरीरो के बराबर जानना चाहिये।

[३] मणूसाण भंते ! केवइया आहारयसरीरा पन्नत्ता ?

गो० ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ ण जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय अत्थि सिय नत्थि, जइ अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

[४२३-३ प्र] भगवन् ! मनुष्यो के आहारकशरीर कितने कहे गये हैं ?

[४२३-३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्ध तो कदाचित् होते हैं और कदाचित् नही भी होते है। जब होते हैं तब जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं। मुक्तआहारकशरीर औघिक मुक्तऔदारिकशरीरो के बराबर जानना चाहिये।

[४] तेयग-कम्मगसरीरा जहा एतेसिं चेव ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा।

[४२३-४] मनुष्यो के बद्ध-मुक्त तैजस-कार्मण शरीर का प्रमाण इन्ही के बद्ध-मुक्त औदारिक शरीरो के समान जानना चाहिये।

विवेचन—ऊपर मनुष्यो के बद्ध-मुक्त औदारिक आदि पच शरीरो का परिमाण बतलाया है।

मनुष्य मुख्य रूप से औदारिकशरीरधारी है। अत उनके विषय मे विशेष रूप से वक्तव्यता इस प्रकार है—

मनुष्यो के बद्धऔदारिकशरीर कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात, होते है। इसका कारण यह है कि मनुष्य दो प्रकार के है—गर्भज और सम्मूर्च्छिम। इनमें से गर्भज मनुष्य तो सदैव होते हैं किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य कभी होते हैं और कभी नही होते है। उनकी उत्कृष्ट आयु भी अतर्मुहूर्त की होती है और उत्पत्ति का विरहकाल उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त प्रमाण कहा गया है। अतएव जब सम्मूर्च्छित मनुष्य नही होते और केवल गर्भज मनुष्य ही होते है, तब वे सख्यात होते हैं। इसी अपेक्षा उस समय बद्ध औदारिकशरीर सख्यात कहे है। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते है तब समुच्चय मनुष्य असख्यात हो जाते है। क्योकि सम्मूर्च्छिम मनुष्या का प्रमाण अधिक से अधिक श्रेणी के असख्यातवे भाग मे स्थित आकाशप्रदेशो की राशि के तुल्य कहा गया है। ये सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रत्येकशरीरी होते हैं, इसलिये गर्भज और सम्मूर्च्छिम—दोनो के बद्धऔदारिकशरीर मिलकर असख्यात होते है।

यद्यपि जघन्यपद मे सख्यात होने से गर्भज मनुष्यो के औदारिकशरीरो का परिमाण निर्दिष्ट हो गया किन्तु सख्यात के भी सख्यात भेद होते है। इसलिये सख्यात कहने से नियत सख्या का बोध नही होता है। अतएव नियत सख्या बताने के लिये सख्यात कोटाकोटि कहा गया है और इसकी विशेष स्पष्टता के लिये तीन यमल पद से ऊपर और चार यमल पद से नीचे कहा है। इसका आशय इस प्रकार है—ये सख्यात कोटाकोटि २९ अकप्रमाण होती है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार आठ-आठ पदो की एक यमलपद सख्या है। अत चौवीस अको के तो तीन यमलपद हो गये और उसके बाद पाच अक शेष रहते है, जिनसे चौथे यमल पद की पूर्ति नही होती। इसी कारण यहाँ तीन यमलपदो से ऊपर और चार यमलपदो से नीचे यह पाठ दिया है।

अब इसी बात को विशेष स्पष्ट करने के लिये सूत्र मे दूसरी विधि बताई है। पचम वर्ग से छठे वर्ग को गुणित करने पर जो राशि निष्पन्न हो, जघन्य पद मे उस राशिप्रमाण मनुष्यो की सख्या है। तात्पर्य इस प्रकार है कि एक का वर्ग नही होता। एक को एक से गुणा करने पर गुणनफल एक ही आता है, सख्या मे वृद्धि नही होती अत एक की वर्ग रूप मे गणना नही होती। वर्ग का प्रारम्भ

दो की सख्या से होता है। अत दो का दो से गुणा करने पर ४ सख्या हुई। यह प्रथम वर्ग हुआ। चार का चार से गुणा करने पर १६ सख्या हुई, यह दूसरा वर्ग हुआ। फिर १६ को १६ से गुणा करने पर २५६ संख्या हुई, यह तृतीय वर्ग हुआ। २५६ को २५६ से गुणा करने पर ६५५३६ सख्या हुई, यह चौथा वर्ग हुआ। इस चौथे वर्ग की राशि ६५५३६ को पुन. इसी राशि ६५५३६ से गुणित करने पर ४२९४९६७२९६ चार अरब उनीस करोड उनचास लाख सडसठ हजार दो सौ छियानवे राशि पचम वर्ग की हुई।[1] इस पचम वर्ग की राशि का उसी से गुणा करने पर १८४४६७४४०७३-७०९५५१६१६ राशि हुई, यह छठा वर्ग हुआ।[2] इस छठे वर्ग का पूर्वोक्त पचम वर्ग के साथ गुणा करने पर निष्पन्न राशि जघन्य पद मे मनुष्यो की सख्या की बोधक है। यह राशि अको मे इस प्रकार है—७९२२८१६२ ५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६।[3] इन अको की सख्या २९ है, अत २९ अक प्रमाण राशि से गर्भज मनुष्यो की संख्या कही गई है।

ये उनतीस अक कोटाकोटि आदि के द्वारा कहा जाना कठिन है, अत इसका बोध कराने के लिये उक्त सख्या दो गाथाओ द्वारा इस प्रकार कही जा सकती है—

छत्तिन्नि तिन्नि सुन्न पचेव य नव य तिन्नि चत्तारि।
पचेव तिण्णि नव पच सत्त तिन्नेव तिन्नेव।१।

चउ छ द्दो चउ एक्को पण दो छक्के क्कगो य अट्ठेव।
दो-दो नव सत्तेव य अकट्ठाणा पराहुत्ता।२।

उक्त २९ अकों को इस रीति से बोला जा सकता है—

सात कोडाकोडी-कोडाकोडी, बानवै लाख कोडाकोडी कोडी, अट्ठाईस हजार कोडाकोडी कोडी, एक सौ कोडाकोडी कोडी, बासठ कोडाकोडी कोडी, इक्यावन लाख कोडाकोडी, बयालीस

१ चत्तारि य कोडिसया अउणतीस च होंति कोडीओ।
अउण्णावन्न लक्खा सत्तट्ठी चेव य सहस्सा।१।
दो य सया छण्णउया पचमवग्गो समासओ होइ।
एयस्स कतो वग्गो छट्ठो जो होई त वोच्छ।२।　　—प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्राक २८

२. लक्ख कोडाकोडी चउरासी इ भवे सहस्साइ।
चत्तारि य सत्तट्ठा होंति सया कोडकोडीण।३।
चउयाल लक्खाइ कोडीण सत्त चेव य सहस्सा।
तिण्णि सया सत्तयरी कोडीण हुति नायव्वा।४।
पंचाणउई लक्खा एकावन्न भवे सहस्साइ।
छसोल सुत्तरसया एसो छट्ठो हवइ वग्गो।५।　　—प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्रांक २८

इन गाथाओ मे निर्दिष्ट अको की 'अकाना वामतो गति,' के अनुसार विपरीत क्रम से गणना करना तथा आगे भी यही नियम जानना चाहिये।

३ (क) अनुयोगद्वार मलधारीय वृत्ति पत्राक २०६।

(ख) छ-ति-ति-सु-पण-नव-ति-च-प-ति-ण-प-स-ति-ति-चउ-छ-दो।
च-ए-प-दो-छ-ए-अ-बे-वे-ण-स　　पढमक्खरसतियट्ठाणा॥　　—प्रज्ञापना मलयवृत्ति पत्रांक २८१

हजार कोडाकोडी, छहसौ कोडाकोडी, तेतालीस कोडाकोडी, सैंतीस लाख कोडी, उनसठ हजार कोडी, तीनसौ कोडी, चौपन कोडी, उनतालीस लाख पचास हजार तीनसौ छत्तीस।

इसी सख्या को प्रकारान्तर से समझाया गया है कि मनुष्यो के औदारिकशरीर छियानवै छेदनकदायी प्रमाण हैं। जो आधी-आधी करते-करते छियानवे बार छेदन को प्राप्त हो और अत मे एक बच जाये, उसे छियानवें छेदनकदायीराशि कहते है। उसको इस प्रकार समझना चाहिये—प्रथम वर्ग (४ सख्या) को छेदने पर दो छेदनक होते हैं, पहला छेदनक दो और दूसरा छेदनक एक। दोनो को मिलाकर दो छेदनक हुए। इसी प्रकार दूसरे वर्ग १६ के चार छेदनक हुए, वह इस प्रकार-प्रथम ८, द्वितीय ४, तृतीय २ और चतुर्थ १। तृतीय वर्ग २५६ के आठ छेदनक, चतुर्थ वर्ग के १६ छेदनक, पाचवे वर्ग के ३२ और छठे वर्ग ६४ छेदनक हुए। इस प्रकार पाचवे और छठे वर्ग के छेदनको का योग करने पर कुल ९६ छेदनक होते है। यह छियानवे छेदनकदायी राशि है। अथवा एक के अक को स्थापित करके उत्तरोत्तर उसे छियानवै बार दुगुना-दुगुना करने पर जितनी राशि हो वह राशि छियानवै छेदनकदायीराशि कहलाती है। इस छियानवै छेदनकदायी राशि का परिमाण उतना ही होगा, जिसे छठे वर्ग से गुणित पचम वर्ग की राशि के प्रसग मे बताया गया है। यह जघन्यपद मे मनुष्यो की सख्या का प्रमाण है।

जघन्यपद मे मनुष्यो की सख्या उक्त प्रमाण वाली सख्यात है। अतएव उतने ही मनुष्यो के जघन्य पदवर्ती बद्धऔदारिकशरीर जानना चाहिये।

उत्कृष्ट पद मे मनुष्यो की सख्या और उनके बद्ध औदारिकशरीरो का प्रमाण इस प्रकार है—उत्कृष्ट पद मे मनुष्यो की सख्या असख्यात है। जो सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की सख्या की अपेक्षा पाई जाती है। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य पैदा होते हैं तब वे एक साथ अधिक से अधिक असख्यात होते है। असख्यात सख्या के असख्यात भेद हैं। इन भेदो मे से जो असख्यात संख्या मनुष्यो के लिये मानी है, उसका परिचय यहाँ काल और क्षेत्र दोनो प्रकारो से दिया गया है।

मनुष्यो के मुक्त औदारिकशरीरो का प्रमाण सामान्य मुक्त औदारिकशरीरो के समान अनन्त है।

मनुष्यों के बद्ध वैक्रियशरीर सख्यात है, क्योकि वैक्रियलब्धि गर्भज मनुष्यो मे ही होती है और वह भी किसी किसी मे, सब मे नही। कालत इस सख्यात का प्रमाण इस प्रकार है—एक-एक समय मे एक-एक वैक्रियशरीर का अपहार किया जाए तो सख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाए।

मुक्तवैक्रियशरीरो का प्रमाण सामान्य मुक्तऔदारिकशरीरो जितना अनन्त समझना चाहिये।

मनुष्यो के बद्ध आहारकशरीर होते भी हैं और नही भी होते है। हो तो जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व तक हो सकते हैं। मुक्त आहारकशरीर सामान्य मुक्त आहारक-शरीरो जितने हैं।[1]

१. बद्ध-मुक्त आहारकशरीरो का प्रमाण सामान्य बद्ध-मुक्त आहारकशरीरो के प्रसग मे कारण सहित स्पष्ट किया जा चुका है।

मनुष्यो के बद्ध-मुक्त तैजस और कार्मण शरीरो का प्रमाण इनके बद्ध-मुक्त औदारिक-शरीरा के प्रमाण जितना है। अर्थात् बद्ध असख्यात और मुक्त अनन्त हैं।[1]

वाणव्यंतर देवों के बद्ध-मुक्त शरीर

४२४. [१] वाणमंतराणं ओरालियसरीरा जहा नेरइयाणं।

[४२४-१] वाणव्यतर देवो के औदारिकशरीरो का प्रमाण नारको के औदारिकशरीरों जैसा जानना चाहिये।

[२] वाणमंतराणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गो० ! दुविहा प०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालतो, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई संखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो पतरस्स। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

[४२४-२ प्र] भगवन् ! वाणव्यतर देवो के कितने वैक्रियशरीर कहे गये हैं ?

[४२४-२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त। उनमे से बद्धवैक्रियशरीर सामान्य रूप से असख्यात है जो काल की अपेक्षा असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो में अपहृत होते है। क्षेत्रत प्रतर के असख्यातवें भाग मे रही हुई असख्यात श्रेणियो जितने है। उन श्रेणियो की विष्कभसूची प्रतर के सख्येययोजनशतवर्ग प्रतिभाग (अश) रूप है। मुक्तवैक्रियशरीरों का प्रमाण औधिक औदारिकशरीरो की तरह जानना चाहिये।

[३] आहारगसरीरा दुविहा वि जहा असुरकुमाराणं।

[४२४-३] दोनो प्रकार के आहारकशरीरो का परिमाण असुरकुमारो के दोनो आहारक-शरीरो के प्रमाण जितना जानना चाहिये।

[४] वाणमंतराण भंते ! केवइया तेयग-कम्मगसरीरा पं० ?

गो० ! जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा तेयग-कम्मगसरीरा वि भाणियव्वा।

[४२४-४ प्र] भगवन् ! वाणव्यतरो के कितने तैजस-कार्मण शरीर कहे हैं ?

[४२४-४ उ] गौतम ! जैसे इनके वैक्रियशरीर कहे है, वैसे ही तैजस-कार्मण शरीर भी जानना चाहिये।

विवेचन—वाणव्यतर देवो के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वाणव्यतर देवो के औदारिकशरीरो का प्रमाण नारको के औदारिकशरीरो के प्रमाण

---

१ यद्यपि एक मनुष्य के एक साथ चार शरीर तक हो सकते है, पाच नहीं। परन्तु यहाँ पाच बद्ध शरीरो की प्ररूपणा की गई है, उसका तात्पर्य यह है कि नाना मनुष्यों की अपेक्षा एक साथ पांच शरीर भी होते हैं।

जितना कहने का तात्पर्य यह है कि वाणव्यतर देवो के बद्धऔदारिकशरीर तो होते नही है। मुक्त औदारिकशरीर पूर्वभवो की अपेक्षा अनन्त है।

वाणव्यतर देवो के बद्धवैक्रियशरीर असख्यात हैं, क्योंकि इन देवो की सख्या असख्यात है। इस असख्यात को स्पष्ट करने के लिये कहा है कि कालत एक-एक समय में एक-एक बद्धवैक्रिय-शरीर का अपहार किया जाये तो असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी कालो के समयो मे इनका अपहार होता है। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई जो असख्यात श्रेणियाँ हैं, उन श्रेणियो के जितने प्रदेश हो उतने प्रदेश प्रमाण वाणव्यतरो के बद्धवैक्रियशरीर है। उन असख्यात श्रेणियो की विष्कभसूची तिर्यंच पचेन्द्रियो की बद्धऔदारिकशरीर की विष्कभसूची से असख्यातगुणहीन जानना चाहिये।

वाणव्यतर देवो के मुक्तवैक्रियशरीरो का प्रमाण औधिक मुक्तऔदारिकशरीरो के समान है, अर्थात् अनन्त है।

बद्ध और मुक्त आहारकशरीरो का प्रमाण असुरकुमारो के समान कहने का तात्पर्य यह है कि वाणव्यतर देवो के बद्धआहारकशरीर होते नही है और मुक्तआहारकशरीर मुक्तऔदारिक-शरीरो के समान अनन्त है। बद्ध तैजस-कार्मण शरीर वाणव्यतरो के बद्धवैक्रियशरीर के समान असख्यात है और मुक्त तैजस-कार्मण शरीर अनन्त होते है।

ज्योतिष्क देवों के बद्ध-मुक्त पंच शरीर

४२५. [१] जोइसियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा प० ?

गो० ! जहा नेरइयाण तहा भाणियव्वा।

[४२५-१ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के कितने औदारिकशरीर होते है ?

[४२५-१ उ] गौतम ! ज्योतिष्क देवो के औदारिकशरीर नारको के औदारिकशरीरो के समान जानना चाहिये।

[२] जोइसियाण भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गो० ! दुविहा प०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ ण जे ते बद्धेल्लया जाव तासि णं सेढीण विक्खभसूची बेछप्पण्णंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स। मुक्केल्लया जहा ओहिय-ओरालिया।

[४२५-२ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के कितने वैक्रियशरीर कहे हैं ?

[४२५-२ उ] गौतम ! दो प्रकार के कहे गये है—बद्ध और मुक्त। उनमे जो बद्ध है यावत् उनकी श्रेणी की विष्कभसूची दो सौ छप्पन प्रतरागुल के वर्गमूल रूप अश प्रमाण समझना चाहिये। मुक्तवैक्रियशरीरो का प्रमाण सामान्य मुक्तऔदारिकशरीरो जितना जानना चाहिये।

[३] आहारयसरीरा जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा।

[४२५-३] ज्योतिष्कदेवों के आहारकशरीरों का प्रमाण नारकों के आहारकशरीरो के बराबर है ।

[४] तेयग-कम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्विया तहा भाणियव्वा ।

[४२५-४] ज्योतिष्कदेवो के बद्ध-मुक्त तैजस और कार्मण शरीरो का प्रमाण इनके बद्ध-मुक्त वैक्रियशरीरो के बराबर है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे ज्योतिष्कदेवो के बद्ध-मुक्त शरीरो की प्ररूपणा की गई है ।

इनके बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरो की प्ररूपणा नारकवत् समझने का तात्पर्य यह है कि बद्ध-औदारिकशरीर तो ज्योतिष्कदेवो के होते नही और मुक्तऔदारिकशरीर पूर्वभवो की अपेक्षा अनन्त है ।

ज्योतिष्कदेवो के बद्धवैक्रियशरीरो का निर्देश अति सक्षेप मे किया है । उसका आशय यह है कि वे असख्यात है । कालत असख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालो के समयो के बराबर है । क्षेत्रत उनका प्रमाण प्रतर के असख्यातवे भाग मे वर्तमान असख्यात श्रेणियो के प्रदेशो के बराबर है । विशेष यह है कि उन श्रेणियो की विष्कभसूची व्यतरो की विष्कभसूची से सख्यात गुणी अधिक होती है । क्योकि महादडक मे व्यतरो मे ज्योतिष्क देव सख्यातगुणा अधिक बताये गये है । इसीलिये प्रतिभाग के विषय मे विशेष स्पष्ट करते हुए कहा है कि उन श्रेणियो की विष्कभसूची २५६ प्रतरागुलो का वर्गमूल रूप जो प्रतिभाग—अश है, उस अशरूप यह विष्कभसूची जानना चाहिये । आशय यह है कि २५६ अगुल वर्गप्रमाण श्रेणीखड मे यदि एक-एक ज्योतिष्क देव की स्थापना की जाये तो वे सपूर्ण प्रतर को पूर्ण कर सकेगे । अथवा यदि एक-एक ज्योतिष्कदेव के अपहार से एक-एक दो सौ छप्पन अगुल वर्ग प्रमाण श्रेणी खड का अपहार होता है, तब सब मिलकर ज्योतिष्क देवो की सख्या की पूर्णता हो और दूसरी ओर सपूर्ण प्रतर खाली होगा । मुक्तवैक्रियशरीर सामान्य मुक्त-औदारिकशरीरो के तुल्य अर्थात् अनन्त है ।

नारको के जैसे बद्धआहारकशरीर नही होते, इसी प्रकार ज्योतिष्क देवो के भी नही हैं । मुक्तआहारकशरीर नारको के शरीरो के समान अनन्त है ।

ज्योतिष्को के बद्ध तैजस-कार्मण शरीर असख्यात है, क्योकि ये देव असख्यात है । मुक्त तैजस-कार्मण शरीर अनन्त है । अनन्त होने का कारण नारको के मुक्त तैजस-कार्मण शरीरो का प्रमाण बताने के प्रसग मे स्पष्ट किया जा चुका है ।

वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त शरीर एवं कालप्रमाण का उपसंहार

४२६. [१] वेमाणियाणं भंते ! केवतिया ओरालियसरीरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा ।

[४२६-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवो के कितने औदारिकशरीर कहे गये है ?

[४२६-१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकों के औदारिकशरीरों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार वैमानिक देवों की भी जानना चाहिये।

[२] वेमाणियाणं भंते ! केवइया वेउब्वियसरीरा पण्णत्ता ?

गो० ! दुविहा पं०। तं०—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलबितियवग्गमूलं ततियवग्गमूलपडुप्पण्णं, अहव णं अंगुलततियवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ। मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

[४२६-२ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गये हैं ?

[४२६-२ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त। उनमें से बद्धवैक्रियशरीर असंख्यात हैं। उनका काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहरण होता है और क्षेत्रत: प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों जितने हैं। उन श्रेणियों की विष्कंभसूची अंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है अथवा अंगुल के तृतीय वर्गमूल के घनप्रमाण श्रेणियां हैं। मुक्तवैक्रियशरीर औधिक औदारिकशरीर के तुल्य जानना चाहिये।

[३] आहारगसरीरा जहा नेरइयाणं।

[४२६-३] वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त आहारकशरीरों का प्रमाण नारकों के बद्ध-मुक्त आहारकशरीरों के बराबर जानना चाहिये।

[४] तेयग-कम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउब्वियसरीरा तहा भाणियव्वा।

से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे। से तं खेत्तपलिओवमे। से तं पलिओवमे। से तं विभागणिप्फण्णे। से तं कालप्पमाणे।

[४२६-४] इनके बद्ध और मुक्त तैजस-कार्मण शरीरों का प्रमाण इन्हीं के (बद्ध-मुक्त) वैक्रियशरीरों जितना जानना चाहिये।

यह सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप है। इसके साथ ही क्षेत्रपल्योपम तथा पल्योपम का स्वरूप भी निरूपित हो चुका। साथ ही विभागनिष्पन्न कालप्रमाण एवं समग्र कालप्रमाण का कथन भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—सूत्र में वैमानिक देवों के बद्ध-मुक्त पंच शरीरों की प्ररूपणा करके कालप्रमाण का उपसंहार किया है। वैमानिकों के बद्ध-मुक्त औदारिकशरीरों के लिये नैरयिकों के शरीरों की संख्या का निर्देश किया है। इसका तात्पर्य यह है कि नैरयिकों की तरह वैमानिक देवों के भी बद्धऔदारिकशरीर नहीं होते। मुक्तऔदारिकशरीर पूर्व के अनन्त जन्मों की अपेक्षा अनन्त होते हैं।

बद्धवैक्रियशरीर असंख्यात है। काल की अपेक्षा उनका अपहरण किये जाने पर असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो के समयो जितने होंगे। क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात का प्रमाण बताने के लिये कहा है कि प्रतर के असख्यातवे भाग मे वर्तमान असख्यात श्रेणियो की जितनी प्रदेशराशि होती है, उतने हैं। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिये कहा है कि इन श्रेणियो की विष्कभसूची का प्रमाण तृतीय वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूलप्रमाण अथवा अगुल के तृतीय वर्गमूल का घन करने पर प्राप्त सख्याप्रमाण जानना चाहिये। जिसका असत्कल्पना से स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

मान ले कि असख्यात श्रेणिया २५६ है। इनका प्रथम वर्गमूल १६, द्वितीय वर्गमूल ४ और तृतीय वर्गमूल २ हुआ। इस द्वितीय वर्गमूल ४ और तृतीय वर्गमूल २ से गुणा करने पर (४×२=८) आठ हुए। इन आठ को हम असख्यात श्रेणियो की विष्कभसूची मान ले। इन असख्यात श्रेणियो की जितनी प्रदेशराशि होगी उतने वैमानिक देवो के क्षेत्र की अपेक्षा बद्धवैक्रियशरीर है। अथवा अगुल का प्रमाण २५६ है। इसका तृतीय वर्गमूल २ हुआ। उसका घन करने पर (२×२×२=८) हुए। इस आठ को हम कल्पना से असख्यात श्रेणियो की विष्कभसूची मान लें। इस प्रकार दोनो प्रकार के कथन मे अर्थ का कोई भेद नही है।

मुक्तवैक्रियशरीरो का परिमाण सामान्य मुक्तऔदारिकशरीरो जितना अनन्त जानना चाहिये।

वैमानिक देवो के बद्ध और मुक्त आहारकशरीरो का प्रमाण नारको जैसा जानने के सकेत का यह आशय है कि जैसे नारको के बद्धआहारकशरीर नही होते, इसी प्रकार वैमानिक देवो के भी नही होते है। मुक्तआहारकशरीर पूर्वभवो की अपेक्षा होते हैं। इनका प्रमाण नारको के मुक्तआहारकशरीरो जितना अनन्त है।

बद्ध-तैजस-कार्मण शरीरो का प्रमाण इन्ही के बद्धवैक्रियशरीरो के समान असख्यात और मुक्त-तैजस-कार्मण शरीर मुक्त वैक्रियशरीरो के समान अनन्त है।

इस प्रकार से चौबीस दडकवर्ती जीवो के शरीरो की प्ररूपणा जानना चाहिये।

इसके पश्चात् 'से त' आदि पदो द्वारा कालप्रमाण के वर्णन के पूर्ण होने की सूचना दी गई है। अब क्रमप्राप्त भावप्रमाण का वर्णन प्रारभ करते है।

भावप्रमाण

४२७. से किं तं भावप्पमाणे ?

भावप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—गुणप्पमाणे नयप्पमाणे संखप्पमाणे।

[४२७ प्र] भगवन्! भावप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४२७ उ] आयुष्मन्! भावप्रमाण तीन प्रकार का कहा है। यथा—१. गुणप्रमाण, २. नयप्रमाण और ३ सख्याप्रमाण।

विवेचन—यह सूत्र भावप्रमाण का वर्णन करने के लिये भूमिका रूप है। 'भवन भाव' यह भाव शब्द की व्युत्पत्ति है, अर्थात् होना यह भाव है।

भाव वस्तु का परिणाम है। लोक मे वस्तुए दो प्रकार की है—जीव-सचेतन और अजीव-अचेतन। सचेतन वस्तु का परिणाम ज्ञानादि रूप है और अचेतन का परिणाम वर्णादि रूप है।

उपर्युक्त कथन का सारांश यह है कि विद्यमान पदार्थों के वर्णादि और ज्ञानादि परिणामो को भाव और जिसके द्वारा उन वर्णादि परिणामो का भलीभांति बोध हो, उसे भावप्रमाण कहते हैं। वह भावप्रमाण तीन प्रकार का है—गुणप्रमाण, नयप्रमाण और सख्याप्रमाण।

गुणो मे द्रव्यादि का अथवा गुणो का गुण रूप से ज्ञान होता है अतएव वे गुणप्रमाण कहलाते है। अनन्तधर्मात्मक वस्तु का एक अश द्वारा निर्णय करना नय है। इसी को नयप्रमाण कहते है। सख्या का अर्थ है गणना करना। यह गणना रूप प्रमाण सख्याप्रमाण है।

भावप्रमाण के उक्त तीन भेदो का आगे विस्तृत वर्णन किया जाता है।

गुणप्रमाण

४२८. से किं त गुणप्पमाणे ?

गुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—जीवगुणप्पमाणे य अजीवगुणप्पमाणे य।

[४२८ प्र] भगवन् ! गुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४२८ उ] आयुष्मन् ! गुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है—जीवगुणप्रमाण और अजीवगुणप्रमाण।

विवेचन—गुणप्रमाण के स्वरूपवर्णन को प्रारभ करते हुए उसके दो भेदो का उल्लेख किया है। इन भेदो मे से अल्पवक्तव्य होने से पहले अजीवगुणप्रमाण का निर्देश करते है।

अजीवगुणप्रमाणनिरूपण

४२९. से किं त अजीवगुणप्पमाणे ?

अजीवगुणप्पमाणे पचविहे पण्णत्ते। त जहा- वण्णगुणप्पमाणे गंधगुणप्पमाणे रसगुणप्पमाणे फासगुणप्पमाणे संठाणगुणप्पमाणे।

[४२९ प्र] भगवन् ! अजीवगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४२९ उ] आयुष्मन् ! अजीवगुणप्रमाण पाच प्रकार का कहा गया है—१ वर्णगुणप्रमाण, २ गधगुणप्रमाण, ३ रसगुणप्रमाण, ४ स्पर्शगुणप्रमाण और ५ सस्थानगुणप्रमाण।

४३०. से किं तं वण्णगुणप्पमाणे ?

वण्णगुणप्पमाणे पचविहे पण्णत्ते। तं०—कालवण्णगुणप्पमाणे जाव सुक्किल्लवण्णगुणप्पमाणे। से तं वण्णगुणप्पमाणे।

[४३० प्र] भगवन् ! वर्णगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४३० उ.] आयुष्मन् ! वर्णगुणप्रमाण पाच प्रकार का कहा है। यथा—कृष्णवर्णगुणप्रमाण यावत् शुक्लवर्णगुणप्रमाण। यह वर्णगुणप्रमाण का स्वरूप है।

४३१. से किं तं गंधगुणप्पमाणे ?

गंधगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं०- सुरभिगंधगुणप्पमाणे दुरभिगधगुणप्पमाणे य। से त गंधगुणप्पमाणे।

[४३१ प्र.] भगवन्! गधगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[४३१ उ] आयुष्मन्! गधगुणप्रमाण दो प्रकार का है। यथा—सुरभिगधगुणप्रमाण, दुरभि-गधगुणप्रमाण। इस प्रकार यह गधगुणप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिए।

४३२. से किं तं रसगुणप्पमाणे ?

रसगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। तं०—तित्तरसगुणप्पमाणे जाव महुररसगुणप्पमाणे। से तं रसगुणप्पमाणे।

[४३२ प्र] भगवन्! रसगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[४३२ उ] आयुष्मन्! रसगुणप्रमाण पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—तिक्तरसगुणप्रमाण यावत् मधुररसगुणप्रमाण। यह रसगुणप्रमाण का स्वरूप है।

४३३. से किं त फासगुणप्पमाणे ?

फासगुणप्पमाणे अट्ठविहे पण्णत्ते। तं०—कक्खडफासगुणप्पमाणे जाव लुक्खफासगुणप्पमाणे। से तं फासगुणप्पमाणे।

[४३३ प्र] भगवन्! स्पर्शगुणप्रमाण का स्वरूप क्या है?

[४३३ उ] आयुष्मन्! स्पर्शगुणप्रमाण आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—कर्कशस्पर्शगुणप्रमाण यावत् रूक्षस्पर्शगुणप्रमाण। यह स्पर्शगुणप्रमाण है।

४३४. से किं तं संठाणगुणप्पमाणे ?

सठाणगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते। त०—परिमडलसठाणगुणप्पमाणे जाव आययसठाणगुण-प्पमाणे। से तं संठाणगुणप्पमाणे। से तं अजीवगुणप्पमाणे।

[४३४ प्र] भगवन्! सस्थानगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है?

[४३४ उ] आयुष्मन्! सस्थानगुणप्रमाण पाच प्रकार का कहा गया है। जैसे—परिमडल-सस्थानगुणप्रमाण यावत् आयतसस्थानगुणप्रमाण। यह सस्थानगुणप्रमाण का स्वरूप है।

इस प्रकार से अजीवगुणप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—यहाँ अजीवगुणप्रमाण का कथन किया है। प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति भाव, करण और कर्म इन तीन साधनो मे होती है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है। भावसाधन पक्ष मे गुणो को जानने रूप प्रमिति प्रमाण है। यद्यपि गुण स्वय प्रमाणभूत नही होते है किन्तु जानने रूप क्रिया

गुणो मे होती है, इसलिये अभेदोपचार से गुणो को भी प्रमाण मान लिया जाता है। करणसाधन पक्ष मे गुणो के द्वारा द्रव्य जाना जाता है, इसलिये गुण प्रमाणभूत हो जाते हैं। कर्मसाधन पक्ष मे गुण गुणरूप से जाने जाते है, इसलिये गुण प्रमाण रूप हैं।

यहाँ जिन गुणो को प्रमाण रूप से प्रस्तुत किया है, वे मूर्त अजीव द्रव्य पुद्गल के है। ये सभी पुद्गलद्रव्य के असाधारण स्वरूप के बोधक है। अन्य द्रव्यो मे नही होते है। जिस द्रव्य मे रूप होता है, उसी मे सस्थान-आकार होता है। आकार के माध्यम से वह दृश्य होता है। इसीलिये परिमडल आदि सस्थानो को भी गुणप्रमाण के रूप मे माना है।

सस्थानो के नामोल्लेख मे 'यावत्' पद से परिमडल और आयत सस्थान के साथ वृत्त, त्र्यस और चतुरस्र सस्थान को ग्रहण किया है। वलय (चूडी) के आकार के सस्थान को परिमडल-सस्थान कहते है। लोहगोलक (गोली) के आकार को वृत्तसस्थान, सिंघाडे जैसे आकार को त्र्यस (त्रिकोण) सस्थान, समचौरस (चौकोर) आकार को चतुरस्रसस्थान और लम्बे आकार को आयत-सस्थान कहते है।

स्थानागसूत्र मे सस्थान सात कहे गए है—१ दीर्घ, २ ह्रस्व, ३ वृत्त (गेद के समान गोल), ४ त्रिकोण, ५ चतुष्कोण, ६ पृथुल-विस्तीर्ण और ७ परिमडल-वलय की भाति गोल।[1]

ये सभी वर्णादि गुण अजीव पदार्थ के है। इसलिये इनको अजीवगुणप्रमाण मे ग्रहण किया है।

जीवगुणप्रमाणनिरूपण

४३५. से किं त जीवगुणप्पमाणे ?

जीवगुणप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—णाणगुणप्पमाणे दसणगुणप्पमाणे चरित्तगुणप्पमाणे य।

[४३५ प्र] भगवन् ! जीवगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४३५ उ] आयुष्मन् ! जीवगुणप्रमाण तीन प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। वह इस प्रकार—ज्ञानगुणप्रमाण, दर्शनगुणप्रमाण और चारित्रगुणप्रमाण।

विवेचन—यहाँ जीव के मूलभूत गुणो का उल्लेख करके जीवगुणप्रमाण के तीन भेद बताये है।

४३६. से किं तं णाणगुणप्पमाणे ?

णाणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। त०—पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे।

[४३६ प्र] भगवन् ! ज्ञानगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४३६ उ] आयुष्मन् ! ज्ञानगुणप्रमाण चार प्रकार का कहा गया है—१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान और ४ आगम।

---

१ स्थानांगसूत्र, स्थान ७।

विवेचन—सूत्र मे जीवगुणप्रमाण के प्रथम भेद ज्ञानगुणप्रमाण के चार भेदो का नामोल्लेख किया है। जिनका अब विस्तार से वर्णन करते है।

प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपण

४३७. से किं त पच्चक्खे ?

पच्चक्खे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—इंदियपच्चक्खे य णोइंदियपच्चक्खे य।

[४३७ प्र] भगवन् ! प्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है ?

[४३७ उ] आयुष्मन् ! प्रत्यक्ष के दो भेद है। यथा—इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष।

४३८. से किं त इंदियपच्चक्खे ?

इंदियपच्चक्खे पचविहे पण्णत्ते। त जहा—सोइंदियपच्चक्खे चक्खुरिंदियपच्चक्खे घाणिंदियपच्चक्खे जिब्भिंदियपच्चक्खे फासिंदियपच्चक्खे। से त इंदियपच्चक्खे।

[४३८ प्र] भगवन् ! इन्द्रियप्रत्यक्ष किसे कहते है ?

[४३८ उ] आयुष्मन् ! इन्द्रियप्रत्यक्ष पाच प्रकार का कहा है। यथा—१ श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष, २ चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्ष, ३ घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्ष, ४ जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्ष, ५ स्पर्शनेन्द्रियप्रत्यक्ष।

इस प्रकार यह इन्द्रियप्रत्यक्ष है।

४३९. से किं त णोइंदियपच्चक्खे ?

णोइंदियपच्चक्खे तिविहे प०। त०—ओहिणाणपच्चक्खे मणपज्जवणाणपच्चक्खे केवलणाणपच्चक्खे। से त णोइंदियपच्चक्खे। से त पच्चक्खे।

[४३९ प्र] भगवन ! नोइन्द्रियप्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है ?

[४३९ उ] आयुष्मन् ! नोइन्द्रियप्रत्यक्ष तीन प्रकार का कहा गया है—१ अवधिज्ञानप्रत्यक्ष, २ मन पर्यवज्ञानप्रत्यक्ष, ३ केवलज्ञानप्रत्यक्ष। यही प्रत्यक्ष का स्वरूप है।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तरो मे भेद सहित प्रत्यक्षप्रमाण का स्वरूप बतलाया है।

प्रत्यक्ष शब्द मे प्रति+अक्ष ऐसे दो शब्द है। अक्ष शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—'अक्ष्णोति ज्ञानात्मना व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा।' अर्थात् अक्ष जीव—आत्मा को कहते हैं, क्योकि जीव ज्ञान रूप से समस्त पदार्थों को व्याप्त करता है—जानता है। जो ज्ञान साक्षात् आत्मा से उत्पन्न हो, जिसमे इन्द्रियादि किसी माध्यम की अपेक्षा न हो, वह प्रत्यक्ष कहलाता है।

यद्यपि 'अक्ष-अक्ष प्रतिगतम्'—ऐसी भी व्युत्पत्ति प्रत्यक्ष शब्द की हो सकती है, लेकिन वह युक्तिसगत नही है, क्योकि ऐसी व्युत्पत्ति करने मे अव्ययीभाव समास होता है और अव्ययीभाव समास से बना शब्द सदा नपुसकलिंग मे होता है। तब 'प्रत्यक्षो बोध, प्रत्यक्षा बुद्धि प्रत्यक्ष ज्ञानम्' इस प्रकार से त्रिलिंगता प्रत्यक्ष शब्द मे नही आ सकेगी। अत प्रत्यक्ष शब्द की पूर्वोक्त व्युत्पत्ति ही निर्दोष है।

प्रत्यक्ष के दो भेद है—१ इन्द्रियप्रत्यक्ष और २. नोइन्द्रियप्रत्यक्ष। जिस प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति मे इन्द्रियां सहकारी हो वह इन्द्रियप्रत्यक्ष है और जिस ज्ञान की उत्पत्ति इन्द्रिय आदि की सहायता से नही होती है, उसे नोइन्द्रियप्रत्यक्ष कहते है। 'नो' शब्द यहाँ निषेधवाचक है। तात्पर्य यह हुआ कि जिस ज्ञान की उत्पत्ति केवल आत्माधीन होती है, वह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष है।

इन्द्रियजन्य ज्ञान को लौकिक व्यवहार की अपेक्षा से प्रत्यक्ष कहा गया है, क्योंकि लोक मे ऐसा व्यवहार देखा जाता है—'मैने अपने नेत्रो से प्रत्यक्ष देखा है।' परमार्थ की अपेक्षा तो इन्द्रियजन्य ज्ञान परोक्ष ही है। नन्दीसूत्र मे जो इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है वह भी लोकव्यवहार की अपेक्षा से कहा गया है।

इन्द्रियप्रत्यक्ष के पाच भेद श्रोत्र आदि पाचो इन्द्रियो द्वारा ग्रहण किये जाने वाले अपने-अपने विषयों की अपेक्षा जानना चाहिये। जैसे श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द है, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध, रसनेन्द्रिय का विषय रस एव स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श है।

इन्द्रियप्रत्यक्ष के भेदो के क्रम-विन्यास से जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि शास्त्रो मे जीवो की इन्द्रियवृद्धि का क्रम स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, इस प्रकार का है। उस क्रम को छोडकर पश्चानुपूर्वी से इसका उल्लेख क्यों किया है? इसका उत्तर यह है कि क्षयोपशम और पुण्य की प्रकर्षता अधिक होने पर जीव पचेन्द्रिय बनता है और उसके बाद उससे न्यून होने पर चतुरिन्द्रिय। त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय के लिये भी यही समझना चाहिये। अतएव पुण्य और क्षयोपशम की प्रकर्षता को ध्यान मे रखकर सर्वप्रथम श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष का और फिर पश्चानुपूर्वी के क्रम से चक्षुरिन्द्रिय आदि का विधान किया है। अभिप्राय यह है कि पुण्य और क्षयोपशम की मुख्यता से तो पश्चानुपूर्वी से और जाति की अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी से इन्द्रियो का क्रम कहा गया है। इन इन्द्रियो के द्वारा उत्पन्न होने वाला ज्ञान इन्द्रियप्रत्यक्ष है।

नोइन्द्रियप्रत्यक्ष के तीन भेद है—अवधिज्ञानप्रत्यक्ष, मन पर्यायज्ञानप्रत्यक्ष और केवलज्ञान-प्रत्यक्ष। इनको नोइन्द्रियप्रत्यक्ष कहने का कारण यह है कि इनकी उत्पत्ति केवल आत्माधीन है। इनमे इन्द्रियव्यापार सर्वथा नही होता है किन्तु साक्षात् जीव ही अर्थ को जानता है। अवधिज्ञान आदि तीनो के लक्षण पूर्व मे बताये जा चुके है।

अनुमानप्रमाणप्ररूपणा

४४०. से किं तं अणुमाणे ?

अणुमाणे तिविहे पण्णत्ते। तं०—पुव्ववं सेसवं दिट्ठसाहम्मवं।

[४४० प्र.] भगवन्! अनुमान का क्या स्वरूप है?

[४४० उ] आयुष्मन्! अनुमान तीन प्रकार का कहा है—पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्ट-साधर्म्यवत्।

विवेचन—अनुमान शब्द के 'अनु' और 'मान' ऐसे दो अश हैं। 'अनु' का अर्थ है पश्चात् और मान का अर्थ है ज्ञान। अर्थात् साधन के ग्रहण (दर्शन) और संबन्ध के स्मरण के पश्चात् होने वाले ज्ञान को अनुमान कहते हैं। तात्पर्य यह है कि साधन से साध्य का जो ज्ञान हो, वह अनुमान

है। साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाले हेतु को साधन कहते हैं। अतएव उस हेतु के दर्शन होते ही साध्य-साधन की व्याप्ति का स्मरण होता है, तब जहाँ-जहाँ साध्याविनाभावी साधन होता है, वहाँ-वहाँ साध्य होता है, इस नियम के अनुसार जहाँ अविनाभावी साधन दृष्टिगत हो रहा हो वहाँ अवश्य ही साध्य है, इस प्रकार से परोक्ष अर्थ की सत्ता जानने वाले ज्ञान को अनुमान कहते हैं। यह अनुमान प्रत्यक्षज्ञान की तरह प्रमाण है।

पूर्ववत्-अनुमाननिरूपण

४४१. से किं तं पुव्ववं ? पुव्ववं

माता पुत्तं जहा नट्ठं जुवाणं पुणरागतं।
काई पच्चभिजाणेज्जा पुव्वलिंगेण केणइ ॥ ११५ ॥

तं जहा—खतेण वा वणेण वा मसेण वा लंछणेण वा तिलएण वा। से तं पुव्ववं।

[४४१ प्र.] भगवन्! पूर्ववत्-अनुमान किसे कहते हैं?

[४४१ उ.] आयुष्मन्! पूर्व में देखे गये लक्षण से जो निश्चय किया जाये उसे पूर्ववत् कहते है। यथा—

माता बाल्यकाल से गुम हुए और युवा होकर वापस आये हुए पुत्र को किसी पूर्व-निश्चित चिह्न से पहचानती है कि यह मेरा ही पुत्र है। ११५

जैसे—देह मे हुए क्षत—घाव, व्रण—कुत्ता आदि के काटने से हुए घाव, लाञ्छन, डाम आदि से बने चिह्नविशेष, मष, तिल आदि से जो अनुमान किया जाता है, वह पूर्ववत्-अनुमान है।

विवेचन—यहाँ अनुमान के पूर्ववत् भेद का लक्षण बताया है। तात्पर्य यह है कि पूर्वज्ञात किसी लिंग (चिह्न) के द्वारा पूर्वपरिचित वस्तु का ज्ञान करना पूर्ववत् अनुमान है।[1]

यहाँ अनुमानप्रयोग इस प्रकार किया जायेगा - यह मेरा पुत्र है, क्योंकि अन्य मे नही पाए जाने वाले क्षतादि विशिष्ट लिंग वाला है।

कदाचित् यह कहा जाये कि इस अनुमानप्रयोग मे साधर्म्यदृष्टान्त का अभाव होने से यह साध्य की सिद्धि करने मे अक्षम है तो इसका उत्तर यह है कि हेतु दृष्टान्त के बल से ही अपने साध्य का निश्चायक हो, यह नियम नही है। परन्तु जिस हेतु मे अन्यथानुपपन्नत्व (साध्य के अभाव मे हेतु का न होना) है, वह नियम से अपने साध्य का गमक होता है। अर्थात् अन्यथानुपपन्नत्व ही हेतु का लक्षण है। दृष्टान्त के अभाव मे भी ऐसा हेतु गमक होता है।

यदि यह कहा जाये कि जब पुत्र प्रत्यक्षज्ञान का विषय है, तब अनुमानप्रयोग करने की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान यह है, पुरुष का पिंडमात्र दिखने पर भी 'यह मेरा पुत्र है या नहीं' ऐसा सदेह बना हुआ है। इस सदेह का निराकरण करने के लिये अनुमानप्रयोग किया जाना सगत है कि—यह मेरा पुत्र है, क्योंकि अमुक असाधारण चिह्न से युक्त है।

---

१ अनुयोगद्वार. मलधवृत्ति पृ. २१२

शेषवत्-अनुमाननिरूपण

४४२. से किं तं सेसवं ?

सेसवं पंचविहं पण्णत्तं । त जहा— कज्जेण कारणेणं गुणेण अवयवेण आसएणं ।

[४४२ प्र.] भगवन् ! शेषवत्-अनुमान किसे कहते है ?

[४४२ उ] आयुष्मन् ! शेषवत्-अनुमान पाच प्रकार का कहा गया है । यथा—१. कार्येण (कार्य से), २ कारणेन (कारण द्वारा), ३ गुणेण (गुण से), ४ अवयवेन (अवयव से) और ५ आश्रयेण (आश्रय से) । (इन पाचो द्वारा जो अनुमान किया जाता है, उसे शेषवत्-अनुमान कहते हैं ।)

४४३. से किं तं कज्जेणं ?

कज्जेणं संखं सद्देण, भेरिं तालिएणं, वसभ ढंकिएणं, मोर केकाइएण, हय हेसिएणं, गय गुलगुलाइएणं, रहं घणघणाइएणं । से त कज्जेण ।

[४४३ प्र] भगवन् ! कार्य से उत्पन्न होने वाले शेषवत्-अनुमान का क्या स्वरूप है ?

[४४३ उ] आयुष्मन् ! शख के शब्द को सुनकर शख का अनुमान करना, भेरी के शब्द (ध्वनि) से भेरी का, बैल के रभाने-दलाकने से बैल का, केकारव सुनकर मोर का, हिनहिनाना सुनकर घोडे का, गुलगुलाहट सुनकर हाथी का और घनघनाहट सुनकर रथ का अनुमान करना ।

यह कार्यलिंग से उत्पन्न शेषवत्-अनुमान है ।

४४४. से किं त कारणेणं ?

कारणेण तंतवो पडस्स कारण ण पडो तंतुकारण, वीरणा कडस्स कारणं ण कडो वीरणाकारण, मिप्पिडो घडस्स कारण ण घडो मिप्पिडकारण । से तं कारणेण ।

[४४४ प्र] भगवन् ! कारणरूप लिग से उत्पन्न शेषवत्-अनुमान क्या है ?

[४४४ उ] आयुष्मन् ! कारणरूप लिंग से उत्पन्न हुआ शेषवत्-अनुमान इस प्रकार है— ततु पट के कारण है, किन्तु पट ततु का कारण नही है, वीरणा-तृण कट (चटाई) के कारण है, लेकिन कट वीरणा का कारण नही है मिट्टी का पिंड घडे का कारण है किन्तु घडा मिट्टी का कारण नही है ।

यह कारणलिगजन्य शेषवत्-अनुमान है ।

४४५. से किं त गुणेण ?

गुणेण सुवण्णं निकसेण, पुप्फ गंधेण, लवण रसेण, मदिर आसायिएण, वत्थं फासेणं । से त गुणेण ।

[४४५ प्र] भगवन् ! गुणलिगजन्य शेषवत्-अनुमान किसे कहते है ?

[४४५ उ] आयुष्मन् ! निकष— कसौटी से स्वर्ण का, गध से पुष्प का, रस से नमक का, आस्वाद (चखने) से मदिरा का, स्पर्श से वस्त्र का अनुमान करना गुणनिष्पन्न शेषवत्-अनुमान है ।

४४६. से किं तं अवयवेणं ?

अवयवेणं महिसं सिंगेणं, कुक्कुडं सिहाए, हत्थि विसाणेणं, वराहं दाढाए, मोरं पिच्छेणं, आसं खुरेणं, वग्घं नहेणं, चमरं वालगंडेण, दुपयं मणूसमाइ, चउपयं गवमादि, बहुपयं गोम्हियादि, सीहं केसरेणं, वसहं ककुहेणं, महिलं वलयबाहाए।

> **परियरबंधेण भडं, जाणिज्जा महिलियं णिवसणेणं।**
> **सित्थेण दोणपागं, कइं च एक्काए गाहाए॥ ११६॥**

से तं अवयवेणं।

[४४६ प्र.] भगवन् ! अवयव रूप-लिंग से निष्पन्न शेषवत्-अनुमान किसे कहते हैं ?

[४४६ उ.] आयुष्मन् ! सींग से महिष का, शिखा से कुक्कुट (मुर्गा) का, दांत से हाथी का, दाढ से वराह (सूअर) का, पिच्छ से मयूर का, खुर से घोडे का, नखों से व्याघ्र का, बालों के गुच्छे से चमरी गाय का, द्विपद से मनुष्य का, चतुष्पद से गाय आदि का, बहु पदों से गोमिका आदि का, केसरसटा से सिंह का, ककुद (कांधले) से वृषभ का, चूडी सहित बाहु से महिला का अनुमान करना। तथा—

बद्धपरिकरता (योद्धा की विशेष प्रकार की पोशाक) से योद्धा का, वेष से महिला का, एक दाने के पकने से द्रोण-पाक का और एक गाथा से कवि का ज्ञान होना। ११६

यह अवयवलिंगजन्य शेषवत्-अनुमान है।

४४७. से किं तं आसएणं ?

आसएणं अग्गिं धूमेणं, सलिलं बलागाहिं, वुट्ठं अब्भविकारेणं, कुलपुत्तं सीलसमायारेणं।

> **इङ्गिताकारितैर्ज्ञेयैः क्रियाभिर्भाषितेन च।**
> **नेत्र-वक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः॥ ११७॥**

से तं आसएणं। से तं सेसवं।

[४४७ प्र.] भगवन् ! आश्रयजन्य शेषवत्-अनुमान किसे कहते हैं ?

[४४७ उ.] आयुष्मन् ! धूम से अग्नि का, बकपंक्ति से पानी का, अभ्रविकार (मेघविकार) से वृष्टि का और शील सदाचार से कुलपुत्र का तथा—

शरीर की चेष्टाओं से, भाषण करने से और नेत्र तथा मुख के विकार से अन्तर्गत मन—आन्तरिक मनोभाव का ज्ञान होना।

यह आश्रयजन्य शेषवत्-अनुमान है। यही शेषवत्-अनुमान है।

विवेचन—ऊपर शेषवत्-अनुमान का स्वरूप बतलाया है।

कार्य से कारण का, कारण से कार्य का, गुण से गुणी का, अवयव से अवयवी का और आश्रय से तदाश्रयवान् का अनुमान शेषवत्-अनुमान कहलाता है। सूत्र में उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया गया है।

कार्यानुमान मे कार्य के होने पर उसके कारण का ज्ञान होता है । जैसे हिनहिनाहट रूप कार्य के द्वारा उसके कारण घोडे की प्रतीति होती है । इसीलिये यह कार्यजन्य शेषवत्-अनुमान है ।

कारणानुमान मे कारण के द्वारा कार्य की अनुमिति होती है । जैसे—आकाश में विशिष्ट मेघघटाओ को देखने पर वृष्टि का अनुमान किया जाता है, क्योंकि विशिष्ट प्रकार के मेघों से वृष्टि अवश्य होती ही है । विशिष्ट मेघ कारण हैं और वृष्टि कार्य है ।

कारण-कार्यभाव सबधी मतभिन्नता का निवारण करने के लिए सूत्रकार ने अन्य उदाहरण दिया है—ततु पट के कारण होते है, पट तन्तुओं का कारण नही है । क्योकि आतानवितानीभूत बने हुए ततुओ से पहले पट की उपलब्धि नही होती है, किन्तु आतानवितानीभूत बने हुए ततुओ की सत्ता मे ही होती है । परन्तु तन्तुओ के लिये ऐसी बात नही है, पट के अभाव मे भी ततुओ की उपलब्धि देखी जाती है ।

चाहे कोई निपुण पुरुष पट रूप से सयुक्त हुए ततुओ को उस पट से अलग कर दे तब भी वह पट उन ततुओ का कारण नही है ।

गुणजन्य शेषवत्-अनुमान से गुणो के द्वारा गुणी—वस्तु का ज्ञान होता है । जैसे कसौटी पर स्वर्ण को कसने से उभरी हुई रेखा से स्वर्ण का, गध की उपलब्धि से पुष्प की जाति आदि का ज्ञान होता है । इस प्रकार के अनुमान को गुणजन्य शेषवत्-अनुमान कहा है ।

अवयव से अवयवी के अनुमान की प्रवृत्ति तभी होती है जब ढके—छिपे होने के कारण अवयवी न दिखता हो, मात्र तदविनाभावी अवयव की उपलब्धि हो रही हो ।

आश्रयानुमान मे अग्नि का धूम से ज्ञान होना आदि जो उदाहरण दिये गये हैं, उनका आशय यह है कि धूम आदि अग्नि आदि के आश्रित रहते हैं । इसलिये धूम आदि को देखने से उनके आश्रयी का ज्ञान हो जाता है । यद्यपि धूम, अग्नि का कार्य है और ऐसा अनुमान कार्य से कारण के अनुमान मे अन्तर्भूत होता है, तथापि उसे यहाँ जो आश्रयानुमान कहा है, उसका कारण यह है कि धूम अग्नि के आश्रय रहता है, ऐसी लोक मे प्रसिद्धि है । इसे लक्ष्य मे रखकर धूम को आश्रित मानकर तदाश्रयी अग्नि का उसे अनुमापक कहा है ।

दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान

४४८. से किं तं दिट्ठसाहम्मवं ?

दिट्ठसाहम्मवं दुविहं पण्णत्तं । तं जहा—सामण्णदिट्ठं च विसेसदिट्ठं च ।

[४४८ प्र.] भगवन् ! दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान का क्या स्वरूप है ?

[४४८ उ.] आयुष्मन् ! दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान दो प्रकार का कहा है । यथा—१ सामान्य-दृष्ट, २ विशेषदृष्ट ।

४४९. से किं तं सामण्णदिट्ठं ?

सामण्णदिट्ठं जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो,

जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो। से तं सामण्णदिट्ठं।

[४४९ प्र.] भगवन्! सामान्यदृष्ट अनुमान का क्या स्वरूप है?

[४४९ उ.] आयुष्मन्! सामान्यदृष्ट अनुमान का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—जैसा एक पुरुष होता है, वैसे ही अनेक पुरुष होते हैं। जैसे अनेक पुरुष होते हैं, वैसा ही एक पुरुष होता है। जैसा एक कार्षापण (सिक्काविशेष) होता है वैसे ही अनेक कार्षापण होते है, जैसे अनेक कार्षापण होते हैं, वैसा ही एक कार्षापण होता है।

यह सामान्यदृष्ट साधर्म्यवत्-अनुमान है।

४५०. **से किं तं विसेसदिट्ठं?**

विसेसदिट्ठं से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पच्चभिजाणेज्जा—अयं से पुरिसे, बहूणं वा करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणिज्जा—अयं से करिसावणे। तस्स समासतो तिविहं गहणं भवति। तं जहा—तीतकालगहणं पडुप्पण्णकालगहणं अणागतकालगहणं।

[४५० प्र.] भगवन्! विशेषदृष्ट अनुमान का क्या स्वरूप है?

[४५० उ.] आयुष्मन्! विशेषदृष्ट अनुमान का स्वरूप यह है—जैसे कोई एक पुरुष अनेक पुरुषों के बीच में किसी पूर्वदृष्ट पुरुष को पहचान लेता है कि यह वह पुरुष है। इसी प्रकार अनेक कार्षापणों (सिक्कों) के बीच में से पूर्व में देखे हुए कार्षापण को पहिचान लेता है कि यह वही कार्षापण है।

उसका विषय संक्षेप से तीन प्रकार का है। वह इस प्रकार—अतीतकालग्रहण, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) कालग्रहण और अनागत (भविष्य) कालग्रहण। (अर्थात् अनुमान द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों कालों के पदार्थ का अनुमान किया जाता है।)

विवेचन—यहाँ दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान का विचार किया गया है।

पूर्व में दृष्ट—उपलब्ध पदार्थ की समानता के आधार पर होने वाले अनुमान को दृष्टसाधर्म्यवत् कहते है।

पूर्व में कोई पदार्थ सामान्य रूप से दृष्ट होता है और कोई विशेष रूप से। इसीलिये दृष्ट पदार्थ के भेद से इस अनुमान के सामान्यदृष्ट और विशेषदृष्ट ये दो भेद हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी एक वस्तु को देखकर तत्सदृश सभी वस्तुओं का ज्ञान करना या बहुत वस्तुओं को देखकर किसी एक का ज्ञान करना सामान्यदृष्ट है। विशेषदृष्ट में अनेक वस्तुओं में से किसी एक को पृथक् करके उसके वैशिष्ट्य का ज्ञान किया जाता है।

शास्त्रकार ने इन दोनों अनुमानों के जो उदाहरण दिये है, उनमें से सामान्यदृष्टसाधर्म्यवत् के दृष्टान्त का आशय यह है कि एक में दृष्ट सामान्य धर्म की समानता से अन्य अदृष्ट अनेकों में भी

उस सामान्यधर्म का तथा अनेकों में दृष्ट सामान्य से तदनुरूप एक में सामान्य का निर्णय किया जाता है।

विशेषदृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान में भी यद्यपि सामान्य अंश तो अनुस्यूत रहता ही है, किन्तु इतनी विशेषता है कि पूर्व-दर्शन से प्राप्त संस्कारों से वर्तमान में उपलब्ध उसी पदार्थ को देखकर अनुमान कर लिया जाता है कि यह वही है जिसे मैंने पूर्व में देखा था।

अब अनुकूल विषय की अपेक्षा तीन प्रकारों का वर्णन करते हैं—

४५१. से किं तं तीतकालगहणं ?

तीतकालगहणं उत्तिणाणि वणाणि निप्फण्णसस्सं वा मेइणिं पुण्णाणि य कुंड-सर-णदि-दीहिया-तलागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा— सुवुट्ठी आसि। से तं तीतकालगहणं।

[४५१ प्र.] भगवन् ! अतीतकालग्रहण अनुमान का क्या स्वरूप है ?

[४५१ उ.] आयुष्मन् ! वनों में ऊगी हुई घास, धान्यों से परिपूर्ण पृथ्वी, कुंड, सरोवर, नदी और बड़े-बड़े तालाबों को जल से संपूरित देखकर यह अनुमान करना कि यहाँ अच्छी वृष्टि हुई है। यह अतीतकालग्रहणसाधर्म्यवत्-अनुमान है।

४५२. से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?

पडुप्पण्णकालगहणं साहुं गोयरग्गगयं विच्छड्डियपउरभत्त-पाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा—सुभिक्खे वट्टइ। से तं पडुप्पण्णकालगहणं।

[४५२ प्र.] भगवन् ! प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) कालग्रहण अनुमान का क्या स्वरूप है ?

[४५२ उ.] आयुष्मन् ! गोचरी गये हुए साधु को गृहस्थों से विशेष प्रचुर आहार-पानी प्राप्त करते हुए देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ सुभिक्ष है। यह प्रत्युत्पन्नकालग्रहण अनुमान है।

४५३. से किं तं अणागयकालगहणं ?

अणागयकालगहणं—

अब्भस्स निम्मलत्तं कसिणा य गिरी सविज्जुया मेहा।
थणियं वाउब्भामो संझा रत्ता य णिद्धा य॥ ११८॥

वारुणं वा माहिंदं वा अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा—सुवुट्ठी भविस्सइ। से तं अणागतकालगहणं।

[४५३ प्र.] भगवन् ! अनागतकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[४५३ उ.] आयुष्मन् ! आकाश की निर्मलता, पर्वतों का काला दिखाई देना, बिजली सहित मेघों की गर्जना, अनुकूल पवन और संध्या की गाढ लालिमा। ११८

वारुण—आर्द्रा आदि नक्षत्रों में एवं माहेन्द्र—रोहिणी आदि नक्षत्रों में होने वाले अथवा

किसी अन्य प्रशस्त उत्पात—उल्कापात या दिग्दाहादि को देखकर अनुमान करना कि अच्छी वृष्टि होगी। इसे अनागतकालग्रहणविशेषदृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान कहते है।

विवेचन—यहाँ ग्रहणकाल की अपेक्षा अनुकूल विशेषदृष्ट-दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान का विवेचन किया गया है।

विशेषता का विचार किसी न किसी आधार—निमित्त से किया जाता है। यहाँ काल के निमित्त से अनुकूल विशेषदृष्ट के तीन प्रकार बताये है। यद्यपि काल का कोई भेद नही है, वह अनन्तसमयात्मक है, किन्तु जब घडी, घटा, मिनिट आदि व्यवहार से काल के खड करते है तब स्थूल रूप से भूत, वर्तमान और भविष्य, ऐसा नामकरण करते है। जो ऊपर दिये गये काल-विषयक उदाहरणो से स्पष्ट है।

कालत्रयविषयक अनुमानो की व्याख्या इस प्रकार है—

१ अतीतकाल मे सबन्धित ग्राह्य वस्तु का जिसके द्वारा ज्ञान किया जाता है, उसे अतीत-कालग्रहण-अनुमान कहते है। उसका अनुमानप्रयोग इस प्रकार है—'इह देशे सुवृष्टि आसीत् समुत्पन्नतृणवनसस्यपूर्णमेदनीजलपूर्णकुण्डादिदर्शनात् तद्देशवत्।' इसमे ग्राह्य वस्तु सुवृष्टि है, जिसका अतीतकाल मे होना अनुमान द्वारा ग्रहण किया गया है। यहाँ सुवृष्टि हुई है, यह पक्ष है, तृण, धान्य, जलाशयादि ये उसके कार्य होने मे हेतु और अन्यदेशवत् यह अन्वयदृष्टान्त है। इसी प्रकार ये तीन-तीन (पक्ष, हेतु और दृष्टान्त) सर्वत्र जानना चाहिये।

२ वर्तमानकालसबन्धी वस्तु को ग्रहण करने वाले अनुमान को प्रत्युत्पन्नकालग्रहण-अनुमान कहते है। जैसे—'इस प्रदेश मे सुभिक्ष है' क्योकि साधुओ को प्रचुर भोजनादि की प्राप्ति देखने मे आती है। इसमे सुभिक्ष साध्य है और भोजनादि की प्राप्ति हेतु है।

३ भविष्यत्कालसबन्धी· विषय जिसका ग्राह्य-साध्य हो, उसे अनागतकालग्रहण अनुमान कहते है। यथा—इस देश मे सुवृष्टि होगी क्योकि वृष्टिनिमित्तक आकाश की निर्मलता आदि लक्षण दिख रहे है, उस देश की तरह। इस अनुमानप्रयोग मे सुवृष्टि साध्य है, आकाश की निर्मलता दिखना हेतु और उस देश की तरह दृष्टान्त है।

सुवृष्टि होने के अनुमापक नक्षत्र इस प्रकार है—

वरुण के नक्षत्र—१ पूर्वाषाढा, २ उत्तराभाद्रपद, ३ आश्लेषा, ४ आर्द्रा, ५ मूल, ६ रेवती और ७ शतभिष।

महेन्द्र के नक्षत्र—१ अनुराधा, २ अभिजित, ३ ज्येष्ठा, ४ उत्तराषाढ़ा, ५ धनिष्ठा, ६ रोहिणी और ७ श्रवण।

प्रतिकूलविशेषदृष्ट-साधर्म्यवत्-अनुमान के उदाहरण

४५४. एएसिं चेव विवज्जासे तिविहं गहणं भवति। तं जहा—तीतकालगहणं पडुप्पण्णकाल-गहणं अणागयकालगहणं।

[४५४] इनकी विपरीतता मे भी तीन प्रकार से ग्रहण होता है—अतीतकालग्रहण, प्रत्युत्पन्न-कालग्रहण और अनागतकालग्रहण।

४५५. से किं तं तीतकालगहणं ?

नित्तणाइं वणाइं अनिप्फण्णसस्सं च मेइणिं सुक्काणि य कुंड-सर-णदि-दह-तलागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जति जहा—कुवुट्ठी आसी। से तं तीतकालगहणं।

[४५५ प्र] भगवन् ! अतीतकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[४५५ उ] आयुष्मन् ! तृणरहित वन, अनिष्पन्न धान्ययुक्त भूमि और सूखे कुड, सरोवर, नदी, द्रह और तालाबों को देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ कुवृष्टि हुई है—वृष्टि हुई नही है, यह अतीतकालग्रहण है।

४५६. से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?

पडुप्पण्णकालगहणं साहुं गोयरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा—दुभिक्खं वट्टइ। से तं पडुप्पण्णकालगहणं।

[४५६ प्र] भगवन् ! प्रत्युत्पन्न-वर्तमानकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[४५६ उ] आयुष्मन् ! गोचरी गये हुए साधु को भिक्षा नही मिलते देखकर अनुमान किया जाना कि यहाँ दुर्भिक्ष है। यह प्रत्युत्पन्नकालग्रहण-अनुमान है।

४५७. से किं तं अणागयकालगहणं ?

अणागयकालगहणं अग्गेयं वा वायव्वं वा अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा—कुवुट्ठी भविस्सइ। से तं अणागतकालगहणं। से तं विसेसदिट्ठं। से तं दिट्ठसाहम्मवं। से तं अणुमाणे।

[४५७ प्र] भगवन् ! अनागतकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[४५७ उ] आयुष्मन् ! (जैसे)—आग्नेय मडल के नक्षत्र, वायव्य मडल के नक्षत्र या अन्य कोई उत्पात देखकर अनुमान किया जाना कि कुवृष्टि होगी, ठीक वर्षा नही होगी। यह अनागतकालग्रहण-अनुमान है।

यही विशेषदृष्ट है। यही दृष्टसाधर्म्यवत् है। इस प्रकार से अनुमानप्रमाण का विवेचन जानना चाहिये।

विवेचन—जैसे पूर्व मे अनुकूलता की अपेक्षा विशेषदृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान के कालविषयक तीन उदाहरण दिये है, उसी प्रकार यहाँ प्रतिकूलग्रहण सबधी तीन उदाहरणो का उल्लेख किया है। विपरीत हेतुओ—निमित्तो को देखकर तत्तत्कालभावी ग्राह्य वस्तुओ की सिद्धि का भी अनुमान किया जाता है। जैसे—

१ तृणरहित वनो, सूखे खेतो और सूखे सरोवरो आदि को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि इस देश मे ठीक वर्षा नही हुई। यह अतीतकालग्रहण का अनुमान है।

२. वर्तमानकाल का ग्राहक अनुमान इस प्रकार से जानना चाहिए—यहाँ दुर्भिक्ष है, क्योकि साधुओं को भिक्षा नही मिलती। इसमे भिक्षुओ को भिक्षा प्राप्त नही होते देखकर अनुमान किया कि यहाँ दुर्भिक्ष है।

३. भविष्यत्काल सम्बन्धी अनुमान, यथा—सभी दिशाओं मे धुआं हो रहा है, आकाश मे भी अशुभ उत्पात हो रहे हैं, इत्यादि से यह अनुमान कर लिया जाता है कि यहाँ कुवृष्टि होगी, क्योकि वृष्टि के अभाव के सूचक चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे है । भविष्य मे कुवृष्टिसूचक नक्षत्र इस प्रकार हैं—

आग्नेय मंडल के नक्षत्र—१ विशाखा २ भरणी ३ पुष्य ४ पूर्वाफाल्गुनी ५. पूर्वाभाद्रपदा ६ मघा और ७. कृत्तिका।

वायव्य मंडल के नक्षत्र—१ चित्रा, २ हस्त, ३ अश्वनी, ४ स्वाति, ५ मार्गशीर्ष, ६ पुनर्वसु और ७ उत्तराफाल्गुनी।

इन सबको अनुमान प्रमाण कहने का कारण यह है कि इनमे अनु-लिंगग्रहण और अविनाभावसबन्ध के स्मरण के पश्चात् बोध होता है।

अनुमानप्रयोग के अवयव—प्रासगिक होने से यहाँ अनुमानप्रयोग के अवयवों का कुछ विचार करते है। अनुमानप्रयोग के अवयवो के विषय मे आगमो मे स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा गया है। लेकिन प्राचीन वादशास्त्र को देखने से यह पता चलता है कि प्रारभ मे किसी साध्य की सिद्धि मे अधिकाशत दृष्टान्त की सहायता अधिक ली जाती थी, जो अनुयोगद्वारसूत्रगत अनुमानप्रयोगो के उदाहरणो से स्पष्ट है। परन्तु जब हेतु का स्वरूप व्याप्ति के कारण निश्चित हुआ और हेतु से ही मुख्य रूप से साध्य की सिद्धि मानी जाने लगी तब हेतु और उदाहरण इन दोनो को साध्य के साथ मिलाकर प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण ये तीन अनुमान के अग बन गये। फिर दर्शनान्तरों के शास्त्रो के दूसरे-दूसरे अवयवो का भी समावेश होने से इनकी सख्या दस तक पहुच गई।

आचार्य भद्रबाहु ने दशवैकालिकनिर्युक्ति मे अनुमानप्रयोग के अवयवो की चर्चा की है। यद्यपि सख्या गिनाते हुए उन्होने पाच[1] और दस[2] अवयव होने की बात कही है किन्तु अन्यत्र उन्होने मात्र उदाहरण या हेतु और उदाहरण से भी अर्थसिद्धि होने की सूचना दी है।[3] दस अवयवो को भी उन्होने दो प्रकार से गिनाया है।[4] इस प्रकार भद्रबाहु के मत मे अनुमानवाक्य के दो, तीन, पाच या दस अवयव होते है। अवयव इस प्रकार है—

२. प्रतिज्ञा, उदाहरण,
३ प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण,
५. प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपसहार, निगमन।

१० (क) प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञाविशुद्धि, हेतु, हेतुविशुद्धि, दृष्टान्त, दृष्टान्तविशुद्धि, उपसहार, उपसहारविशुद्धि, निगमन, निगमनविशुद्धि।

---

१ दशवैकालिक निर्युक्ति
२ वही गाथा ५०
३ वही गाथा ४९
४. वही गाथा १३७

१० (ख) प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञाविभक्ति, हेतु, हेतुविभक्ति, विपक्ष, विपक्ष-प्रतिषेध, दृष्टान्त, आशका, आशकाप्रतिषेध, निगमन।

लेकिन अनुमानप्रयोग मे कितने अवयव होने चाहिये—इस विषय मे जैनदर्शन का कोई आग्रह नही है। सर्वत्र यह स्वीकार किया है कि जितने अवयवो से जिज्ञासु को तद्‌विषयक ज्ञान हो जाये उतने ही अवयवो का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार से भावप्रमाण के दूसरे भेद अनुमान की चर्चा करने के बाद अब तीसरे भेद उपमान का वर्णन करते है।

उपमानप्रमाण

४५८. से किं तं ओवम्मे ?

ओवम्मे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—साहम्मोवणीते य वेहम्मोवणीते य।

[४५८ प्र] भगवन्! उपमान प्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४५८ उ] उपमान प्रमाण दो प्रकार का कहा है, जैसे—साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।

विवेचन—यहाँ भेदमुखेन उपमान प्रमाण का वर्णन किया गया है। सदृशता के आधार पर वस्तु को ग्रहण करना उपमान है।

उपमा दो प्रकार से दी जा सकती है—समान—सदृश गुणधर्म वाले तुल्य पदार्थ को देखकर अथवा विसदृश गुणधर्म वाले पदार्थ को देखकर। इसीलिये उपमान प्रमाण के दो भेद बताये है—१ साधर्म्योपनीत और २. वैधर्म्योपनीत। समानता के आधार से जो उपमा दी जाती है उसे साधर्म्योपनीत कहते है तथा दो अथवा अधिक पदार्थों मे जिसके द्वारा विलक्षणता बतलाई जाती है उसे वैधर्म्योपनीत कहते है। यह साधर्म्य और वैधर्म्य किंचित्, प्राय और सर्वत इन प्रकारो द्वारा व्यक्त होता है। इसी अपेक्षा से इनके तीन-तीन अवान्तर भेद हो जाते हैं, जिनका स्पष्टीकरण करते है—

साधर्म्योपनीत उपमान

४५९. से किं तं साहम्मोवणीए ?

साहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते। तं०—किंचिसाहम्मे पायसाहम्मे सव्वसाहम्मे य।

[४५९ प्र] भगवन्! साधर्म्योपनीत-उपमान किसे कहते है।

[४५९ उ] आयुष्मन्! जिन पदार्थो की सदृशत उपमा द्वारा सिद्ध की जाये उसे साधर्म्योपनीत कहते हैं। उसके तीन प्रकार है—१ किंचित्साधर्म्योपनीत, २ प्राय साधर्म्योपनीत और ३. सर्वसाधर्म्योपनीत।

४६०. से किं तं किंचिसाहम्मे ?

किंचिसाहम्मे जहा मंदरो तहा सरिसवो जहा सरिसवो तहा मंदरो, जहा समुद्दो तहा गोप्पयं जहा गोप्पयं तहा समुद्दो, जहा आइच्चो तहा खज्जोतो, जहा खज्जोतो तहा आइच्चो, जहा चंदो तहा कुंदो जहा कुंदो तहा चंदो। से तं किंचिसाहम्मे।

[४६० प्र.] भगवन् ! किंचित्साधर्म्योपनीत किसे कहते है ?

[४६० उ.] आयुष्मन् ! जैसा मदर (मेरु) पर्वत है वैसा ही सर्षप (सरसो) है और जैसा सर्षप है वैसा ही मन्दर है। जैसा समुद्र है, उसी प्रकार गोष्पद—(जल से भरा गाय के खुर का निशान) है और जैसा गोष्पद है, वैसा ही समुद्र है तथा जैसा आदित्य—सूर्य है, वैसा खद्योत—जुगनू है। जैसा खद्योत है, वैसा आदित्य है। जैसा चन्द्रमा है, वैसा कुद पुष्प है, और जैसा कुद है, वैसा चन्द्रमा है। यह किंचित्साधर्म्योपनीत है।

४६१. से किं तं पायसाहम्मे ?

पायसाहम्मे जहा गो तहा गवयो, जहा गवयो तहा गो। से त पायसाहम्मे।

[४६१ प्र.] भगवन् ! प्राय साधर्म्योपनीत किसे कहते है ?

[४६१ उ] आयुष्मन् ! जैसी गाय है वैसा गवय (रोझ) होता है और जैसा गवय है, वैसी गाय है। यह प्राय साधर्म्योपनीत है।

४६२. से किं त सव्वसाहम्मे ?

सव्वसाहम्मे ओवम्मं णत्थि, तहा वि तेणेव तस्स ओवम्म कीरइ, जहा—अरहंतेहिं अरहंत-सरिसं कयं, एव चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं, बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं, वासुदेवेण वासुदेव-सरिसं कयं, साहुणा साहुसरिस कयं। से तं सव्वसाहम्मे। से त साहम्मोवणीए।

[४६२ प्र] सर्वसाधर्म्योपनीत किसे कहते है ?

[४६२ उ.] आयुष्मन् ! सर्वसाधर्म्य मे उपमा नही होती, तथापि उसी से उसको उपमित किया जाता है। वह इस प्रकार—अरिहत ने अरिहत के सदृश, चक्रवर्ती ने चक्रवर्ती के जैसा, बलदेव ने बलदेव के सदृश, वासुदेव ने वासुदेव के समान, साधु ने साधु सदृश किया। यही सर्वसाधर्म्योपनीत है।

यह साधर्म्योपनीत उपमानप्रमाण है।

विवेचन—प्रस्तुत मे उपमानप्रमाण के प्रथम भेद साधर्म्योपनीत के अवान्तर भेदों का वर्णन किया है।

दो भिन्न पदार्थों मे आशिक गुण-धर्मों की समानता देखकर एक को दूसरे की उपमा देना साधर्म्योपनीत उपमान है। यह उपमान एकदेशिक भी हो सकती है—कतिपय वर्ण-गध-रस-स्पर्श की अपेक्षा भी और कुछ उससे भी अधिक एक जैसी रूप तथा अत्यल्प भिन्नता वाली हो सकती है और कुछ ऐसी भी जो सर्वात्मना सदृश हो। इसी अपेक्षा साधर्म्योपनीत के तीन भेद होते है।

किंचित्साधर्म्योपनीत मे कुछ-कुछ समानता को लेकर उपमा दी जाती है। इसके लिए सूत्रकार ने जो उदाहरण दिये है उनमे सर्षप और मेरुपर्वत के बीच आकार—सस्थान आदि की अपेक्षा भेद हैं, तथापि दोनो मूर्तिमान है और रूप-रस-गध-स्पर्शवान होने से पौद्गलिक है। इसी प्रकार से सूर्य और खद्योत मे मात्र प्रकाशकत्व की अपेक्षा, समुद्र एव गोष्पद मे जलवत्ता तथा चन्द्र तथा कुद

मे शुक्लता की अपेक्षा समानता है। अन्यथा उन सबमे महान् अतर स्पष्ट है। इसीलिये ऐसी उपमा किंचित्साधर्म्योपनीत कहलाती है।

किंचित्साधर्म्योपनीत से प्राय साधर्म्योपनीत उपमा का क्षेत्र व्यापक है। इसमे उपमेय और उपमान पदार्थगत समानता अधिक होती है और असमानता अल्प—नगण्य जैसी। जिससे श्रोता उपमेय वस्तु को तत्काल जान लेना है। किंचित्साधर्म्योपनीत वस्तु का ज्ञान करना तत्काल सम्भव नही है। इसको समझने के लिये अधिक स्पष्टीकरण अपेक्षित होता है। यही दोनो मे अन्तर है।

प्राय साधर्म्योपनीत के लिये गो और गवय का उदाहरण दिया है। इसमे गो सास्नादि युक्त है और गवय (नीलगाय) वर्तुलाकार कठ वाला है। लेकिन खुर, ककुद, सीग आदि मे समानता है। इसीलिये यह प्राय साधर्म्योपनीत का उदाहरण है।

सर्वसाधर्म्योपनीत मे सर्व प्रकारो से समानता बताने के लिये उसी से उसको उपमित किया जाता है। अतएव कदाचित् यह कहा जाये कि उपमा तो दो पृथक् पदार्थों मे दी जाती है। सर्व प्रकारो से समानता तो किसी मे भी किसी के साथ घटित नही होती है। यदि इस प्रकार से समानता घटित होने लगे तो फिर दोनो मे एकरूपता होने से उपमान का यह तीसरा भेद नही बन सकेगा। तो इसका उत्तर यह है—

यह सत्य है कि दो वस्तुओ मे सर्वप्रकार से समानता नही मिलती है, फिर भी सर्वप्रकार से समानता का तात्पर्य यह है कि उस जैसा कार्य अन्य कोई नही कर सकता है। इसीलिये अरिहत आदि के उदाहरण दिये है कि तीर्थ का स्थापन करना इत्यादि कार्य अरिहत करते है, उन्हे अन्य कोई नही करता है। लोकव्यवहार मे भी देखा जाता है कि किसी के किये हुए अद्भुत कार्य के लिये कहा जाता है—इस कार्य को आप ही कर सकते है अथवा आपके तुल्य जो होगा, वही कर सकता है, अन्य नही। इसी दृष्टि से सर्वसाधर्म्योपनीत को उपमानप्रमाण का पृथक् भेद माना है।[1]

अब उपमानप्रमाण के दूसरे भेद वैधर्म्योपनीत का कथन करते है—

वैधर्म्योपनीत उपमानप्रमाण

४६३. से किं त वेहम्मोवणीए ?

वेहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—किंचिवेहम्मे पायवेहम्मे सव्ववेहम्मे।

[४६३ प्र] भगवन्! वैधर्म्योपनीत का तात्पर्य क्या है ?

[४६३ उ] आयुष्मन्! वैधर्म्योपनीत के तीन प्रकार है, यथा—१ किंचित्वैधर्म्योपनीत, २ प्राय वैधर्म्योपनीत और ३ सर्ववैधर्म्योपनीत।

४६४. से किं त किंचिवेहम्मे ?

किंचिवेहम्मे जहा सामलेरो न तहा बाहुलेरो, जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो। से तं किंचिवेहम्मे।

---

१ सर्वसाधर्म्योपनीत के लिये यह सस्कृत लोकोक्ति प्रसिद्ध है—
गगन गगनाकार सागर सागरोपम।
रामरावणयोर्युद्ध रामरावणोरिव॥

[४६४ प्र] भगवन् ! किंचित्वैधर्म्योपनीत का क्या स्वरूप है ?

[४६४ उ.] आयुष्मन् ! किसी धर्मविशेष की विलक्षणता प्रकट करने को किंचित्वैधर्म्योपनीत कहते हैं। वह इस प्रकार—जैसा शबला गाय (चितकबरी गाय) का बछडा होता है वैसा बहुला गाय (एक रग वाली गाय) का बछडा नही और जैसा बहुला गाय का बछडा वैसा शबला गाय का नही होता है। यह किंचित्वैधर्म्योपनीत का स्वरूप जानना चाहिये।

४६५. से किं तं पायवेहम्मे ?

पायवेहम्मे जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो। से तं पायवेहम्मे।

[४६५ प्र] भगवन् ! प्राय वैधर्म्योपनीत किसे कहते है ?

[४६५ उ] आयुष्मन् ! अधिकाश रूप मे अनेक अवयवगत विसदृशता प्रकट करने को प्राय वैधर्म्योपनीत कहते है। यथा—जैसा वायस (कौआ) है वैसा पायस (खीर) नही होता और जैसा पायस होता है वैसा वायस नही। यही प्राय वैधर्म्योपनीत है।

४६६. से किं तं सव्ववेहम्मे ?

सव्ववेहम्मे नत्थि, तहा वि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा—णीएण णीयसरिसं कयं, दासेण दाससरिसं कयं, काकेण काकसरिसं कयं, साणेणं साणसरिसं कयं, पाणेण पाणसरिसं कयं। से तं सव्ववेहम्मे। से तं वेहम्मोवणीए। से तं ओवम्मे।

[४६६ प्र] भगवन् ! सर्ववैधर्म्योपनीत का क्या स्वरूप है ?

[४६६ उ] आयुष्मन् ! जिसमे किसी भी प्रकार की सजातीयता न हो उसे सर्ववैधर्म्योपनीत कहते हैं। यद्यपि सर्ववैधर्म्य मे उपमा नहीं होती है, तथापि उसी की उपमा उसी को दी जाती है, जैसे—नीच ने नीच के समान, दास ने दास के सदृश, कौए ने कौए जैसा, श्वान (कुत्ता) ने श्वान जैसा और चाडाल ने चाडाल के सदृश किया। यही सर्ववैधर्म्योपनीत है।

यही वैधर्म्योपनीत उपमानप्रमाण का आशय है। यह उपमानप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तरो मे उपमानप्रमाण के दूसरे भेद वैधर्म्योपनीत का विचार किया है। यह वैधर्म्योपनीत विलक्षणता का बोध कराता है और उसके भी तीन भेद है।

किंचित्वैधर्म्योपनीत मे सामान्य धर्म की अपेक्षा भेद नही है। गोगत धर्मों की अपेक्षा दोनो मे तुल्यता है, लेकिन माता पृथक्-पृथक् प्रकार की होने से वर्णभेद अवश्य है। इसी कारण किंचित् विलक्षणता प्रकट की गई है।

प्राय वैधर्म्योपनीत मे अनेक अवयवगत विसदृशता पर ध्यान रखा जाता है। वायस और पायस के नाम मे दो अक्षरो की समानता है, किन्तु वायस चेतन है और पायस जड पदार्थ है। इसलिये दोनो मे साम्य नही हो सकता है। इस विधर्मता के कारण प्राय वैधर्म्यता कही गई है।

यद्यपि सर्ववैधर्म्योपनीत मे भी सर्वसाधर्म्योपनीत की तरह उसकी उपमा उसी को दी जाती है, फिर भी उसे इसलिये पृथक् माना है कि प्राय नीच भी जब गुरुघात आदि महापाप नही करता

तो फिर अनीच करेगा ही कैसे ? अत सकल जगत् के विरुद्ध कर्म में प्रवृत्त होने की विवक्षा से सर्ववैधर्म्योपनीतता बताने के लिये सर्ववैधर्म्योपनीत उपमानप्रमाण का निर्देश किया है।

अब क्रमप्राप्त आगमप्रमाण का विचार करते है।

आगमप्रमाणनिरूपण

४६७. से किं त आगमे ?

आगमे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—लोइए य लोगुत्तरिए य।

[४६७ प्र] भगवन् ! आगमप्रमाण का स्वरूप क्या है ?

[४६७ उ] आयुष्मन् ! आगम दो प्रकार का है। यथा—१ लौकिक २. लोकोत्तर।

४६८. से किं त लोइए ?

लोइए अण्णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीएहिं सच्छंदबुद्धिमतिविगप्पियं। तं जहा—भारहं रामायणं जाव चत्तारि य वेदा संगोवंगा। से तं लोइए आगमे।

[४६८ प्र] भगवन् ! लौकिक आगम किसे कहते है ?

[४६८ उ] आयुष्मन् ! जिसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जनो ने अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचा हो, उसे लौकिक आगम कहते है। यथा—महाभारत, रामायण यावत् सागोपाग चार वेद। ये सब लौकिक आगम है।

४६९. से किं तं लोगुत्तरिए ?

लोगुत्तरिए जं इमं अरहंतेहिं भगवतेहिं उप्पण्णणाण-दसणधरेहिं तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागय-जाणएहिं तेलोक्कवहिय-महिय-पूइएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं। त जहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ। से त लोगुत्तरिए आगमे।

[४६९ प्र] भगवन् ! लोकोत्तर आगम का क्या स्वरूप है ?

[४६९ उ] आयुष्मन् ! उत्पन्नज्ञान-दर्शन के धारक, अतीत, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) और अनागत के ज्ञाता त्रिलोकवर्ती जीवो द्वारा सहर्ष वदित, पूजित सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अरिहत भगवन्तो द्वारा प्रणीत आचाराग यावत् दृष्टिवाद पर्यन्त द्वादशाग रूप गणिपिटक लोकोत्तरिक आगम है।

४७०. अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। त जहा—सुत्तागमे य अत्थागमे य तदुभयागमे य।

अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। तं०—अत्तागमे अणंतरागमे परपरागमे य।

तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे, गणहराण सुत्तस्स अत्तागमे अत्थस्स अणंतरागमे, गणहर-सीसाण सुत्तस्स अणंतरागमे अत्थस्स परपरागमे, तेण पर सुत्तस्स वि अत्थस्स वि णो अत्तागमे णो अणंतरागमे परंपरागमे। से तं लोगुत्तरिए। से तं आगमे। से तं णाणगुणप्पमाणे।

[४७०] अथवा (प्रकारान्तर से लोकोत्तरिक) आगम तीन प्रकार का कहा है। जैसे—१ सूत्रागम, २ अर्थागम और ३ तदुभयागम।

अथवा (लोकोत्तरिक) आगम तीन प्रकार का है। यथा—१. आत्मागम, २. अनन्तरागम, और ३. परम्परागम।

अर्थागम तीर्थंकरो के लिये आत्मागम है। सूत्र का ज्ञान गणधरों के लिये आत्मागम और अर्थ का ज्ञान अनन्तरागम रूप है। गणधरो के शिष्यो के लिये सूत्रज्ञान अनन्तरागम और अर्थ का ज्ञान परम्परागम है।

तत्पश्चात् सूत्र और अर्थ रूप आगम आत्मागम भी नही है, अनन्तरागम भी नही है, किन्तु परम्परागम है। इस प्रकार से लोकोत्तर आगम का स्वरूप जानना चाहिये।

यही आगम और ज्ञानगुणप्रमाण का वर्णन है।

विवेचन—प्रस्तुत प्रश्नोत्तरो मे ज्ञानगुणप्रमाण के अन्तिम भेद आगम का वर्णन करके अन्त मे उसकी समाप्ति का उल्लेख किया है।

प्राचीनकाल मे जिज्ञासु श्रद्धाशील व्यक्ति धर्मशास्त्र के रूप मे माने जाने वाले अपने-अपने साहित्य को कठोपकठ प्राप्त करके स्मरण रखते थे। इसीलिये उन धर्मशास्त्रो की श्रुत यह सज्ञा है। जैन परम्परा के शास्त्र भी प्राचीनकाल मे श्रुत या सम्यक् श्रुत के नाम से प्रसिद्ध थे। श्रुत शब्द का अर्थ है सुना हुआ। लेकिन इस शब्द से शास्त्रो का विशिष्ट माहात्म्य प्रकट नही हो सकने से आगम शब्द प्रयुक्त किया जाने लगा।

'आगम' शब्द की व्याख्या—ग्रन्थो मे निरुक्तिमूलक से लेकर कर्ता की विशेषताओ आदि का बोध कराते हुए की गई आगम शब्द की व्याख्याओ का साराश इस प्रकार है—

(गुरुपारम्पर्येण) आगच्छतीत्यगम —गुरुपरम्परा से जो चला आ रहा है उसे आगम कहते है। इस निरुक्ति से यह स्पष्ट हुआ कि आगम शब्द कठोपकठ श्रुतपरम्परा का वाचक है तथा श्रुत और आगम शब्द एकार्थवाची है।

वर्ण्य विषय का परिज्ञान कराने की दृष्टि से आगम शब्द की लाक्षणिक व्याख्या यह है—**आ समन्ताद् गम्यन्ते—ज्ञायन्ते जीवादयः पदार्था अनेनेति आगमः**—जीवादि पदार्थ जिसके द्वारा भली-भाति जाने जाये वह आगम है। अर्थात् जिसके द्वारा अनन्त धर्मो से विशिष्ट जीव-अजीव आदि पदार्थ जाने जाते है ऐसी आज्ञा आगम है। अथवा वीतराग सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये षड् द्रव्य और सप्त तत्त्व आदि का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा व्रतादि का अनुष्ठान रूप चारित्र इस प्रकार से रत्नत्रय का स्वरूप जिसमें प्रतिपादित किया गया है, उसको आगम या शास्त्र कहते है।

आगम का कर्ता कौन हो सकता है? इसको स्पष्ट करते हुए आगम की व्याख्या की है—जिसके सर्वदोष प्रक्षीण हो गये है, ऐसे प्रत्यक्षज्ञानियो द्वारा प्रणीत शास्त्र आगम शब्द के वाच्य हैं। अर्थात् जन्म, जरा आदि अठारह दोषो का नाश हो जाने से जो कदापि असत्य वचन नही बोलता ऐसे आप्त के वचन को आगम कहते हैं और इस आप्तोक्त आगम की प्रामाणिकता इसलिये है कि न्यूनाधिकता एव विपरीतता के बिना यथा-तथ्य रूप से वस्तु-स्वरूप का उसमे प्रतिपादन किया जाता है।

आगम के भेद—प्रथम आगम के दो भेद किये हैं—लौकिक और लोकोत्तर। इनका भावश्रुत के वर्णन के प्रसग मे विचार किया जा चुका है। अतएव यहाँ प्रकारान्तर से किये गये आगम के तीन-तीन भेदों का विचार करते है। वे इस प्रकार है—

प्रथम प्रकार १ अर्थागम, २ सूत्रागम, ३. तदुभयागम। द्वितीय प्रकार—१ आत्मागम, २ अनन्तरागम, ३ परम्परागम।

जब अर्थ (भाव) और सूत्र की अपेक्षा आगम का विचार किया जाता है, तब अर्थागम आदि उक्त तीन भेद होते है। क्योकि तीर्थंकर अर्थ का उपदेश करते है और गणधर उसके आधार से सूत्र की रचना करते है।[1] अत इस प्रकार अर्थागम और सूत्रागम यह दो भेद हुए। तीसरा भेद इन दोनो का सम्मिलित रूप है।

दूसरी अपेक्षा से उक्त तीनो भेदो का नामकरण किया है—आत्मागम आदि रूप मे। तीर्थंकर अर्थोपदेष्टा है और गणधर उस अर्थ को सूत्रबद्ध करते है। अतएव तीर्थंकर के लिये अर्थरूप आगम और गणधरो के लिये सूत्ररूप आगम आत्मागम है। अर्थ का मूल उपदेश तीर्थंकर का होने से अर्थागम गणधर के लिये आत्मागम नही किन्तु गणधरो को लक्ष्य करके अर्थ का उपदेश दिया है इसलिये अर्थागम गणधरो के लिये अनन्तरागम और गणधरशिष्यो के लिये परम्परागम है। क्योकि वह तीर्थकर से गणधरो को प्राप्त हुआ और गणधरो से उनके शिष्यो को। सूत्ररूप आगम गणधरशिष्यो के लिये अनन्तरागम है, क्योकि गणधरो से सूत्र का उपदेश साक्षात् उनको मिला है और गणधर-शिष्यो के बाद होने वाले आचार्यों के लिये अर्थ और सूत्र उभय रूप आगम परम्परागम ही है।

आगम के उपर्युक्त सभी प्रकार विशिष्ट शब्दरूप है और विशिष्ट शब्दो की उत्पत्ति पुरुष के ताल्वादि के व्यापार द्वारा होने से पौरुषेय-पुरुषकृत है, अपौरुषेय नही। यह सकेत करने के लिये सूत्र मे 'पणीअ-प्रणीत' शब्द का प्रयोग किया है।

यदि कहा जाये कि अनादि—अनिधन होने से शब्द का कभी विनाश नही होता, किन्तु उस पर आवरण आ जाता है। ताल्वादि का व्यापार उस आवरण को हटाकर अभिव्यक्त कर देता है, उत्पन्न नहीं करता है। सर्वदा रहने वाले की अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नही। किन्तु यह कथन अयुक्त है। क्योकि एकान्तत ऐसा माना जाये तो फिर ससार के जितने भी वचन है, वे सब अपौरुषेय हो जायंगे, तब अमुक आगम प्रमाण है और अमुक आगम अप्रमाण, इसकी व्यवस्था नही बन सकेगी।

इसके अतिरिक्त शब्द मूर्तिक है अर्थात् भाषावर्गणा के पुद्गलो से निष्पन्न होने के कारण मूर्त है। आकाश की तरह अमूर्त नही है। शब्दो की पौद्गलिकता असिद्ध भी नही है। क्योकि नगाडे आदिजन्य महाघोष से कान की झिल्ली तक फट जाती है तथा भीत आदि के कारण अभिघात भी होता है और यह अभिघात आदि होना प्रत्यक्षसिद्ध है, अत. शब्द पौद्गलिक है।

साराश यह है कि शब्द एकान्तत अपौरुषेय नही है कथचित् पौरुषेय और कथचित् अपौरुषेय है। अर्थात् पौद्गलिक भाषावर्गणाओ का परिणाम होने से अपौरुषेय तथा पुरुष के ताल्वादिक के व्यापार से जन्य होने से पौरुषेय है।

---

१. अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गथति गणहरा निउण।

इस प्रकार से ज्ञानगुणप्रमाण का निरूपण करने के बाद अब भावप्रमाण के दूसरे भेद दर्शनगुणप्रमाण का वर्णन करते हैं।

दर्शनगुणप्रमाण

४७१. से किं तं दंसणगुणप्पमाणे ?

दंसणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—चक्खुदंसणगुणप्पमाणे अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे ओहिदंसणगुणप्पमाणे केवलदंसणगुणप्पमाणे य ।

चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घड-पड-कड-रधादिएसु दव्वेसु,

अचक्खुदंसणं अचक्खुदसणिस्स आयभावे,

ओहिदंसणं ओहिदंसणिस्स सव्वरूविदव्वेहिं न पुण सव्वपज्जवेहिं,

केवलदंसण केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेहिं सव्वपज्जवेहि य । से तं दंसणगुणप्पमाणे ।

[४७१ प्र] भगवन् ! दर्शनगुणप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४७१ उ] आयुष्मन् ! दर्शनगुणप्रमाण चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—चक्षुदर्शनगुणप्रमाण, अचक्षुदर्शनगुणप्रमाण, अवधिदर्शनगुणप्रमाण और केवलदर्शनगुणप्रमाण।

चक्षुदर्शनी का चक्षुदर्शन घट, पट, कट, रथ आदि द्रव्यो मे होता है।

अचक्षुदर्शनी का अचक्षुदर्शन आत्मभाव मे होना है अर्थात् घटादि पदार्थों के साथ सश्लेष—सयोग होने पर होना है।

अवधिदर्शनी का अवधिदर्शन सभी रूपी द्रव्यो मे होता है, किन्तु सभी पर्यायो मे नही होता है।

केवलदर्शनी का केवलदर्शन सर्व द्रव्यो और सर्व पर्यायो मे होता है। यही दर्शनगुणप्रमाण है।

विवेचन—जीव मे अनन्त गुण है। उनमे से ज्ञानगुण का वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है। प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेपात्मक है। समान रूप से सभी द्रव्यो मे पाये जाने वाले गुणधर्मों को मामान्य और असाधारण धर्मों को विशेष धर्म कहते है। ये दोनो प्रकार के धर्म प्रत्येक द्रव्य मे हैं और इन दोनो को जानने-देखने वाले गुण दर्शन और ज्ञान हैं। ज्ञान द्वारा द्रव्यगत विशेष धर्मों और दर्शन द्वारा सामान्य धर्मों का परिज्ञान किया जाता है। जैसे ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम आदि होने से ज्ञान द्वारा पदार्थों का विशेष रूप मे पृथक्-पृथक् विकल्प, नाम, सज्ञापूर्वक ग्रहण होता है वैसे ही दर्शनावरणकर्म का क्षयोपशम आदि होने से पदार्थों का जो सामान्य ग्रहण होता है, उसे दर्शन कहते है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई किसी पदार्थ को देखता है और जब तक वह देखने वाला विकल्प न करे तब तक जो सत्तामात्र का ग्रहण है, उसे दर्शन और जब यह शुक्ल है, यह कृष्ण है इत्यादि रूप से विकल्प उत्पन्न होता है तब उसको ज्ञान कहते है। दर्शन मे सामान्य की मुख्यता है और विशेष गौण, जबकि ज्ञान मे सामान्य गौण और विशेष मुख्य होता है।

दर्शन यद्यपि सामान्य को विषय करता है परन्तु चक्षुदर्शन के उदाहरणो मे घटादि विशेषो का उल्लेख यह सकेत करने के लिये किया गया है कि सामान्य और विशेष मे कथचित् अभेद होने

से वह एकान्तत विशेषव्यतिरिक्त सामान्य को ग्रहण नही करता है, क्योकि विशेषरहित सामान्य खरविषाण जैसा होता ही नही । इसलिये विशेषो का सामान्य ग्रहण करना दर्शन कहा है ।[1]

दर्शन भी ज्ञान की तरह आत्मा का गुण है । इसीलिये प्रमाणविचार के प्रसग मे इसका निरूपण किया है ।

दर्शन के भेद और लक्षण—दर्शनगुणप्रमाण के चार भेदो के लक्षण इस प्रकार है—

१ भावचक्षुरिन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम एव चक्षु रूप द्रव्येन्द्रिय के अनुपघात से चक्षुदर्शनलब्धि वाले जीव को घट आदि पदार्थों का चक्षु से सामान्यावलोकन होना चक्षुदर्शन है । चक्षुदर्शनसम्पन्न जीव तदावरणकर्म, के क्षयोपशम एव चक्षुरिन्द्रिय के अवलबन से मूर्त द्रव्य का विकल रूप से (एक देश से) सामान्यत अवबोध करता है ।

२ चक्षु के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियो एव मन से होने वाले पदार्थो के सामान्य बोध को अचक्षुदर्शन कहते हैं । यह अचक्षुदर्शन भाव-अचक्षुरिन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से और द्रव्येन्द्रियो के अनुपघात से अचक्षुदर्शनलब्धिसपन्न जीव के घटादि पदार्थों का सश्लेष रूप सबन्ध होने पर होता है । चक्षुरिन्द्रिय और मन अप्राप्यकारी है । अर्थात् ये दोनो पदार्थो के साथ सश्लिष्ट होकर पदार्थों का दर्शन नही करते है । वे उनसे पृथक् रहकर ही अपने विषयो को जानते है । इसी बात का सकेत करने के लिये अचक्षुदर्शन के प्रसग मे सूत्रकार ने 'आयभावे'—आत्मभाव पद दिया है । चक्षु और मन के सिवाय शेष श्रोत्रादिक इन्द्रिया प्राप्यकारी है, अर्थात् पदार्थ के साथ सश्लिष्ट होकर ही अपने विषय का अवबोध करती है ।[2]

यद्यपि चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन से सामान्यत विकल रूप से पदार्थ का बोध होता है, तथापि दोनो मे यह अतर है कि चक्षुदर्शन का विषय मूर्तद्रव्य है एव अचक्षुदर्शन के विषय मूर्त और अमूर्त दोनो प्रकार के द्रव्य है ।

३. अवधिदर्शनावरणकर्म के क्षयोपशम मे जो समस्त रूपी पदार्थो का अवधिदर्शनलब्धि-सपन्न जीव को सामान्यावलोकन होता है, उसे अवधिदर्शन कहते है । अर्थात् परमाणु से लेकर सर्व-महान् अतिम स्कन्ध तक के मूर्त द्रव्य को जो प्रत्यक्ष देख सकता है, वह अवधिदर्शन है ।

अवधिदर्शन मूर्त द्रव्य की सर्व पर्यायो मे नही होता है किन्तु विकल रूप से—देशत सामान्य अवबोधन कराता है । इसीलिये सूत्र मे पद दिया है—

'सव्वरूविदव्वेहि न पुण सव्वपज्जवेहिं ।' क्योकि अवधिदर्शन की विषयभूत पर्याये उत्कृष्ट एक पदार्थ की सख्यात अथवा असख्यात और जघन्य रूप मे रूप, रस, गध और स्पर्श ये चार बताई है ।[3]

---

१ निर्विशेष हि सामान्य भवेत् खरविषाणवत् ।

२ पुट्ठ सुणेइ सद्द रूव पुण पासई अपुट्ठ तु । —अनुयोगवृत्ति, पृ. २२०

३ दव्वाओ असखेज्जे सखेज्जे आवि पज्जवे लहइ ।
दो पज्जवे दुगुणिए लहइ य एगाउ दव्वाओ ॥ —अनु. मलधारीया वृत्ति पृ २३०

४. समस्त रूपी और अरूपी पदार्थों को सामान्य रूप से जानने वाले परिपूर्ण दर्शन को **केवलदर्शन** कहते हैं। यह केवलदर्शनावरणकर्म के क्षय से आविर्भूत लब्धि से सपन्न जीव को मूर्त और अमूर्त समस्त द्रव्यो और उनकी समस्त पर्यायो मे होता है।

अवधिदर्शन की तरह मन पर्यायदर्शन को पृथक् न मानने का कारण यह है कि जिस प्रकार मन पर्यायज्ञानी भूत और भविष्य को जानता तो है पर देखता नही तथा वर्तमान मे भी मन के विषय को विशेषाकार से ही जानता है। अत सामान्यावलोकनपूर्वक प्रवृति न होने से मन पर्याय-दर्शन नही माना है। यह दर्शनगुणप्रमाण की वक्तव्यता का साराश है।

चारित्रगुणप्रमाण

४७२. से किं त चरित्तगुणप्पमाणे ?

चरित्तगुणप्पमाणे पचविहे पण्णत्ते। त जहा—सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे छेदोवट्ठावणिय-चरित्तगुणप्पमाणे परिहारविसुद्धियचरित्तगुणप्पमाणे सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे अहक्खायचरित्त-गुणप्पमाणे।

सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—इत्तरिए य आवकहिए य।

छेदोवट्ठावणियचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—सातियारे य निरतियारे य।

परिहारविसुद्धियचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—णिव्विसमाणए य णिव्विट्ठ-काइए य।

सुहुमसपरायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—संकिलिस्समाणयं च विसुज्झ-माणयं च।

अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—पडिवाई य अपडिवाई य-छउमत्थे य केवलिए य। से तं चरित्तगुणप्पमाणे। से तं जीवगुणप्पमाणे। से तं गुणप्पमाणे।

[४७२ प्र] भगवन्! चारित्रगुणप्रमाण किसे कहते हैं?

[४७२ उ] आयुष्मन्! चरित्रगुणप्रमाण के पाच भेद है। वे इस प्रकार—१ सामायिक-चारित्रगुणप्रमाण, २ छेदोपस्थापनीयचारित्रगुणप्रमाण, ३ परिहारविशुद्धिचारित्रगुणप्रमाण, ४ सूक्ष्म-सपरायचारित्रगुणप्रमाण, ५ यथाख्यातचारित्रगुणप्रमाण। इनमे से—

सामायिकचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है—१ इत्वरिक और २ यावत्कथिक।

छेदोपस्थापनीयचारित्रगुणप्रमाण के दो भेद है, यथा—१ सातिचार और २ निरतिचार।

परिहारविशुद्धिकचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का है—निर्विश्यमानक, २ निर्विष्टकायिक।

सूक्ष्मसपरायचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है—१ सक्लिश्यमानक और २ विशुद्धयमानक।

यथाख्यातचारित्रगुणप्रमाण के दो भेद है। वे इस प्रकार—१ प्रतिपाती और २ अप्रतिपाती। अथवा १ छाद्मस्थिक और २ कैवलिक।

इस प्रकार से चारित्रगुणप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये। इसका वर्णन करने पर जीव गुणप्रमाण तथा गुणप्रमाण का कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में भेदो—प्रकारो के माध्यम से चारित्रगुणप्रमाण का निरूपण किया है। ज्ञान, दर्शन, सुख आदि की तरह चारित्र भी जीव का स्वभाव—धर्म है। क्योकि स्वरूप मे रमण करना, स्वभाव मे प्रवृत्ति करना चारित्र है। यह सर्वसावद्ययोगविरति रूप है।

चारित्र के भेद—ससार की कारणभूत बाह्य और अतरग क्रियाओ से निवृत्ति रूप होने से सामान्यापेक्षया चारित्र एक ही है। चारित्रमोहनीय के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से होने वाली विशुद्धि की दृष्टि से भी चारित्र एक है। किन्तु जब विभिन्न दृष्टिकोणो से चारित्र का विचार करते हैं तो उसके विभिन्न प्रकार हो जाते है। जैसे—बाह्य व आभ्यन्तर निवृत्ति अथवा व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा अथवा प्राणीसयम व इन्द्रियसयम की अपेक्षा वह दो प्रकार का है। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का है। छद्मस्थो का सराग और वीतराग चारित्र तथा सर्वज्ञो का सयोग और अयोग चारित्र, अथवा स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यातचारित्र के भेद से चार प्रकार का है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-सपराय और यथाख्यात के भेद से पाच प्रकार का है। इसी तरह विविध निवृत्ति रूप परिणामो की दृष्टि से सख्यात, असख्यात और अनन्त विकल्प-भेद हो सकते है। परन्तु यहाँ अति सक्षेप और अति विस्तार से भेदो को न बताकर पाच भेद बतलाये हैं। जिनमे सभी अपेक्षाओ से किये जाने वाले प्रकारो का अन्तर्भाव हो जाता है।

सामायिकचारित्र—सम् उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक अय धातु से स्वार्थ मे इक् प्रत्यय लगाने से सामायिक शब्द निष्पन्न होता है। सम् अर्थात् एकत्वपने से 'आय' अर्थात् आगमन। अर्थात् परद्रव्यो से निवृत्त होकर उपयोग की आत्मा मे प्रवृत्ति होना सामायिक है। अथवा 'सम्' का अर्थ है राग-द्वेष रहित मध्यस्थ आत्मा। उसमे 'आय' अर्थात् उपयोग की प्रवृत्ति समाय है। यह समाय ही जिसका प्रयोजन है, उसे सामायिक कहते हैं। अथवा सम का अर्थ है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र, इनके आय—लाभ अथवा प्राप्ति को समाय कहते है। अथवा 'समाय' शब्द साधु की समस्त क्रियाओ का उपलक्षण है। क्योकि साधु की समस्त क्रियाये राग-द्वेष से रहित होती है। इस 'समाय' से जो निष्पन्न हो, सपन्न हो, उसे सामायिक कहते है। अथवा समाय मे होने वाला सामायिक है। अथवा समाय ही सामायिक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सर्वसावद्य कार्यों से निवृत्ति, विरति। महाव्रतधारी साधु-साध्वियो के चारित्र को सामायिकचारित्र कहा गया है। क्योकि महाव्रतो को अगीकार करते समय समस्त सावद्य कार्यों—योगो से निवृत्ति रूप सामायिकचारित्र ग्रहण किया जाता है।

यद्यपि सामायिकचारित्र मे छेदोपस्थापना आदि उत्तरवर्ती समस्त चारित्रो का अन्तर्भाव हो जाता है, तथापि उन चारित्रो से सामायिकचारित्र मे उत्तरोत्तर विशुद्धि और विशेषता आने के कारण उनका पृथक् निर्देश किया है।

सामायिकचारित्र के दो भेद है—१ इत्वरिक और यावत्कथिक।[1] इत्वरिक का अर्थ है—

१ दिगम्बर साहित्य मे नियतकालिक और अनियतकालिक शब्दो का प्रयोग हुआ है, किन्तु आशय मे अतर नही है।

अल्पकालिक और यावत्कथिक यानी आजीवन (जीवन भर, यावज्जीवन के लिये ग्रहण किया जाने वाला।) भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ मे महाव्रतो का आरोपण नही किया गया हो तब तक शैक्ष (नवदीक्षित) का चारित्र इत्वरिक सामायिकचारित्र है। इसको धारण करने वाले बाद में प्रतिक्रमण सहित अहिसा, सत्य आदि पाच महाव्रत अगीकार करते है तथा इसके स्वामी स्थितकल्पी होते है एव कालमर्यादा उपस्थापन पर्यन्त (बडी दीक्षा लेने तक) मानी जाती है।

यावत्कथिक सामायिकचारित्र भरत, ऐरवत क्षेत्रो मे मध्य के बाईस तीर्थकरो के साधुओ मे और महाविदेह के तीर्थकरो के साधुओ मे होता है। क्योकि उनकी उपस्थापना नही होती, अर्थात् उन्हे महाव्रतारोपण के लिये दूसरी बार दीक्षा नही दी जाती है। इस सयम को धारण करने वालो के महाव्रत चार और कल्प स्थितास्थित होता है।[1]

छेदोपस्थापनिकचारित्र—जिस चारित्र मे पूर्व पर्याय का छेद और पुन महाव्रतो की उपस्थापना की जाती है, वह छेदोपस्थापनिकचारित्र है।

यह छेदोपस्थापनिकचारित्र सातिचार और निरतिचार के भेद से दो प्रकार का है। सातिचार छेदोपस्थापनिकचारित्र मूलगुणो (महाव्रतो) मे से किसी का विघात करने वाले साधु को पुन महाव्रतोच्चारपूर्वक दिया जाना है। निरतिचार छेदोपस्थापनिकचारित्र इत्वरिक सामायिक वाले शैक्ष (नवदीक्षित) बडी दीक्षा के रूप मे ग्रहण करते है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ मे जाने पर अगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के केशी आदि श्रमण जब भगवान् महावीर के तीर्थ मे सम्मिलित हुए थे तब पुनर्दीक्षा के रूप मे इसी सयम को ग्रहण किया था। यह छेदोपस्थापनिक-चारित्र भरत और ऐरावत क्षेत्र मे प्रथम और अतिम तीर्थकर के समय मे ही होता है।

सामायिक मे सपूर्ण व्रतो को सामान्य की अपेक्षा एक मानकर एक यम रूप मे ग्रहण किया जाता है और छेदोपस्थापनिकचारित्र मे उसी एक यम—व्रत को अहिंसामहाव्रत आदि पाच अथवा अनेक प्रकार के भेद करके ग्रहण किया जाता है। किन्तु इन दोनो मे अनुष्ठानकृत कोई विशेषता नही है।

परिहारविशुद्धिचारित्र—परिहार का अर्थ है तपोविशेष और उस तपोविशेष से जिस चारित्र मे विशुद्धि प्राप्त की जाती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते है। इसके दो भेद है—१. निर्विश्यमानक, २ निर्विष्टकायिक।

जिस चारित्र मे साधक प्रविष्ट होकर तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हो, उसे निर्विश्यमानक परिहारविशुद्धिचारित्र और जिस चारित्र मे साधक तपोविधि के अनुसार तपाराधना कर चुके हैं, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिक परिहारविशुद्धिचारित्र है। निर्विश्यमानक तपाराधना करते है और निर्विष्टकायिक उन तपाराधको की सेवा करते है। परिहारविशुद्धि-तपाराधना की सक्षेप मे विधि इस प्रकार है—

---

१. आचेलक्य, औद्देशिक, शय्यातर पिंड, राजपिंड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मास और पर्युषणा—इन दस कल्पो मे जो स्थित है वे स्थितकल्पी तथा शय्यातर पिंड, व्रत, ज्येष्ठ तथा कृतिकर्म इन चार नियमो मे स्थित तथा शेष छह कल्पो मे जो अस्थित होते है, वे स्थितास्थितकल्पी कहलाते हैं।—आवश्यक हरिभद्रीवृत्ति, पृ. ७९०

नौ साधु मिलकर इस परिहारतप की आराधना करते हैं। उनमे से चार साधक निर्विश्यमानक-तप का आचरण करने वाले होते है तथा शेष रहे पाच में से चार उनके अनुपारिहारिक अर्थात् वैयावृत्य करने वाले होते हैं और एक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है।[1]

निर्विश्यमान साधक ग्रीष्मकाल मे जघन्य चतुर्थभक्त (एक उपवास), मध्यम षष्ठभक्त (दो उपवास) और उत्कृष्ट अष्टमभक्त (तीन उपवास) करते हैं। शीतकाल मे जघन्य दो, मध्यम तीन और उत्कृष्ट चार उपवास तथा वर्षाकाल में जघन्य तीन, मध्यम चार और उत्कृष्ट पाच उपवास करते हैं। यह क्रम छह मास तक चलता है और पारणा के दिन अभिग्रह सहित 'आयबिलव्रत'[2] करते हैं। भिक्षा मे पाच वस्तुओं का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित—परिचारक पद ग्रहण करने वाले, वैयावृत्य करने वाले सदा आयबिल ही करते हैं।

इस प्रकार छह महीने तक तप करने वाले (निर्विश्यमानक) साधक बाद मे अनुपारिहारिक (वैयावृत्य करने वाले) बनते हैं और जो अभी अनुपरिहारिक थे, वे छह महीने के लिये परिहारिक (तपाराधक) बन जाते है। ये भी पूर्व तपस्वियो की तरह तपाराधना करते है।

दूसरे छह मास के बाद तीसरे छह मास के लिये वाचनाचार्य ही तपस्वी बनते हैं और शेष आठ साधुओ मे से सात अनुचारी और एक वाचनाचार्य बनते है। इस प्रकार तीसरे छह मास पूर्ण होने के बाद अठारह माह की यह परिहारविशुद्धितपाराधना पूर्ण होती है। कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधक या तो जिनकल्प को अगीकार कर लेते है अथवा अपने गच्छ मे पुन लौट आते है या पुन वैसी ही तपस्या प्रारभ कर देते है।

इस परिहारतप के प्रतिपद्यमानक इसे तीर्थंकर भगवान् के सान्निध्य मे अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर से स्वीकार किया हो उसके पास से अगीकार करते हैं, अन्य के पास नही। ऐसे मुनियो का चारित्र परिहारविशुद्धिचारित्र है। यह चारित्र जिन्होने छेदोपस्थापनाचारित्र अगीकार किया हुआ होता है, उन्ही को होना है।

इस सयम का अधिकारी बनने के लिये गृहस्थपर्याय (उम्र) का जघन्य प्रमाण २९ वर्ष तथा साधुपर्याय (दीक्षाकाल) का जघन्यप्रमाण २० वर्ष और दोनो का उत्कृष्ट प्रमाण कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष माना है[3]

इस सयम के अधिकारी को साढे नौ पूर्व का ज्ञान होता है। इस सयम के धारक मुनि दिन के तीसरे प्रहर मे भिक्षा व विहार कर सकते है और अन्य समय मे ध्यान, कायोत्सर्ग आदि।[4]

---

१. यद्यपि इसके साधक श्रुतातिशयसपन्न होते है तथापि वह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमे एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित किया जाता है।

२. आयबिल एक प्रकार का व्रत है, जिसमे विगय—घी, दूध आदि रस छोडकर केवल दिन मे एक बार अन्न खाया जाता है तथा गरम किया हुआ (प्राशुक) पानी पिया जाता है। —आवश्यकनिर्युक्ति गा १६०३-५

३. पचवस्तुक गा. १४९४

४. दिगम्बर साहित्य मे इसके बारे मे थोडा-सा मतभेद है। उसमे तीस वर्ष की उम्र वाले को इस सयम का अधिकारी माना है और नौ पूर्व का ज्ञान आवश्यक बताया है। तीर्थंकर के सिवाय और किसी के पास इस सयम को ग्रहण करने की मनाई है तथा तीन सध्याओ को छोडकर दिन के किसी भाग मे दो कोस जाने की सम्मति दी है। —गो जीवकाण्ड गा. ४३७

ये परिहारविशुद्धिचारित्राराधक दो प्रकार के होते है—१ इत्वरिक और २ यावत्कथिक। इत्वरिक वे हैं जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी पूर्व के कल्प या गच्छ मे आ जाते हैं तथा जो कल्प समाप्त होते ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते है, वे यावत्कथिक चारित्री कहलाते हैं।

सूक्ष्मसपरायचारित्र—जिसके कारण जीव चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता है, उसे सपराय कहते हैं। ससार-परिभ्रमण के मुख्य कारण क्रोधादि कषाय हैं। इसलिये इनकी सपराय यह सज्ञा है। जिस चारित्र मे सूक्ष्म अर्थात् सज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सपराय-कषाय का उदय ही शेष रह जाता है, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसपरायचारित्र कहलाता है।

यह चारित्र सूक्ष्मसपराय नामक दसवे गुणस्थानवर्ती मुनियो को होता है।

यह चारित्र सक्लिश्यमानक और विशुद्धयमानक के भेद से दो प्रकार का है। क्षपक-श्रेणि या उपशमश्रेणि पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धयमानक होता है। जबकि उपशम-श्रेणि से उपशान्तमोह नामक ग्यारहवे गुणस्थान मे पहुँच कर वहाँ से गिरने पर साधक जब पुन. दसवें गुणस्थान मे आता है, उस समय का सूक्ष्मसपरायचारित्र सक्लिश्यमानक कहलाता है। क्योंकि इस पतनोन्मुखी दशा मे सक्लेश की अधिकता है और पतन का कारण सक्लेश है। इसीलिये इसको सक्लिश्यमानक कहते है।

यथाख्यातचारित्र—प्राकृत मे इसको 'अहक्खाय' चारित्र कहते है। उसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति इस प्रकार जानना चाहिये—अह-आ-अक्खाय। यहाँ अह—अथ शब्द याथातथ्य अर्थ मे, आ—आङ् उपसर्ग अभिविधि अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है और अक्खाय क्रियापद है। जिसको सधि होने पर अहाक्खाय पद बनता है। फिर 'ह्रस्व सयोगे' इस सूत्र से अकार होने से अहक्खाय पद बन जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यथार्थ रूप से सर्वात्मना जो चारित्र कषायरहित हो, उसे यथाख्यातचारित्र कहते है। आत्मा के सर्वथा शुद्ध भाव का प्रादुर्भाव कषायो के नि शेष रूप से अभाव होने पर होता है।

इस चारित्र के दो भेद है—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। जिस जीव का मोह उपशात हुआ है, उसका प्रतिपाती और जिसका मोह सर्वथा क्षीण हो गया है, उसका चारित्र अप्रतिपाती होता है। अथवा आश्रय के भेद से इस चारित्र के दो भेद है—छाद्मस्थिक (छद्मस्थ अर्थात् ग्यारहवे, बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तेरहवे और चोदहवे गुणस्थानवर्ती जीव का)। यद्यपि ग्यारहवे और बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव का मोह सर्वथा उपशान्त और क्षीण हो जाता है परन्तु ज्ञानावरण आदि शेष तीन घातिकर्म (छद्म) रहते है। इसीलिये उनको छद्मस्थ कहा जाता है। केवली के मोह के सिवाय शेष तीन घातिकर्म भी एकान्तत नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार से चारित्रगुणप्रमाण की प्ररूपणा जानना चाहिये और इस चारित्रगुणप्रमाण का कथन समाप्त होने से जीवगुणप्रमाण का वर्णन पूर्ण हुआ। इसके साथ ही गुणप्रमाण का कथन भी समाप्त हो गया।

अब क्रमप्राप्त नयप्रमाण का निरूपण करते है।

नयप्रमाणनिरूपण

४७३. से किं तं नयप्पमाणे ?

नयप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते । तं जहा—पत्थयविट्ठंतेणं वसहिविट्ठंतेणं पएसविट्ठंतेणं ।

[४७३ प्र] भगवन् ! नयप्रमाण का स्वरूप क्या है ?

[४७३ उ] आयुष्मन् ! नयप्रमाण का स्वरूप तीन दृष्टान्तो द्वारा स्पष्ट किया गया है । जैसे कि—१ प्रस्थक के दृष्टान्त द्वारा, २ वसति के दृष्टान्त द्वारा और ३ प्रदेश के दृष्टान्त द्वारा ।

विवेचन—प्रस्तुत मे तीन दृष्टान्तो द्वारा नयप्रमाण के स्वरूप का कथन किया है । प्रत्येक जीवादिक पदार्थ अनन्त धर्मात्मक है । उन अनन्त धर्मों मे विवक्षित धर्म को मुख्य एव अन्य धर्मों को गौण करके वस्तुप्रतिपादक वक्ता का जो अभिप्राय होता है, वह नयप्रमाण है । यद्यपि नयप्रमाण गुणप्रमाण के अतर्गत ही है और नैगम, सग्रह आदि के भेद से बहुत से नय है, तथापि स्थान-स्थान पर अत्युपयोगी और गहन विषय वाले होने से यहाँ प्रस्थक आदि दृष्टान्तत्रय से नयप्रमाण का वर्णन किया है ।

प्रस्थकदृष्टान्त द्वारा नयनिरूपण

४७४. से किं तं पत्थगविट्ठंतेण ?

पत्थगविट्ठंतेण से जहानामए केइ पुरिसे परसुं गहाय अडविहुत्ते गच्छेज्जा, त च केइ पासित्ता वदेज्जा—कत्थ भव गच्छसि ? अविसुद्धो नेगमो भणति—पत्थगस्स गच्छामि । तं च केइ छिदमाण पासित्ता वइज्जा—किं भवं छिदसि ? विसुद्धतराओ नेगमो भणति—पत्थय छिंदामि । त च केइ तच्छेमाण पासित्ता वदेज्जा—किं भवं तच्छेसि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—पत्थय तच्छेमि । त च केइ उक्किरमाणं पासित्ता वदेज्जा—किं भवं उक्किरसि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—पत्थय उक्किरामि । तं च केइ [वि] लिहमाण पासेत्ता वदेज्जा—किं भव [वि] लिहसि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—पत्थय [वि] लिहामि । एवं विसुद्धतरागस्स णेगमस्स नामाउडितओ पत्थओ ।

एवमेव ववहारस्स वि ।

सगहस्स चितो मिओ मिज्जसमारूढो पत्थओ ।

उजुसुयस्स पत्थयो वि पत्थओ मिज्जं पि से पत्थओ ।

तिण्ह सद्दणयाणं पत्थयाहिगारजाणओ पत्थओ जस्स वा वसेणं पत्थओ निप्फज्जइ । से तं पत्थयविट्ठतेण ।

[४७४ प्र] भगवन् ! प्रस्थक का दृष्टान्त क्या है ?

[४७४ उ] आयुष्मन् ! जैसे कोई पुरुष परशु (कुल्हाडी) लेकर वन की ओर जाता है । उसे देखकर किसी ने पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं ?

तब अविशुद्ध नैगमनय के मतानुसार उसने कहा—प्रस्थक लेने के लिये जा रहा हूँ। फिर उसे वृक्ष को छेदन करते—काटते हुए देखकर कोई कहे—आप क्या काट रहे हैं ? तब उसने विशुद्धतर नैगमनय के मतानुसार उत्तर दिया—मैं प्रस्थक काट रहा हूँ। तदनन्तर कोई उस लकडी को छीलते देखकर पूछे—आप यह क्या छील रहे हैं ? तब विशुद्धतर नैगमनय की अपेक्षा उसने कहा—प्रस्थक छील रहा हूँ। तत्पश्चात् कोई काष्ठ के मध्य भाग को उत्कीर्ण करते देखकर पूछे—आप यह क्या उत्कीर्ण कर रहे है ? तब विशुद्धतर नैगमनय के अनुसार उसने उत्तर दिया—मैं प्रस्थक उत्कीर्ण कर रहा हूँ। फिर कोई उस उत्कीर्ण काष्ठ पर प्रस्थक का आकार लेखन—अकन करते देखकर कहे—आप यह क्या लेखन कर रहे हैं ? तो विशुद्धतर नैगमनयानुसार उसने उत्तर दिया—प्रस्थक अकित कर रहा हूँ।

इसी प्रकार से जब तक सपूर्ण प्रस्थक निष्पन्न—तैयार न हो जाये, तब तक प्रस्थक सबधी प्रश्नोत्तर करना चाहिये।

इसी प्रकार व्यवहारनय से भी जानना चाहिए।

सग्रहनय के मत से धान्यपरिपूरित प्रस्थक को ही प्रस्थक कहते है।

ऋजुसूत्रनय के मत से प्रस्थक भी प्रस्थक है और मेय वस्तु (उससे मापी गई धान्यादि वस्तु) भी प्रस्थक है।

तीनो शब्द नयो (शब्द, समभिरूढ और एवभूत) के मतानुसार प्रस्थक के अर्थाधिकार का ज्ञाता (प्रस्थक के स्वरूप के परिज्ञान मे उपयुक्त जीव अथवा प्रस्थककर्त्ता का वह उपयोग जिससे प्रस्थक, निष्पन्न होता है उसमे वर्त्तमान कर्त्ता प्रस्थक है।

इस प्रकार प्रस्थक के दृष्टान्त द्वारा नयप्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे प्रस्थक के दृष्टान्त द्वारा नयदृष्टियो का सकेत किया है।

प्रस्थक—यह मगध देश प्रसिद्ध एक पात्र का नाम है। इसमे धान्यादि भरकर मापे जाते है। इस प्रकार के प्रस्थक को बनाने का सकल्प लेकर कोई व्यक्ति कुल्हाडी लेकर वन की ओर जा रहा हो। पूछने पर उसने जो उत्तर दिया कि प्रस्थक के लिये जा रहा हूँ, यह अविशुद्ध नैगमनय के अभिप्राय से सगत है। क्योकि वस्तु को जानने के नैगमनय के अभिप्राय अनेक होते है। नैगमनय सकल्पित विषय मे उस पर्याय का आरोप कर उसे उस पर्याय रूप मानता है। अतएव अभी तो प्रस्थक बनाने का विचार ही उत्पन्न हुआ है किन्तु उत्तर दिया है प्रस्थक को मानकर। काष्ठ को काटते समय उसने जो उत्तर दिया वह भी नैगमनयानुसार ठीक है, परन्तु पूर्व की अपेक्षा वह विशुद्ध है। इसके बाद काष्ठ को छीलते एव उत्कीर्ण करते आदि प्रसगो पर जो उत्तर दिये, उनमे भी नैगमनय की दृष्टि है, किन्तु वे सब कथन पूर्व की अपेक्षा विशुद्धतर है। इस प्रकार जब तक लोकप्रसिद्ध प्रस्थक नाम की पर्याय प्रकट न हो जाये, उससे पूर्व तक के जितने उत्तर होगे वे सब नैगमनय के सकल्पमात्रग्राही होने से सत्य है और सकल्प के अनेक रूप होने से नैगमनय अनेक प्रकार से वस्तु को मानता है। इसीलिए कारण में कार्य का उपचार करके जो उत्तर दिया जाता है, वह नैगमनय की दृष्टि से है। ऐसा व्यवहार मे भी देखा जाता है।

सूत्र में बताये गये नैगमनय के अविशुद्ध, विशुद्ध और विशुद्धतर यह तीन रूप पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर मे विशेषता के प्रदर्शक हैं।

व्यवहारनय मे लोकव्यवहार की प्रधानता होती है। वह सर्वत्र लोकव्यवहार की प्रधानता को लेकर प्रवृत्त होता है। अतएव जब लोक मे नैगमनयोक्त अवस्थाओ मे सर्वत्र प्रस्थक व्यवहार होता है तो यह नय भी वैसा ही मानता है।

सग्रहनय समस्त वस्तुओ को सामान्य रूप से ग्रहण करता है। यदि किसी विवक्षित प्रस्थक को ही प्रस्थक माने तो विवक्षित प्रस्थक से भिन्न प्रस्थको मे प्रस्थकत्व का व्यपदेश नही हो सकेगा। क्योकि सामान्य के बिना विशेषो का अस्तित्व ही नही है।

ऋजुसूत्रनय के अनुसार प्रस्थक भी और उसके द्वारा मेय वस्तु भी प्रस्थक है। यह नय नष्ट एव अनुत्पन्न होने से सत्ताविहीन भूत और भविष्यत् कालिक मान और मेय को नही मानकर वर्तमान-कालिक मान और मेय को ही मानता है। अतएव जिस समय प्रस्थक अपना कार्य कर रहा है और धान्यादिक मापे जा रहे है तभी इस नय के अनुसार प्रस्थक माने जाते है। यह नय पूर्व नयो की अपेक्षा विशुद्धतर है।

शब्द, समभिरूढ और एवभूत ये तीनो शब्दनय है। इनमे शब्द की प्रधानता है। इसीलिये इन्हे शब्दनय कहा जाता है और शब्द के अनुसार ही ये अर्थ का प्रतिपादन करते है।[1]

इन तीनो शब्दनयो के मत मे प्रस्थक के स्वरूप के परिज्ञान से उपयुक्त हुआ जीव प्रस्थक है। ये नय भावप्रधान है। इसलिये ये भाव प्रस्थक को—प्रस्थक के उपयोग को—प्रस्थक मानते है और उपयोग जीव का लक्षण है। इसलिये जीव का लक्षण रूप उपयोग जब प्रस्थक को विषय करता है, तब वह उस रूप मे परिणत हो जाता है, जिससे प्रस्थक के उपयोग को प्रस्थक मान लिया जाता है। अथवा प्रस्थक के बनाने वाले व्यक्ति के जिस उपयोग के द्वारा प्रस्थक निष्पन्न होता है, उस उपयोग मे वर्तमान वह कर्ता प्रस्थक कहा जाता है। क्योकि कर्ता मे जब तक प्रस्थक बनाने का उपयोग नही होगा, तब तक वह प्रस्थक नही बना सकेगा। इसलिये वह कर्ता भी उस प्रस्थक को निष्पन्न करने वाले उपयोग से अनन्य होने के कारण प्रस्थक कहा जाता है।

वसतिदृष्टान्त द्वारा नयनिरूपण

४७५. **से किं त वसहिदिट्ठतेण ?**

वसहिदिट्ठतेणं से जहानामए केइ पुरिसे कचि पुरिस वदिज्जा, कहिं भवं वससि ? तत्थ अविसुद्धो णेगमो भणइ—लोगे वसामि।

लोगे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—उड्ढलोए अधोलोए तिरियलोए, तेसु सव्वेसु भव वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—तिरियलोए वसामि।

तिरियलोए जबुद्दीवादीया सयभूरमणपज्जवसाणा असखेज्जा—दीव-समुद्दा पण्णत्ता, तेसु सव्वेसु भव वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—जबुद्दीवे वसामि।

जबुद्दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, त जहा—भरहे एरवए हेमवए एरण्णवए हरिवस्से रम्मगवस्से

---

१ आदि के नैगम आदि ऋजुसूत्रनय पर्यन्त चार नय अर्थनय हैं। क्योकि इनकी अर्थ मे ही मान्यता प्रधान—मुख्य है।

देवकुरा उत्तरकुरा पुव्वविदेहे अवरविदेहे, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति- भरहे वसामि।

भरहे वासे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दाहिणड्ढभरहे य उत्तरड्ढभरहे य, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—दाहिणड्ढभरहे वसामि।

दाहिणड्ढभरहे अणेगाइं गाम-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-ऽऽगर-संवाह-सण्णिवेसाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—पाडलिपुत्ते वसामि।

पाडलिपुत्ते अणेगाइं गिहाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—देवदत्तस्स घरे वसामि।

देवदत्तस्स घरे अणेगा कोट्ठगा, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणति—गब्भघरे वसामि। एव विसुद्धस्स णेगमस्स वसमाणो वसति।

एवमेव ववहारस्स वि।

संगहस्स सथारसमारूढो वसति।

उज्जुसुयस्स जेसु आगासपएसेसु ओगाढो तेसु वसइ।

तिण्ह सद्दनयाण आयभावे वसइ। से तं वसहिदिट्ठंतेणं।

[४७५ प्र] भगवन ! जिसके द्वारा नयो का स्वरूप जाना जाता है वह वसति-दृष्टान्त क्या है ?

[४७५ उ] आयुष्मन् ! वसति के दृष्टान्त द्वारा नयो का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये—जैसे किसी पुरुष ने किसी अन्य पुरुष से पूछा—आप कहाँ रहते हैं ?

तब उसने अविशुद्ध नैगमनय के मतानुसार उत्तर दिया—मैं लोक मे रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता ने पुन पूछा—लोक के तो तीन भेद हैं—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक। तो क्या आप इन सब मे रहते है ? तब—

विशुद्ध नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—मैं तिर्यग्लोक मे रहता हूँ।

इस पर प्रश्नकर्त्ता ने पुन प्रश्न किया—तिर्यग्लोक मे जम्बूद्वीप आदि स्वयभूरमणसमुद्र पर्यन्त असख्यात द्वीप-समुद्र है, तो क्या आप उन सभी मे रहते हैं ?

प्रत्युत्तर मे विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—मै जम्बूद्वीप मे रहता हूँ।

तब प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया—जम्बूद्वीप मे दस क्षेत्र है। यथा—भरत, ऐरवत, हैमवत, ऐरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु, पूर्वविदेह, अपरविदेह। तो क्या आप इन दसो क्षेत्रों मे रहते है ?

उत्तर मे विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—भरतक्षेत्र में रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता ने पुन· प्रश्न पूछा—भरतक्षेत्र के दो विभाग हैं—दक्षिणार्धभरत और उत्तरार्ध-भरत। तो क्या आप उन दोनो विभागो मे रहते है ?

विशुद्धतर नैगमनय की दृष्टि से उसने उत्तर दिया—दक्षिणार्धभरत में रहता हूँ ।

प्रश्नकर्ता ने पुनः प्रश्न पूछा—दक्षिणार्धभरत में तो अनेक ग्राम, नगर, खेड, कर्वट, मडब, द्रोणमुख, पट्टन, आकर, सवाह, सन्निवेश है, तो क्या आप उन सबमे रहते हैं ?

इसका विशुद्धतर नैगमनयानुसार उसने उत्तर दिया—मैं पाटलिपुत्र मे रहता हूँ ।

प्रश्नकर्ता ने पुनः पूछा—पाटलिपुत्र मे अनेक घर है, तो आप उन सभी मे निवास करते हैं ?

तब विशुद्धतर नैगमनय की दृष्टि से उसने उत्तर दिया—देवदत्त के घर में बसता हूँ ।

प्रश्नकर्ता ने पुन· पूछा—देवदत्त के घर मे अनेक प्रकोष्ठ—कोठे है, तो क्या आप उन सबमे रहते हैं ?

उत्तर मे उसने विशुद्धतर नैगमनय के अनुसार कहा—(नही, मैं उन सबमे तो नही रहता, किन्तु) गर्भगृह में रहता हूँ ।

इस प्रकार विशुद्ध नैगमनय के मत से वसते हुए को वसता हुआ माना जाता है । अर्थात् विशुद्ध नैगमनय के मतानुसार गर्भगृह में रहता हुआ ही 'वसति' इस रूप से व्यपदिष्ट होता है ।

व्यवहारनय का मतव्य भी इसी प्रकार का है ।

सग्रहनय के मतानुसार शैया पर आरूढ हो तभी वह वसता हुआ कहा जा सकता है ।

ऋजुसूत्रनय के मत से जिन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ-अवगाहनयुक्त-विद्यमान है, उनमें ही वसता हुआ माना जाता है ।

तीनो शब्दनयो के अभिप्राय से आत्मभाव—स्वभाव मे ही निवास होता है ।

इस प्रकार वसति के दृष्टान्त द्वारा नयो का स्वरूप जानना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे वसति—निवास के दृष्टान्त द्वारा नय-कथनशैली का निरूपण किया है ।

नैगमनय के अनेक भेद हैं, अन उसके अनुसार दिये गये उत्तर उत्तरोत्तर विशुद्धतर नैगमनय की दृष्टि से हैं । क्योकि सकल्पमात्रग्राही होने से जब नैगमनय अपेक्षा दृष्टि से विशेषोन्मुखी होता है तब चरम विशेष के पूर्व तक विशुद्ध से विशुद्धतर होता जाता है और वे सभी विशुद्धतर नैगमनय के विषय है । इसलिये पूर्व-पूर्वापेक्षया विशुद्धतर नैगमनय के मत से वसते हुए को वसता हुआ माना जाता है । यदि वह अन्यत्र भी चला गया हो तब भी जहाँ निवास करेगा, वही उसको वसता हुआ माना जायेगा ।

इसी प्रकार का व्यवहारनय का भी मतव्य है । क्योकि जहाँ जिसका निवासस्थान है, वह उसी स्थान मे वसता हुआ माना जाता है तथा जहाँ पर रहे, वही उसका निवासस्थान होता है । जैसे—पाटलिपुत्र का रहने वाला यदि कही अन्यत्र जाये तब भी कहा जाता है कि पाटलिपुत्रवासी अमुक व्यक्ति यहाँ आया हुआ है और पाटलिपुत्र मे 'कहेगे'—अब वह यहाँ नही है, अन्यत्र वस गया है । अर्थात् विशुद्धतर नैगमनय और व्यवहारनय के मत से 'वसते हुए को वसता हुआ' मानते हैं । इसी का सकेत करने के लिये—'एवमेव ववहारस्स वि' पद दिया है ।

सग्रहनय की मान्यता है कि 'वसति' शब्द का प्रयोग गर्भगृह आदि मे रहने के अर्थ में नहीं हो सकता है । क्योकि वसति का अर्थ निवास है और यह निवास रूप अर्थ सस्तारक पर आरूढ होने

पर ही घटित होता है। अत. जब कोई संस्तारक-शय्या पर शयन करे तभी चलने आदि क्रिया से रहित होकर शयन करते समय ही उसे वसता हुआ माना जा सकता है। संग्रहनय सामान्यवादी है, इसलिए इसके मत से सभी शैयाये एक है, चाहे वे कही भी हो।

ऋजुसूत्रनय सग्रहनय की अपेक्षा भी विशुद्ध है। ऋजुसूत्रनय का मतव्य है सस्तारक पर आरूढ हो जाने मात्र से वसति शब्द का अर्थ घटित नही होता है, किन्तु सस्तारक के जितने आकाश प्रदेश वर्तमान मे अवगाहन किये गये है, उन्ही पर वसता हुआ मानना चाहिये।

शब्द, समभिरूढ और एवभूत इन तीनो नयो की पदार्थ के निज स्वरूप मे रहने के विषय में यह दृष्टि है कि आकाशप्रदेश पर द्रव्य होने से उनमे रहना वसति शब्द का अर्थ नही हो सकता, क्योकि कोई भी द्रव्य पर द्रव्य मे नही रहता है। इसलिये प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वरूप मे निवास करता है।

अब प्रदेशदृष्टान्त द्वारा नयो का निरूपण करते है।

प्रदेशदृष्टान्त द्वारा नयनिरूपण

४७६. से कि तं पदेसदिट्ठतेणं ?

पदेसदिट्ठतेण णेगमो भणति—छण्हं पदेसो, तं जहा—धम्मपदेसो अधम्मपदेसो आगासपदेसो जीवपदेसो खंधपदेसो देसपदेसो।

एवं वयत णेगम संगहो भणइ—जं भणसि—छण्हं पदेसो तण्ण भवइ, कम्हा ? जम्हा जो सो देसपदेसो सो तस्सेव दव्वस्स, जहा को दिट्ठतो ? दासेण मे खरो कीओ दासो वि मे खरो वि मे, तं मा भणाहि—छण्ह पएसो, भणाहि पचण्हं पएसो, तं जहा—धम्मपएसो अहम्मपएसो आगासपदेसो जीवपएसो खंधपदेसो।

एवं वयतं संगह ववहारो भणइ—जं भणसि—पंचण्हं पएसो त ण भवइ, कम्हा ? जइ जहा पंचण्हं गोट्ठियाण केइ दव्वजाए सामण्णे, त जहा—हिरण्णे वा सुवण्णे वा धणे वा धण्णे वा, तो जुत्तं वत्तुं जहा पंचण्हं पएसो ? तं मा भणाहि—पंचण्हं पएसो, भणाहि—पंचविहो पएसो, त जहा—धम्मपदेसो अहम्मपदेसो आगासपदेसो जीवपदेसो खंधपदेसो।

एवं वयत ववहारं उज्जुसुओ भणति—ज भणसि—पंचविहो पदेसो तं न भवइ, कम्हा ? जइ ते पंचविहो पएसो एव ते एक्केक्को पएसो पंचविहो एव ते पणुवीसतिविहो पदेसो भवति, तं मा भणाहि—पंचविहो पएसो, भणाहि—भतियव्वो पदेसो—सिया धम्मपदेसो सिया अधम्मपदेसो सिया आगासपदेसो सिया जीवपदेसो सिया खधपदेसो।

एवं वयतं उज्जुसुय सपतिसद्दणओ भणति—जं भणसि भइयव्वो पदेसो तं न भवति, कम्हा ? जइ ते भइयव्वो पदेसो एवं ते धम्मपदेसो वि सिया अधम्मपदेसो सिया आगासपदेसो सिया जीव-पदेसो सिया खंधपदेसो १, अधम्मपदेसो वि सिया धम्मपदेसो सिया आगासपएसो सिया जीवपएसो सिया खंधपएसो २, आगासपएसो वि सिया धम्मपदेसो सिया अहम्मपएसो सिया जीवपएसो सिया

खंधपएसो ३, जीवपएसो वि सिया धम्मपएसो सिया अधम्मपएसो सिया आगासपएसो सिया खंधपएसो ४, खंधपएसो वि सिया धम्मपदेसो सिया अधम्मपदेसो सिया आगासपदेसो सिया जीवपदेसो ५, एवं ते अणवत्था भविस्सई, तं मा भणाहि—भइयव्वो पदेसो, भणाहि—धम्मे पदेसे से पदेसे धम्मे, अहम्मे पदेसे से पदेसे अहम्मे, आगासे पदेसे से पदेसे आगासे, जीव पदेसे से पदेसे णोजीवे, खंधे पदेसे से पदेसे णोखंधे।

एवं वयंतं सद्दणयं समभिरूढो भणति—जं भणसि—धम्मे पदेसे से पदेसे धम्मे जाव खंधे पदेसे से पदेसे नोखंधे तं न भवइ, कम्हा? एत्थ दो समासा भवंति, तं जहा—तप्पुरिसे य कम्मधारए य, तं ण णज्जइ कतरेणं समासेणं भणसि—किं तप्पुरिसेणं किं कम्मधारएणं? जइ तप्पुरिसेणं भणसि तो मा एवं भणाहि, अह कम्मधारएणं भणसि तो विसेसओ भणाहि—धम्मे य से पदेसे य से से पदेसे धम्मे, अहम्मे य से पदेसे य से से पदेसे अहम्मे, आगासे य से पदेसे य से से पदेसे आगासे, जीवे य से पदेसे य से से पदेसे नोजीवे, खंधे य से पदेसे य से से पदेसे नोखंधे।

एवं वयंतं संपयं समभिरूढं एवंभूओ भणइ—जं जं भणसि तं तं सव्वं कसिणं पडिपुण्णं निरवसेसं एगगहणगहितं देसे वि मे अवत्थू पदेसे वि मे अवत्थू। से तं पदेसदिट्ठंतेणं। से तं णयप्पमाणे।

[४७६ प्र.] भगवन्! प्रदेशदृष्टान्त द्वारा नयो के स्वरूप का प्रतिपादन किस प्रकार होता है?

[४७६ उ.] आयुष्मन्! प्रदेशो के दृष्टान्त द्वारा नयो का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिए—

नैगमनय के मत से—छह द्रव्यो के प्रदेश होते है। जैसे—१. धर्मास्तिकाय का प्रदेश, २ अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ जीवास्तिकाय का प्रदेश, ५ स्कन्ध का प्रदेश और ६ देश का प्रदेश।

ऐसा कथन करने वाले नैगमनय से सग्रहनय ने कहा—जो तुम कहते हो कि छहो के प्रदेश है, वह उचित नही है। क्यो (नही है)?

इसलिये कि जो देश का प्रदेश है, वह उसी द्रव्य का है।

इसके लिये कोई दृष्टान्त है?

हाँ दृष्टान्त है। जैसे मेरे दास ने गधा खरीदा और दास मेरा है तो गधा भी मेरा है। इसलिये ऐसा मत कहो कि छहो के प्रदेश हैं, यह कहो कि पाच के प्रदेश हैं। यथा—१. धर्मास्तिकाय का प्रदेश, २ अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ जीवास्तिकाय का प्रदेश और ५. स्कन्ध का प्रदेश।

इस प्रकार कहने वाले सग्रहनय से व्यवहारनय ने कहा—तुम कहते हो कि पाचो के प्रदेश हैं, वह सिद्ध नही होता है।

क्यो (सिद्ध नही होता है)?

प्रत्युत्तर में व्यवहारनयवादी ने कहा—जैसे पाच गोष्ठिक पुरुषो (भागीदारो) का कोई द्रव्य सामान्य होता है। यथा—हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य आदि (वैसे पाचो के प्रदेश सामान्य होते) तो तुम्हारा कहना युक्त था कि पाचो के प्रदेश है। (परन्तु ऐसा है नही,) इसलिये ऐसा मत कहो कि पाचों के प्रदेश हैं, किन्तु कहो—प्रदेश पाच प्रकार का है, जैसे—१. धर्मास्तिकाय का प्रदेश, २. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४. जीवास्तिकाय का प्रदेश और ५ स्कन्ध का प्रदेश।

व्यवहारनय के ऐसा कहने पर ऋजुसूत्रनय ने कहा—तुम भी जो कहते हो कि पाच प्रकार के प्रदेश हैं, वह नही बनता है। क्योंकि यदि पाच प्रकार के प्रदेश हैं यह कहो तो एक-एक प्रदेश पाच-पाच प्रकार का हो जाने से तुम्हारे मत से पच्चीस प्रकार का प्रदेश होगा। इसलिए ऐसा मत कहो कि पाच प्रकार का प्रदेश है। यह कहो कि प्रदेश भजनीय है—१ स्यात् धर्मास्तिकाय का प्रदेश, २ स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३. स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात् स्कन्ध का प्रदेश है।

इस प्रकार कहने वाले ऋजुसूत्रनय से सप्रति शब्दनय ने कहा—तुम कहते हो कि प्रदेश भजनीय है, यह कहना योग्य नही है।

क्योंकि प्रदेश भजनीय है, ऐसा मानने से तो धर्मास्तिकाय का प्रदेश अधर्मास्तिकाय का भी, आकाशास्तिकाय का भी, जीवास्तिकाय का भी और स्कन्ध का भी प्रदेश हो सकता है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का प्रदेश धर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश एव स्कन्ध का प्रदेश हो सकता है।

आकाशास्तिकाय का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय का, अधर्मास्तिकाय का, जीवास्तिकाय का, स्कन्ध का प्रदेश हो सकता है।

जीवास्तिकाय का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय का प्रदेश या स्कन्ध का प्रदेश हो सकता है।

स्कन्ध का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश अथवा जीवास्तिकाय का प्रदेश हो सकता है।

इस प्रकार तुम्हारे मत से अनवस्था हो जायेगी। अत ऐसा मत कहो—प्रदेश भजनीय है, किन्तु ऐसा कहो—धर्मरूप जो प्रदेश है, वही प्रदेश धर्म है—धर्मात्मक है, जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मास्तिकायात्मक है, जो आकाशास्तिकाय का प्रदेश है, वही प्रदेश आकाशात्मक है, एक जीवास्तिकाय का जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोजीव है, इसी प्रकार जो स्कन्ध का प्रदेश है, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है।

इस प्रकार कहते हुए शब्दनय से समभिरूढनय ने कहा—तुम कहते हो कि धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है, वही प्रदेश धर्मास्तिकाय रूप है, यावत् स्कन्ध का जो प्रदेश, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है, किन्तु तुम्हारा यह कथन युक्तिसगत नही है। क्योंकि यहां (धम्मे पएसे आदि मे) तत्पुरुष और कर्मधारय यह दो समास होते हैं। इसलिये सदेह होता है कि उक्त दोनो समासो में से तुम किस समास की

दृष्टि से 'धर्मप्रदेश' आदि कह रहे हो ? यदि तत्पुरुषसमासदृष्टि से कहते होओ तो ऐसा मत कहो और यदि कर्मधारय समास की अपेक्षा कहते हो तब विशेषतया कहना चाहिये—धर्म और उसका जो प्रदेश (उसका समस्त धर्मास्तिकाय के साथ समानाधिकरण हो जाने से) वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है। इसी प्रकार अधर्म और उसका जो प्रदेश वही प्रदेश अधर्मास्तिकाय रूप है, आकाश और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश आकाशास्तिकाय है, एक जीव और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोजीवास्तिकाय है तथा स्कन्ध और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है।

ऐसा कथन करने पर समभिरूढनय से एवभूतनय ने कहा—(धर्मास्तिकाय आदि के विषय मे) जो कुछ भी तुम कहते हो वह समीचीन नही, मेरे मत से वे सब कृत्स्न (देश-प्रदेश की कल्पना से रहित) है, प्रतिपूर्ण और निरवशेष (अवयवरहित) है, एक ग्रहणगृहीत है—एक नाम से ग्रहण किये गये है, अत देश भी अवस्तु रूप है एव प्रदेश भी अवस्तु रूप है।

यही प्रदेशदृष्टान्त है और इस प्रकार नयप्रमाण का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रदेशदृष्टान्त के द्वारा यहाँ नयो के स्वरूप का प्रतिपादन किया है।

प्रदेश आदि की व्याख्या—जो अतिसूक्ष्म और जिसका विभाग न हो सके, ऐसे स्कन्ध से सम्बद्ध निर्विभाग भाग को प्रदेश कहते है।[1] पुद्गलद्रव्य का समग्रपिण्ड स्कन्ध और स्कन्ध का जो प्रदेश वह स्कन्धप्रदेश कहलाता है। धर्मास्तिकाय आदि पाचो द्रव्यो के दो आदि प्रदेशो से जो निष्पन्न होता है उसे देश एव देश का जो प्रदेश उसे देशप्रदेश कहते हैं।

नयों का मन्तव्य—नैगमनय की दृष्टि से छह प्रकार के प्रदेश है। इसका कारण यह है कि नैगमनय का विषय सबसे अधिक विशाल है। वह सामान्य और विशेष दोनो को गौण-मुख्य रूप से विषय करता है। अतएव जब धर्मास्तिकायादि द्रव्यो मे सामान्य की विवक्षा से प्रदेशव्यवस्था की जाती है तब नैगमनय 'षट्प्रदेश' शब्द का समास 'षण्णा प्रदेश षट्प्रदेश·' ऐसा एकवचनान्त शब्दप्रयोग और जब प्रदेशविशेष की विवक्षा की जाती है तब 'षण्णा प्रदेशा. षट्प्रदेशा ' ऐसा बहुवचनान्त शब्दप्रयोग करता है। इस प्रकार से नैगमनय की अपेक्षा षट्प्रदेश होते है।

सग्रहनय की युक्ति है कि 'षण्णा प्रदेशा ' यह कथन सगत नही है। क्योकि देश का भी जो प्रदेश माना है उस देश का स्वतन्त्र अस्तित्व नही है, वह धर्मास्तिकायादिको के प्रदेशद्वय आदि से ही निष्पन्न है। इसलिये देश का प्रदेश तो वस्तुत धर्मास्तिकायादि का ही होगा, क्योकि द्रव्य से अभिन्न देश का प्रदेश वस्तुत द्रव्य का ही है। लोक मे देखा जाता है कि किसी के दास ने यदि गधा खरीदा, तब जैसे दास उसका माना जाता है वैसे ही गधा भी उसी का कहलायेगा। इसी प्रकार देश का स्वतन्त्र अस्तित्व नही होने से प्रदेश धर्मास्तिकाय आदि पाच द्रव्यो के है, छह के नही।

यद्यपि सग्रहनय सामान्य को विषय करता है, लेकिन विशुद्ध और अविशुद्ध की अपेक्षा उसके दो भेद है। इनमे से उपर्युक्त कथन अविशुद्ध सग्रहनय का है। अविशुद्ध सग्रहनय अवान्तर सामान्य रूप अपरसत्ता को विषय करता है। यह अवान्तर सामान्य अनेक प्रकार का हो सकता है। इसलिये अवान्तर सामान्य को ग्रहण करने वाले अविशुद्ध सग्रहनय की दृष्टि से पाच द्रव्यो के प्रदेश

१. प्रकृष्टो देश प्रदेशो निर्विभागो भाग इत्यर्थ । —अनुयोगद्वार. मलधारीया वृत्ति पृ २२७

कहना सगत है। विशुद्ध सग्रहनय अनेक द्रव्यो को और अनेक प्रदेशो को नही मानता है तथा सभी पदार्थों को सामान्य रूप से एक स्वीकार करता है।

विशेषवादी व्यवहारनय की दृष्टि मे सामान्य अवस्तु है, अत सग्रहनय के मतव्य के निराकरण के लिये उसने युक्ति दी—'पचाना प्रदेश' यह कथन असगत है। क्योकि जैसे पाच गोष्ठिक पुरुषो की चादी, सोना, धन, धान्य आदि में सामान्य साझेदारी होती है, वैसे यदि धर्मास्तिकाय आदि का कोई प्रदेश सामान्य हो तो पांच का प्रदेश कहना उचित है, लेकिन प्रदेश तो प्रत्येक द्रव्य के पृथक्-पृथक् अपने-अपने है। इसलिये सामान्य प्रदेश के अभाव मे 'पचाना प्रदेश' ऐसा कहना अयोग्य है। द्रव्य पाच प्रकार के है और प्रदेश तदाश्रयभूत है, इसलिये पचविध प्रदेश—प्रदेश पाच प्रकार का है, ऐसा कहना चाहिये।

ऋजुसूत्रनय तो व्यवहारनय से भी अधिक विशेषवादी है, अत उसने व्यवहारनय की दृष्टि को भी अयुक्त मानते हुए कहा—यदि पाच प्रकार के प्रदेश माने जायें तो धर्मास्तिकाय आदि का एक-एक प्रदेश पाच-पाच प्रकार का होने से प्रदेश पच्चीस प्रकार का हो जायेगा। किन्तु ऐसा कहना सिद्धान्त से बाधित है। अतएव ऐसा न कहकर भजनीयता बतलाने के लिये 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। जैसे स्यात् धर्मप्रदेश यावत् स्यात् स्कन्धप्रदेश। तात्पर्य यह है कि अर्थ की उपलब्धि शब्द से ही होती है। अत जब पचविध प्रदेश ऐसा कहा जायेगा तब इस कथन से प्रत्येक द्रव्यप्रदेश मे पचविधता प्रतिभासित होगी और पर्चावशतिविध प्रदेश ऐसा 'पचविध प्रदेश'का वाक्यार्थ होगा। इसलिये ऐसी भ्रान्त धारणा का निराकरण करने के लिये कहो कि धर्मप्रदेश भजनीय है इत्यादि। इस कथन से अपने-अपने प्रदेश का ही ग्रहण होगा, परसबन्धी प्रदेश का नही।

शब्दनय की दृष्टि मे ऋजुसूत्रनय की यह धारणा भी भ्रान्त है। उसका परिमार्जन करने के लिये शब्दनय का कथन है—'प्रदेश भजनीय है' ऐसा कहने पर तो जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वह कदाचित् धर्मास्तिकाय का भी हो सकता है और अधर्मास्तिकायादिक अन्य द्रव्यो का भी तथा अधर्मास्तिकाय का प्रदेश भी कदाचित् धर्मास्तिकायादिक का प्रदेश हो सकता है इत्यादि। इस प्रकार अनवस्था होने से वास्तविक प्रदेशस्थिति का अभाव हो जायेगा। भजना मे अनियतता होने से प्रदेश अपने-अपने अस्तिकाय का होकर भी दूसरे का भी हो जाने से अनवस्था होगी ही। ऐसी स्थिति मे यह कैसे समझा जाये कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वह धर्मास्तिकाय का ही है, इतर द्रव्यों का नही। इसलिये ऐसा कहो—जो प्रदेश धर्मास्तिकाय का है वह समस्त धर्मास्तिकाय से अभिन्न होकर ही धर्मात्मक है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन दोनो के प्रदेशों के विषय मे भी जानना चाहिये, क्योकि ये दोनो भी एक-एक द्रव्य है।

जीवास्तिकाय मे एक देश नोजीव हैं। यहा 'नो' शब्द एक देशवाचक है। अर्थात् एक जीव सकल जीवास्तिकाय का एक देश है। एक जीवद्रव्यात्मक प्रदेश अनन्त जीवद्रव्यात्मक समस्त जीवास्तिकाय में नही रहता है।

इसी प्रकार नोस्कन्ध के लिये भी समझना चाहिये। क्योंकि अनन्त स्कन्धात्मक पुद्गलास्तिकाय के एकदेशभूत एक स्कन्ध में रहने वाले प्रदेश की समस्त स्कन्ध रूप पुद्गलास्तिकाय में वृत्ति नही है, इसलिये एक स्कन्धात्मक प्रदेश को नोस्कन्ध कहा है।

समभिरूढनय ने शब्दनय की दृष्टि को भी परिमार्जित करने के लिये कहा—तुम्हारा कथन भी युक्तियुक्त नही है। क्योकि 'धर्मप्रदेश' इस समासयुक्त पद मे दो समास हो सकते है—तत्पुरुष और कर्मधारय। यदि 'धर्मप्रदेश' पद मे तत्पुरुषसमास माना जाए तो वह सप्तमी तत्पुरुष का आरभक बन जायेगा। जैसे 'वने हस्तीति वनहस्ती' इस पद मे भेदवृत्ति है अर्थात् वन और हस्ती भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही धर्मप्रदेश पद से भी यही अर्थ सिद्ध होगा कि धर्म और प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं तथा 'धर्म में प्रदेश है' यहाँ धर्म आधार है और प्रदेश आधेय। आधार और आधेय मे भेद अनुभवसिद्ध है जैसे 'कुण्डे बदराणि'। यदि कहा जाए कि अभेद मे भी सप्तमी तत्पुरुष समास देखा जाता है, जैसे 'घटे रूपम्'—घट मे रूप, तो सशय होगा कि भेद मे सप्तमी समास है या अभेद मे ?

यदि कर्मधारय समास से कहते हो तो विशेषरूप से कहना चाहिए कि—'धर्मश्च स प्रदेशश्च स प्रदेश धर्म।' अभिप्राय यह कि यह धर्मात्मक प्रदेश समस्त धर्मास्तिकाय से अभिन्न होकर ही धर्मात्मक कहलाता हे,। धर्मास्तिकाय के एक देश से अभिन्न होकर नही किन्तु जीवप्रदेश के विषय मे ऐसा नही कहा जा सकता। जीवास्तिकाय मे पृथक्-पृथक् अनन्त जीव है, अतएव जीवप्रदेश सकल जीवास्तिकाय का एक देश न होकर जीवास्तिकाय के एक देश का अर्थात् किसी एक जीव का देश होकर ही जीवप्रदेश कहलाता है। इस प्रकार विशेषता बतलाकर कहना चाहिये।

एवभूतनय ने समभिरूढनय को इगित करते हुए कहा—यदि तुम धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय को स्वतन्त्र द्रव्य मानते हो तो यह भी मानना चाहिये कि ये सभी प्रदेश की कल्पना से रहित है, परिपूर्ण हैं, निरवशेष है, निरवयव है तथा एक है। मेरी दृष्टि मे ये देश-प्रदेश अवस्तु ही है। विचार करे तो प्रदेश और प्रदेशी मे भेद है या अभेद है ? भेद है नही, क्योकि भेद की उपलब्धि नही होती है और अभेद कहो तो धर्म और प्रदेश इन दोनो शब्दो का एक ही अर्थ हो जाएगा। ऐसी अवस्था मे दो शब्दो का नही, किन्तु दो मे से एक ही शब्द का उच्चारण करना चाहिए, दूसरे की व्यर्थता स्वयसिद्ध है। अत धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल आदि देश-प्रदेश रहित अखड वस्तु है।

इस प्रकार से ये सातो नय अपने-अपने मत की सत्यता का प्रतिपादन करने मे कटिबद्ध रहते हैं और अपने दुराग्रह के कारण दुर्नय रूप हो जाते है। इस प्रकार नयवर्णन के प्रसग मे दुर्नय का स्वरूप भी बतला दिया है। लेकिन जब ये सातों नय अपने मत की स्थापना के साथ दूसरे नय के मत की उपेक्षा रखते है अर्थात् उनका तिरस्कार नही करते, तब उस सापेक्ष स्थिति मे सुनय कहलाते है। इन सापेक्ष समुदित नयो मे ही सपूर्ण जिनमत प्रतिष्ठित है। पृथक्-पृथक् अवस्था मे नही है। कहा भी है—

उदधाविव सर्वसिन्धव समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टय ।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्ववोदधि ॥

हे नाथ ! जैसे सब नदिया समुद्र मे एकत्र हो जाती है, इसी प्रकार आपके मत मे सब नय एक साथ मिल जाते है। परन्तु आपके मत का किसी एक नय मे समावेश नही हो सकता है। जैसे समुद्र किसी एक नदी मे नही समाता, उसी प्रकार सभी वादियो का सिद्धान्त तो जैनमत है लेकिन सपूर्ण जिनमत किसी वादी का मत नही है।

नयप्रमाण के उक्त तीनो दृष्टान्तो से यह स्पष्ट है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सभी नयप्रमाण के विषय होते हैं। जैसे प्रस्थकदृष्टान्त में काल की मुख्यता है। वसतिदृष्टान्त मे क्षेत्र का और प्रदेशदृष्टान्त मे द्रव्य, भाव का विचार किया गया है।

ये सभी नय ज्ञान रूप है और ज्ञान आत्मा का गुण है। इसलिये इन नयो का यद्यपि ज्ञानगुण मे अन्तर्भाव हो जाता है, फिर भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से इन्हे भिन्न इस कारण कहा गया है कि प्रथम तो ये वस्तु के एक अश का मुख्य रूप से कथन करने के कारण प्रमाणाश रूप है। दूसरे बहु विचार के विषय हैं। जिनागम मे स्थान-स्थान पर इनका उपयोग हुआ है। प्रस्थक, वसति और प्रदेश दृष्टान्तो से यहाँ जो नय का स्वरूप निरूपण किया है वह तो केवल उपलक्षण मात्र है। इसी तरह इन नयो से जीवादि पदार्थों के स्वरूप का भी वर्णन किया जा सकता है।

अब क्रमप्राप्त सख्याप्रमाण का निरूपण करते है।

संख्याप्रमाणनिरूपण

४७७. से किं तं संखप्पमाणे ?

सखप्पमाणे अट्ठविहे पण्णत्ते। तं जहा—नामसंखा ठवणसखा दव्वसंखा ओवम्मसंखा परिमाण-संखा जाणणासंखा गणणासंखा भावसखा।

[४७७ प्र] भगवन् ! सख्याप्रमाण का क्या स्वरूप है ?

[४७७ उ] आयुष्मन् ! सख्याप्रमाण आठ प्रकार का कहा है। यथा—१ नामसख्या, २. स्थापनासख्या, ३ द्रव्यसख्या, ४ औपम्यसख्या, ५ परिमाणसख्या, ६ ज्ञानसख्या, ७ गणनासख्या ८. भावसख्या।

विवेचन—सूत्र मे भेदो के द्वारा सख्याप्रमाण का वर्णन प्रारम्भ किया है।

जिसके द्वारा सख्या—गणना की जाये उसे अथवा गणना को सख्या कहते है। सख्या रूप प्रमाण सख्याप्रमाण कहलाता है। प्राकृत भाषा मे 'शषो स' सूत्र से शख के 'श' के स्थान पर 'स' आदेश हो जाता है। अत यहाँ 'सखा' शब्द से सख्या और शख दोनो का ही ग्रहण समझना चाहिये, जैसे 'गो' शब्द से पशु, भूमि इत्यादि का। सख्या और शख इन दोनो का सख शब्द से ग्रहण होने के कारण नाम-स्थापना आदि के विचार मे जहाँ सख्या अथवा शख शब्द घटित होता हो वहाँ-वहाँ उस-उस शब्द की योजना कर लेना चाहिये।

नाम-स्थापना संख्या

४७८. से किं तं नामसंखा ?

नामसंखा जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा संखा ति णामं कज्जति। से तं नामसंखा।

[४७८ प्र] भगवन् ! नामसख्या का क्या स्वरूप है ?

[४७८ उ] आयुष्मन् ! जिस जीव का अथवा अजीव का अथवा जीवो का अथवा अजीवो

का अथवा तदुभय (एक जीव, एक अजीव दोनो) का अथवा तदुभयों (अनेक जीवो-अजीवो दोनो) का सख्या ऐसा नामकरण कर लिया जाता है, उसे नामसख्या कहते है।

४७९. से किं तं ठवणासंखा ?

ठवणासंखा जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिकम्मे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एक्को वा अणेगा वा सब्भावठवणाए वा असब्भावठवणाए वा संखा ति ठवणा ठवेज्जति। से तं ठवणासंखा।

[४७९ प्र] भगवन्! स्थापनासख्या का क्या स्वरूप है ?

[४७९ उ] आयुष्मन्! जिस काष्ठकर्म मे, पुस्तकर्म मे या चित्रकर्म मे या लेप्यकर्म मे अथवा ग्रन्थिकर्म मे अथवा वेढित मे अथवा पूरित में अथवा सघातिम मे अथवा अक्ष मे अथवा वराटक में अथवा एक या अनेक मे सद्भूतस्थापना या असद्भूतस्थापना द्वारा 'सख्या' इस प्रकार का स्थापन (आरोप) कर लिया जाता है, वह स्थापनासख्या है।

४८०. नाम—ठवणाणं को पतिविसेसो ?

नामं आवकहियं, ठवणा इत्तिरिया वा होज्जा आवकहिया वा।

[४८० प्र] भगवन्! नाम और स्थापना मे क्या अन्तर है ?

[४८० उ] आयुष्मन्! नाम यावत्कथिक (वस्तु के रहने पर्यन्त) होता है लेकिन स्थापना इत्वरिक (स्वल्पकालिक) भी होती है और यावत्कथिक भी होती है।

विवेचन—नाम और स्थापना सख्या का विशेष स्पष्टीकरण नाम-आवश्यक एव स्थापना-आवश्यक के अनुसार समझ लेना चाहिये। नाम और स्थापना आवश्यक सम्बन्धी वर्णन पूर्व मे विस्तार से किया जा चुका है।

द्रव्यसंख्या

४८१. से किं त दव्वसखा ?

दव्वसखा दुविहा प०। त—आगमओ य नोआगमतो य।

[४८१ प्र] भगवन्! द्रव्यशख का क्या तात्पर्य है ?

[४८१ उ] आयुष्मन्! द्रव्यशख दो प्रकार का कहा है, जैसे—१. आगमद्रव्यशख, २ नोआगमद्रव्यशख।

४८२. से किं त आगमओ दव्वसखा ?

दव्वसंखा जस्स णं संखा ति पदं सिक्खितं ठियं जियं मियं परिजियं जाव कंठोट्ठविप्पमुक्कं (गुरुवायणोवगयं), से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए, नो अणुप्पेहाए, कम्हा ? अणुवओगो दव्वमिति कट्टु।

[४८२ प्र] भगवन्! आगमद्रव्यशख का क्या स्वरूप है ?

[४८२ उ.] आयुष्मन् ! आगमद्रव्यशख (सख्या) का स्वरूप इस प्रकार है—जिसने शख (संख्या) यह पद सीख लिया, हृदय मे स्थिर किया, जित किया—तत्काल स्मरण हो जाये ऐसा याद किया, मित किया—मनन किया, अधिकृत कर लिया अथवा (आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी पूर्वक जिसको सर्व प्रकार से बार-बार दुहरा लिया) यावत् निर्दोष स्पष्ट स्वर से शुद्ध उच्चारण किया तथा गुरु से वाचना ली, जिससे वाचना, पृच्छना, परावर्तना एव धर्मकथा से युक्त भी हो गया परन्तु जो अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप अनुप्रेक्षा से रहित हो, उपयोग न होने से वह आगम से द्रव्यशख (सख्या) कहलाता है । क्योकि सिद्धान्त मे 'अनुपयोगो द्रव्यम्'—उपयोग से शून्य को द्रव्य कहा है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे द्रव्यसख्या के भेदो का कथन करके प्रथम भेद आगमद्रव्यशख (सख्या) का स्वरूप बतलाया है । कोई पुरुष शख (सख्या) पद का भली-भाति सर्व प्रकार से ज्ञाता है, किन्तु जब उसके उपयोग से रहित है अर्थात् उसके चिन्तन, मनन, ध्यान, विचार मे स्थित नही है, तब उसकी आगमद्रव्यशख सज्ञा है । यद्यपि वर्तमान मे उपयोग रहित है फिर भी उस उपयोग के सस्कार सहित होने से (भूतपूर्वप्रज्ञापननय की अपेक्षा) आगम शब्द का प्रयोग किया जाता है । आगम द्रव्यशख (सख्या) विषयक नयदृष्टिया इस प्रकार है—

आगमद्रव्यसंख्या : नयदृष्टियां

४८३. [१] **[णेगमस्स] एक्को अणुवउत्तो आगमतो एका दव्वसंखा, दो अणुवउत्ता आगमतो दो दव्वसखाओ, तिन्नि अणुवउत्ता आगमतो तिन्नि दव्वसंखाओ, एवं जावतिया अणुवउत्ता तावतियाओ [णेगमस्स आगमतो] दव्वसखाओ ।**

[४८३-१] (नैगमनय की अपेक्षा) एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यशख (सख्या), दो अनुपयुक्त आत्मा दो आगमद्रव्यशख, तीन अनुपयुक्त आत्मा तीन आगमद्रव्यशख है । इस प्रकार जितनी अनुपयुक्त आत्माये है उतने ही (नैगमनय की अपेक्षा आगम) द्रव्यशख है ।

[२] एवामेव ववहारस्स वि ।

[४८३-२] व्यवहारनय नैगमनय के समान ही आगमद्रव्यशख को मानता है ।

[३] संगहस्स एको वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा [आगमओ] दव्वसंखा वा दव्वसंखाओ वा [सा एगा दव्वसखा] ।

[४८३-३] सग्रहनय (सामान्य-मात्र को ग्रहण करने वाला होने से) एक अनुपयुक्त आत्मा (आगम से) एक द्रव्यशख और अनेक अनुपयुक्त आत्माये अनेक आगमद्रव्यशख, ऐसा स्वीकार नही करता किन्तु सभी को एक ही आगमद्रव्यशख मानता है ।

[४] उज्जुसुयस्स [एगो अणुवउत्तो] आगमओ एका दव्वसंखा, पुहत्तं णेच्छति ।

[४८३-४] ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा (एक अनुपयुक्त आत्मा) एक आगमद्रव्यशख है । वह भेद को स्वीकार नही करता है ।

[५] तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू, कम्हा ? जति जाणए अणुवउत्ते ण भवति । से तं आगमओ दव्वसंखा ।

[४८३-५] तीनो शब्द नय (शब्द, समभिरूढ और एवभूत नय) अनुपयुक्त ज्ञायक को अवस्तु—असत् मानते हैं। क्योंकि यदि ज्ञायक है तो अनुपयुक्त (उपयोगरहित) नही होता है और यदि अनुपयुक्त हो तो वह ज्ञायक नही होता है। इसलिये आगमद्रव्यशख सभव नही है।

यह आगमद्रव्यशख का स्वरूप है।

विवेचन—आगमद्रव्य-आवश्यक के वर्णन मे नयदृष्टियो का विस्तार से विचार किया जा चुका है। अत उसी तरह आवश्यक के स्थान पर शख शब्द रखकर यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

नोआगमद्रव्यसंख्यानिरूपण

४८४. से किं त नोआगमतो दव्वसखा ?

नोआगमतो दव्वसंखा तिविहा पं०। त०—जाणयसरीरदव्वसखा भवियसरीरदव्वसंखा जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्ता दव्वसंखा।

[४८४ प्र] भगवन्! नोआगमद्रव्यसख्या का क्या स्वरूप है?

[४८४ उ] आयुष्मन्! नोआगमद्रव्यसख्या के तीन भेद है—१ ज्ञायकशरीरद्रव्यसख्या २ भव्यशरीरद्रव्यसख्या, ३ ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यसख्या।

४८५. से किं तं जाणगसरीरदव्वसंखा ?

जाणगसरीरदव्वसखा संखा ति पयत्थाहिकार-जाणगस्स जं सरीरयं ववगय-चुय-चइत-चत्तदेहं जीवविप्पजढं जाव अहो! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं संखा ति पयं आघवितं जाव उवदंसियं, जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे आसि। से तं जाणगसरीरदव्वसंखा।

[४८५ प्र.] भगवन्! ज्ञायकशरीरद्रव्यसख्या का क्या स्वरूप है?

[४८५ उ] आयुष्मन्! सख्या इस पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का वह शरीर, जो व्यपगत—चैतन्य से रहित हो गया हो, च्युत-च्यवित-त्यक्त देह यावत् जीवरहित शरीर को देखकर कहना—अहो! इस शरीर रूप पुद्गलसघात (समुदाय) ने सख्या पद को (गुरु से) ग्रहण किया था, पढा था यावत् उपदर्शित किया था—नय और युक्तियो द्वारा शिष्यो को समझाया था, (उसका वह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्यसंख्या है।)

[प्र.] इसका कोई दृष्टान्त है?

[उ.] (हाँ, दृष्टान्त है—जैसे घडे मे से घी निकालने के बाद भी कहा जाता है कि) यह घी का घडा है।

यह ज्ञायकशरीरद्रव्यसख्या का स्वरूप है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो में निक्षेपदृष्टि से नोआगमद्रव्यसख्या के तीन भेद करके प्रथम नोआगमज्ञायकशरीर भेद का स्वरूप बतलाया है। यहाँ आत्मा का शरीर मे आरोप करके जीव के त्यक्त शरीर को नोआगमद्रव्य कहा गया है।

चुय-चइत्त-चत्तदेहं का अर्थ—विपाकवेदन द्वारा आयुकर्म के क्षय से पके हुए फल के समान अपने आप पतित होने वाले शरीर को चुय (च्युत) शरीर, विषादि के द्वारा आयु के छिन्न होने पर निर्जीव हुए शरीर को (चइत्त) च्यावितशरीर तथा सलेखना सथारापूर्वक स्वेच्छा से त्यागे गये शरीर को चत्तदेह (त्यक्तशरीर) कहते है।

भव्यशरीरद्रव्यसंख्या निरूपण

४८६. से किं तं भवियसरीरदव्वसखा ?

भवियसरीरदव्वसंखा जे जीवे जोणीजम्मणणिक्खंते इमेणं चेव आदत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं संखा ति पय सेकाले सिक्खिस्सति, जहा को दिट्ठंतो ? अय घयकुंभे भविस्सति। से तं भवियसरीरदव्वसखा।

[४८६ प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्यसख्या का क्या स्वरूप है ?

[४८६ उ] आयुष्मन् ! जन्म समय प्राप्त होने पर जो जीव योनि से बाहर निकला और भविष्य मे उसी शरीरपिड द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार सख्या पद को सीखेगा (वर्तमान मे सीख नही रहा है) ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यसख्या है।

[प्र] इसका कोई दृष्टान्त है ?

[उ] (जैसे घी भरने के लिये कोई घडा हो किन्तु अभी उसमे घी नही भरा हो तो उसके लिये कहना) यह घृतकुभ—घी का घडा होगा। यह भव्यशरीरद्रव्यसख्या का स्वरूप है।

विवेचन—सूत्र मे भव्यशरीरद्रव्यसख्या (शख) का स्वरूप बताया है। यह भविष्यकालीन योग्यता की अपेक्षा जानना चाहिये। पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा भावी पर्याय की मुख्यता से यह भेद बनता है।

ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यशंख

४८७. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसखा ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसखा तिविहा पण्णत्ता। त जहा—एगभविए बद्धाउए अभिमुहणामगोत्ते य।

[४८७ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यशंख का क्या स्वरूप है ?

[४८७ उ] आयुष्मन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यशख के तीन प्रकार है—१ एकभविक, २ बद्धायुष्क और ३ अभिमुखनामगोत्र।

विवेचन—इस सूत्र मे ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यशख का भेदमुखेन स्वरूप बतलाया है। सक्षेप मे इसके लिये 'तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

एकभविक आदि का आशय—जिस जीव ने अभी तक शखपर्याय की आयु का बध नही किया है, परन्तु मरण के अनन्तर शंखपर्याय प्राप्त करने वाला है उसे **एकभविक** कहते हैं। जिस जीव ने शखपर्याय में उत्पन्न होने योग्य आयु का बध कर लिया है, ऐसा जीव **बद्धायुष्क** कहलाता

है। निकट भविष्य में जो जीव शखयोनि मे उत्पन्न होने वाला है तथा जिसके द्वीन्द्रिय जाति आदि नामकर्म एव नीचगोत्र रूप गोत्रकर्म जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त के बाद उदयाभिमुख होने वाला है, उस जीव को **अभिमुखनामगोत्रशंख** कहते है।

ये तीनो प्रकार के जीव भावशखता के कारण होने से ज्ञशरीर और भव्यशरीर इन दोनो से व्यतिरिक्त द्रव्यशख रूप है।

द्विभविक, त्रिभविक, चतुर्भविक आदि जीवो को द्रव्यशख इसलिये नही कहते है कि ऐसे जीव भावशखता के अव्यवहित कारण नही है। वे मरकर प्रथम भव मे शख की पर्याय मे उत्पन्न नही होकर दूसरी-दूसरी पर्यायों मे उत्पन्न होते हैं। जबकि एकभविक भावशखता के प्रति अव्यवहित कारण है। वह जीव मरकर निश्चित रूप से शख की पर्याय मे ही उत्पन्न होने वाला है। इसीलिये उसकी द्रव्यशख यह सज्ञा है।[1]

४८८. एगभविए णं भंते ! एगभविए त्ति कालतो केवचिर होति ?

जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[४८८ प्र] भगवन्! एकभविक जीव 'एकभविक' ऐसा नाम वाला कितने समय तक रहता है?

[४८८ उ] आयुष्मन्! एकभविक जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि पर्यन्त (एकभविक नाम वाला) रहता है।

विवेचन—सूत्र मे एकभविक द्रव्यशख की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति क्रमश अन्तर्मुहूर्त और एक पूर्वकोटि की इसलिये बताई है कि पृथ्वी आदि किसी एकभव मे अन्तर्मुहूर्त तक जीवित रहकर तदनन्तर जो मरण करके शखपर्याय मे उत्पन्न हो जाता है, वह जीव अन्तर्मुहूर्त तक एकभविक शख कहलाता है। जीवो की कम से कम आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है, इसीलिये जघन्य पद मे अन्तर्मुहूर्त का ग्रहण किया है। जो जीव मत्स्य आदि किसी एक भव मे उत्कृष्ट रूप से एक पूर्वकोटि तक जीवित रहकर मरते ही शखपर्याय मे उत्पन्न होता है, वह पूर्वकोटि तक एकभविक शख कहलाता है। क्योकि जिस जीव की पूर्वकोटि से अधिक आयु होती है वह असख्यात वर्ष की आयु वाला होने से मरकर देवपर्याय मे ही उत्पन्न होता है, शखपर्याय मे नही। इस कारण उत्कृष्ट पद मे पूर्वकोटि का कथन किया है।

४८९. बद्धाउए णं भंते ! बद्धाउए त्ति कालतो केवचिरं होति ?

जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीतिभागं।

[४८९ प्र.] भगवन्! बद्धायुष्क जीव बद्धायुष्क रूप मे कितने काल तक रहता है?

[४८९ उ] आयुष्मन्! (बद्धायुष्क जीव बद्धायुष्क रूप मे) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक पूर्वकोटि वर्ष के तीसरे भाग तक रहता है।

विवेचन—सूत्रगत कथन का आशय यह है कि जबसे कोई जीव भुज्यमान आयु मे रहते

---

१ अनुयोग मलधारीयावृत्ति पृ. २३१

परभव की आयु का बध कर लेता है, तब से उसे बद्धायुष्क कहते है। यहाँ बद्धायुष्क द्रव्यशंख के समय का विचार किया जा रहा है। अतएव भुज्यमान आयु जघन्य से अन्तर्मुहूर्त जब शेष रह जाये, उस समय कोई जीव शख योनि की आयु का बध करे, उसकी अपेक्षा बद्धायुष्क का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है और भुज्यमान आयु के पूर्वकोटि के त्रिभाग बाकी रहने पर जो जीव परभव की आयु का बध करता है, उसकी अपेक्षा पूर्वकोटि का त्रिभाग समय कहा है।

४९०. अभिमुहनामगोत्ते णं भंते ! अभिमुहनामगोत्ते त्ति कालतो केवचिरं होति ?

जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

[४९० प्र] भगवन् ! अभिमुखनामगोत्र (शख) का अभिमुखनामगोत्र नाम कितने काल तक रहता है ?

[४९० उ] आयुष्मन् ! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहता है।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तर का तात्पर्य यह है कि जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अभिमुख नामगोत्र वाला रहकर बाद मे भावशख रूप पर्याय को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार एकभविक और बद्धायुष्क के लिये भी समझना चाहिये कि वे जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थिति के बाद अवश्य ही भावरूपता को प्राप्त हो जाते हैं।

एकभविक आदि शंखविषयक नयदृष्टि

४९१. इयाणिं को णओ कं संखं इच्छति ?

तत्थ णेगम-संगह-ववहारा तिविहं संखं इच्छंति, तं जहा—एक्कभवियं बद्धाउयं अभिमुहनामगोत्तं च। उजुसुओ दुविहं संखं इच्छति, तं जहा—बद्धाउयं च अभिमुहनामगोत्तं च। तिण्णि सद्दणया अभिमुहणामगोत्तं संखं इच्छति। से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा। से तं नोआगमओ दव्वसंखा। से तं दव्वसंखा।

[४९१ प्र] भगवन् ! कौन नय इन तीन शंखो मे से किस शख को मानता है ?

[४९१ उ] आयुष्मन् ! नैगमनय, सग्रहनय और व्यवहारनय एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र तीनो प्रकार के शखो को शख मानते है। ऋजुसूत्रनय १ बद्धायुष्क और २. अभिमुखनामगोत्र, ये दो प्रकार के शख स्वीकार करता है। तीनो शब्दनय मात्र अभिमुखनामगोत्र शख को ही शख मानते है।

इस प्रकार ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यशख का स्वरूप जानना चाहिये।

यही नोआगम द्रव्यशख (सख्या) का स्वरूप है और इसी के साथ द्रव्यसख्या का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तद्व्यतिरिक्त शख (सख्या) के विषय मे नयो का मतव्य स्पष्ट करते हुए द्रव्यसख्याप्रमाण की समाप्ति का कथन किया है।

नैगम आदि प्रथम तीन नय स्थूल दृष्टि वाले होने से तीनों प्रकार के शखों को शख रूप मे मानते है। क्योकि वे आगे होने वाले कार्य के कारण मे कार्य का उपचार करके वर्त्तमान में उसे कार्य रूप मे मान लेते है, जैसे भविष्य मे राजा होने वाले राजकुमार को भी राजा कहते है। इसी

प्रकार एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र, ये तीनो प्रकार के द्रव्यशख अभी तो नही किन्तु भविष्य मे भावशख होगे, इसीलिये ये तीनो नय इनको भावशख रूप मे स्वीकार करते है।

ऋजुसूत्रनय पूर्व नयत्रय की अपेक्षा विशेष शुद्ध है। अत यह बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र—इन दो प्रकार के शखो को मानता है। इसका मत है कि एकभविक जीव को शख नही मानना चाहिए, क्योंकि वह भावशख से अतिव्यवहित—बहुत अन्तर पर है। उसे शख मानने मे अतिप्रसग दोष होगा।

शब्द, समभिरूढ और एवभूत नय ऋजुसूत्रनय से भी शुद्ध है। इस कारण भावशख के समीप होने से तीसरे—अभिमुखनामगोत्र शख को तो शख मानते है, किन्तु प्रथम दोनो प्रकार के (एकभविक, बद्धायुष्क) शख भावशख के प्रति अति व्यवहित होने से उन्हे शख के रूप मे मान्य नही करते।

प्राकृत 'सखा' शब्द के सख्या और शख ये दो रूप होने से प्रस्तुत निरूपण मे जहाँ जो रूप घटित हो सकता हो, वह घटित कर लेना चाहिए।

औपम्यसंख्यानिरूपण

४९२. [१] **से किं तं ओवम्मसंखा ?**

ओवम्मसखा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—अत्थि सतय संतएण उवमिज्जइ १ अत्थि संतय असंतएणं उवमिज्जइ २ अत्थि असतयं संतएण उवमिज्जइ ३ अत्थि असतय असंतएण उवमिज्जइ ४।

[४९२-१ प्र] भगवन् ! औपम्यसख्या का क्या स्वरूप है ?

[४९२-१ उ] आयुष्मन् ! (उपमा देकर किसी वस्तु के निर्णय करने को औपम्यसख्या कहते है।) उसके चार प्रकार हैं। जैसे—

१ सद् वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना।

२ सद् वस्तु को असद् वस्तु से उपमित करना।

३ असद् वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना।

४ असद् वस्तु को असद् वस्तु की उपमा देना।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट है। यहाँ औपम्यसख्या के चार प्रकार बतलाए है, जिनका आगे वर्णन करते है।

सद्-सद्रूप औपम्यसंख्या

[२] **तत्थ सतयं सतएण उवमिज्जइ, जहा—संता अरहता सतएहि पुरवरेहि संतएहि कवाडएहि संतएहि वच्छएहि उवमिज्जंति, तं जहा—**

पुरवरकवाडवच्छा फलिहभुया दुदुभित्थणियघोसा।
सिरिवच्छंकियवच्छा सव्वे वि जिणा चउव्वीसं॥ ११९॥

[४९२-२] इनमे से जो सद् वस्तु को सद् वस्तु से उपमित किया जाता है, वह इस प्रकार है—

सद्रूप अरिहत भगवन्तो के प्रशस्त वक्षस्थल को सद्रूप श्रेष्ठ नगरो के सत् कपाटो की उपमा देना, जैसे—

सभी चौबीस जिन-तीर्थंकर प्रधान-उत्तम नगर के (तोरणद्वार—फाटक के) कपाटों के समान वक्षस्थल, अर्गला के समान भुजाओं, देवदुन्दुभि या स्तनित(मेघ के निर्घोष) के समान स्वर और श्रीवत्स (स्वस्तिक विशेष) से अंकित वक्षस्थल वाले होते है । ११९

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सद्रूप पदार्थ को सद्रूप पदार्थ से उपमित किया गया है। चौबीस जिन भगवान् सद्रूप है और नगर के कपाटो का भी अस्तित्व है। सद्रूप कपाटो से अरिहत भगवन्तो के वक्ष स्थल को जो उपमित किया गया है, उसमे कपाट उपमान है और अरिहत भगवन्तो का वक्ष.स्थल उपमेय है। इसी प्रकार उनकी भुजाओ आदि के विषय मे भी समझना चाहिये। तात्पर्य यह है कि यदि कोई, तीर्थकर के वक्ष स्थल आदि कैसे होते है ? यह जानना चाहता है तो वह नगर के मुख्य प्रवेशद्वार के कपाट आदि उपमानो के द्वारा उपमेयभूत अरिहतो के वक्ष स्थल आदि को जान लेता है तथा वक्ष स्थल आदि तीर्थकर के अविनाभावी होने से तीर्थकर भी उपमित हो जाते है।

सद्-असद्रूप औपम्यसंख्या

[३] संतय असतएण उवमिज्जइ जहा—सताइ नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणूस-देवाणं आउयाइं असतएहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं उवमिज्जंति।

[४९२-३] विद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना। जैसे नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवो की विद्यमान आयु के प्रमाण को अविद्यमान पल्योपम और सागरोपम द्वारा बतलाना।

विवेचन—इस कथन मे नारक आदि जीवो का आयुष्य सद्रूप है और पल्योपम-सागरोपम असद्रूप कल्पना द्वारा परिकल्पित होने से असद्रूप है। किन्तु इनके द्वारा ही उनकी आयु बताई जा सकती है। इसीलिये इसको सद्रूप उपमेय और असद्रूप उपमान के रूप मे प्रस्तुत किया है। नारकादिको की आयु उपमेय है और पल्योपम एव सागरोपम उपमान है।

असत्-सत् औपम्यसंख्या

[४] असंतयं संतएण उवमिज्जंति जहा—

परिजूरियपेरंतं चलंतबेंटं पडंत निच्छीरं।
पत्तं वसणप्पत्तं कालप्पत्तं भणइ गाहं ॥ १२० ॥
जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हे वि य होहिहा जहा अम्हे।
अप्पाहेति पडतं पंडुयपत्तं किसलयाणं ॥ १२१ ॥
णवि अत्थि णवि य होही उल्लावो किसल-पंडुपत्ताणं।
उवमा खलु एस कया भवियजणविबोहणट्ठाए ॥ १२२ ॥

[४९२-४] अविद्यमान—असद्वस्तु को विद्यमान सद्वस्तु से उपमित करने को असत्-सत् औपम्यसख्या कहते हैं। वह इस प्रकार है—

सर्व प्रकार से जीर्ण, डठल से टूटे, वृक्ष से नीचे गिरे हुए, निस्सार और (वृक्ष से वियोग हो जाने से) दु.खित ऐसे पत्ते ने वसत समय प्राप्त नवीन पत्ते (किसलय—कोपल) से कहा—

किसी गिरते हुए पुराने—जीर्ण पीले पत्ते ने नवोद्गत किसलयों—कोपलों से कहा—इस समय जैसे तुम हो, हम भी पहले वैसे ही थे तथा इस समय जैसे हम हो रहे हैं, वैसे ही आगे चलकर तुम भी हो जाओगे।

यहाँ जो जीर्ण पत्तो और किसलयो के वार्तालाप का उल्लेख किया गया है, वह न तो कभी हुआ है, न होता है और न होगा, किन्तु भव्य जनो के प्रतिबोध के लिये उपमा दी गई है। १२०, १२१, १२२।

विवेचन—प्रस्तुत दृष्टान्त मे 'जह तुब्भे तह अम्हे' इस पद मे उपमाभूत किसलय अवस्था तत्काल विद्यमान होने से सद्रूप है और उपमेयभूत तथाविध जीर्ण आदि रूप पत्रावस्था अविद्यमान होने से असद्रूप है तथा 'तुम्हे वि य होहिहा जहा अम्हे' यहाँ जीर्ण-शीर्ण आदि पत्रावस्था तत्कालवर्ती होने से सद्रूप है और किसलयो की तथाविध अवस्था भविष्यकालीन होने के कारण वर्त्तमान में अविद्यमान होने से असद्रूप है। इस प्रकार असत् सत् से उपमित हुआ है।

सूत्रोक्त तीन गाथाये भव्य जनो के प्रतिबोधनार्थ है, यथा—ससार की सभी वस्तुए अनित्य होने से कभी भी एक जैसी नही रहती हैं। अत स्वाभ्युदय मे अहकार और पर का अनादर नही करना चाहिये।

असद्-असद्रूप औपम्यसंख्या

[५] असतयं असंतएण उवमिज्जति—जहा खरविसाण तहा ससविसाण। से त ओवम्मसखा।

[४९२-५] अविद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना असद्-असद्रूप औपम्यसख्या है। जैसा—खर (गधा) विषाण (सीग) है वैसा ही शश (खरगोश) विषाण है और जैसा शशविषाण है वैसा ही खरविषाण है।

इस प्रकार से औपम्यसख्या का निरूपण जानना चाहिये।

विवेचन—इस विकल्प मे उपमानभूत खरविषाण का त्रिकाल मे भी सत्त्व न होने से वे असद्रूप है, वैसे ही उपमेयभूत शशविषाण भी असद्-रूप है। इस प्रकार असत् से असत् उपमित हुआ है।

परिमाणसंख्यानिरूपण

४९३. से किं तं परिमाणसंखा?

परिमाणसंखा दुविहा पण्णत्ता। तं०—कालियसुयपरिमाणसंखा दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा य।

[४९३ प्र] भगवन्! परिमाणसख्या का क्या स्वरूप है?

[४९३ उ.] आयुष्मन्! परिमाणसख्या दो प्रकार की कही गई है। जैसे—१ कालिकश्रुत-परिमाणसख्या और २ दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसख्या।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र परिमाणसंख्या के निरूपण की भूमिका है। जिसकी गणना की जाये उसे सख्या और जिसमे पर्यव आदि के परिमाण का विचार किया जाये उसे परिमाणसख्या कहते हैं।

कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या

४९४. से किं तं कालियसुयपरिमाणसंखा ?

कालियसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जवसंखा अक्खरसंखा संघायसंखा पयसंखा पायसंखा गाहासंखा सिलोगसंखा वेढसंखा निज्जुत्तिसंखा अणुओगदारसंखा उद्देसगसंखा अज्झयणसंखा सुयखंधसंखा अंगसंखा । से तं कालियसुयपरिमाणसंखा ।

[४९४ प्र.] भगवन् ! कालिकश्रुतपरिमाणसख्या क्या है ?

[४९४ उ] आयुष्मन् ! कालिकश्रुतपरिमाणसख्या अनेक प्रकार की कही गई है । यथा—१ पर्यव (पर्याय) सख्या, २ अक्षरसख्या, ३ सघातसख्या, ४. पदसख्या, ५ पादसख्या, ६ गाथासख्या, ७ श्लोकसख्या, ८ वेढ (वेष्टक) सख्या, ९ निर्युक्तिसंख्या, १० अनुयोगद्वारसख्या, ११ उद्देशसख्या, १२ अध्ययनसख्या, १३ श्रुतस्कन्धसख्या, १४ अगसख्या आदि कालिकश्रुतपरिमाणसख्या है ।

विवेचन— प्रस्तुत सूत्र मे कालिकश्रुतपरिमाण की सख्या के कतिपय नामों का उल्लेख किया है ।

जिस श्रुत का रात्रि व दिन के प्रथम और अतिम प्रहर मे स्वाध्याय किया जाये उसे कालिक-श्रुत कहते है । इसके अनेक प्रकार हैं । जैसे—उत्तराध्ययनसूत्र, दशाश्रुतस्कन्धकल्प (बृहत्कल्प), व्यवहारसूत्र, निशीथसूत्र आदि ।[1] जिसके द्वारा इनके श्लोक आदि के परिमाण का विचार हो उसे कालिकश्रुतपरिमाणसख्या कहते है ।

पर्यवसंख्या आदि के अर्थ—१ पर्यव, पर्याय अथवा धर्म और उसकी सख्या को **पर्यवसंख्या** कहते है ।

२ अकार आदि अक्षरो की सख्या-गणना को **अक्षरसंख्या** कहते है । अक्षर सख्यात होते है, अनन्त नही । इसलिये अक्षरसख्या सख्यात है ।

३ दो आदि अक्षरो के सयोग को सघात कहते हैं । इसकी सख्या—गणना सघातसख्या कहलाती है । यह सघातसख्या भी सख्यात ही है ।

४ सुबन्त और तिङन्त अक्षरसमूह पद कहलाता है । पदो की सख्या को **पदसंख्या** कहते हैं ।

५ श्लोक आदि के चतुर्थांश को पाद कहते हैं । इनकी सख्या को **पादसख्या** कहते है ।

६. प्राकृत भाषा में लिखे गये छन्दविशेष को गाथा कहते है । इस गाथा-सख्या-गणना का नाम **गाथासंख्या** है ।

७ श्लोकों की सख्या **श्लोकसंख्या** है ।

८. वेष्टको (छन्दविशेष) की सख्या **वेष्टकसंख्या** कहलाती है ।

---

१. कालिकश्रुत के रूप मे सकलित सूत्रो के नाम आदि विशेष वर्णन के लिये देखिये नन्दीसूत्र (आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर) सूत्र ८१

९ निर्युक्ति की सख्या को **निर्युक्तिसख्या** कहते हैं।

१० व्याख्या के उपायभूत सत्पदप्ररूपण अथवा उपक्रम आदि अनुयोगद्वार कहलाते हैं। इनकी सख्या को **अनुयोगद्वारसंख्या** कहते है।

११ अध्ययनो के अशविशेष को उद्देशक कहते है। इनकी सख्या **उद्देशकसंख्या** कहलाती है।

१२ शास्त्र के भागविशेष को अध्ययन कहते है। इनकी सख्या **अध्ययनसंख्या** है।

१३ अध्ययनो के समूह रूप शास्त्राश का नाम श्रुतस्कन्ध है। इनकी सख्या **श्रुतस्कन्धसंख्या** कहलाती है।

१४ अगो की सख्या को **अंगसख्या** कहते है। आचाराग आदि आगमो का नाम अग है।

इस प्रकार से कालिकश्रुतपरिमाणसख्या का निरूपण जानना चाहिये।

दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्यानिरूपण

४९५. से किं त दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा ?

दिट्ठिवायसुयपरिमाणसखा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जवसखा जाव अणओगदारसखा पाहुडसंखा पाहुडियासंखा पाहुडपाहुडियासंखा वत्थुसंखा पुव्वसंखा। से तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसखा। से तं परिमाणसंखा।

[४९५ प्र] भगवन्! दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसख्या क्या है?

[४९५ उ] आयुष्मन्! दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसख्या के अनेक प्रकार कहे गये है। यथा—पर्यवसख्या यावत् अनुयोगद्वारसख्या, प्राभृतसख्या, प्राभृतिकासख्या, प्राभृतप्राभृतिकासख्या, वस्तुसख्या और पूर्वसख्या। इस प्रकार से दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसख्या का स्वरूप जानना चाहिये।

यही परिणामसख्या का निरूपण है।

विवेचन—इस सूत्र मे दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसख्या का प्रतिपादन किया है। जिसमे पर्यवसख्या से लेकर अनुयोगद्वारसख्या तक के नाम तो कालिकश्रुतपरिमाणसख्या के अनुरूप है और शेष प्राभृत आदि अधिक नामो का उल्लेख सूत्र मे किया है।

ये प्राभृत आदि सब पूर्वान्तर्गत श्रुताधिकार विशेष है।[1]

इस प्रकार से परिमाणसख्या का निर्देश करने के बाद अब ज्ञानसख्या के स्वरूप का वर्णन किया जाता है।

ज्ञानसंख्यानिरूपण

४९६. से किं तं जाणणासंखा ?

जाणणासंखा जो जं जाणइ सो तं जाणति, तं जहा—सद्दं सद्दिओ, गणियं गणिओ, निमित्तं नेमित्तिओ, कालं कालनाणी, वेज्जो वेज्जियं। से तं जाणणासंखा।

---

१ प्राभृतादय पूर्वान्तर्गता श्रुताधिकारविशेषा। —अनुयोगद्वार टीका पृ २३४

[४९६ प्र] भगवन् ! ज्ञानसंख्या का क्या स्वरूप है ?

[४९६ उ] आयुष्मन् ! जो जिसको जानता है उसे ज्ञानसंख्या कहते हैं। जैसे कि—शब्द को जानने वाला शाब्दिक, गणित को जानने वाला गणितज्ञ—गणिक, निमित्त को जानने वाला नैमित्तिक, काल को जानने वाला कालज्ञानी (कालज्ञ) और वैद्यक को जानने वाला वैद्य। यह ज्ञानसंख्या का स्वरूप है।

विवेचन—जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाता है—निश्चय किया जाता है, उसे ज्ञान और इस ज्ञान रूप संख्या को ज्ञानसंख्या कहते हैं। जैसे देवदत्त आदि जिस शब्द आदि को जानता है, वह उस शब्दज्ञान वाला आदि कहा जाता है। यह कथन ज्ञान और ज्ञानी में अभेदोपचार की अपेक्षा जानना चाहिये।

इसी को ज्ञानसंख्या कहते हैं। अब गणनासंख्या का स्वरूपनिरूपण करते हैं।

गणनासंख्यानिरूपण

४९७. से किं तं गणणासंखा ?

गणणासंखा एक्को गणणं न उवेति, दुप्पभिति संखा। तं जहा—संखेज्जए असंखेज्जए अणंतए।

[४९७ प्र] भगवन् ! गणनासंख्या का क्या स्वरूप है ?

[४९७ उ] आयुष्मन् ! (ये इतने हैं, इस रूप में गिनती करने को गणनासंख्या कहते हैं।) 'एक' (१) गणना नहीं कहलाता है इसलिये दो से गणना प्रारम्भ होती है। वह गणनासंख्या १ संख्यात, २ असंख्यात और ३ अनन्त, इस तरह तीन प्रकार की जानना चाहिये।

विवेचन—'ये इतने हैं' इस रूप से गिनती को गणना कहते हैं और यह गणनारूप संख्या गणनासंख्या कहलाती है।[1] यह गणना दो से प्रारम्भ होती है। एक संख्या तो है किन्तु गणना नहीं है। क्योंकि एक घटादि पदार्थ के दिखने पर घटादिक रखे है ऐसा कहा जाता है किन्तु 'एक संख्या विशिष्ट यह घट रखा है' ऐसी प्रतीति नहीं होती है। अथवा लेन-देन के व्यवहार में एक वस्तु प्रायः गणना की विषयभूत नहीं होती है, इसलिये असंव्यवहार्य अथवा अल्प होने के कारण एक को गणनासंख्या का विषय नहीं कहा जाता है। यह गणनासंख्या संख्येय (संख्यात), असंख्येय (असंख्यात) और अनन्त के भेद से तीन प्रकार की है। जिनका अब अनुक्रम से विस्तृत वर्णन करते हैं।

संख्यात आदि के भेद

४९८. से किं तं संखेज्जए ?

संखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[४९८ प्र] भगवन् ! संख्यात का क्या स्वरूप है ?

---

१ 'एतावन्त एते' इति सङ्ख्यानं गणना सङ्ख्या। —अनु. मलधारीया वृत्ति पत्र २३४

[४९८ उ] आयुष्मन्! सख्यात तीन प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। वह इस प्रकार—१ जघन्य सख्यात, २ उत्कृष्ट सख्यात और ३ अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) सख्यात।

४९९. से किं तं असंखेज्जए?

असखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—परित्तासखेज्जए जुत्तासंखेज्जए असंखेज्जासंखेज्जए।

[४९९ प्र] भगवन्! असख्यात का क्या स्वरूप है?

[४९९ उ] आयुष्मन्! असख्यात के तीन प्रकार है। जैसे—१ परीतासख्यात, २ युक्तासख्यात और ३ असख्यातासख्यात।

५००. से किं तं परित्तासंखेज्जए?

परित्तासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तं०—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[५०० प्र] भगवन्! परीतासख्यात का क्या स्वरूप है?

[५०० उ] आयुष्मन्! परीतासख्यात तीन प्रकार का कहा है—१ जघन्य परीतासख्यात, २ उत्कृष्ट परीतासख्यात और ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) परीतासख्यात।

५०१. से किं तं जुत्तासखेज्जए?

जुत्तासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। तं०—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[५०१ प्र] भगवन्! युक्तासख्यात का क्या स्वरूप है?

[५०१ उ] आयुष्मन्! युक्तासख्यात तीन प्रकार का निरूपित किया है। यथा १ जघन्य युक्तासख्यात, २ उत्कृष्ट युक्तासख्यात और ३ अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) युक्तासख्यात।

५०२. से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए?

असखेज्जासंखेज्जए तिविहे पण्णत्ते। त जहा—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[५०२ प्र] भगवन्! असख्यातासख्यात का क्या स्वरूप है?

[५०२ उ] आयुष्मन्! असख्यातासख्यात तीन प्रकार का है। यथा—१ जघन्य असख्यातासख्यात, २. उत्कृष्ट असख्यातासख्यात और ३ अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) असख्यातासख्यात।

५०३. से किं तं अणंतए?

अणंतए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—परित्ताणंतए जुत्ताणतए अणताणतए।

[५०३ प्र] भगवन्! अनन्त का क्या स्वरूप है?

[५०३ उ] आयुष्मन्! अनन्त के तीन प्रकार है। यथा—१ परीतानन्त, २ युक्तानन्त और ३ अनन्तानन्त।

५०४ से किं त परित्ताणतए?

परित्ताणंतए तिविहे पण्णत्ते। तं०—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[५०४ प्र] भगवन्! परीतानन्त किसे कहते हैं?

[५०४ उ] आयुष्मन् ! परीतानन्त तीन प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। यथा—१ जघन्य परीतानन्त, २. उत्कृष्ट परीतानन्त और ३ अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) परीतानन्त।

५०५. से किं तं जुत्ताणंतए ?

जुत्ताणंतए तिविहे पण्णत्ते। त जहा—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए।

[५०५ प्र] भगवन् ! युक्तानन्त किसे कहते हैं ?

[५०५ उ] आयुष्मन् ! युक्तानन्त के तीन प्रकार कहे है। वे इस प्रकार—१ जघन्य युक्तानन्त, २ उत्कृष्ट युक्तानन्त ३ अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) युक्तानन्त।

५०६. से किं त अणताणंतए ?

अणंताणंतए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—जहण्णए य अजहण्णमणुक्कोसए य।

[५०६ प्र] भगवन् ! अनन्तानन्त का क्या स्वरूप है ?

[५०६ उ] आयुष्मन् ! अनन्तानन्त के दो प्रकार कहे है। यथा—१. जघन्य अनन्तानन्त और २ अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अनन्तानन्त।

विवेचन—उक्त प्रश्नोत्तरो मे गणना सख्या के सख्यात, असख्यात और अनन्त इन तीन मुख्य भेदो के अवान्तर भेद-प्रभेदो का निरूपण किया है। सख्यात के तो जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन अवान्तर भेद है। लेकिन असख्यात और अनन्त के मुख्य तीन अवान्तर भेदो के नामो में परीत और युक्त तो समान है किन्तु तीसरे भेद का नाम असख्यातासख्यात और अनन्तानन्त है।

परीतासख्यात, युक्तासख्यात और असख्यातासख्यात जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट होने से असख्यात के कुल नौ भेद है। परीतानन्त और युक्तानन्त भी जघन्य आदि तीन-तीन भेद वाले हैं। किन्तु अनन्तानन्त मे उत्कृष्ट अनन्तानन्त असभव होने से यह भेद नही बनता है। अतएव अनन्त के आठ ही भेद होते है।

उक्त कथन का सक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार है—
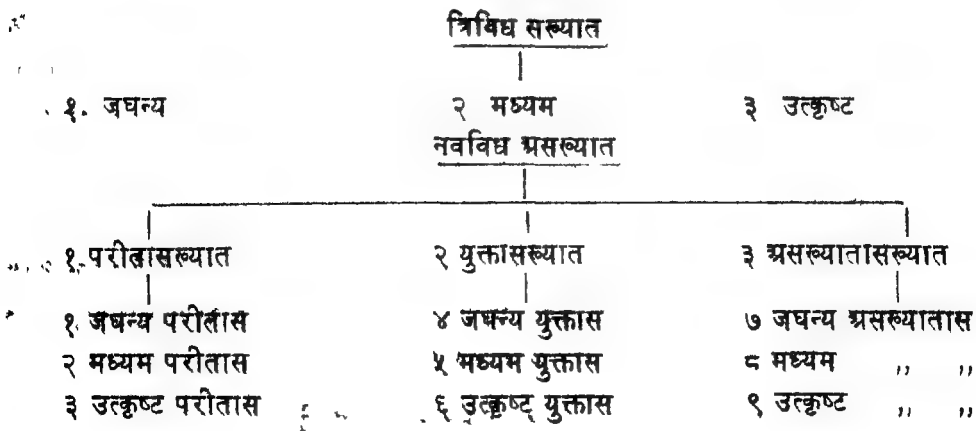
त्रिविध सख्यात

१. जघन्य | २ मध्यम | ३ उत्कृष्ट

नवविध असख्यात

१. परीतासख्यात	२ युक्तासख्यात	३ असख्यातासख्यात
१ जघन्य परीतास	४ जघन्य युक्तास	७ जघन्य असख्यातास
२ मध्यम परीतास	५ मध्यम युक्तास	८ मध्यम ,, ,,
३ उत्कृष्ट परीतास	६ उत्कृष्ट युक्तास	९ उत्कृष्ट ,, ,,

असंख्यात आदि के भेदों का विस्तार से वर्णन करने के लिये सर्वप्रथम संख्यात की प्ररूपणा की जाती है।

संख्यातनिरूपण

५०७. जहण्णयं संखेज्जयं केत्तियं होइ ?

दोरूवाइं, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

[५०७ प्र.] भगवन् ! जघन्य संख्यात कितने प्रमाण में होता है ? (अर्थात् किस संख्या से लेकर किस संख्या पर्यन्त जघन्य संख्यात माना जाता है ?)

[५०७ उ.] आयुष्मन् ! दो रूप प्रमाण जघन्य संख्यात है, उसके पश्चात् (तीन, चार आदि) यावत् उत्कृष्ट संख्यात का स्थान प्राप्त न होने तक मध्यम संख्यात जानना चाहिये।

५०८. उक्कोसयं संखेज्जयं केत्तियं होइ ?

उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स परूवणं करिस्सामि—से जहानामए पल्ले सिया, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए। ततो णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारे घेप्पति, एगे दीवे एगे समुद्दे २ एवं पक्खिप्पमाणेहिं २ जावइया णं दीव-समुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवतिए खेत्ते पल्ले आइट्ठे। से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए। ततो णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारे घेप्पति एगे दीवे एगे समुद्दे २ एवं पक्खिप्पमाणेहिं २ जावइया णं दीव-समुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवतिए खेत्ते पल्ले पढमा सलागा, एवइयाणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिया तहा वि उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

जहा को दिट्ठंतो ?

से जहानामए मंचे सिया आमलगाणं भरिते, तत्थ णं एगे आमलए पक्खित्ते से माते, अण्णे वि पक्खित्ते से वि माते, अन्ने वि पक्खित्ते से वि माते, एवं पक्खिप्पमाणे २ होही से आमलए जम्मि पक्खित्ते से मंचए भरिज्जिहिइ जे वि तत्थ आमलए न माहिति।

[५०८ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट संख्यात कितने प्रमाण में होता है ?

[१०८ उ.] आयुष्मन्! उत्कृष्ट संख्यात की प्ररूपणा इस प्रकार करूंगा—(असत्कल्पना से) एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोश, एक सौ अट्ठाईस धनुष एवं साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधि वाला कोई एक (अनवस्थित नामक) पल्य हो। (उसकी गहराई रत्नप्रभापृथ्वी के रत्नकाण्ड से भी नीचे स्थित वज्रकाण्ड पर्यन्त १००० योजन हो और ऊंचाई पद्मवरवेदिका जितनी साढे आठ योजन अर्थात् तल से शिखा तक १००८½ योजन हो। इस पल्य को सर्षपों—सरसों के दानों से भर दिया जाये। उन सर्षपों से द्वीप और समुद्रों का उद्धार-प्रमाण निकाला जाता है अर्थात् उन सर्षपों में से जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र आदि के क्रम से एक को द्वीप में, एक को समुद्र में प्रक्षेप करते-करते उन दानों से जितने द्वीप-समुद्र स्पृष्ट हो जायें—उतने क्षेत्र का अनवस्थित पल्य कल्पित करके उस पल्य को सरसों के दानों से भर दिया जावे। तदनन्तर उन सरसों के दानों से द्वीप-समुद्रों की संख्या का प्रमाण जाना जाता है। अनुक्रम से एक द्वीप में और एक समुद्र में इस तरह प्रक्षेप करते-करते जितने द्वीप-समुद्र उन सरसों के दानों से भर जाएँ, उनके समाप्त होने पर एक दाना शलाकापल्य में डाल दिया जाए। इस प्रकार के शलाका रूप पल्य में भरे सरसों के दानों से असंलप्य—अकथनीय लोक भरे हुए हों तब भी उत्कृष्ट संख्या का स्थान प्राप्त नहीं होता है।

इसके लिये कोई दृष्टान्त दीजिये? जिज्ञासु ने पूछा।

आचार्य ने उत्तर दिया—जैसे कोई एक मंच हो और वह आंवलों से पूरित हो, तदनन्तर एक आवला डाला तो वह भी समा गया, दूसरा डाला तो वह भी समा गया, तीसरा डाला तो वह भी समा गया, इस प्रकार प्रक्षेप करते-करते अंत में एक आवला ऐसा होगा कि जिसके प्रक्षेप से मंच परिपूर्ण भर जाता है। उसके बाद आवला डाला जाये तो वह नहीं समाता है। इसी प्रकार बारबार डाले गये सर्षपों से जब असंलप्य—बहुत से पल्य अंत में आमूलशिख पूरित हो जाये, उनमें एक सर्षप जितना भी स्थान न रहे तब उत्कृष्ट संख्या का स्थान प्राप्त होता है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रों में संख्यात गणनासंख्या के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट—इन तीनों भेदों का स्वरूप स्पष्ट किया है।

जघन्य संख्यात—जघन्य और मध्यम संख्यात का स्वरूप सुगम है। दो की संख्या जघन्य संख्यात है। क्योंकि जिसमें भेद—पार्थक्य प्रतीत हो उसे संख्या कहते हैं और भेद की प्रतीति कम से कम दो में होने से दो को ही जघन्य संख्यात माना जाता है।

मध्यम संख्यात—जघन्य संख्यात—दो से ऊपर और उत्कृष्ट संख्यात से पूर्व तक की मध्यवर्ती सब संख्यायें मध्यम संख्यात हैं। इसके लिये कल्पना से मान लें कि १०० की संख्या उत्कृष्ट और दो की संख्या जघन्य संख्यात है तो २ और १०० के बीच ३ से लेकर ९९ तक की सभी संख्यायें मध्यम संख्यात हैं।

उत्कृष्ट संख्यात—दो से लेकर दहाई, सैकड़ा, हजार, लाख, करोड़, शीर्षप्रहेलिका आदि जो संख्यात की राशियां हैं, उनका तो किसी न किसी प्रकार कथन किया जाना शक्य है, लेकिन संख्या इतनी ही नहीं है। अतएव उसके बाद की संख्या का कथन उपमा द्वारा ही संभव है। इसलिये सूत्र में उपमा—कल्पना का आधार लेकर उत्कृष्ट संख्यात का स्वरूप स्पष्ट किया है।

शास्त्र में सत् और असत् दो प्रकार की कल्पना होती है। कार्य में परिणत हो सकने वाली

कल्पना को सत्कल्पना और जो किसी वस्तु का स्वरूप समझाने में उपयोगी तो हो, किन्तु कार्य मे परिणत न की जा सके उसे असत्कल्पना कहते है। सूत्रोक्त पल्य का विचार असत्कल्पना है और उसका प्रयोजन उत्कृष्ट संख्यात का स्वरूप समझाना मात्र है।

सूत्र मे जो एक लाख योजन की लम्बाई-चौडाई, तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोश, एक सौ अट्ठाईस धनुष और कुछ अधिक साढे तेरह अगुल की परिधि वाले एक पल्य का उल्लेख किया है, वह जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौडाई और परिधि के बराबर है और इसकी गहराई एक हजार योजन प्रमाण और ऊचाई साढे आठ योजन प्रमाण ऊची पद्मवरवेदिका प्रमाण बताई है। यह ऊचाई और गहराई मेरु पर्वत की समतल भूमि से समझना चाहिये। साराश यह है कि वह पल्य तल से शिखा पर्यन्त १००८½ योजन होगा।

इसी प्रकार की लबाई-चौडाई, गहराई-ऊचाई और परिधि वाले तीन और पल्यो की कल्पना करे। इन चारो पल्यो के नाम क्रमशः १ अनवस्थित, २ शलाका, ३ प्रतिशलाका और ४ महाशलाका हैं। जिनके नामकरण का कारण इस प्रकार है—

अनवस्थितपल्य—आगे बढते जाने पर नियत स्वरूप के अभाव वाले पल्य को अनवस्थित-पल्य कहते है। यह दो प्रकार का है—१ मूल अनवस्थितपल्य और २ उत्तर अनवस्थितपल्य। यद्यपि पहला मूल अनवस्थितपल्य नियत माप वाला होने से अनवस्थित नही, किन्तु आगे के पल्यो की अनवस्थितता का कारण होने से इसे भी अनवस्थित कहते है। उसके बाद के उत्तरवर्ती पल्य क्रमश बढते-बढते जाने के कारण अनियत परिमाण वाले होने से अनवस्थित कहलाते है।

ये अनवस्थितपल्य अनेक बनते है, जिनकी ऊचाई १००८½ योजनमान नियत है लेकिन मूल अनवस्थितपल्य के सिवाय आगे के पल्यो की लम्बाई, चौडाई एक-सी नही है, उत्तरोत्तर अधिकाधिक है। जैसे जम्बूद्वीप प्रमाण मूल अनवस्थितपल्य को सरसो के दानो से भरकर जम्बूद्वीप से लेकर आगे के प्रत्येक समुद्र, द्वीप मे एक-एक दाना डालते जाने के बाद जिस द्वीप या समुद्र मे मूल अनवस्थितपल्य खाली हो जाये तब जम्बूद्वीप (मूल स्थान) से उस द्वीप या समुद्र तक की लम्बाई-चौडाई वाला नया पल्य बनाया जाये। यह पहला उत्तर अनवस्थितपल्य है। इसी प्रकार आगे-आगे मूल स्थान से लेकर समाप्त होने वाले सरसो के दाने के द्वीप या समुद्र तक के विस्तार वाले अनवस्थितपल्यो का निर्माण किया जाये। ये अनवस्थितपल्य कहाँ तक बनाना, इसका स्पष्टीकरण आगे के वर्णन से हो जाएगा।

शलाकापल्य—एक-एक साक्षीभूत सरसो के दाने से भरे जाने के कारण इसको शलाकापल्य कहते हैं। शलाकापल्य मे डाले गये सरसो के दानो की सख्या से यह जाना जाता है कि इतनी बार उत्तर अनवस्थितपल्य खाली हुए हैं।

प्रतिशलाकापल्य—प्रतिसाक्षीभूत सरसो के दानो से भरे जाने के कारण यह प्रतिशलाकापल्य कहलाता है। हर बार शलाकापल्य के खाली होने पर एक-एक सरसो का दाना प्रतिशलाकापल्य मे डाला जाता है। प्रतिशलाकापल्य मे डाले गये दानो की सख्या से यह ज्ञात होता है कि इतनी बार शलाकापल्य भरा जा चुका है।

महाशलाकापल्य—महासाक्षीभूत सरसो के दानो द्वारा भरे जाने के कारण इसे महाशलाका-

पल्य कहते हैं। प्रतिशलाकापल्य के एक-एक बार भरे जाने और खाली हो जाने पर एक-एक सरसो का दाना महाशलाका पल्य मे डाला जाता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि इतनी बार प्रतिशलाका-पल्य भरा गया और खाली किया गया है।

उत्कृष्ट सख्यात का प्रमाण बताने मे इन चारो पल्यो के उपयोग करने की विधि इस प्रकार है—

पल्योपयोग विधि – सबसे पहला जो अनवस्थित पल्य है, इसके पहले प्रकार (मूल अनवस्थित-पल्य) को सरसो के दानो से शिखापर्यन्त ठास-ठास कर परिपूर्ण भर देने के बाद उसमे से एक-एक सरसो का दाना जम्बूद्वीप आदि प्रत्येक द्वीप-समुद्र मे डाले। इस प्रकार सरसो के दाने डालने पर जिस द्वीप या समुद्र मे यह मूल अनवस्थितपल्य खाली हो जाये तब मूलस्थान—जम्बूद्वीप से लेकर उतने लबे-चौडे क्षेत्रप्रमाण और ऊचाई में मूल अनवस्थितपल्य जितना दूसरा उत्तर अनवस्थित पल्य बनाये और इसको भी पूर्ववत् सरसो के दानो से शिखापर्यन्त परिपूर्ण भरे।

इस प्रथम उत्तर अनवस्थितपल्य मे से सरसो का एक-एक दाना मूल अनवस्थितपल्य के सरसो के दाने जिस द्वीप या समुद्र मे डालने पर समाप्त हुए थे, पुन उसके आगे के द्वीप-समुद्र मे क्रमश डाले। इस प्रकार एक-एक दाना डालने से जब वह पल्य खाली हो जाये तब एक दाना शलाकापल्य मे डाला जाये।

इस प्रकार जब-जब उत्तरोत्तर विशाल अनवस्थितपल्य खाली होता जाये तब-तब एक-एक दाना शलाकापल्य मे डालते जाना चाहिये। इस प्रकार करते-करते जब शलाकापल्य पूर्ण भर जाये तब जिस द्वीप या समुद्र मे अनवस्थितपल्य खाली हुआ हो, उस द्वीप या समुद्र के बराबर क्षेत्र के अनवस्थितपल्य की कल्पना करके उसे सरसों से भरे। उसको खाली करने पर साक्षीभूत सरसो का दाना शलाकापल्य मे समाते—रखे जाने की स्थिति मे न होने के कारण उसे जैसा का तैसा भरा रखना चाहिये और उस शलाकापल्य के दानो को लेकर एक-एक द्वीप-समुद्र मे एक-एक सरसो का दाना डाले। इस प्रकार जब शलाकापल्य खाली हो तब एक सरसो का दाना प्रतिशलाकापल्य मे डाले।

इस समय अनवस्थितपल्य भरा हुआ, शलाकापल्य खाली और प्रतिशलाकापल्य मे एक सरसो का दाना होता है।

तदनन्तर अनवस्थितपल्य के दानो मे से आगे के द्वीप, समुद्र मे एक-एक सरसो का दाना डाले और जब खाली हो तब एक सरसो का दाना शलाकापल्य मे डाले और उस द्वीप या समुद्र जितने लबे-चौडे नये अनवस्थितपल्य की कल्पना करके सरसों से भरे और पुन एक-एक सरसो का दाना एक-एक द्वीप और समुद्र मे डाले। इस प्रकार पुन दूसरी बार शलाकापल्य को पूरा भरे और जिस द्वीप या समुद्र मे अनवस्थितपल्य खाली हुआ हो उस द्वीप या समुद्र के बराबर के अनवस्थित-पल्य की कल्पना करे और उसे सरसो से भरे।

ऐसा करने पर अनवस्थित और शलाका पल्य भरे होगे और प्रतिशलाकापल्य मे एक सरसो का दाना होगा।

अब पुन शलाकापल्य को लेकर वहाँ से आगे के द्वीप-समुद्र मे एक-एक दाना डालकर उसे खाली करे और खाली होने पर एक सरसो का दाना प्रतिशलाकापल्य मे डाले। ऐसा होने पर

प्रतिशलाकापल्य मे दो दाने और शलाकापल्य खाली और अनवस्थितपल्य भरा हुआ होगा। अब इस भरे हुए अनवस्थितपल्य को लेकर वहाँ से आगे के द्वीप-समुद्रों में एक-एक दाना डालें और खाली होने पर शलाकापल्य मे एक साक्षीभूत सरसो का दाना डाले। इस प्रकार पूर्ववत् विधि से शलाकापल्य को पूरा भरें। तब अनवस्थितपल्य भी भरा हुआ होता है। बाद मे शलाकापल्य को लेकर आगे के द्वीप-समुद्रो मे खाली करे और खाली होने पर एक सरसों प्रतिशलाकापल्य मे डाले। इस प्रकार अनवस्थितपल्य के द्वारा शलाकापल्य और शलाकापल्य के द्वारा प्रतिशालाकापल्य पूर्ण भरना चाहिये।

जब प्रतिशलाकापल्य पूरा भरा हुआ होता है तब अनवस्थित, शलाका और प्रतिशलाका यह तीनों पल्य भरे हुए होते है।

इसके पश्चात् प्रतिशलाकापल्य को लेकर आगे के द्वीप-समुद्रो मे खाली करे और जब खाली हो जाये तब महाशलाकापल्य मे एक साक्षीभूत सरसो डाले। इस समय महाशलाकापल्य मे एक सरसो, प्रतिशलाकापल्य खाली और शलाका व अनवस्थितपल्य भरे हुए होते हैं। इस समय शलाकापल्य को लेकर आगे के द्वीप-समुद्रो मे खाली करे और खाली होने पर एक सरसो प्रतिशलाकापल्य मे डाले। तब महाशलाका और प्रतिशलाका पल्य मे एक-एक सरसो और शलाकापल्य खाली तथा अनवस्थितपल्य भरा हुआ होता है।

इसके बाद अनवस्थितपल्य को लेकर आगे के द्वीप-समुद्रो मे खाली करे और शलाकापल्य को पुन भरे। जब शलाकापल्य भर जाये तब अनवस्थितपल्य को भरा हुआ रखे और शलाकापल्य को खाली करके एक सरसो प्रतिशलाकापल्य मे डाले। इस रीति से अनवस्थित द्वारा शलाका और शलाका द्वारा प्रतिशलाकापल्य को पूर्ण भरना चाहिये। जब प्रतिशलाकापल्य खाली हो जाये तब महाशलाकापल्य मे एक सरसों और शेष पल्य भरे हुए होते हैं। इसके बाद प्रतिशलाकापल्य को खाली करके महाशलाकापल्य मे एक सरसो डालें और शलाका को खाली करके प्रतिशलाकापल्य मे एक सरसो डाले तथा अनवस्थितपल्य को खाली करके एक सरसो शलाकापल्य में डाले। इस प्रकार जब महाशलाकापल्य मे एक सरसो के दाने की वृद्धि होती है तब प्रतिशलाकापल्य खाली और शलाका तथा अनवस्थित पल्य भरे हुए होते है।

इस प्रकार पूर्व-पूर्व पल्य खाली हो तब एक-एक साक्षी रूप सरसो आगे-आगे के पल्य मे डालते-डालते जब महाशलाकापल्य पूरा भर जाये तब प्रतिशलाकापल्य खाली और शलाका, अनवस्थित पल्य भरे हुए होते हैं। इसी प्रकार शलाका द्वारा प्रतिशलाका और अनवस्थित द्वारा शलाकापल्य को पूर्ण करे। जब महाशलाका और प्रतिशलाका पल्य पूर्ण होते हैं तब शलाकापल्य खाली होता है और अनवस्थितपल्य भरा हुआ।

इस समय अनवस्थितपल्य के द्वारा शलाकापल्य को पूर्ण भरे और जब शलाकापल्य पूरा भर जाये तब जो द्वीप, समुद्र हो, उस द्वीप या समुद्र के बराबर क्षेत्र जितने अनवस्थितपल्य की कल्पना करके उसे भी सरसो द्वारा भर लें। इस प्रकार चारो पल्य पूर्ण भरे।

इस प्रकार करने पर जितने द्वीपो और समुद्रो मे सरसो का एक-एक दाना पडा उन सब द्वीपो की और समुद्रो की जो सख्या हुई उसमें चारों पल्यों मे भरे हुए सरसो के दानों की सख्या को मिलाने

से जो सख्या हो, उसमे एक को कम कर देने पर उत्कृष्ट सख्यात का प्रमाण निकलता है। अर्थात् प्रत्येक द्वीप, समुद्र मे डाले गये सरसो के दाने और चारो पल्यो के दानो को एकत्रित करके उसमें एक को कम करने पर प्राप्त राशि उत्कृष्ट सख्यात है।[1]

सिद्धान्त मे जहाँ कही भी सख्यात शब्द का व्यवहार हुआ है वहाँ सर्वत्र मध्यम सख्यात ग्रहण हुआ जानना चाहिये।[2]

इस प्रकार से त्रिविध सख्यात का स्वरूप बतलाने के पश्चात् अब नवविध असख्यात का स्वरूप स्पष्ट करते है।

परीतासंख्यातनिरूपण

५०९. एवामेव उक्कोसए सखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं भवति, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं ण पावइ।

[५०९] इसी प्रकार उत्कृष्ट सख्यात सख्या मे रूप (एक) का प्रक्षेप करने से जघन्य परीतासख्यात होता है। तदनन्तर (परीतासख्यात के) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थान हैं, जहाँ तक उत्कृष्ट परीतासख्यात स्थान प्राप्त नही होता है।

५१० उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केत्तियं होति ?

उक्कोसयं परित्तासखेज्जयं जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं होति, अहवा जहण्णयं जुत्तासखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं परित्तासखेज्जयं होइ।

[५१० प्र] भगवन्! उत्कृष्ट परीतासख्यात का क्या प्रमाण है?

[५१० उ] आयुष्मन्! जघन्य परीतासख्यात राशि को जघन्य परीतासख्यात राशि से परस्पर अभ्यास गुणित करके रूप (एक) न्यून करने पर उत्कृष्ट परीतासख्यात का प्रमाण होता है। अथवा एक न्यून जघन्य युक्तासख्यात उत्कृष्ट परीतासख्यात का प्रमाण है।

विवेचन—उक्त दो सूत्रो मे असख्यात के प्रथम भेद परीतासख्यात के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इन तीनो भेदो का स्वरूप स्पष्ट किया है।

जघन्य और मध्यम का स्वरूप सुगम है। उत्कृष्ट सख्यात मे एक के मिलाने से जघन्य परीतासख्यात राशि होती है। जैसे उत्कृष्ट सख्यात की राशि १०० है, इस राशि मे एक (१) मिलाने

---

१ यह कार्मग्रन्थिक मत है। किन्तु अनुयोगद्वार मलधारीया वृत्ति मे सकेत है '...यदा तु चत्वारोऽपि परिपूर्णा भवन्ति तदोत्कृष्ट सङ्ख्येक रूपाधिकम् भवति।' अर्थात् अनवस्थित आदि पल्यो के खाली करने और भरने के क्रम से जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त हुए उन दोनो की सख्या मिलाने पर जो सख्या आती है वह सख्या एक सर्षप अधिक 'उत्कृष्ट सख्येय' सख्या जानना चाहिये। —अनुयोग मलधारीयावृत्ति पृ २३७

२. सिद्धते जत्थ जत्थ सखिज्जगगहण कत तत्थ तत्थ सव्व अजहन्नमणुक्कोसय दट्ठव्व। —अनुयोगद्वारचूर्णि

पर प्राप्त राशि जघन्य परीतासख्यात होगी अर्थात् १०० उत्कृष्टसख्यात और १००+१=१०१ जघन्य परीतासख्यात का प्रमाण हुआ तथा जघन्य से ऊपर और उत्कृष्ट से नीचे तक की सख्याएँ मध्यम परीतासख्यात है।

जघन्य परीतासख्यात राशि को उतने ही प्रमाण वाली राशि से अभ्यास करने से प्राप्त राशि मे से एक कम कर देने पर प्राप्त राशि उत्कृष्ट परीतासख्यात सख्या का प्रमाण है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जिस सख्या का अभ्यास करना है उसके अको को उतनी बार लिखकर आपस मे गुणा करना। अर्थात् पहले अक को दूसरे अक से गुणा करना और जो गुणनफल आए उसका तीसरे अक से गुणा करना और उसके गुणनफल का चौथे अक से गुणा करना। इस प्रकार पूर्व-पूर्व के गुणनफल का अगले अक से गुणा करना और अत मे जो गुणनफल प्राप्त हो वही विवक्षित सख्या का अभ्यास है। अतएव कल्पना से मान ले कि जघन्य परीतासख्या का प्रमाण ५ है। इस पाच को पाच बार (५—५—५—५—५) स्थापित कर परस्पर गुणा करने पर इस प्रकार सख्या होगी ५×५=२५, २५×५=१२५, १२५×५=६२५, ६२५×५=३१२५। यह सख्या वास्तविक रूप मे असख्यात के स्थान मे जानना चाहिये। इसमे से एक न्यून सख्या (३१२५—१=३१२४) उत्कृष्ट परीतासख्यात है और यदि एक कम न किया जाए तो जघन्य युक्तासख्यात रूप मानी जाएगी। इसीलिये प्रकारान्तर से उत्कृष्ट परीतासख्यात का प्रमाण बताने के लिये कहा है कि जघन्य युक्तासख्यात मे से एक कम करने पर उत्कृष्ट परीतासख्यात का प्रमाण होता है।

अब युक्तासख्यात के तीन भेदो का स्वरूप कहते है।

युक्तासंख्यातनिरूपण

५११. जहन्नयं जुत्तासंखेज्जय केत्तिय होति ?

जहन्नयं जुत्तासंखेज्जयं जहन्नयं परित्तासखेज्जय जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीण अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहन्नय जुत्तासखेज्जय हवति, अहवा उक्कोसए परित्तासखेज्जए रूव पक्खित्तं जहण्णयं जुत्तासंखेज्जय होति, आवलिया वि तत्तिया चेव, तेण पर अजहण्णमणुक्कोसयाइ ठाणाइ जाव उक्कोसय जुत्तासंखेज्जय ण पावइ।

[५११ प्र] भगवन्! जघन्य युक्तासख्यात का कितना प्रमाण है?

[५११ उ] आयुष्मन्! जघन्य परीतासख्यात राशि का जघन्य परीतासख्यात राशि से अन्योन्य अभ्यास करने पर (उनका उन्ही के साथ गुणा करने से) प्राप्त परिपूर्ण सख्या जघन्य युक्तासख्यात का प्रमाण होता है। अथवा उत्कृष्ट परीतासख्यात के प्रमाण मे एक का प्रक्षेप करने से (जोडने से) जघन्य युक्तासख्यात होता है। आवलिका भी जघन्य युक्तासख्यात तुल्य समय-प्रमाण वाली जानना चाहिये। तत्पश्चात्—जघन्य युक्तासख्यात से आगे जहाँ तक उत्कृष्ट युक्तासख्यात प्राप्त न हो, तत्प्रमाण मध्यम युक्तासख्यात है।

५१२. उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं केत्तियं होति ?

उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो

रूवूणो उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, अहवा जहन्नयं असंखेज्जासंखेज्जयं रूवूण उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होति ।

[५१२ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट युक्तासख्यात कितने प्रमाण का होता है ?

[५१२ उ] आयुष्मन् ! जघन्य युक्तासख्यात राशि को आवलिका से (जघन्य युक्तासख्यात से) परस्पर अभ्यास रूप गुणा करने से प्राप्त प्रमाण मे से एक न्यून उत्कृष्ट युक्तासख्यात है । अथवा जघन्य असख्यातासख्यात राशि प्रमाण मे से एक कम करने से उत्कृष्ट युक्तासख्यात होता है ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे युक्तासख्यात के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदो का स्वरूप बतलाया है । आशय सुगम है । यहाँ इतना ज्ञातव्य है कि आवलिका के असख्यात समय जघन्य युक्तासख्यात मे जितने सर्षप होते है, उतने समय-प्रमाण है । अर्थात् आवलिका जघन्य युक्तासख्यात के तुल्य समयप्रमाण वाली जानना चाहिये ।

असंख्यातासंख्यात का निरूपण

५१३. जहण्णय असंखेज्जासखेज्जय केत्तिय होइ ?

जहन्नएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं असंखेज्जासखेज्जयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्तासखेज्जए रूव पक्खित्तं जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होति, तेण पर अजहण्णमणुक्कोसयाइ ठाणाइं जाव उक्कोसय असखेज्जासंखेज्जयं ण पावति ।

[५१३ प्र] भगवन् ! जघन्य असख्यातासख्यात का क्या प्रमाण है ?

[५१३ उ] आयुष्मन् ! जघन्य युक्तासख्यात के साथ आवलिका की राशि का परस्पर अभ्यास करने से प्राप्त परिपूर्ण सख्या जघन्य असख्यातासख्यात है । अथवा उत्कृष्ट युक्तासख्यात मे एक का प्रक्षेप करने से जघन्य असख्यातासख्यात होता है । तत्पश्चात् मध्यम स्थान होते हैं और वे स्थान उत्कृष्ट असख्यातासख्यात प्राप्त होने से पूर्व तक जानना चाहिये ।

५१४. उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जय केत्तिय होति ?

जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जय जहण्णयअसखेज्जासखेज्जयमेत्ताण रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं असंखेज्जासखेज्जयं होइ, अहवा जहण्णय परित्ताणतय रूवूणं उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होति ।

[५१४ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट असख्यातासख्यात का प्रमाण कितना है ?

[५१४ उ] आयुष्मन् ! जघन्य असख्यातासख्यात मात्र राशि का उसी जघन्य असख्यातासख्यात राशि से अन्योन्य (परस्पर एक दूसरे से) अभ्यास-गुणा करने से प्राप्त सख्या मे से एक न्यून करने पर प्राप्त सख्या उत्कृष्ट असख्यातासख्यात है । अथवा एक न्यून जघन्य परीतानन्त उत्कृष्ट असंख्यातासख्यात का प्रमाण है ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट असख्यातासख्यातो का स्वरूप बताया है । जिनका आशय स्पष्ट और सुगम है । किन्तु अन्य कतिपय आचार्य उत्कृष्ट असख्यातासख्यात की अन्य रूप से प्ररूपणा करते है । उनका मतव्य इस प्रकार है—

जघन्य असख्यातासख्यात की राशि का वर्ग करना, फिर उस वर्ग की जो राशि आए, उसका भी पुन वर्ग करना, फिर उस वर्ग की जो राशि आये, उसका भी पुन वर्ग करना। इस तरह तीन बार वर्ग करके फिर उस वर्गराशि मे निम्नलिखित दस असख्यात राशियो का प्रक्षेप करना चाहिये—

लोगागासपएसा धम्माधम्मेगजीवदेसा य।
दव्वठिआ निओआ, पत्तेया चेव बोद्धव्वा॥
ठिइबधज्झवसाणा अणुभागा जोगच्छेअपलिभागा।
दोण्ह य समाण समया असखपक्खेवया दसउ॥[1]

अर्थात् १ लोकाकाश के प्रदेश, २ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ३ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४ एक जीव के प्रदेश, ५ द्रव्यार्थिक निगोद,[2] ६ अनन्तकाय को छोडकर शेष प्रत्येककायिक (शरीरी) जातियो के जीव,[3] ७ ज्ञानावरण आदि कर्मों के स्थितिबध के असख्यात अध्यवसायस्थान,[4] ८ अनुभागविशेष,[5] ९ योगच्छेद-प्रतिभाग[6] १० दोनो कालो के समय[7]।

उक्त दसो के प्रक्षेप के बाद पुन इस समस्त राशि का तीन बार वर्ग[8] करके प्राप्त सख्या मे से एकन्यून करने से उत्कृष्ट असख्यातासख्यात का प्रमाण होता है।

इस प्रकार से नौ प्रकार के असख्यात का वर्णन जानना चाहिये। अब अनन्त के भेदो का स्वरूपनिर्देश करते है।

परीतानन्तनिरूपण

५१५. जहण्णयं परित्ताणंतयं केत्तियं होति ?

जहण्णय परित्ताणतयं जहण्णय असंखेज्जासंखेज्जय जहण्णयअसंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताण रासीणं

---

१ यह दस क्षेपक त्रिलोकसार गाथा ४२ से ४६ तक मे भी निर्दिष्ट है।

२ सूक्ष्म, बादर अनन्तकायिक वनस्पति जीवो के शरीर—सूक्ष्माणा बादराणा चानन्तकायिकवनस्पतिजीवाना शरीराणीत्यर्थ। —अनुयोगद्वार मलधारीया वृत्ति पत्र २४०

३. अनन्तकायिको को छोडकर प्रत्येकशरीरी पृथ्वी, अप्, तज वायु, वनस्पति और त्रस जीव।

४ जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबध को छोडकर मध्यम स्थितिबध के असख्यात अध्यवसायस्थान।

५ कर्मों की फलदान शक्ति की तरतम आदि भिन्नरूपता को अनुभागविशेष कहते हैं।

६ मन-वचन-काय सम्बन्धी वीर्य का नाम योग है। उनका केवलि-प्रज्ञा-छेदनक द्वारा कृत निर्विभाग अश को योगप्रतिभाग कहते हैं।

७ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के समय।

८ किसी सख्या का तीन बार वर्ग करने की विधि—सर्वप्रथम उस सख्या का आपस मे वर्ग करना, फिर दूसरी बार वर्गजन्य सख्या का वर्गजन्य सख्या से वर्ग करना, तीसरी बार दूसरी बार की वर्गजन्य सख्या का उसी वर्गजन्य सख्या मे वर्ग करना। जैसे कि ५ का तीन बार वर्ग करना हो तो पहला वर्ग ५ × ५ = २५ हुआ। इस २५ का दूसरी बार इसी सख्या के साथ वर्ग करना २५ × २५ = ६२५ यह दूसरा वर्ग हुआ। इस ६२५ का ६२५ से गुणा करना ६२५ × ६२५ = ३९०६२५ यह तीसरा वर्ग हुआ। इस प्रकार यह ५ का तीन बार वर्ग करना कहलाता है।

अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं परित्ताणंतयं होति, अहवा उक्कोसए असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ। तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्ताणंतयं ण पावइ।

[५१५ प्र.] भगवन्! जघन्य परीतानन्त का कितना प्रमाण है?

[५१५ उ.] आयुष्मन्! जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि को उसी जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि से परस्पर अभ्यास रूप मे गुणित करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है। अथवा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात मे एक रूप का प्रक्षेप करने से भी जघन्य परीतानन्त का प्रमाण होता है। तत्पश्चात् अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) परीतानन्त के स्थान होते है और वे भी उत्कृष्ट परीतानन्त का स्थान प्राप्त न होने के पूर्व तक होते हैं।

५१६. उक्कोसयं परित्ताणंतयं केत्तियं होइ?

जहण्णयं परित्ताणंतयं जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ।

[५१६ प्र.] भगवन्! उत्कृष्ट परीतानन्त कितने प्रमाण मे होता है?

[५१६ उ.] आयुष्मन्! जघन्य परीतानन्त की राशि को उसी जघन्य परीतानन्त राशि से परस्पर अभ्यास रूप गुणित करके उसमे से एक रूप (अंक) न्यून करने से उत्कृष्ट परीतानन्त का प्रमाण होता है। अथवा जघन्य युक्तानन्त की संख्या मे से एक न्यून करने से भी उत्कृष्ट परीतानन्त की संख्या बनती है।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे अनन्त संख्या के प्रथम भेद परीतानन्त के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इन तीनो प्रकारो का स्वरूप बताया है। जिनका आशय सुगम है।

युक्तानन्तनिरूपण

५१७. जहण्णयं जुत्ताणंतयं केत्तियं होति?

जहण्णयं परित्ताणंतयं जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए परित्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ, अभवसिद्धिया वि तेत्तिया चेव, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्ताणंतयं ण पावति।

[५१७ प्र.] भगवन्! जघन्य युक्तानन्त कितने प्रमाण में होता है?

[५१७ उ.] आयुष्मन्! जघन्य परीतानन्त मात्र राशि का उसी राशि से अभ्यास करने से प्रतिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तानन्त है। अर्थात् जघन्य परीतानन्त जितनी सर्षप संख्या का परस्पर अभ्यास रूप गुणा करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तानन्त है। अथवा उत्कृष्ट परीतानन्त मे एक रूप (अंक) प्रक्षिप्त करने से जघन्य युक्तानन्त होता है। अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव भी इतने ही (जघन्य युक्तानन्त जितने) होते हैं। उसके पश्चात् अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम) युक्तानन्त के स्थान हैं और वे उत्कृष्ट युक्तानन्त के स्थान के पूर्व तक हैं।

५१८. उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केत्तियं होति ?

जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिता अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं अणंताणंतय रूवूणं उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ ।

[५१८ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट युक्तानन्त कितने प्रमाण मे होता है ?

[५१८ उ] आयुष्मन् ! जघन्य युक्तानन्त राशि के साथ अभवसिद्धिक राशि का परस्पर अभ्यास रूप गुणाकार करके प्राप्त सख्या मे से एक रूप को न्यून करने पर प्राप्त राशि उत्कृष्ट युक्तानन्त की संख्या है । अथवा एक रूप न्यून जघन्य अनन्तानन्त उत्कृष्ट युक्तानन्त है ।

विवेचन—यहाँ युक्तानन्त के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदो का स्वरूप बताया है । सूत्रार्थ सुगम है ।

शास्त्रो मे जहाँ भी अभव्य जीव राशि की अनन्तता का उल्लेख है, उसका निश्चित प्रमाण जघन्य युक्तानन्तराशि जितना समझना चाहिये ।

अनन्तानन्तनिरूपण

५१९. जहण्णयं अणंताणतयं केत्तियं होति ?

जहण्णएण जुत्ताणतएण अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णय अणंताणतयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए रूवं पक्खित्त जहण्णय अणताणतयं होति, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं । से त गणणासखा ।

[५१९ प्र] भगवन् ! जघन्य अनन्तानन्त कितने प्रमाण मे होता है ?

[५१९ उ] आयुष्मन् ! जघन्य युक्तानन्त के साथ अभवसिद्धिक जीवो (जघन्य युक्तानन्त) को परस्पर अभ्यास रूप से गुणित करने पर प्राप्त पूर्ण सख्या जघन्य अनन्तानन्त का प्रमाण है । अथवा उत्कृष्ट युक्तानन्त मे एक रूप का प्रक्षेप करने से जघन्य अनन्तानन्त होता है । तत्पश्चात् (जघन्य अनन्तानन्त के बाद) सभी स्थान अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम) अनन्तानन्त के होते है । (क्योंकि उत्कृष्ट अनन्तानन्त राशि नही होती है) ।

इस प्रकार गणनासख्या का निरूपण पूर्ण हुआ ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अनन्तानन्त सख्या के जघन्य और मध्यम इन दो भेदो का प्रमाण बतलाया है, किन्तु उत्कृष्ट अनन्तानन्त सख्या सभव नही होने से उसका निरूपण नही किया गया है ।

उक्त कथन सैद्धान्तिक आचार्यों का है, लेकिन अन्य आचार्यों ने उत्कृष्ट अनन्तानन्त सख्या का भी निरूपण किया है । उनका मत है—

जघन्य अनन्तानन्त का तीन बार वर्ग करके फिर उसमे निम्नलिखित छह अनन्तो का प्रक्षेप करना चाहिये—

सिद्धा निगोयजीवा वणस्सई काल पुग्गला चेव ।
सव्वमलोगागास छप्पेतेऽणतपक्खेवा ।।[1]

अर्थात्—१ सिद्ध जीव, २ निगोद के जीव, ३ वनस्पतिकायिक, ४ तीनो कालो (भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल) के समय, ५ सर्व पुद्गलद्रव्य तथा ६ लोकाकाश और अलोकाकाश प्रदेश ।[2] इनको मिलाकर फिर सर्व राशि का तीन वार वर्ग करके उस राशि मे केवलद्विक—केवलज्ञान, केवलदर्शन—की अनन्त पर्यायो[3] का प्रक्षेप करने पर उत्कृष्ट अनन्तानन्त की सख्या का परिमाण होता है ।[4]

यही गणनासख्या की वक्तव्यता है । अब सख्या के अतिम प्रकार भावसख्या का निरूपण करते है ।

भावसंख्यानिरूपण

५२०. से किं त भावसखा ?

भावसंखा जे इमे जीवा सखगइनाम-गोत्ताइ कम्माइ वेदेंति । से त भावसखा । से तं संखप्पमाणे । से तं भावप्पमाणे । से तं पमाणे ।

।। पमाणे त्ति पयं सम्मत्तं ।।

[५२० प्र] भगवन् ! भावसख्या (शख) का क्या स्वरूप है ?

[५२० उ] आयुष्मन् ! इस लोक मे जो जीव शखगतिनाम-गोत्र कर्मादिको का वेदन कर रहे है वे भावशख[5] है ।

यही भाव सख्या है, यही भावप्रमाण का वर्णन है तथा यही प्रमाण सम्बन्धी वक्तव्यता पूर्ण हुई ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भावसख्या का निरूपण करके प्रमाण पद की वक्तव्यता का उपसहार किया है ।

---

१ यह छह क्षेपक टीका तथा त्रिलोकसार गाथा ४९ मे वर्णित है ।

२ यद्यपि मूल गाथा मे अलोक पद है । लेकिन उपलक्षण से लोक का भी ग्रहण कर लेना चाहिये । अर्थात् यहाँ लोक और अलोक दोनो आकाश विवक्षित है ।

३ ज्ञेयपदार्थ अनन्त होने से केवलद्विक की पर्यायें भी अनन्त है ।

४ यह उत्कृष्ट अनन्तानन्त का परिमाण बोध के लिये है, लेकिन लोकाकाश म विद्यमान पदार्थों के मध्यम अनन्तानन्त प्रमाण होने से मध्यम अनन्तानन्त ही उपयोग मे लिया जाता है । उत्कृष्ट अनन्तानन्त को सिद्धान्त मे उपयोग मे न आने के कारण ग्राह्य नही माना है ।

उत्कृष्ट असख्यातासख्यात मे दस क्षेपको एव उत्कृष्ट अनन्तानन्त मानने, उसके निर्माण की विधि एव छह क्षेपको के मिलने का मत कार्मग्रन्थिक आचार्यों का प्रतीत होता है । कार्मग्रन्थिक आचार्यों की असख्यात और अनन्त सख्या के भेदो को बनाने की प्रक्रिया भी सिद्धान्त से भिन्न है । इसका विस्तार से वर्णन षड्शीति (चतुर्थ कर्मग्रन्थ, श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति ब्यावर) मे पृ ३६४ से ३८४ मे देखिये ।

५ यद्यपि सख्या शब्द से गणना का बोध होता है, किन्तु पूर्व मे बताया है कि प्राकृत भाषा मे सख्या शब्द शख का भी वाचक है । इसलिये यहाँ 'भावसखा' शब्द द्वीन्द्रिय जीव 'शख' के लिये प्रयुक्त हुआ जानना चाहिये ।

जो जीव शखप्रायोग्य तिर्यंचगति, द्वीन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक-अगोपांग आदि नामकर्मों एव नीचगोत्र को विपाकत वेदन करते है अर्थात् तदनुकूल कर्मप्रकृतियो के उदय में वर्तमान है, वे भावशख (सखा) कहलाते है। यही भावसख्या का अर्थ है।

इस भावसख्या के वर्णन के साथ प्रमाणद्वार की वक्तव्यता पूर्ण हो जाती है।

॥ इस प्रकार से प्रमाण पद समाप्त हुआ ॥

अब क्रमप्राप्त उपक्रम के चतुर्थ भेद वक्तव्यता का निरूपण करते है।

वक्तव्यता के भेद

५२१. **से किं तं वत्तव्वया ?**

वत्तव्वया तिविहा पण्णत्ता। तं०—ससमयवत्तव्वया परसमयवत्तव्वया ससमयपरसमयवत्तव्वया।

[५२१ प्र] भगवन्! वक्तव्यता का क्या स्वरूप है?

[५२१ उ] आयुष्मन्! वक्तव्यता तीन प्रकार की कही गई है, यथा---स्वसमयवक्तव्यता, २ परसमयवक्तव्यता और ३ स्वसमय-परसमयवक्तव्यता।

वक्तव्यता—अध्ययन-आदिगत प्रत्येक अवयव के अर्थ का यथासभव प्रतिनियत विवेचन करना।[1]

वक्तव्यता के तीन भेद क्यो ?—प्रस्तुत मे समय का अर्थ सिद्धान्त या मत है। अत स्व—अपने सिद्धान्त का प्रस्तुतीकरण स्वसमयवक्तव्यता, पर—अन्य के सिद्धान्त का निरूपण परसमयवक्तव्यता एव स्वपर—दोनो के सिद्धान्तो का विवेचन करना स्वपरसमयवक्तव्यता है। इनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या आगे की जाती है।

स्वसमयवक्तव्यतानिरूपण

५२२. **से किं त ससमयवत्तव्वया ?**

ससमयवत्तव्वया जत्थ णं ससमए आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। से तं ससमयवत्तव्वया।

[५२२ प्र.] भगवन्! स्वसमयवक्तव्यता क्या है?

[५२२ उ] आयुष्मन्! अविरोधी रूप से स्वसिद्धान्त के कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन करने को स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं। यही स्वसमयवक्तव्यता है।

विवेचन—पूर्वापरविरोध न हो, इस प्रकार अपने सिद्धान्त की अविरोधी क्रमबद्ध व्याख्या करने को स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं।

यद्यपि आघविज्जति आदि उवदसिज्जति पर्यन्त शब्द सामान्यत: समानार्थक-से प्रतीत होते हैं, लेकिन शब्दभेद से अर्थभेद होने से उनका पृथक्-पृथक् आशय इस प्रकार है—

१. अध्ययनादिषु प्रत्यवयव यथासभव प्रतिनियतार्थकथन वक्तव्यता। —अनुयोग. मलधारीया वृत्ति, पृ. २४३

आघविज्जति—सामान्य रूप से कथन करना, व्याख्यान करना। जैसे कि धर्मास्तिकाय आदि पाच अस्तिकाय द्रव्य हैं। अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्‌गल, ये बहुप्रदेशी पाचो द्रव्य त्रिकाल अवस्थायी हैं।

पण्णविज्जति—अधिकृत विषय की पृथक्-पृथक् लाक्षणिक व्याख्या करना। जैसे जीव और पुद्‌गल की गति मे जो सहायक हो, वह धर्मास्तिकाय है, इत्यादि।

परूविज्जति—अधिकृत विषय की विस्तृत प्ररूपणा करना। जैसे—धर्मास्तिकाय के असख्यात प्रदेश हैं, इत्यादि।

दंसिज्जति—दृष्टान्त द्वारा सिद्धान्त को स्पष्ट करना। जैसे—यथा मछलियो को चलन मे सहायक जल होता है।

निदंसिज्जति—उपनय द्वारा अधिकृत विषय का स्वरूप निरूपण करना। जैसे—वैसे ही धर्मद्रव्य भी जीव और पुद्‌गलो को गति मे सहायक है।

उवदंसिज्जति—समस्त कथन का उपसहार करके अपने सिद्धान्त की स्थापना करना। जैसे—इस प्रकार के स्वरूप वाले द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते है।

परसमयवक्तव्यतानिरूपण

५२३. से किं त परसमयवत्तव्वया ?

परसमयवत्तव्वया जत्थ णं परसमए आघविज्जति जाव उवदंसिज्जति। से त परसमय-वत्तव्वया।

[५२३ प्र] भगवन्! परसमयवक्तव्यता क्या है?

[५२३ उ] आयुष्मन्! जिस वक्तव्यता मे परसमय—अन्य मत के सिद्धान्त—का कथन यावत् उपदर्शन किया जाता है, उसे परसमयवक्तव्यता कहते है।

विवेचन—जिसमे स्वमत की नही किन्तु परसिद्धान्त की उसी रूप मे व्याख्या की जाती है, जैसे सूत्रकृताग के प्रथम अध्ययन मे लोकायतिको का सिद्धान्त स्पष्ट किया है—

सति पञ्चमहब्भूया, इहमेगेसि आहिया।
पुढवी आऊ तेऊ (य) वाऊ आगास पचमा॥
ए ए पच महब्भूया तेब्भो एगोत्ति आहिया।
अह तेसिं विणासेण, विणासो होइ देहिणो।

नास्तिको के मत के अनुसार सर्वलोकव्यापी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाच महाभूत कहे गये है। इन पाच महाभूतो से जीव अव्यतिरिक्त—अभिन्न है। जब ये पच महाभूत शरीराकार परिणत होते है, तब इनसे जीव नामक पदार्थ उत्पन्न हो जाता है और इनके विनष्ट होने पर इनसे जन्य जीव का भी विनाश हो जाता है।

उक्त प्रकार का कथन आर्हत दर्शन का नही किन्तु लोकायतिक मत प्रतिपादक होने से पर-

सिद्धान्त है। इस तरह जिस वक्तव्यता में परसिद्धान्त की प्ररूपणा की जाती है, वह परसमयवक्तव्यता है।

स्वसमय-परसमयवक्तव्यता

५२४. से किं तं ससमयपरसमयवत्तव्वया ?

ससमयपरसमयवत्तव्वया जत्थ णं ससमए परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ। से तं ससमयपरसमयवत्तव्वया।

[५२४ प्र.] भगवन्! स्वसमय-परसमयवक्तव्यता का क्या स्वरूप है ?

[५२४ उ.] आयुष्मन्! स्वसमय-परसमयवक्तव्यता इस प्रकार है—जिस वक्तव्यता मे स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त दोनो का कथन यावत् उपदर्शन किया जाता है, उसे स्वसमय-परसमयवक्तव्यता कहते हैं।

विवेचना—जो व्याख्या स्वसमय और परसमय उभय रूप सभव हो वह स्वसमयपरसमयवक्तव्यता कहलाती है। जैसे—

आगारमावसता वा, आरण्णा वावि पव्वया।
इम दरिसणमावन्ना, सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥

अर्थात् जो व्यक्ति घर मे रहते हैं गृहस्थ हैं, अथवा वनवासी है, अथवा प्रव्रजित (शाक्यादि) है, वे यदि हमारे सिद्धान्त को स्वीकार, धारण, ग्रहण कर लेते है तो सभी (शारीरिक, मानसिक) दुखों से सर्वथा विमुक्त हो जाते हैं।

इस कथन की उभयमुखी वृत्ति होने से जैन, बौद्ध, सांख्य आदि जो कोई भी इसका अर्थ करेगा वह अपने मतानुसार होने से स्वसमयवक्तव्यता रूप और इतर के लिये परसमयवक्तव्यता रूप है। इसीलिये इसे स्व-परसमयों की वक्तव्यता कहा है।

वक्तव्यता के विषय में नयदृष्टियां

५२५. [१] इयाणिं को णओ कं वत्तव्वयमिच्छति ?

तत्थ णेगम-संग्रह-ववहारा तिविहं वत्तव्वयं इच्छंति। तं जहा—ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं ससमयपरसमयवत्तव्वयं।

[५२५-१ प्र.] भगवन्! (इन तीनो वक्तव्यताओं मे से) कौन नय किस वक्तव्यता को स्वीकार करता है ?

[५२५-१ उ.] आयुष्मन्! नैगम, सग्रह और व्यवहार नय तीनो प्रकार की वक्तव्यता को स्वीकार करते हैं।

[२] उज्जुसुओ दुविहं वत्तव्वयं इच्छति। तं जहा—ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं। तत्थ णं जा सा ससमयवत्तव्वया सा ससमयं पविट्ठा, जा सा परसमयवत्तव्वया सा परसमयं पविट्ठा, तम्हा दुविहा वत्तव्वया, णत्थि तिविहा वत्तव्वया।

[५२५-२] ऋजुसूत्रनय स्वसमय और परसमय—इन दो वक्तव्यताओं को ही मान्य करता है। क्योंकि (स्वसमय-परसमयवक्तव्यता रूप तीसरी वक्तव्यता मे से) स्वसमयवक्तव्यता प्रथम भेद स्वसमयवक्तव्यता मे और परसमय की वक्तव्यता द्वितीय भेद परसमयवक्तव्यता मे अन्तर्भूत हो जाती है। इसलिए वक्तव्यता के दो ही प्रकार हैं, किन्तु त्रिविध वक्तव्यता नही है।

[३] तिण्णि सद्दणया [एगं] ससमयवत्तव्वयं इच्छंति, नत्थि परसमयवत्तव्वयं। कम्हा? जम्हा परसमए अणट्ठे अहेऊ असब्भावे अकिरिया उम्मग्गे अणुवएसे मिच्छादंसणमिति कट्टु, तम्हा सव्वा ससमयवत्तव्वया, णत्थि परसमयवत्तव्वया णत्थि ससमयपरसमयवत्तव्वया। से तं वत्तव्वया।

[५२५-३] तीनो शब्दनय (शब्द, समभिरूढ एवंभूत नय) एक स्वसमयवक्तव्यता को ही मान्य करते है। उनके मतानुसार परसमयवक्तव्यता नही है। क्योंकि परसमय अनर्थ, अहेतु, असद्-भाव, अक्रिय (निष्क्रिय), उन्मार्ग, अनुपदेश (कु-उपदेश) और मिथ्यादर्शन रूप है। इसलिए स्वसमय की वक्तव्यता है किन्तु परसमयवक्तव्यता नही है और न स्वसमय-परसमयवक्तव्यता ही है।

इस प्रकार से वक्तव्यताविषयक निरूपण जानना चाहिये।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे स्पष्ट किया है कि पूर्वोक्त तीन वक्तव्यताओं मे से कौन नय किसको अंगीकार करता है?

नयदृष्टियां लोकव्यवहार से लेकर वस्तु के स्वकीयस्व रूप तक का विचार करती हैं। इसी अपेक्षा यहाँ वक्तव्यताविषयक नयों का मतव्य स्पष्ट किया गया है।

नैगम आदि सातों नयों मे से अनेक प्रकार से वस्तु का प्रतिपादन करने वाले नैगमनय सर्वार्थ के संग्राहक संग्रहनय और लोकव्यवहार के अनुसार व्यवहार करने मे तत्पर व्यवहारनय की मान्यता है कि लोक मे इसी प्रकार की रूढि-परम्परा प्रचलित होने से तीनों ही—स्व, पर और उभय समय की वक्तव्यताएँ माननी चाहिये।

ऋजुसूत्रनय पूर्वोक्त नयों से विशुद्धतर है, अत उसकी दृष्टि से दो—स्वसमय और परसमय की वक्तव्यता हो सकती है। स्वसमय-परसमय वक्तव्यता मे से स्वसमयवक्तव्यता का स्वसमय-वक्तव्यता मे और परसमयवक्तव्यता का परसमयवक्तव्यता मे अन्तर्भाव हो जाने से वक्तव्यता का तीसरा भेद संभव नही है। अतएव तीसरी वक्तव्यता युक्तिसंगत नही है।

जैसे नैगम आदि तीन नयों से ऋजुसूत्रनय विशुद्धतर को विषय करने वाला है, वैसे ही ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा अधिक विशुद्धतर विषय वाले शब्दादि तीनों नयों को एक मात्र स्वसमय-वक्तव्यता ही मान्य है। क्योंकि परसमयादि शेष दो मान्यतायें मानने मे यह विसंगतियां हैं—

१ परसमय 'नास्त्येवात्मा'—आत्मा नही है, इत्यादि रूप से अनर्थ रूप का प्रतिपादक होने के कारण अनर्थ रूप इसलिये है कि आत्मा के अभाव मे उसका प्रतिषेध कौन करेगा?

जो यह विचार करता है 'कि मैं नही हूँ' वही तो जीव-आत्मा है। जीव के सिवाय अन्य पदार्थ संशयकारक नही हो सकता है।[1] इसी प्रकार की और भी अनर्थता (विसंगतियां) परसमय मे जानना चाहिये।

---

१. जो चिंतेइ सरीरे नत्थि अहं स एव होइ जीवोत्ति।
न हु जीवंमि असंते संसयउप्पायओ अण्णो॥ —अनुयोग मलधारीयावृत्ति पत्र २४४

२ हेत्वाभास के बल से प्रवृत्त होने के कारण परसमय अहेतु रूप भी है। जैसे—'नास्त्येवात्मा अत्यन्तानुपलब्धे'—आत्मा नही है क्योकि उसकी अत्यन्त अनुपलब्धि है। यहाँ अत्यन्त अनुपलब्धि हेतु हेत्वाभास है। हेत्वाभास होने का कारण यह है कि आत्मा के ज्ञानादि गुणो की उपलब्धि होती है। जैसे घटादिको के गुणो—रूपादि की उपलब्धि होने से घटादि की सत्ता है, उसी प्रकार जीव के ज्ञानादिक गुणो की उपलब्धि होने से उसकी सत्ता है।[१]

३ परसमयवक्तव्यता असदर्थ का प्रतिपादन करने वाली भी है। क्योकि परसमय असद्भाव रूप एकान्त क्षणभग आदि असदर्थ का प्रतिपादन करता है। एकान्तत क्षणभग आदि सिद्धान्त असद्रूप इसलिए है कि उसमे युक्ति, प्रमाण आदि से विरोध है। जैसे—एकान्तत पदार्थ को क्षणभगुर मानने पर धर्म—अधर्म का उपदेश, सुकृत—दुष्कृत, परलोक आदि मे गमन तथा इसी प्रकार से अन्य लोकव्यवहार नही बन सकते है।[२] तथा—

४ एकान्त रूप से शून्यता का प्रतिपादन करने वाला होने से परसमय मे किसी भी प्रकार की क्रिया करना सभवित नही और तब क्रिया करने वाले कर्ता का भी अभाव मानना पडेगा। क्योकि सर्वशून्यता मे जब समस्त पदार्थ ही शून्य रूप है तो यह स्वाभाविक है कि कर्ता और क्रिया आदि सभी शून्यरूप होगे। यदि ऐसा न माना जाये तो सर्वशून्यता का सिद्धान्त ही नही बन सकता है। इसी कारण परसमय असद्भाव रूप का प्रतिपादक होने से उसकी वक्तव्यता नही मानी जा सकती है।

५ परसमयवक्तव्यता इसलिए भी नही मानी जा सकती है, क्योकि वह उन्मार्ग—परस्पर विरुद्ध वचनो की प्रतिपादक है। जैसे—परसमय कभी तो कहता है कि स्थावर और त्रस रूप किसी भी प्राणी की हिंसा न करे तथा समस्त प्राणियो को अपना जैसा ही माने। इस प्रकार की प्रवृत्ति करने वाला धार्मिक है।[३] किन्तु साथ ही ऐसा भी कहता है कि अश्वमेधयज्ञ करते समय ५०९७ पशुओ की बलि करना चाहिये।[४]

इस प्रकार जब परसमय मे स्पष्ट रूप से पूर्वापर उन्मार्गता है तब उसकी वक्तव्यता मान्य कैसे की जा सकती है ?

६ परसमय उपदेश रूप भी नही है—अनुपदेश (कुत्सित उपदेश) रूप है। क्योकि उपदेश जीवो को अहित से छुडाकर हित मे प्रवृत्ति कराने वाला होता है, परन्तु परसमय के उपदिष्ट सिद्धान्त जीवो को अहित की ओर ले जाते है। जैसे—जब सभी कुछ क्षणिक है तो कौन विषयादिको का

---

२ नाणाईण गुणाण अणुभवओ होइ जतुणो सत्ता।
जह रूवाइगुणाण उवलभाओ घडाईण॥ —अनुयोग मलधारीयावृत्ति पत्र २४४

१ धम्माधम्मुवएसो कयाकय परभवाइगमण च।
सव्वावि हु लोयठिई न घडइ एगतखिणयम्मी॥ —अनुयोग. मलधारीयावृत्ति पत्र २४४

३ न हिंस्यात् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।
आत्मवत् सर्वभूतानि य पश्यति स धार्मिक.॥ ,, ,, ,,

४. षट् सहस्राणि युज्यन्ते पशूना मध्यमेऽहनि।
अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुभिस्त्रिभि॥ ,, ,, ,,

सेवन करने में प्रवृत्ति नही करेगा ? अर्थात् सभी प्रवृत्ति करेंगे। क्योकि इस सिद्धान्त के अनुसार वे यह तो जान ही लेगे कि हम क्षणिक है अत· नरकादि के दु ख रूप फल तो हमे भोगना ही नही पड़ेगे, फलभोग के काल तक हम रहने वाले नही है।[1]

इसी तरह के अन्यान्य अनर्थादिको से युक्त होने के कारण परसमय मिथ्यादर्शन रूप है। इसी कारण शब्दादि नयत्रय को स्वसमयवक्तव्यता ही मान्य है।

इस प्रकार से वक्तव्यता सम्बन्धी नयदृष्टिया जानना चाहिये। अब अर्थाधिकार का निरूपण करते है।

अर्थाधिकारनिरूपण

५२६. से किं तं अत्थाहिगारे ?

अत्थाहिगारे जो जस्स अज्झयणस्स अत्थाहिगारो। तं जहा—

> **सावज्जजोगविरती १ उक्कित्तण २ गुणवओ य पडिवत्ती ३।**
> **खलियस्स निंदणा ४ वणतिगिच्छ ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १२३ ॥**

से तं अत्थाहिगारे।

[५२६ प्र] भगवन् ! अर्थाधिकार का क्या स्वरूप है ?

[५२६ उ] आयुष्मन् ! (आवश्यकसूत्र के) जिस अध्ययन का जो अर्थ-वर्ण्य विषय है उसका कथन अर्थाधिकार कहलाता है। यथा—

१ सावद्ययोगविरति यानी सावद्य व्यापार का त्याग प्रथम (सामायिक) अध्ययन का अर्थ है। २ (चतुर्विंशतिस्तव नामक) दूसरे अध्ययन का अर्थ उत्कीर्तन—स्तुति करना है। ३ (वदना नामक) तृतीय अध्ययन का अर्थ गुणवान् पुरुषो का सम्मान, वन्दना, नमस्कार करना है। ४ (प्रतिक्रमण अध्ययन मे) आचार मे हुई स्खलनाओ—पापो आदि की निन्दा करने का अर्थाधिकार है। ५ (कायोत्सर्ग अध्ययन मे) व्रणचिकित्सा करने रूप अर्थाधिकार है। ६ (प्रत्याख्यान अध्ययन का) गुण धारण करने रूप अर्थाधिकार है। यही अर्थाधिकार है।

विवेचन—जिस अध्ययन का जो अर्थ है वह उसका अर्थाधिकार कहलाता है। जैसे आवश्यक-सूत्र के छह अध्यायो के गाथोक्त वर्ण्यविषय है। इनका आशय पूर्व मे बताया जा चुका है।

समवतारनिरूपण

५२७. से किं तं समोयारे ?

समोयारे छव्विहे पण्णत्ते। तं०—णामसमोयारे ठवणसमोयारे दव्वसमोयारे खेत्तसमोयारे कालसमोयारे भावसमोयारे।

[५२७ प्र.] भगवन् ! समवतार का क्या स्वरूप है ?

---

१. सर्वं क्षणिकमित्येतद् ज्ञात्वा को न प्रवर्तते ?
विषयादौ विपाको मे न भावीति विनिश्चयात् ॥ —अनुयोग मलधारीयावृत्ति पत्र २४४

[५२७ उ] आयुष्मन् ! समवतार के छह प्रकार हैं, जैसे—१ नामसमवतार, २. स्थापना-समवतार, ३. द्रव्यसमवतार, ४ क्षेत्रसमवतार, ५. कालसमवतार और ६ भावसमवतार।

विवेचन—सूत्र मे भेदों द्वारा समवतार के स्वरूप का वर्णन प्रारम्भ किया है।

समवतार—वस्तुओ के अपने मे, पर मे और उभय मे अन्तर्भूत होने का विचार करने को समवतार कहते है। उसके नाम आदि के भेद से छह प्रकार है। आगे क्रम से उनका वर्णन करते हैं।

नाम-स्थापना-द्रव्यसमवतार

५२८. से किं तं णामसमोयारे ?

नाम-ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ।

[५२८ प्र] भगवन् ! नाम (स्थापना) समवतार का स्वरूप क्या है ?

[५२८ उ] आयुष्मन् ! नाम और स्थापना (समवतार) का वर्णन पूर्ववत् (आवश्यक के वर्णन जैसा) यहाँ भी जानना चाहिये।

५२९. से किं तं दव्वसमोयारे ?

दव्वसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तं०—आगमतो य णोआगमतो य। जाव से तं भवियसरीर-दव्वसमोयारे।

[५२९ प्र] भगवन् ! द्रव्यसमवतार का क्या स्वरूप है ?

[५२९ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यसमवतार दो प्रकार का कहा है—१ आगमद्रव्यसमवतार, २ नोआगमद्रव्यसमवतार। यावत् आगमद्रव्यसमवतार का तथा नोआगमद्रव्यसमवतार के भेद ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर नोआगमद्रव्यसमवतार का स्वरूप पूर्ववत् द्रव्यावश्यक के प्रकरण मे कथित भेदो के समान जानना चाहिये।

विवेचन—यहां नाम, स्थापना समवतार का और द्रव्यसमवतार के दो भेदो का वर्णन किया है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—नामसमवतार और स्थापनासमवतार इन दोनो का वर्णन तो नाम-आवश्यक और स्थापना-आवश्यक के अनुरूप जानना चाहिए। परन्तु आवश्यक के स्थान पर समवतार पद का प्रयोग करना चाहिए।

आगम और नोआगम की अपेक्षा द्रव्यसमवतार के दो भेद हैं। इनमे से नोआगमद्रव्य-समवतार ज्ञायकशरीर, भव्यशरीर, तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। आगमद्रव्यसमवतार और नोआगम ज्ञायकशरीरद्रव्यसमवतार एवं भव्यशरीरद्रव्यसमवतार का स्वरूप पूर्वोक्त द्रव्यावश्यक के वर्णन जैसा ही जानना चाहिए। शेष रहे ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार का वर्णन प्रकार है—

५३०. [१] से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—आयसमोयारे

परसमोयारे तदुभयसमोयारे । सव्वदव्वा वि णं आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति, परसमोयारेणं जहा कुंडे बदराणि, तदुभयसमोयारेणं जहा घरे थंभो आयभावे य, जहा घडे गीवा आयभावे य ।

[५३०-१ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार कितने प्रकार का है ?

[५३०-१ उ] आयुष्मन् ! ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार तीन प्रकार का है—यथा—१. आत्मसमवतार, २. परसमवतार, ३. तदुभयसमवतार ।

आत्मसमवतार की अपेक्षा सभी द्रव्य आत्मभाव—अपने स्वरूप में ही रहते है, परसमवतारापेक्षया कुड मे बेर की तरह परभाव मे रहते है तथा तदुभयसमवतार से (सभी द्रव्य) घर मे स्तम्भ अथवा घट मे ग्रीवा (गर्दन) की तरह परभाव तथा आत्मभाव-दोनो मे रहते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तद्व्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार का स्वरूप स्पष्ट किया है । प्रत्येक द्रव्य—पदार्थ कहाँ रहता है ? इसका विचार करने का आधार है निश्चय और व्यवहार नयदृष्टियो का गौण-मुख्य भाव । स्वस्वरूप के विचार मे निश्चयनय की ओर परभाव का विचार करने मे व्यवहारनय की मुख्यता है । इसलिये निश्चयनय से समस्त द्रव्यो के रहने का विचार करने पर उत्तर होता है कि सभी द्रव्य निजस्वरूप मे रहते हैं । निजस्वरूप से भिन्न उनका कोई अस्तित्व नही है तथा परसमवतार से—व्यवहारनय से विचार करने पर उत्तर होता है कि परभाव मे भी रहते हैं । उभयरूपता युगपत् निश्चय-व्यवहारनयाश्रित है । अत तदुभयसमवतार से विचार किये जाने पर आत्मसमवतार की अपेक्षा समस्त द्रव्य आत्मभाव मे तथा परसमवतार की अपेक्षा परभाव मे रहते है । उदाहरणार्थ—स्तम्भ जैसे पर घर मे भी रहता है और स्वस्वरूप में भी रहता है, ऐसा स्पष्ट दिखता है ।

यद्यपि परसमवतार के दृष्टान्त रूप मे प्रस्तुत 'कुण्डे बदराणि' उदाहरण उभयसमवतार का है क्योकि जिस प्रकार बेर अपने से पर—भिन्न कुण्ड मे रहते हैं वैसे ही आत्मभाव में भी रहते हैं, इसलिए यह केवल परसमवतार नही है । किन्तु केवल परभाव मे रहने का कोई उदाहरण सम्भव न होने से आत्मभाव की विवक्षा न करके नाममात्र के लिए यहाँ उसका पृथक् निर्देश किया है । वास्तव मे समवतार दो है—आत्मसमवतार और उभयसमवतार । जिसको स्वय सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—

[२] **अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोयारे दुविहे पण्णत्ते । त जहा—आयसमोयारे य तदुभयसमोयारे य ।**

चउसट्ठिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं बत्तीसियाए समोयरति आयभावे य । बत्तीसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं सोलसियाए समोयरति आयभावे य । सोलसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं अट्ठभाइयाए समोयरति आयभावे य । अट्ठभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं चउभाइयाए समोयरति आयभावे य । चउभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभय-

समोयारेण अद्धमाणीए समोयरइ आयभावे य। अद्धमाणी आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं माणीए समोयरति आयभावे य।

से तं जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वसमोयारे। से तं नोआगमओ दव्वसमोयारे। से तं दव्वसमोयारे।

[५३०-२] अथवा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार दो प्रकार का है—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार। जैसे आत्मसमवतार से चतुष्षष्टिका आत्मभाव मे रहती है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा द्वात्रिंशिका मे भी और अपने निजरूप मे भी रहती है। द्वात्रिंशिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव मे और उभयसमवतार की अपेक्षा षोडशिका में भी रहती है और आत्मभाव मे भी रहती है।

षोडशिका आत्मसमवतार से आत्मभाव मे समवतीर्ण होती है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा अष्टभागिका मे भी तथा अपने निजरूप मे भी रहती है।

अष्टभागिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव मे तथा तदुभयसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका मे भी समवतरित होती है और अपने निज स्वरूप मे भी समवतरित होती है।

आत्मसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका आत्मभाव मे और तदुभयसमवतार से अर्धमानिका मे समवतीर्ण होती है एव आत्मभाव मे भी।

आत्मसमवतार से अर्धमानिका आत्मभाव मे एव तदुभयसमवतार की अपेक्षा मानिका मे तथा आत्मभाव मे भी समवतीर्ण होती है।

यह ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार का वर्णन है। इस तरह नोआगमद्रव्य-समवतार और द्रव्यसमवतार की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—परसमवतार की असभविता को यहाँ ध्यान मे रखकर प्रकारान्तर से तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसमवतार की द्विविधता का निरूपण किया है। प्रत्येक द्रव्य स्वस्वरूप की अपेक्षा स्वय में ही रहता है लेकिन व्यवहार की अपेक्षा यह भी माना जाता है कि अपने से विस्तृत मे समाविष्ट होता है। लेकिन उस समय भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होने से वह स्वरूप मे भी रहेगा ही।

मानी, अर्धमानी, चतुर्भागिका आदि मगध देश के माप है। इनका प्रमाण पूर्व मे बताया जा चुका है।

क्षेत्रसमवतार

५३१. से किं तं खेत्तसमोयारे?

खेत्तसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—आयसमोयारे य तदुभयसमोयारे य।

भरहे वासे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं जंबुद्दीवे समोयरति आयभावे य। जंबुद्दीवे दीवे आयसमोयारेण आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं तिरियलोए समोयरति आयभावे य। तिरियलोए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं लोए

समोयरति आयभावे य[1]।

से तं खेत्तसमोयारे।

[५३१ प्र] भगवन्! क्षेत्रसमवतार का क्या स्वरूप है?

[५३१ उ] आयुष्मन्! क्षेत्रसमवतार का दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। यथा— १ आत्मसमवतार, २ तदुभयसमवतार। आत्मसमवतार की अपेक्षा भरतक्षेत्र आत्मभाव (अपने) मे रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप में भी रहता है और आत्मभाव मे भी रहता है।

आत्मसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप आत्मभाव मे रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा तिर्यक्लोक (मध्यलोक) मे भी समवतरित होता है और आत्मभाव मे भी।

आत्मसमवनार से तिर्यक्लोक आत्मभाव मे समवतीर्ण होता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा लोक मे ममवतरित होता है और आत्मभाव-निजरूप मे भी।

यही क्षेत्रसमवतार का स्वरूप है।

विवेचन— यहाँ क्षेत्रसमवतार का स्वरूप स्पष्ट किया है।

लघु क्षेत्र के प्रमाण को यथोत्तर बृहत् क्षेत्र मे समवतरित किये जाने को क्षेत्रसमवतार कहते है। उदाहरणार्थ दिये गये दृष्टान्तो का अर्थ सुगम है। उत्तरोत्तर भरतक्षेत्र, जम्बूद्वीप, तिर्यकलोक आदि क्षेत्र बृहत् प्रमाण वाले क्षेत्र मे भी समवतरित होते हैं।

कालसमवतार

५३२. **से किं तं कालसमोयारे?**

कालसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तं०—आयसमोयारे य तदुभयसमोयारे य।

समए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं आवलियाए समोयरति आयभावे य। एवं आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे उऊ अयणे संवच्छरे जुगे वाससते वाससहस्से वाससतसहस्से पुव्वंगे पुव्वे तुडियंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हुहुयंगे हुहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे अत्थिनिउरंगे अत्थिनिउरे अउयंगे अउए णउयंगे णउए पउयंगे पउए चूलियंगे चूलिया सीसपहेलियंगे सीसपहेलिया पलिओवमे सागरोवमे आयसमोयारेणं आयभावे समोतरति, तदुभयसमोयारेणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीसु समोयरति आयभावे य, ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ आयसमोयारेण आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं पोग्गलपरियट्टे समोयरंति आयभावे य। पोग्गलपरियट्टे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेण तीतद्धा-अणागतद्धासु समोयरति आयभावे य; तीतद्धा-अणागतद्धाओ आयसमोयारेण आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेण सव्वद्धाए समोयरति आयभावे य।

से तं कालसमोयारे।

---

१. लोए आयसमोयारेण आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेण अलोए समोयरति आयभावे य।

[५३२ प्र] भगवन्! कालसमवतार का क्या स्वरूप है?

[५३२ उ] आयुष्मन्! कालसमवतार दो प्रकार का कहा गया है यथा—आत्मसमवतार, तदुभयसमवतार। जैसे—

आत्मसमवतार की अपेक्षा समय आत्मभाव मे रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा आवलिका मे भी और आत्मभाव मे भी रहता है। इसी प्रकार आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, (दिन-रात), पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वाग, पूर्व, त्रुटिताग, त्रुटित, अटटाग, अटट, अववाग, अवव, हूहूकाग, हूहूक, उत्पलाग, उत्पल, पद्माग, पद्म, नलिनाग, नलिन, अक्षनिकुराग, अक्षनिकुर, अयुताग, अयुत, नयुताग, नयुत, प्रयुताग, प्रयुत, चूलिकाग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम ये सभी आत्मसमवतार से आत्मभाव में और तदुभयसमवतार से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी मे भी और आत्मभाव मे भी रहते है।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव मे रहता है और तदुभय-समवतार की अपेक्षा पुद्गलपरावर्तन मे भी और आत्मभाव मे भी रहता है।

पुद्गलपरावर्तनकाल आत्मसमवतार की अपेक्षा निजरूप मे रहता है और तदुभयसमवतार से अतीत और अनागत (भविष्यत्) काल मे भी एव आत्मभाव मे भी रहता है। अतीत-अनागत काल आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव मे रहता है, तदुभयसमवतार की अपेक्षा सर्वाद्धाकाल मे भी रहता है और आत्मभाव मे भी रहता है।

इस तरह कालसमवतार का विचार है।

विवेचन—समयादि रूप से जो जाना जाता है उसे काल कहते हैं। वह अनन्त समय वाला है। काल की न्यूनतम आद्य इकाई समय और तन्निष्पन्न आवलिका आदि रूप कालविभाग का उत्तरोत्तर बडे कालविभाग मे समवतरण करना कालसमवतार है। इसके भी पूर्ववत् दो भेद है—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार। आत्मसमवतार से सभी कालभेद अपने ही स्वरूप मे रहते है तथा तदुभय-समवतार से परभाव और आत्मभाव दोनो मे रहते हैं। जैसे आनप्राण आत्मभाव मे भी और पर भाव स्तोक मे भी समवतीर्ण होता है। इसी प्रकार अन्य कालभेदो के लिए जानना चाहिए।

किन्तु पुद्गलपरावर्तन का तदुभयसमवतार की अपेक्षा अतीत-अनागत काल मे समवतार बताने का कारण यह है कि पुद्गलपरावर्तन असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकालप्रमाण है, जिससे समयमात्र प्रमाण वाले वर्तमान काल मे उस बृहत्कालविभाग का समवतार सभव नही होने से अनन्त समय वाले अतीत-अनागत काल का कथन किया है।

इस प्रकार कालसमवतार का स्वरूप जानना चाहिये।

भावसमवतार

५३३. से किं तं भावसमोयारे?

भावसमोयारे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—आयसमोयारे य तदुभयसमोयारे य। कोहे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेणं माणे समोयरति आयभावे य। एवं माणे

माया लोभे रागे मोहणिज्जे अट्ठकम्मपगडीओ आयसमोयारेण आयभावे समोयरंति, तदुभयसमोयारेणं छव्विहे भावे समोयरंति आयभावे य। एव छव्विहे भावे जीवे जीवत्थिकाए आयसमोयारेण आयभावे समोयरति, तदुभयसमोयारेण सव्वदव्वेसु समोयरति आयभावे य। एत्थं संगहणिगाहा—

कोहे माणे माया लोभे रागे य मोहणिज्जे य।
पगडी भावे जीवे जीवत्थिय सव्वदव्वा य ॥१२४॥

से तं भावसमोयारे। से त समोयारे। से त उवक्कमे।

[५३३ प्र] भगवन्! भावसमवतार का क्या स्वरूप है?

[५३३ उ] आयुष्मन्! भावसमवतार दो प्रकार का कहा गया है। यथा—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार।

आत्मसमवतार की अपेक्षा क्रोध निजस्वरूप मे रहता है और तदुभयसमवतार से मान मे और निजस्वरूप मे भी समवतीर्ण होता है। इसी प्रकार मान, माया, लोभ, राग, मोहनीय और अष्टकर्म प्रकृतियाँ आत्मसमवतार से आत्मभाव मे तथा तदुभयसमवतार से छह प्रकार के भावो मे और आत्मभाव मे भी रहती है।

इसी प्रकार (औदयिक आदि) छह भाव जीव, जीवास्तिकाय, आत्मसमवतार की अपेक्षा निजस्वरूप मे रहते है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा द्रव्यो मे और आत्मभाव मे भी रहते हैं। इनकी सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोहनीयकर्म, (कर्म) प्रकृति, भाव, जीव, जीवास्तिकाय और सर्वद्रव्य (आत्मसमवतार से अपने-अपने स्वरूप में और तदुभयसमवतार मे पररूप और स्व-स्वरूप मे भी रहते है)। १२४

यही भावसमवतार है। इसका वर्णन होने पर सभेद समवतार और उपक्रम नाम के प्रथम द्वार की वक्तव्यता समाप्त हुई।

विवेचन—क्रोध कषाय आदि जीव के वैभाविक भावो के तथा ज्ञानादि स्वाभाविक भावो के समवतार को भावसमवतार कहते है। इसके भी आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार ये दो प्रकार है। सूत्र मे क्रोधादिक के दोनो प्रकार के समवतार का सक्षेप मे उल्लेख किया है। उसका आशय यह है—क्रोधादि औदयिकभाव रूप होने से उनका भावसमवतार मे ग्रहण किया है, अहकार के बिना क्रोध उत्पन्न नही होता है, इसलिए उभयसमवतार की अपेक्षा क्रोध का मान मे और अपने निजरूप मे समवतार कहा है। क्षपकश्रेणी मे आरूढ जीव जिस समय मान का क्षय करने के लिए प्रवृत्त होता है उस समय वह मान के दलिको को माया मे प्रक्षिप्त करके क्षय करता है, इस कारण उभयसमवतार की अपेक्षा मान का माया मे और निजरूप मे भी और आत्मसमवतार की अपेक्षा अपने निजरूप मे ही समवतार बताया है। इसी प्रकार माया, लोभ, राग, मोहनीयकर्म, अष्टकर्मप्रकृति आदि जीवपर्यन्त का उभयसमवतार एव आत्मसमवतार समझ लेना चाहिये।

यद्यपि उपक्रमद्वार मे शास्त्रकार को सामायिक आदि षडावश्यक-अध्ययनो का समवतार करना अभीष्ट है, किन्तु सुगम होने के कारण यहाँ उसका सूत्र मे वर्णन नही किया है। वह इस प्रकार है—

सामायिक, उत्कीर्तन का विषय होने से सामायिक का उत्कीर्तनानुपूर्वी मे समवतार होता है तथा गणनानुपूर्वी मे जब पूर्वानुपूर्वी से इसकी गणना की जाती है तब प्रथम स्थान पर और पश्चानुपूर्वी से गणना किये जाने पर छठे स्थान पर आता है तथा अनानुपूर्वी से गणना किये जाने पर यह दूसरे आदि स्थानो पर आता है, अत इसका स्थान अनियत है।

नाम मे औदायिक आदि छह भावो का समवतार होता है। इसमे सामायिक अध्ययन श्रुतज्ञान रूप होने से क्षायोपशमिकभाव मे समवतवित होता है।

प्रमाण की अपेक्षा जीव का भाव रूप होने से सामायिक अध्ययन का भावप्रमाण मे समवतार होता है।

भावप्रमाण गुण, नय और सख्या, इस तरह तीन प्रकार का है। इन भेदो मे से सामायिक-अध्ययन का समवतार गुणप्रमाण और सख्याप्रमाण मे होता है। यद्यपि कही-कही नयप्रमाण मे भी इसका समवतार कहा गया है, तथापि तथाविध नय के विचार की विवक्षा नही होने से नयप्रमाण मे इसका समवतार नही कहा है।

जीव और अजीव के गुणो के भेद से गुणप्रमाण दो प्रकार का है। सामायिक जीव का उपयोग रूप होने से इसका समवतार जीवगुणप्रमाण मे जानना चाहिये तथा जीवगुणप्रमाण भी ज्ञान, दर्शन और चारित्र के भेद से तीन प्रकार का है। सामायिक ज्ञान रूप होने से इसका समवतार ज्ञानप्रमाण मे होता है।

ज्ञानप्रमाण भी प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान के भेद से चार प्रकार का है। सामायिक आप्तोपदेश रूप होने के कारण से इसका आगमप्रमाण मे अन्तर्भाव होता है। किन्तु आगम भी लौकिक और लोकोत्तर के भेद से दो प्रकार का है। तीर्थंकरप्रणीत होने से सामायिक का लोकोत्तर-आगम मे समवतार होता है।

लोकोत्तर-आगम भी आत्मागम, अनन्तरागम और परपरागम के भेद से तीन प्रकार का है। इन तीनो प्रकार के आगमो मे सामायिक का समवतार जानना चाहिये।

सख्याप्रमाण नाम, स्थापना, द्रव्य, औपम्य, परिमाण, ज्ञान, गणना और भाव के भेद से आठ प्रकार का है। इन आठ प्रकारो मे से सामायिक का अन्तर्भाव पाचवे परिमाणसख्याप्रमाण मे हुआ है।

वक्तव्यता तीन या दो तरह की कही गयी है। इनमे से सामायिक का समवतार स्वसमय-वक्तव्यता मे जानना चाहिये। इसी प्रकार चतुर्विंशतिस्तव आदि अध्ययनो के समवतार के विषय मे जानना चाहिये।

समवतार का वर्णन करने के साथ उपक्रमद्वार की वक्तव्यता पूर्ण हुई।

अब निक्षेप नामक अनुयोगद्वार का निरूपण करते हैं।

निक्षेपनिरूपण

५३४. से किं तं निक्खेवे ?

निक्खेवे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—ओहनिप्फण्णे य नामनिप्फण्णे य सुत्तालावगनिप्फण्णे य।

[५३४ प्र] भगवन्! निक्षेप किसे कहते है?

[५३४ उ] आयुष्मन्! निक्षेप के तीन प्रकार है। यथा—१ ओघनिष्पन्न, २ नामनिष्पन्न, ३ सूत्रालापकनिष्पन्न।

विवेचन—इष्ट वस्तु का निर्णय करने के लिये अप्रकृत का निराकरण करके प्रकृत का विधान करना निक्षेप कहलाता है। इसके तीन भेदो का अर्थ इस प्रकार है—

ओघनिष्पन्न—सामान्य रूप मे अध्ययन आदि श्रुत नाम से निष्पन्न निक्षेप को ओघनिष्पन्न-निक्षेप कहते हैं।

नामनिष्पन्न—श्रुत के ही सामायिक आदि विशेष नामो से निष्पन्न निक्षेप नामनिष्पन्ननिक्षेप कहलाता है।

सूत्रालापकनिष्पन्न—'करेमि भते सामाइय' इत्यादि सूत्रालापको से निष्पन्न निक्षेप सूत्रालापक-निष्पन्न निक्षेप है।

ओघनिष्पन्ननिक्षेप

५३५. से किं त ओहनिप्फण्णे ?

ओहनिप्फण्णे चउव्विहे पण्णत्ते। त जहा—अज्झयणे अज्झीणे आए झवणा।

[५३५ प्र] भगवन्! ओघनिष्पन्ननिक्षेप का क्या स्वरूप है?

[५३५ उ] आयुष्मन्! ओघनिष्पन्ननिक्षेप के चार भेद है। उनके नाम है—१ अध्ययन, २ अक्षीण, ३ आय, ४ क्षपणा।

विवेचन—सूत्र मे ओघनिष्पन्ननिक्षेप के जिन चार प्रकारो का नामोल्लेख किया है, वे चारो सामायिक, चतुर्विशतिस्तव आदि रूप श्रुतविशेष के ही एकार्थवाची सामान्य नाम है। क्योकि जैसे पढने योग्य होने से अध्ययन रूप है, वैसे ही शिष्यादि को पढाने से सूत्रज्ञान क्षीण नही होने से अक्षीण हैं, मुक्ति रूप लाभ के दाता होने से आय है और कर्मक्षय करने वाले होने से क्षपणा है। इसी कारण ये अध्ययन आदि श्रुत के सामान्य नामान्तर होने से ओघनिष्पन्ननिक्षेप है।

अध्ययननिरूपण

५३६. से किं त अज्झयणे ?

अज्झयणे चउव्विहे पण्णत्ते। त जहा—णामज्झयणे ठवणज्झयणे दव्वज्झयणे भावज्झयणे।

[५३६ प्र] भगवन्! अध्ययन किसे कहते है?

[५३६ उ] आयुष्मन्! अध्ययन के चार प्रकार कहे गये है, यथा—१ नाम-अध्ययन, २. स्थापना-अध्ययन, ३ द्रव्य-अध्ययन, ४ भाव-अध्ययन।

विवेचन—प्ररूपणा के लिये अधिक से अधिक प्रकारो मे वस्तु का न्यास-निक्षेप न भी किया जाये, तो भी कम-से-कम नाम आदि चार प्रकारों से वर्णन किये जाने का सिद्धान्त होने से सूत्र में अध्ययन को नाम आदि चार प्रकारो मे निक्षिप्त किया है। आगे क्रम से उनकी व्याख्या की जाती है।

नाम-स्थापना-अध्ययन

५३७. णाम-ट्ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ ।

[५३७] नाम और स्थापना अध्ययन का स्वरूप पूर्ववर्णित (नाम और स्थापना आवश्यक) जैसा ही जानना चाहिये ।

विवेचन—सूत्र मे नाम और स्थापना अध्ययन का स्वरूप बताने के लिये नाम और स्थापना आवश्यक का अतिदेश किया है और अतिदेश के सकेत के लिये सूत्र मे 'पुव्ववण्णियाओ' पद दिया है ।

द्रव्य-अध्ययन

५३८. से किं त दव्वज्झयणे ?

दव्वज्झयणे दुविहे पण्णत्ते । त जहा—आगमओ य णोआगमओ य ।

[५३८ प्र] भगवन् ! द्रव्य-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५३८ उ] आयुष्मन् ! द्रव्य-अध्ययन के दो प्रकार है, यथा—१ आगम से और २ नोआगम से ।

५३९. से किं त आगमतो दव्वज्झयणे ?

आगमतो दव्वज्झयणे जस्स ण अज्झयणे त्ति पदं सिक्खित ठित जित मित परिजित जाव जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइ दव्वज्झयणाइ । एवमेव ववहारस्स वि । सगहस्स ण एगो वा अणेगो वा त चेव भाणियव्व जाव से त आगमतो दव्वज्झयणे ।

[५३९ प्र] भगवन् ! आगम से द्रव्य-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५३९ उ] आयुष्मन् ! जिसने 'अध्ययन' इस पद को सीख लिया है, अपने (हृदय) मे स्थिर कर लिया है, जित, मित और परिजित कर लिया है यावत् जितने भी उपयोग से शून्य है, वे आगम से द्रव्य-अध्ययन है । इसी प्रकार (नैगमनय जैसा ही) व्यवहारनय का मत है, सग्रहनय के मत से एक या अनेक आत्माएँ एक आगमद्रव्य-अध्ययन है, इत्यादि समग्र वर्णन आगमद्रव्य-आवश्यक जैसा ही यहाँ जानना चाहिये । यह आगमद्रव्य-अध्ययन का स्वरूप है ।

५४०. से किं तं णोआगमतो दव्वज्झयणे ?

णोआगमतो दव्वज्झयणे तिविहे पण्णत्ते । तं जहा—जाणयसरीरदव्वज्झयणे भवियसरीर-दव्वज्झयणे जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वज्झयणे ।

[५४० प्र] भगवन् ! नोआगमद्रव्य-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४० उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्य-अध्ययन तीन प्रकार का कहा गया है । यथा—१ ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन, २ भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन ३. ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अध्ययन ।

५४१. से किं त जाणगसरीरदव्वज्झयणे ?

जाणगसरीरदव्वज्झयणे अज्झयणपयत्थाहिगारजाणयस्स ज सरीरयं ववगत-चुत-चइय-

चत्तदेहं जाव अहो ! णं इमेण सरीरसमुस्सएणं अज्झयणे त्ति पद आघवियं जाव उवदंसियं ति, जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे आसी, अयं महुकुंभे आसी । से तं जाणयसरीरदव्वज्झयणे ।

[५४१ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन किसे कहते हैं ?

[५४१ उ] आयुष्मन् ! अध्ययन पद के अर्थाधिकार के ज्ञायक—जानकार के व्यपगतचैतन्य, च्युत, च्यावित त्यक्तदेह यावत् (जीव रहित शरीर को शय्यागत, संस्तारकगत, स्वाध्यायभूमि या श्मशानगत अथवा सिद्धशिलागत, देखकर कोई कहे)—अहो इस शरीर रूप पुद्गलसघात ने 'अध्ययन' इस पद का व्याख्यान किया था, यावत (प्ररूपित, दर्शित, निदर्शित), उपदर्शित किया था, (वैसा यह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन है ।)

[प्र] एतद्विषयक कोई दृष्टान्त है ?

[उ] (इस प्रकार शिष्य के पूछने पर आचार्य ने उत्तर दिया) जैसे घडे मे से घी या मधु के निकाल लिये जाने के बाद भी कहा जाता है--यह घी का घडा था, यह मधुकुभ था ।

यह ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन का स्वरूप है ।

५४२. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झयणे ?

भवियसरीरदव्वज्झयणे जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते इमेण चेव आदत्तएण सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेण भावेण अज्झयणे त्ति पय सेयकाले सिक्खिस्सति ण ताव सिक्खति, जहा को दिट्ठंतो ? अय घयकुंभे भविस्सति, अय महुकुंभे भविस्सति । से तं भवियसरीरदव्वज्झयणे ।

[५४२ प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४२ उ] आयुष्मन् ! जन्मकाल प्राप्त होने पर जो जीव योनिस्थान से बाहर निकला और इसी प्राप्त शरीरसमुदाय के द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार 'अध्ययन' इस पद को सीखेगा, लेकिन अभी-वर्तमान मे नही सीख रहा है (ऐसा उस जीव का शरीर भव्यशरीरद्रव्याध्ययन कहा जाता है) ।

[प्र] इसका कोई दृष्टान्त है ?

[उ] जैसे किसी घडे मे अभी मधु या घी नही भरा गया है, तो भी उसको यह घृतकुभ होगा, मधुकुभ होगा कहना । यह भव्यशरीरद्रव्याध्ययन का स्वरूप है ।

५४३. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे पत्तय-पोत्थयलिहियं । से त जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे । से त णोआगमओ दव्वज्झयणे । से तं दव्वज्झयणे ।

[५४३ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्याध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४३ उ] आयुष्मन् ! पत्र या पुस्तक मे लिखे हुए अध्ययन को ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्याध्ययन कहते है ।

इस प्रकार से नोआगमद्रव्याध्ययन का और साथ ही द्रव्याध्ययन का वर्णन पूर्ण हुआ ।

विवेचन—सूत्र ५३८ से ५४३ तक छह सूत्रो मे द्रव्याध्ययन का आशय स्पष्ट किया है। इन सबकी व्याख्या पूर्वोक्त द्रव्यावश्यक की वक्तव्यता के अनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिये। किन्तु आवश्यक के स्थान पर अध्ययन पद का प्रयोग किया जाये। इसी प्रकार आगे के विवेचन के लिये भी जानना चाहिये।

आगमद्रव्य-अध्ययन की नयप्ररूपणा मे व्यवहार और सग्रहनय की दृष्टि का उल्लेख किया है, शेष नयदृष्टियो सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नैगमनय की दृष्टि से जितने भी अध्ययन शब्द के ज्ञाता किन्तु अनुपयुक्त जीव हैं, उतने ही आगमद्रव्याध्ययन है। व्यवहारनय की मान्यता नैगमनय जैसी है। सग्रहनय की मान्यता एक या अनेक अनुपयुक्त आत्माओ को एक आगमद्रव्य-अध्ययन मानने की है। भेद को नही मानने से ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-अध्ययन है। ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो तीनो शब्दनय उसे अवस्तु-असत् मानते है। क्योकि ज्ञायक होने पर अनुपयुक्तता सभव नही है और यदि अनुपयुक्त हो तो वह ज्ञायक नही हो सकता है।

भाव-अध्ययन

५४४. से किं त भावज्झयणे ?

भावज्झयणे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—आगमतो य णोआगमतो य।

[५४४ प्र.] भगवन् ! भाव-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४४ उ] आयुष्मन् ! भाव-अध्ययन के दो प्रकार हैं—(१) आगमभाव-अध्ययन (२) नोआगमभाव-अध्ययन।

५४५. से किं तं आगमतो भावज्झयणे ?

आगमतो भावज्झयणे जाणए उवउत्ते। से त आगमतो भावज्झयणे।

[६४५ प्र] भगवन् ! आगमभाव-अध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४५ उ] आयुष्मन् ! जो अध्ययन के अर्थ का ज्ञायक होने के साथ उसमे उपयोगयुक्त भी हो, उसे आगमभाव-अध्ययन कहते है।

५४६ से किं तं नोआगमतो भावज्झयणे ?

नोआगमतो भावज्झयणे—

अज्झप्पस्साऽऽणयणं, कम्माणं अवचओ उवचियाणं।
अणुवचओ य नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति ॥ १२५ ॥

से त णोआगमतो भावज्झयणे। से त भावज्झयणे। से त अज्झयणे।

[५४६ प्र] भगवन् ! नोआगमभावाध्ययन का क्या स्वरूप है ?

[५४६ उ] आयुष्मन् ! नोआगमभाव-अध्ययन का स्वरूप इस प्रकार है—

अध्यात्म मे आने—सामायिक आदि अध्ययन मे चित्त को लगाने, उपार्जित-पूर्वबद्ध कर्मों का

क्षय करने—निर्जरा करने और नवीन कर्मों का बध नही होने देने का कारण होने से (मुमुक्षु महापुरुष) अध्ययन की अभिलाषा करते हैं। १२५

यह नोआगमभाव-अध्ययन का स्वरूप है। इस प्रकार से भाव-अध्ययन और साथ ही अध्ययन का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे भावाध्ययन का वर्णन किया गया है।

आगमभाव-अध्ययन का स्वरूप स्पष्ट है।

नोआगमभाव-अध्ययन विषयक स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नोआगमभावाध्ययन मे प्रयुक्त 'नो' शब्द एकदेशवाची है। क्योकि ज्ञान और क्रिया के समुदाय रूप होने से सामायिक आदि अध्ययन आगम के एकदेश हैं। इसीलिये सामायिक आदि को नोआगम से अध्ययन कहा है।

गाथागत पदों का सार्थक्य— 'अज्झप्पस्साऽऽणयण' पद की सस्कृत छाया—अध्यात्ममानयन-अध्यात्मम्-आनयनम् है। इसमे अध्यात्म का अर्थ है चित्त और आनयन का अर्थ है लगाना। तात्पर्य यह हुआ कि सामायिक आदि मे चित्त का लगाना अध्यात्मानयन कहा जाता है और इसका फल है—कम्माण अवचओ नवाण। अर्थात् सामायिक आदि मे चित्त की निर्मलता होने के कारण कर्मनिर्जरा होती है, नवीन कर्मों का आश्रव-बध नही होता है।

अक्षीणनिरूपण

५४७ से कि त अज्झीणे ?

अज्झीणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—णामज्झीणे ठवणज्झीणे दव्वज्झीणे भावज्झीणे।

[५४७ प्र] भगवन्! (ओघनिष्पन्ननिक्षेप के द्वितीय भेद) अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५४७ उ] आयुष्मन्! अक्षीण के चार प्रकार है। यथा—१ नाम-अक्षीण, २ स्थापना-अक्षीण, ३ द्रव्य-अक्षीण और ४ भाव-अक्षीण।

विवेचन-सूत्र मे अक्षीण का वर्णन करना प्रारभ किया है। अक्षीण का अर्थ पूर्व मे बतलाया जा चुका है कि शिष्य-प्रशिष्य के क्रम से पठन-पाठन की परपरा के चालू रहने से जिसका कभी क्षय न हो, उसे अक्षीण कहते है। अक्षीण के भी अध्ययन की तरह नामादि चार भेद है।

नाम-स्थापना-अक्षीण

५४८. नाम-ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ।

[५४८] नाम और स्थापना अक्षीण का स्वरूप पूर्ववत् (नाम और स्थापना आवश्यक के समान] जानना चाहिये।

द्रव्य-अक्षीण

५४९. से किं तं दव्वज्झीणे ?

दव्वज्झीणे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—आगमतो य नोआगमतो य।

[५४९ प्र.] भगवन् ! द्रव्य-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५४९ उ] आयुष्मन् ! द्रव्य-अक्षीण के दो प्रकार हैं। यथा—१ आगम से, २ नोआगम से।

५५०. से किं त आगमतो दव्वज्झीणे ?

आगमतो दव्वज्झीणे जस्स ण अज्झीणे त्ति पदं सिक्खित ठितं जितं मित परिजितं त चेव जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं, जाव से तं आगमतो दव्वज्झीणे।

[५५० प्र] भगवन् ! आगमद्रव्य-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५५० उ.] आयुष्मन् ! जिसने अक्षीण इस पद को सीख लिया है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है इत्यादि जैसा द्रव्य-अध्ययन के प्रसग मे कहा है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिये, यावत् वह आगम से द्रव्य-अक्षीण है।

५५१. से किं तं नोआगमतो दव्वज्झीणे ?

नोआगमतो दव्वज्झीणे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—जाणयसरीरदव्वज्झीणे भवियसरीर-दव्वज्झीणे जाणयसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वज्झीणे।

[५५१ प्र] भगवन् ! नोआगम से द्रव्य-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५५१ उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्य-अक्षीण के तीन प्रकार है। यथा—१ ज्ञायकशरीर-द्रव्य-अक्षीण २ भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण ३ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण।

५५२. से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे ?

जाणयसरीरदव्वज्झीणे अज्झीणपयत्थाहिकारजाणयस्स ज सरीरय ववगय-चुत-चइत-चत्तदेह जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं, जाव से त जाणयसरीरदव्वज्झीणे।

[५५२ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरद्रव्य-अक्षीण किसे कहते है ?

[५५२ उ] आयुष्मन् ! अक्षीण पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित, त्यक्तदेह आदि जैसा द्रव्य-अध्ययन के सदर्भ मे वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिये यावत् यही ज्ञायकशरीरद्रव्य-अक्षीण का स्वरूप है।

५५३. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झीणे ?

भवियसरीरदव्वज्झीणे जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं भविय-सरीरदव्वज्झीणे।

[५५३ प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण किसे कहते है ?

[५५३ उ] आयुष्मन् ! समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि से निकलकर उत्पन्न हुआ आदि पूर्वोक्त भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन के जैसा इस भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण का वर्णन जानना चाहिये, यावत यह भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण की वक्तव्यता है।

५५४. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे सव्वागाससेढी। से तं जाणयसरीरभवियसरीर-वइरित्ते दव्वज्झीणे। से त नोआगमओ दव्वज्झीणे। से तं दव्वज्झीणे।

[५५४ प्र.] भगवन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५५४ उ] आयुष्मन् ! सर्वाकाश-श्रेणि ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण रूप है।

यह नोआगम से द्रव्य-अक्षीण का वर्णन है और इसका वर्णन करने से द्रव्य-अक्षीण का कथन पूर्ण हुआ।

विवेचन—उपर्युक्त सूत्र ५४७ से ५५४ तक अक्षीण के नाम, स्थापना और द्रव्य इन तीन प्रकारों का वर्णन पूर्वोक्त अध्ययन के अतिदेश के आधार से किया है। जिसका तात्पर्य यह है कि अध्ययन के प्रसग मे आवश्यक के अतिदेश के द्वारा जो और जैसा वर्णन किया है, वही और वैसा ही वर्णन यहाँ आवश्यक के स्थान पर अक्षीण शब्द को रखकर कर लेना चाहिये, लेकिन इतना विशेष है कि ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण 'सर्वाकाश श्रेणी' रूप है। जिसका आशय यह है—

क्रमबद्ध एक-एक प्रदेश की पक्ति को श्रेणी कहते हैं। अतएव लोक और अलोक रूप अनन्तप्रदेशी सर्व आकाशद्रव्य की श्रेणी मे से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार किये जाने पर भी अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालो मे क्षीण नही हो सकने से वह सर्वाकाश की श्रेणी उभयव्यतिरिक्त-द्रव्य-अक्षीण है।

भाव-अक्षीण

५५५. से किं तं भावज्झीणे ?

भावज्झीणे दुविहे पण्णत्ते। त तहा—आगमतो य नोआगमतो य।

[५५५ प्र] भगवन् ! भाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५५५ उ] आयुष्मन् ! भाव-अक्षीण दो प्रकार का है, यथा—१ आगम से, २ नोआगम से।

५५६. से कि तं आगमतो भावज्झीणे ?

आगमतो भावज्झीणे जाणए उवउत्ते। से तं आगमतो भावज्झीणे।

[५५६ प्र] भगवन् ! आगमभाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[५५६ उ] आयुष्मन् ! ज्ञायक जो उपयोग से युक्त हो - जो जानता हो और उपयोग सहित हो वह आगम की अपेक्षा भाव-अक्षीण है।

५५७. से किं त नोआगमतो भावज्झीणे।

नोआगमतो भावज्झीणे—

जह दीवा दीवसतं पइप्पए, दिप्पए य सो दीवो।
दीवसमा आयरिया दिप्पंति, परं च दीवेंति ॥१२६॥

से तं नोआगमतो भावज्झीणे। से तं भावज्झीणे। से त अज्झीणे।

[५५७ प्र] भगवन्! नोआगमभाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है?

[५५७ उ.] आयुष्मन्! जैसे दीपक दूसरे सैकडो दीपको को प्रज्वलित करके भी प्रदीप्त रहता है, उसी प्रकार आचार्य स्वय दीपक के समान देदीप्यमान हैं और दूसरो (शिष्य वर्ग) को देदीप्यमान करते है। १२६

इस प्रकार से नोआगमभाव-अक्षीण का स्वरूप जानना चाहिये। यही भाव-अक्षीण और अक्षीण की वक्तव्यता है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे सप्रभेद भाव-अक्षीण का वर्णन कर अक्षीण की वक्तव्यता की समाप्ति का सूचन किया है।

उपयोग आगमभाव-अक्षीण कैसे ?— श्रुतकेवली के श्रुतोपयोग की अन्तर्मुहूर्त्तकालीन अनन्त पर्याय होती है। उनमें से प्रतिसमय एक-एक पर्याय का अपहार किये जाने पर भी अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल मे उनका क्षय होना सभव नही हो सकने से वह आगमभाव अक्षीण रूप है।

नोआगमभाव-अक्षीणता के निर्दिष्ट उदाहरण का आशय यह है—अध्ययन-अध्यापन द्वारा श्रुत की निरतरता रहना, श्रुत की परपरा का क्षीण न होना भाव-अक्षीणता है। इसमे आचार्य का उपयोग आगम और वाक्-कायव्यापार रूप योग अनागम रूप है किन्तु बोधप्राप्ति मे सहायक है। यही बताने के लिये आगम के साथ 'नो' शब्द दिया है।

आय-निरूपण

५५८. **से किं तं आए ?**

आए चउव्विहे पण्णत्ते। त जहा—नामाए ठवणाए दव्वाए भावाए।

[५५८ प्र] भगवन्! आय का क्या स्वरूप है?

[५५८ उ] आयुष्मन्! आय के चार प्रकार है। यथा—१ नाम-आय, २ स्थापना-आय, ३ द्रव्य-आय, ४ भाव-आय।

विवेचन—अप्राप्त की प्राप्ति—लाभ होने को आय कहते है। इसके भी अध्ययन, अक्षीण की तरह चार प्रकार है।

नाम-स्थापना-आय

५५९. **नाम-ठवणाओ पुव्वभणियाओ।**

[५५९] नाम-आय और स्थापना-आय का वर्णन पूर्वोक्त नाम और स्थापना आवश्यक के अनुरूप जानना चाहिए।

५६०. **से किं त दव्वाए ?**

दव्वाए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—आगमतो य नोआगमतो य।

[५६० प्र.] भगवन् ! द्रव्य-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६० उ] आयुष्मन् ! द्रव्य-आय के दो भेद इस प्रकार है—१. आगम से, २ नोआगम से।

आगम-द्रव्य-आय

५६१. से किं तं आगमतो दव्वाए ?

जस्स णं आए त्ति पयं सिक्खितं ठितं जाव अणुवओगो दव्वमिति कट्टु, जाव जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइया ते दव्वाया, जाव से तं आगमओ दव्वाए।

[५६१ प्र] भगवन् ! आगम से द्रव्य आय का क्या स्वरूप है ?

[५६१ उ] आयुष्मन् ! जिसने आय यह पद सीख लिया है, स्थिर कर लिया है किन्तु उपयोग रहित होने से द्रव्य है यावत् जितने उपयोग रहित है, उतने ही आगम से द्रव्य-आय हैं, यह आगम से द्रव्य-आय का स्वरूप जानना चाहिये।

नोआगमद्रव्य-आय

५६२. से किं त नोआगमओ दव्वाए ?

नोआगमओ दव्वाए तिविहे पण्णत्ते। त जहा—जाणयसरीरदव्वाए भवियसरीरदव्वाए जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए।

[५६२ प्र] भगवन् ! नोआगमद्रव्य-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६२ उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्य-आय के तीन प्रकार है। यथा—१ ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय, २ भव्यशरीरद्रव्य-आय, ३ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय।

५६३. से किं त जाणयसरीरदव्वाए ?

जाणयसरीरदव्वाए आयपयत्थाहिकारजाणगस्स ज सरीरगं ववगय-चुत-चतिय-चत्तदेहं सेसं जहा दव्वज्झयणे, जाव से त जाणयसरीरदव्वाए।

[५६३ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय किसे कहते है ?

[५६३ उ.] आयुष्मन् ! आय पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित त्यक्त आदि शरीर द्रव्याध्ययन की वक्तव्यता जैसा ही ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्य-आय का स्वरूप जानना चाहिये।

५६४. से किं त भवियसरीरदव्वाए ?

भवियसरीरदव्वाए जे जीवे जोणीजम्मणणिक्खंते सेसं जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं भवियसरीरदव्वाए।

[५६४ प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्य-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६४ उ] आयुष्मन् ! समय पूर्ण होने पर योनि से निकलकर जो जन्म को प्राप्त हुआ आदि भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन के वर्णन के समान भव्यशरीरद्रव्य-आय का स्वरूप जानना चाहिये।

५६५. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाये ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाये तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—लोइए कुप्पावयणिए लोगुत्तरिए।

[५६५ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्य आय किसे कहते है ?

[५६५ उ] आयुष्मन् ! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्य-आय के तीन प्रकार हैं। यथा—१ लौकिक, २ कुप्रवाचनिक, ३ लोकोत्तर।

५६६. से किं त लोइए ?

लोइए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए य।

[५६६ प्र] भगवन् ! (उभयव्यतिरिक्त) लौकिक द्रव्य-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६६ उ] आयुष्मन् ! लौकिकद्रव्य-आय के तीन प्रकार कहे गये है। यथा—१ सचित्त, २ अचित्त और मिश्र।

५६७. से किं तं सचित्ते ?

सचित्ते तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—दुपयाणं चउप्पयाणं अपयाणं। दुपयाण दासाण, दासीणं, चउप्पयाणं आसाणं हत्थीण, अपयाण अंबाणं अंबाडगाणं आए। से त सचित्ते।

[५६७ प्र.] भगवन् ! सचित्त लौकिक-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६७ उ] आयुष्मन् ! सचित्त लौकिक-आय के भी तीन प्रकार है। यथा—१ द्विपद-आय २ चतुष्पद-आय, ३ अपद-आय। इनमे से दास-दासियो की आय (प्राप्ति) द्विपद-आय रूप है। अश्वो (घोडो) हाथियो की प्राप्ति चतुष्पद-आय रूप और आम, आमला के वृक्षो आदि की प्राप्ति अपद-आय रूप है। इस प्रकार सचित्त आय का स्वरूप जानना चाहिये।

५६८. से किं त अचित्ते ?

अचित्ते सुवण्ण-रयत-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणाणं [संतसावएज्जस्स] आये। से तं अचित्ते।

[५६८ प्र] भगवन् ! (उभयव्यतिरिक्तलौकिक-आय के दूसरे भेद) अचित्त-आय का क्या स्वरूप है ?

[५६८ उ] आयुष्मन् ! सोना-चादी, मणि-मोती, शख, शिला, प्रवाल (मूगा) रक्तरत्न (माणिक) आदि (सारवान् द्रव्यो) की प्राप्ति अचित्त-आय है।

५६९. से किं तं मीसए ?

मीसए दासाण दासीणं आसाणं हत्थीणं समाभरियाउज्जालंकियाणं आये। से तं मीसए। से तं लोइए।

[५६९ प्र] भगवन् ! मिश्र (सचित्त-अचित्त उभय रूप) आय किसे कहते हैं ?

[५६९ उ] आयुष्मन् ! अलंकारादि से तथा वाद्यों से विभूषित दास-दासियों, घोड़ों, हाथियों आदि की प्राप्ति को मिश्र आय कहते हैं।

इस प्रकार से लौकिक-आय का स्वरूप जानना चाहिये।

५७०. से किं तं कुप्पावयणिये ?

कुप्पावयणिये तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए य। तिण्णि वि जहा लोइए, जाव से तं कुप्पावयणिए।

[५७० प्र] भगवन् ! कुप्रवाचनिक-आय का क्या स्वरूप है ?

[५७० उ.] आयुष्मन् ! कुप्रवाचनिक आय भी तीन प्रकार की है। यथा—१ सचित्त, २ अचित्त, ३ मिश्र। इन तीनों का वर्णन लौकिक-आय के तीनों भेदों के अनुरूप जानना चाहिये यावत् यही कुप्रवाचनिक आय है।

५७१. से किं तं लोगुत्तरिए ?

लोगुत्तरिए तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए य।

[५७१ प्र] भगवन् ! लोकोत्तरिक-आय का क्या स्वरूप है ?

[५७१ उ] आयुष्मन् ! लोकोत्तरिक-आय के तीन प्रकार कहे गये हैं। यथा—१ सचित्त, २ अचित्त और ३ मिश्र।

५७२. से किं तं सचित्ते ?

सचित्ते सीसाणं सिस्सिणियाणं आये। से तं सचित्ते।

[५७२ प्र] भगवन् ! सचित्त-लोकोत्तरिक-आय का क्या स्वरूप है ?

[५७२ उ] आयुष्मन् ! शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति सचित्त-लोकोत्तरिक-आय है।

५७३. से किं तं अचित्ते ?

अचित्ते पडिग्गहाणं वत्थाणं कंबलाणं पायपुंछणाणं आए। से तं अचित्ते।

[५७३ प्र] भगवन् ! अचित्त लोकोत्तरिक-आय का क्या स्वरूप है ?

[५७३ उ] आयुष्मन् ! अचित्त पात्र, वस्त्र, पादप्रोच्छन (रजोहरण) आदि की प्राप्ति को अचित्त लोकोत्तरिक-आय कहते हैं।

५७४. से किं तं मीसए ?

मीसए सीसाणं सिस्सिणियाणं सभंडोवकरणाणं आये। से तं मीसए। से तं लोगुत्तरिए, से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए। से तं नोआगमओ दव्वाए। से तं दव्वाए।

[५७४ प्र] भगवन् ! मिश्र लोकोत्तरिक-आय किसे कहते हैं ?

[५७४ उ] आयुष्मन् ! भांडोपकरणादि सहित शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति-लाभ को मिश्र आय कहते हैं। यही लोकोत्तरिक-आय का स्वरूप है।

इस प्रकार से ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय का वर्णन जानना चाहिये और इसके साथ ही नोआगमद्रव्य-आय एवं द्रव्य-आय की वक्तव्यता भी पूर्ण हुई।

विवेचन—सूत्र संख्या ५५८ से ५७४ तक ओघनिष्पन्ननिक्षेप के तीसरे प्रकार आय का नाम, स्थापना और द्रव्य दृष्टि से विचार किया गया है। नाम, स्थापना और ज्ञायकशरीर तथा भव्यशरीर रूप द्रव्य आय का वर्णन तो द्रव्य-आवश्यक तक के इन्हीं भेदों के समान है। लेकिन ज्ञायकशरीरभव्य-शरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय के वर्णन का रूप भिन्न है। क्योंकि प्राय स्थूल दृश्य पदार्थों की प्राप्ति-लाभ को आय माना जाता है और सामान्यत प्राप्त करने योग्य अथवा प्राप्त होने योग्य पदार्थ सजीव अजीव और मिश्र अवस्था वाले होते है। उनके अपेक्षादृष्टि से लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक यह तीन-तीन भेद होते है। लौकिक आय आदि का स्वरूप सूत्र मे स्पष्ट है।

भाव-आय

५७५. से किं त भावाए ?

भावाए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—आगमतो य नोआगमतो य।

[५७५ प्र.] भगवन्! भाव-आय का क्या स्वरूप है?

[५७५ उ] आयुष्मन्! भाव-आय के दो प्रकार हैं। यथा—१ आगम से २ नोआगम से।

५७६. से किं त आगमतो भावाए ?

आगमतो भावाए जाणए उवउत्ते। से तं आगमतो भावाए।

[५७६ प्र] भगवन्! आगमभाव-आय का क्या स्वरूप है?

[५८६ उ] आयुष्मन्! आयपद के ज्ञाता और साथ ही उसके उपयोग से युक्त जीव आगम-भाव-आय हैं।

५७७. से किं त नोआगमतो भावाए ?

नोआगमतो भावाए दुविहे पण्णत्ते। त जहा—पसत्थे य अप्पसत्थे य।

[५७७ प्र] भगवन्! नोआगमभाव-आय का क्या स्वरूप है?

[५७७ उ] आयुष्मन्! नोआगमभाव-आय के दो प्रकार हैं, यथा—१ प्रशस्त और अप्रशस्त।

५७८. से किं तं पसत्थे ?

पसत्थे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—णाणाए दंसणाए चरित्ताए। से तं पसत्थे।

[५७८ प्र] भगवन्! प्रशस्त नोआगमभाव-आय किसे कहते है?

[५७८ उ] आयुष्मन्! प्रशस्त नोआगमभाव-आय के तीन प्रकार हैं। यथा—१. ज्ञान-आय, २ दर्शन-आय, ३ चारित्र-आय।

५७९. से किं तं अपसत्थे ?

अपसत्थे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—कोहाए माणाए मायाए लोभाए। से तं अपसत्थे। से तं णोआगमतो भावाए। से तं भावाए। से तं आये।

[५७९ प्र] भगवन् ! अप्रशस्तनोआगमभाव-आय किसे कहते हैं ?

[५७९ उ.] आयुष्मन् ! अप्रशस्तनोआगमभाव-आय के चार प्रकार हैं। यथा— १ क्रोध-आय, २ मान-आय ३ माया-आय और ४ लोभ-आय। यही अप्रशस्तभाव-आय है। इस प्रकार से नोआगमभाव-आय और भाव-आय एव आय की वक्तव्यता का वर्णन जानना चाहिये।

विवेचन—भाव-आय का वर्णन सुगम है। विशेष इतना है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आय मोक्षप्राप्ति का उपाय होने के साथ आत्मिक गुण रूप होने से प्रशस्त है और क्रोधादि की आय अप्रशस्त इसलिये है कि वे आत्मा की वैभाविक परिणति एक ससार के कारण हैं। इनकी प्राप्ति से जीव ससार मे परिभ्रमण करता है और ससार मे परिभ्रमण करना जीव के लिए अनिष्ट है।

क्षपणानिरूपण

५८०. से किं त झवणा ?

झवणा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—नामज्झवणा ठवणज्झवणा दव्वज्झवणा भावज्झवणा।

[५८० प्र] भगवन् ! क्षपणा का क्या स्वरूप है ?

[५८० उ] आयुष्मन् ! क्षपणा के भी चार प्रकार जानना चाहिये। यथा—१ नामक्षपणा २ स्थापनाक्षपणा ३ द्रव्यक्षपणा ४ भावक्षपणा।

विवेचन—कर्मनिर्जरा, क्षय या अपचय को क्षपणा कहते हैं। आगे नाम आदि चारो प्रकार की क्षपणा का वर्णन करते है।

नामस्थापनाक्षपणा

५८१. नाम-ठवणाओ पुव्वभणियाओ।

[५८१] नाम और स्थापनाक्षपणा का वर्णन पूर्ववत् (नाम और स्थापना आवश्यक के अनुरूप) जानना चाहिये।

द्रव्यक्षपणा

५८२. से किं त दव्वज्झवणा ?

दव्वज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—आगमतो य नोआगमतो य।

[५८२ प्र] भगवन् ! द्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है ?

[५८२ उ] आयुष्मन् ! द्रव्यक्षपणा दो प्रकार की है। यथा—१ आगम से और २ नोआगम से।

५८३. से किं त आगमतो दव्वज्झवणा ?

आगमतो दव्वज्झवणा जस्स णं झवणे त्ति पदं सिक्खियं ठितं जितं मितं परिजितं, सेस जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं, जाव से तं आगमतो दव्वज्झवणा।

[५८३ प्र] भगवन् ! आगमद्रव्यक्षपणा किसे कहते है ?

[५८३ उ] आयुष्मन् ! जिसने 'क्षपणा' यह पद सीख लिया है, स्थिर, जित, मित और परिजित कर लिया है, इत्यादि वर्णन द्रव्याध्ययन के समान यावत् यह आगम से द्रव्यक्षपणा है तक जानना चाहिये ।

५८४. से किं तं नोआगमओ दव्वज्झवणा ?

नोआगमओ दव्वज्झवणा तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—जाणयसरीरदव्वज्झवणा भवियसरीरदव्वज्झवणा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ।

[५८४ प्र] भगवन् ! नोआगमद्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है ?

[५८४ उ] आयुष्मन् ! नोआगमद्रव्यक्षपणा के तीन भेद है । यथा—१ ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा २ भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा, ३ ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा ।

५८५. से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा ?

जाणयसरीरदव्वज्झवणा झवणापयत्थाहिकार-जाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुय-चइय-चत्तदेहं, सेसं जहा दव्वज्झयणे, जाव से तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा ।

[५८५ प्र] भगवन् ! ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है ?

[५८५ उ] आयुष्मन् ! क्षपणा पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यावित, त्यक्त शरीर इत्यादि सर्व वर्णन द्रव्याध्ययन के समान जानना चाहिये । यह ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा का स्वरूप है ।

५८६. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झवणा ?

भवियसरीरदव्वज्झवणा जे जीवे जोणीजम्मणणिक्खंते आयत्तएणं० जिणदिट्ठेणं भावेणं झवण त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सति, ण ताव सिक्खइ, को दिट्ठंतो ? जहा अयं घयकुंभे भविस्सति, अयं महुकुंभे भविस्सति । से तं भवियसरीरदव्वज्झवणा ।

[५८६ प्र] भगवन् ! भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा किसे कहते है ?

[५८६ उ] आयुष्मन् ! समय पूर्ण होने पर जो जीव उत्पन्न हुआ और प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्ट भाव के अनुसार भविष्य मे क्षपणा पद को सीखेगा, किन्तु अभी नही सीख रहा है, ऐसा वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा है ।

[प्र] इसके लिये दृष्टान्त क्या है ?

[उ] जैसे किसी घडे मे अभी घी अथवा मधु नही भरा गया है, किन्तु भविष्य मे भरे जाने की अपेक्षा अभी से यह घी का घडा होगा, यह मधुकलश होगा, ऐसा कहना ।

५८७. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा जहा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए तहा भाणियव्वा, जाव से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा । से तं नोआगमओ दव्वज्झवणा । से तं दव्वज्झवणा ।

[५८७ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा का क्या स्वरूप है?

[५८७ उ] आयुष्मन्! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा का स्वरूप ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय के समान जानना चाहिये। इस प्रकार से नोआगमद्रव्यक्षपणा और साथ ही द्रव्यक्षपणा का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—यहा सूत्र ५८१ से ५८७ तक मे अध्ययन के अतिदेश द्वारा नाम, स्थापना और द्रव्य-क्षपणा का वर्णन किया है। अतः विशेष विवेचन की अपेक्षा नही है।

भावक्षपणा

५८८. से किं त भावज्झवणा?

भावज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा -आगमतो य णोआगमतो य।

[५८८ प्र] भगवन्! भावक्षपणा का क्या स्वरूप है।

[५८८ उ] आयुष्मन्! भावक्षपणा दो प्रकार की है। यथा—१ आगम से २ नोआगम से।

५८९. से किं त आगमओ भावज्झवणा?

आगमओ भावज्झवणा झवणापयत्थाहिकारजाणए उवउत्ते। से त आगमतो भावज्झवणा।

[५८९ प्र] भगवन्! आगमभावक्षपणा का क्या स्वरूप है।

[५८९ उ] आयुष्मन्! क्षपणा इस पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञाता आगम से भावक्षपणा रूप है।

५९०. से किं त णोआगमतो भावज्झवणा?

णोआगमतो भावज्झवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पसत्था य अप्पसत्था य।

[५९० प्र] भगवन्! नोआगमभावक्षपणा का क्या स्वरूप है?

[५९० उ] आयुष्मन्! नोआगमभावक्षपणा दो प्रकार की है। यथा—१ प्रशस्तभावक्षपणा २ अप्रशस्तभावक्षपणा।

५९१. से किं त पसत्था?

पसत्था चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—कोहज्झवणा माणज्झवणा मायज्झवणा लोभज्झवणा। से तं पसत्था।

[५९१ प्र] भगवन्! प्रशस्तभावक्षपणा का क्या स्वरूप है?

[५९१ उ] आयुष्मन्! नोआगमप्रशस्तभावक्षपणा चार प्रकार की है। यथा—१ क्रोधक्षपणा २ मानक्षपणा, ३ मायाक्षपणा और लोभक्षपणा। यही प्रशस्तभावक्षपणा का स्वरूप है।

५९२. से किं तं अप्पसत्था?

अप्पसत्था तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—नाणज्झवणा दंसणज्झवणा चरित्तज्झवणा। से तं अप्पसत्था। से तं नोआगमतो भावज्झवणा। से तं भावज्झवणा। से तं झवणा। से तं ओहनिप्फण्णे।

[५९२ प्र] भगवन् ! अप्रशस्तभावक्षपणा का क्या स्वरूप है ?

[५९२ उ] आयुष्मन् ! अप्रशस्तभावक्षपणा तीन प्रकार की कही गई है। यथा—१ ज्ञान-क्षपणा, २ दर्शनक्षपणा, ३ चारित्रक्षपणा। यही अप्रशस्तभावक्षपणा है।

इस प्रकार से नोआगम भावक्षपणा, भावक्षपणा, क्षपणा और साथ ही ओघनिष्पन्ननिक्षेप का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे भावक्षपणा का विस्तार से वर्णन करके ओघनिष्पन्ननिक्षेप की वक्तव्यता की समाप्ति का उल्लेख किया है।

भावक्षपणा का वर्णन स्पष्ट और सुगम है लेकिन इतना विशेष है कि किसी-किसी प्रति मे अनुयोगद्वारसूत्र के मूलपाठ मे नोआगमभावक्षपणा के प्रशस्त प्रकार मे ज्ञानक्षपणा, दर्शनक्षपणा, चारित्रक्षपणा ये तीन भेद एव अप्रशस्त के रूप मे क्रोध, मान, माया, लोभ क्षपणा ये चार भेद बताये है। लेकिन यहा उससे विपरीत भेद और नामो का उल्लेख किया है। जो उपर्युक्त सूत्र पाठ से स्पष्ट है।

इस प्रकार सामान्य से तो यह मतभिन्नता प्रतीत होती है। लेकिन आपेक्षिक दृष्टि से विचार किया जाये तो यह सामासिक दृष्टिकोण का अतर है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

यहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षय को प्रशस्त इसलिये माना गया है कि ये क्रोधादि ससार के कारण है, अतएव ससार के कारणभूत इन क्रोधादि का क्षय प्रशस्त शुभ होने से प्रशस्तभावक्षपणा है और इससे विपरीत ज्ञानादित्रय का क्षय अप्रशस्त इसलिये है कि आत्मगुणो की क्षीणता ससार का कारण है।

एक जगह 'प्रशस्त' विशेषण को 'भाव' का और दूसरी जगह 'क्षपणा' का विशेषण माना गया है। अत प्रशस्त ज्ञान आदि गुणो के क्षय को प्रशस्तभावक्षपणा के रूप मे एव अप्रशस्त क्रोधादि के क्षय को अप्रशस्तभावक्षपणा के रूप मे ग्रहण किया है। इसी आपेक्षिक दृष्टि के कारण किसी-किसी प्रति मे यहाँ—प्रस्तुत पाठ से अतर प्रतीत होता है।

इस प्रकार से निक्षेप के प्रथम भेद ओघनिष्पन्ननिक्षेप का वर्णन करने के अनन्तर अब द्वितीय भेद नामनिष्पन्ननिक्षेप की प्ररूपणा प्रारभ करते है।

नामनिष्पन्ननिक्षेपप्ररूपणा

५९३. से किं तं नामनिप्फण्णे ?

नामनिप्फण्णे सामाइए। से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा— णामसामाइए ठवणासामाइए दव्वसामाइए भावसामाइए।

[५९३ प्र] भगवन् ! (निक्षेप के द्वितीय भेद) नामनिष्पन्न निक्षेप का क्या स्वरूप है ?

[५९३ उ] आयुष्मन् ! नामनिष्पन्न सामायिक है। वह सामायिक चार प्रकार का है। यथा—१ नामसामायिक, २ स्थापनासामायिक, ३ द्रव्यसामायिक ४ भावसामायिक।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र नामनिष्पन्ननिक्षेप का वर्णन करने की भूमिका है।

सूत्र मे नामनिष्पन्ननिक्षेप का लक्षण स्पष्ट करने के लिये 'सामाइए' पद दिया है। इसका अर्थ यह है कि पूर्व मे अध्ययन, अक्षीण आदि पदो द्वारा किये गये सामान्य उल्लेख का पृथक्-पृथक् उस-उस विशेष नामनिर्देश पूर्वक कथन करने को नामनिष्पन्ननिक्षेप कहते है।

सूत्रगत सामायिक पद उपलक्षण है, अतएव सामायिक की तरह विशेष नाम के रूप में चतुर्विंशतिस्तव आदि का भी ग्रहण समझ लेना चाहिये।

यह नामनिष्पन्ननिक्षेप भी पूर्व की तरह नामादि के भेद से चार प्रकार का है। सूत्रकार जैसे विशेष नाम के रूप मे सामायिक पद को माध्यम बना कर वर्णन कर रहे है, उसी प्रकार चतुर्विंशतिस्तव आदि नामो का भी वर्णन समझ लेना चाहिये।

अब सूत्रोक्त क्रम मे नामादि सामायिक का वर्णन करते है।

नाम-स्थापना-सामायिक

५९४. णाम-ठवणाओ पुव्वभणियाओ।

[५९४] नामसामायिक और स्थापनासामायिक का स्वरूप पूर्ववत् जानना चाहिये।

विवेचन--सूत्र मे नाम और स्थापनासामायिक की व्याख्या करने के लिये 'पुव्वभणियाओ' पद दिया है। अर्थात् पूर्व मे नाम-आवश्यक और स्थापना-आवश्यक की जैसी वक्तव्यता है, तदनुरूप यहाँ आवश्यक के स्थान पर सामायिक पद का प्रक्षेप करके व्याख्या कर लेनी चाहिए।

द्रव्यसामायिक

५९५. दव्वसामाइए वि तहेव, जाव से त भवियसरीरदव्वसामाइए।

[५९२] भव्यशरीरद्रव्यसामायिक तक द्रव्यसामायिक का वर्णन भी तथैव (द्रव्य-आवश्यक के वर्णन जैसा) जानना चाहिये।

५९६. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए?

जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए पत्तय-पोत्थयलिहियं। से तं जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए। से त णोआगमतो दव्वसामाइए। से त दव्वसामाइए।

[५९६ प्र] भगवन्! ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसामायिक का क्या स्वरूप है?

[५९६ उ] आयुष्मन्! पत्र मे अथवा पुस्तक मे लिखित 'सामायिक' पद ज्ञशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य सामायिक है।

इस प्रकार से नोआगमद्रव्यसामायिक एव द्रव्य सामायिक की वक्तव्यता जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र ५९५, ५९६ मे द्रव्यसामायिक के दो विभाग करके वर्णन किया है। जिसका आशय यह है कि आगम तथा नोआगम रूप दूसरे भेद के ज्ञायकशरीर, भव्यशरीर प्रभेद तक का वर्णन तो पूर्ववर्णित आवश्यक के अनुरूप है। किन्तु उभयव्यतिरिक्त का वर्णन उससे भिन्न होने के कारण सूत्रानुसार जान लेना चाहिये।

भावसामायिक

५९७. से किं तं भावसामाइए ?

भावसामाइए दुविहे पण्णत्ते । तं०—आगमतो य नोआगमतो य ।

[५९७ प्र] भगवन् ! भावसामायिक का क्या स्वरूप है ?

[५९७ उ] आयुष्मन् ! भावसामायिक के दो प्रकार है। यथा—१ आगमभावसामायिक २ नोआगमभावसामायिक ।

५९८. से किं त आगमतो भावसामाइए ?

आगमतो भावसामाइए भावसामाइयपयत्थाहिकारजाणए उवउत्ते । से त आगमतो भावसामाइए ।

[५९८ प्र] भगवन् ! आगमभावसामायिक का क्या स्वरूप है ?

[५९८ उ.] आयुष्मन् ! सामायिक पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञायक आगम से भावसामायिक है ।

५९९. [अ] से किं त नोआगमतो भावसामाइए ?

नोआगमतो भावसामाइए—

जस्स सामाणिओ अप्पा सजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ।। १२७ ।।
जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइय होइ, इइ केवलिभासिय ।। १२८ ।।

[५९९ (अ) प्र] भगवन् ! नोआगमभावसामायिक का क्या स्वरूप है ?

[५९९ (अ) उ] जिसकी आत्मा सयम, नियम और तप मे सनिहित—लीन है, उसी को सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान् का कथन है । १२७

जो सर्व भूतो—त्रस, स्थावर आदि प्राणियों के प्रति समभाव धारण करता है, उसी को सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान् ने कहा है । १२८

विवेचन—इन दो गाथाओ मे सामायिक का लक्षण एव उसके अधिकारी का सकेत किया है ।

सयम—मूलगुणो, नियम—उत्तरगुणो, तप—अनशन आदि तपो मे निरत एव त्रस, स्थावर, रूप सभी जीवो पर समभाव का धारक सामायिक का अधिकारी है । जिसका फलितार्थ यह हुआ—संयम, नियम, तप, समभाव का समुदाय सामायिक है । इसीलिये समस्त जिनवाणी का सार बताते हुए आचार्यों ने इसकी अनेक लाक्षणिक व्याख्याये की हैं—

१ बाह्य परिणतियो से विरत होकर आत्मोन्मुखी होने को सामायिक कहते हैं ।
२ सम अर्थात् मध्यस्थभावयुक्त साधक की मोक्षाभिमुखी प्रवृत्ति सामायिक कहलाती है ।
३ मोक्ष के साधन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की साधना को सामायिक कहते हैं ।

४ साम—सब जीवो पर मैत्री भाव की प्राप्ति सामायिक है।

५. सावद्ययोग से निवृत्ति और निरवद्ययोग मे प्रवृत्ति सामायिक है।

सामायिक के अधिकारी की संज्ञायें

५९९. [आ] जह मम ण पिय दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाण।
न हणइ न हणावेइ य सममणती तेण सो समणो ॥ १२९ ॥

णत्थि य से कोइ वेसो पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो, एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥ १३० ॥

[५९९ (आ)] जिस प्रकार मुझे दु ख प्रिय नही है उसी प्रकार सभी जीवो को भी प्रिय नही है, ऐसा जानकर—अनुभव कर जो न स्वय किसी प्राणी का हनन करता है, न दूसरो से करवाता है और न हनन की अनुमोदना करता है, किन्तु सभी जीवो को अपने समान मानता है, वही समण (श्रमण) कहलाता है। १२९

जिसको किसी जीव के प्रति द्वेष नही है और न राग है, इस कारण वह सममन वाला होता है। यह प्रकारान्तर से समन (श्रमण) का दूसरा पर्यायवाची नाम है। १३०

विवेचन—पूर्व गाथाओ मे सामायिक के अधिकारी का कथन किया था और इन दोनो गाथाओ द्वारा उनके लिये प्रयुक्त समण आदि सज्ञाओ का निरूपण किया है। जिनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१ सम्यक् प्रकार से जो मूलगुण रूप सयम, उत्तरगुण रूप नियम और अनशनादि रूप तप मे निहित—रत—लीन है, वह समण कहलाता है।

२ जो शत्रुमित्रा का विकल्प न करके सभी को समान मानकर प्रवृत्ति करता है, वह समण कहलाता है।

३ जैसे मुझे दु ख इष्ट नही, उसी प्रकार सभी जीवो को भी हननादि जनित दु ख प्रिय नही है। ऐसा अनुभव कर सभी को स्व-समान मानता है, वह सममन—समन—श्रमण है।

अब उपमाओ द्वारा श्रमण का स्वरूप स्पष्ट करते है।

श्रमण की उपमायें

५९९. [इ] उरग- गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुगणसमो य जो होइ।
भमर-मिग-धरणि-जलरुह-रवि-पवणसमो य सो समणो ॥ १३१ ॥

जो सर्प, गिरि (पर्वत), अग्नि, सागर, आकाश-तल, वृक्षसमूह, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान है, वही समण है। १३१

विवेचन—श्रमण का आचार भी विचारो के समान होता है, इस तथ्य का गाथोक्त उपमाओ द्वारा कथन किया है।

श्रमण के लिये प्रयुक्त उपमायें—समण (श्रमण) के लिये प्रयुक्त उपमाओं के साथ समानता के अर्थ मे सम शब्द जोडकर उनका भाव इस प्रकार जानना चाहिये—

१ उरग (सर्प) सम—जैसे सर्प दूसरो के बनाये हुए बिल में रहता है, इसी प्रकार अपना घर नही होने से परकृत गृह मे निवास करने के कारण साधु को उरग की उपमा दी है।

२ गिरिसम—परीषहो और उपसर्गो को सहन करने मे पर्वत के समान अडोल—अविचल होने से साधु गिरिसम है।

३ ज्वलन (अग्नि) सम—तपोजन्य तेज से समन्वित होने के कारण साधु अग्निसम है। अथवा जैसे अग्नि तृण, काष्ठ आदि ईंधन से तृप्त नही होती, उसी प्रकार साधु भी ज्ञानाभ्यास से तृप्त नही होने के कारण अग्निसम हैं।

४ सागरसम—जैसे सागर अपनी मर्यादा को नही लाघता इसी प्रकार साधु भी अपनी आचारमर्यादा का उल्लघन नही करने से सागरसम है। अथवा समुद्र जैसे रत्नो का आकर होता है वैसे ही साधु भी ज्ञानादि रत्नो का भडार होने से सागरसम हैं।

५. नभस्तलसम—जैसे आकाश सर्वत्र अवलबन से रहित है, उसी प्रकार साधु भी किसी प्रसग पर दूसरो का आश्रय—अवलबन—सहारा नही लेने से आकाशसम हैं।

६ तरुगणसम—जैसे वृक्षो को सीचने वाले पर राग और काटने वाले पर द्वेष नही होता, वे सर्वदा समान रहते है, इसी प्रकार साधु भी निन्दा-प्रशसा, मान-अपमान मे समवृत्ति वाले होने से तरुगण के समान हैं।

७ भ्रमरसम—जैसे भ्रमर अनेक पुष्पो से थोडा-थोडा रस लेकर अपनी उदरपूर्ति करता है, उसी प्रकार साधु भी अनेक घरो से थोडा-थोडा सा आहार ग्रहण करके उदरपूर्ति करने से भ्रमर-सम है।

८ मृगसम—जैसे मृग हिंसक पशुओ, शिकारियो आदि से सदा भीतचित्त रहता है, उसी प्रकार साधु भी ससारभय से सदा उद्विग्न रहने के कारण मृगसम है।

९ धरणिसम—पृथ्वी जैसे सब कुछ सहन करती है, इसी प्रकार साधु भी खेद, तिरस्कार, ताडना आदि को समभाव से सहन करने वाले होने से पृथ्वीसम है।

१० जलरुहसम—जैसे कमल पक (कीचड) मे पैदा होता है, जल मे सवर्धित होता है किन्तु उनमे निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार साधु भी कामभोगमयी ससार मे रहते हुए भी उससे अलिप्त रहने के कारण जलरुह (कमल) सम हैं।

११ रविसम—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से समान रूप मे सभी क्षेत्रो को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार साधु अपने ज्ञान रूपी प्रकाश को देशना द्वारा सर्वसाधारण को समान रूप से प्रदान करने वाले होने से रविसम है।

१२ पवनसम—जिस प्रकार वायु की सर्वत्र अप्रतिहत गति होती है, उसी प्रकार साधु भी सर्वत्र अप्रतिबद्ध विचरणशील होने से पवनसम हैं।

प्रकारान्तर से श्रमण का निर्वचन

५९९. [ई] तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे य जणे य समो, समो य माणाऽवमाणेसु ॥ १३२ ॥

से तं नोआगमतो भावसामाइए। से त भावसामाइए। से तं सामाइए। से तं नामनिप्फण्णे।

[५९९ (ई)] (पूर्वोक्त उपमाओ से उपमित) श्रमण तभी सभवित है जब वह सुमन हो, और भाव से भी पापी मन वाला न हो। जो माता-पिता आदि स्वजनो मे एव परजनो मे समभावी हो, एव मान-अपमान मे समभाव का धारक हो।

इस प्रकार से नोआगमभावसामायिक, भावसामायिक, सामायिक तथा नामनिष्पन्ननिक्षेप की वक्तव्यता का आशय जानना चाहिये।

विवेचन—गाथा मे प्रकारान्तर से श्रमण का लक्षण बताने के साथ उसकी योग्यता का तथा अत मे नामनिष्पन्ननिक्षेप की वक्तव्यता की समाप्ति का कथन किया है।

इन सब विशेषताओ से विभूषित श्रमण समन, सममन, सुमन ही सामायिक है।

समन और सामायिक मे नोआगमता इसलिये है कि सामायिक ज्ञान के साथ क्रिया रूप है और क्रिया आगम रूप नही है। तथा सामायिक और सामायिक वाले—इन दोनो मे अभेदोपचार करने से समन भी नोआगम की अपेक्षा भावसामायिक है।

सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप

६००. से किं त सुत्तालावगनिप्फण्णे ?

सुत्तालावगनिप्फण्णे इदाणिं सुत्तालावयनिप्फण्णं निक्खेवं इच्छावेइ, से य पत्तलक्खणे वि ण णिक्खिप्पइ, कम्हा ? लाघवत्थं। इतो अत्थि ततिये अणुओगद्दारे अणुगमे त्ति, तहिं णं णिक्खित्ते इह णिक्खित्ते भवति इहं वा णिक्खित्ते तहिं णिक्खित्ते भवति, तम्हा इहं ण णिक्खिप्पइ तहिं चेव णिक्खिप्पिस्सइ। से त निक्खेवे।

[६०० प्र] भगवन्! सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप का क्या स्वरूप है ?

[६०० उ] आयुष्मन्! इस समय (नामनिष्पन्ननिक्षेप का कथन करने के अनन्तर) सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप की प्ररूपणा करने की इच्छा है और अवसर भी प्राप्त है। किन्तु आगे अनुगम नामक तीसरे अनुयोगद्वार मे इसी का वर्णन किये जाने से लाघव की दृष्टि से अभी निक्षेप नही करते है। क्योकि वहा पर निक्षेप करने से यहा निक्षेप हो गया और यहा निक्षेप किये जाने से वहाँ पर निक्षेप हुआ समझ लेना चाहिये। इसीलिये यहाँ निक्षेप नही करके वहाँ पर ही इसका निक्षेप किया जायेगा।

इस प्रकार से निक्षेपप्ररूपणा का वर्णन समाप्त हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रालापको का नाम आदि निक्षेपो मे न्यास न करने का कारण स्पष्ट किया है। सूत्रो का उच्चारण अनुगम के भेद सूत्रानुगम मे किया जाता है और उच्चारण किये बिना आलापको का निक्षेप होता नही है। किन्तु वह भी निक्षेप का एक प्रकार है। यह बताने के लिये यहाँ उसका उल्लेख मात्र किया है।

अनुगम निरूपण

६००. से किं तं अणुगमे ?

अणुगमे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—सुत्ताणुगमे य निज्जुत्तिअणुगमे य ।

[६०१ प्र] भगवन् ! अनुगम का क्या स्वरूप है ?

[६०१ उ] आयुष्मन् ! अनुगम के दो भेद हैं। वे इस प्रकार—१ सूत्रानुगम और २. निर्युक्त्यनुगम ।

विवेचन—अनुगम-अधिकार की प्ररूपणा करने के लिये यह सूत्र भूमिका रूप है। अनुगम का लक्षण पूर्व मे बताया जा चुका है। उसके दोनो भेदो के लक्षण इस प्रकार है—

सूत्रानुगम—सूत्र के व्याख्यान अर्थात् पदच्छेद आदि करके उसकी व्याख्या करने को सूत्रानुगम कहते है।

निर्युक्त्यनुगम—निर्युक्ति अर्थात् सूत्र के साथ एकीभाव से सबद्ध अर्थों को स्पष्ट करना। अतएव नाम, स्थापना आदि प्रकारो द्वारा विभाग करके विस्तार से सूत्र की व्याख्या करने की पद्धति को निर्युक्त्यनुगम कहते है।

अनुगम के इन दोनो भेदो मे से सूत्रानुगम का वर्णन आगे सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति के प्रसग मे किये जाने से यहाँ पुनरावृत्ति न करके निर्युक्त्यनुगम का निरूपण करते है।

निर्युक्त्यनुगम

६०२. से किं तं निज्जुत्तिअणुगमे ?

निज्जुत्तिअणुगमे तिविहे पण्णत्ते । तं जहा—निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे उवघातनिज्जुत्तिअणुगमे सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे ।

[६०२ प्र] भगवन् ! निर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है ?

[६०२ उ] आयुष्मन् ! निर्युक्त्यनुगम के तीन प्रकार है। यथा—१ निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम, २ उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम और सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम ।

विवेचन—निर्युक्त्यनुगम के तीन भेदो का विस्तार से आगे वर्णन करते है।

निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम

६०३. से किं त निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे ?

निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे अणुगए ।

[६०३ प्र] भगवन् ! निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है ?

[६०३ उ] आयुष्मन् ! (नाम स्थापना आदि रूप) निक्षेप की निर्युक्ति का अनुगम पूर्ववत् जानना चाहिये।

विवेचन—सूत्र मे निक्षेपनिर्युक्ति-अनुगम का स्वरूप पूर्ववत् जानने का सकेत किया है। जिसका आशय यह है—

नाम-स्थापनादि रूप निक्षेप की निर्युक्ति के अनुगम को अथवा निक्षेप की विषयभूत बनी हुई निर्युक्ति के अनुगम को निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम कहते है। तात्पर्य यह है कि पहले आवश्यक और सामायिकादि पदो की नाम, स्थापनादि निक्षेपो द्वारा जो और जैसी व्याख्या की गई है, वैसी ही व्याख्या निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम मे की जाती है।

उपोद्‌घातनिर्युक्त्यनुगम

६०४. से किं त उवघायनिज्जुत्तिअणुगमे ?

उवघायनिज्जुत्तिअणुगमे इमाहिं दोहिं गाहाहिं अणुगंतव्वे। तं जहा—

उद्देसे १ निद्देसे य २ निग्गमे ३ खेत्त ४ काल ५ पुरिसे य ६।
कारण ७ पच्चय ८ लक्खण ९ नये १० समोयारणा ११ ऽणुमए १२ ॥ १३३ ॥
किं १३ कइविहं १४ कस्स १५ कहिं १६
केसु १७ कह १८ किच्चिरं हवइ कालं १९
कइ २० संतर २१ मविरहितं २२
भवा २३ ऽऽगरिस २४ फासण २५ निरुत्ती २६ ॥ १३४ ॥

से तं उवघातनिज्जुत्तिअणुगमे।

[६०४ प्र] भगवन्! उपोद्‌घातनिर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है ?

[६०४ उ] आयुष्मन्! उपोद्‌घातनिर्युक्तिअनुगम का स्वरूप गाथोक्तक्रम से इस प्रकार जानना चाहिये—१ उद्देश, २ निर्देश, ३ निर्गम, ४ क्षेत्र, ५, काल, ६ पुरुष, ७ कारण, ८ प्रत्यय, ९ लक्षण १० नय, ११ समवतार, १२ अनुमत, १३ किम-क्या, १४. कितने प्रकार का, १५ किसको, १६. कहाँ पर, १७ किसमे, १८ किस प्रकार—कैसे, १९ कितने काल तक, २०. कितनी, २१ अतर (विरहकाल), २२ अविरह (निरन्तरकाल), २३ भव, २४ आकर्ष, २५ स्पर्शना और २६ निर्युक्ति। अर्थात् इन प्रश्नो का उत्तर उपोद्‌घातनियुक्त्यनुगम रूप है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे उपोद्‌घातनिर्युक्त्यनुगम करने सम्बन्धी प्रश्नो का उल्लेख किया है—

उपोद्‌घातनिर्युक्त्यनुगम—उद्देश आदि को व्याख्या करके सूत्र की व्याख्या करने को कहते हैं। गाथोक्त क्रमानुसार सामायिक के माध्यम से इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ उद्देश—सामान्य रूप से कथन करने को उद्देश कहते है। जैसे—'अध्ययन।'

२. निर्देश—उद्देश का विशेष नामोल्लेखपूर्वक अभिधान-कथन निर्देश कहलाता है। जैसे—सामायिक।

३. निर्गम—वस्तु के निकलने के आधार—स्रोत का कथन निर्गम है। जैसे—सामायिक कहाँ से निकली ? अर्थत तीर्थंकरो से और सूत्रत गणधरो से सामायिक निकली।

४ **क्षेत्र**—किस क्षेत्र में सामायिक की उत्पत्ति हुई ? सामान्य से समयक्षेत्र में और विशेषापेक्षया पावापुरी के महासेनवनोद्यान मे।

५. **काल**—किस काल मे सामायिक की उत्पत्ति हुई ? वर्तमान काल की अपेक्षा वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन प्रथम पौरुषीकाल मे उत्पत्ति हुई।

६. **पुरुष**—किस पुरुष से सामायिक निकली ? सर्वज्ञ पुरुषो ने सामायिक का प्रतिपादन किया है, अथवा व्यवहारनय से भरतक्षेत्र की अपेक्षा इस अवसर्पिणी काल मे सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव ने और वर्तमान मे जिनशासन की अपेक्षा श्रमण भगवान् महावीर ने सामायिक का प्रतिपादन किया है। अथवा अर्थ की अपेक्षा सामायिक का प्रतिपादन भगवान् महावीर ने और सूत्र की अपेक्षा गौतमादि गणधरो ने प्रतिपादन किया।

७. **कारण**—किस कारण गौतमादि गणधरो ने भगवान् से सामायिक का श्रवण किया ? सयतिभाव की सिद्धि के लिये।

८. **प्रत्यय**—किस प्रत्यय (निमित्त) से भगवान् ने सामायिक का उपदेश दिया और किस प्रत्यय से गणधरो ने उसका श्रवण किया ? केवलज्ञानी होने से भगवान् ने सामायिकचारित्र का प्रतिपादन किया और भगवान् केवली हैं, इस प्रत्यय से भव्य जीवो ने श्रवण किया।

९. **लक्षण**—सामायिक का लक्षण कहना। जैसे सम्यक्त्वसामायिक का लक्षण तत्त्वार्थ की श्रद्धा, श्रुतसामायिक का जीवादि तत्त्वो का परिज्ञान, चारित्रसामायिक का सर्वसावद्यविरति और देशचारित्रसामायिक का लक्षण विरत्यविरति (एकदेशविरति) है।

१०. **नय**—नैगमादि नयो के मत से सामायिक कैसे होती है ? जैसे—व्यवहारनय से पाठ रूप सामायिक और तीन शब्दनयो से जीवादि वस्तु का ज्ञानरूप सामायिक होती है।

११. **(नय) समवतार**—नैगमादि नयो का जहाँ समवतार—अन्तर्भाव सभवित हो, वहाँ उसका निर्देश करना। जैसे—कालिकश्रुत मे नयो का समवतार नही होता है। किन्तु चरणकरणानुयोग आदि रूप चतुर्विध अनुयोगात्मक शास्त्रो की अपृथगावस्था मे नयो का समवतार प्रत्येक सूत्र मे होता है तथा इनकी पृथक् अवस्था मे नयो का समवतार नही है। वर्तमान मे आचार्यों ने सूत्रो के पृथक्-पृथक् रूप से चार अनुयोग स्थापित कर दिये हैं। जिनमे नयो का समवतार इस समय विच्छिन्न हो गया है।

१२. **अनुमत**—कौन नय किस सामायिक को मोक्षमार्ग रूप मानता है ? जैसे नैगम, सग्रह और व्यवहारनय तप-सयम रूप चारित्रसामायिक को, निर्ग्रन्थप्रवचन रूप श्रुतसामायिक को और तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्वसामायिक को, इन तीनो सामायिको को मोक्षमार्ग मानते है। सर्वसवर रूप चारित्र के अनन्तर ही मोक्ष की प्राप्ति होने से ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा एवभूत, ये चारो नय सयम रूप चारित्रसामायिक को ही मोक्षमार्ग रूप मानते है।

१३. **किम्**—सामायिक क्या है ? द्रव्यार्थिकनय के मत से सामायिक जीवद्रव्य है और पर्यायार्थिक नय के मत से सामायिक जीव का गुण है।

१४ **कितने प्रकार की**—सामायिक कितने प्रकार की है ? सामायिक तीन प्रकार की है—१. सम्यक्त्वसामायिक, २ श्रुतसामायिक और ३. चारित्रसामायिक । पुन इनके भेद-प्रभेदो का कथन करना ।

१५. **किसको**—किस जीव को सामायिक प्राप्त होती है ? जिसकी आत्मा सयम, नियम और तप मे सन्निहित होती है तथा जो जीव त्रस और स्थावर—समस्त प्राणियो पर समताभाव रखता है, उस जीव को सामायिक प्राप्त होती है ।

१६. **कहाँ**—सामायिक कहाँ-कहाँ होती है ? इसका निर्देश करना । जैसे—१ क्षेत्र, २. दिशा, ३ काल, ४ गति, ५ भव्य, ६ सज्ञी, ७ उच्छ्वास, ८ दृष्टि और ९ आहारक इत्यादि का आश्रय लेकर कौनसी सामायिक कहाँ हो सकती है, इसका कथन करना ।

१७. **किसमें**—सामायिक किस किस मे होती है ? सम्यक्त्व सामायिक सर्वद्रव्यो और सर्व-पर्यायो मे होती है किन्तु श्रुत और चारित्र सामायिक सर्वद्रव्यो मे तो होती है, किन्तु समस्त पर्यायो मे नही पाई जाती है । देशविरति सामायिक न तो सर्वद्रव्यो मे और न सर्वपर्यायो मे होती है ।

१८ **कैसे**—जीव सामायिक कैसे प्राप्त करता है ? मनुष्यत्व, आर्यक्षेत्र, जाति, कुल, रूप, आरोग्य, आयुष्य, बुद्धि, धर्मश्रवण, धर्मावधारण, श्रद्धा और सयम, इन लोकदुर्लभ बारह स्थानो की प्राप्ति होने पर जीव सामायिक को प्राप्त करता है ।

१९. **कितने काल तक**—सामायिक रह सकती है ? अर्थात् सामायिक का कालमान कितना है ? सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छियासठ सागरोपम और चारित्र-सामायिक की देशोन पूर्वकोटि वर्ष की तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ।

२०. **कितने**—विवक्षित समय मे सामायिक के प्रतिपद्यमानक, पूर्वप्रतिपन्न और सामायिक से पतित जीव कितने होते है ? क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवे भाग के प्रदेशो प्रमाण सम्यक्त्व और देशविरति सामायिक के प्रतिपद्यमानक जीव किसी एक काल मे होते हैं । इनमे भी देशविरति के धारको की अपेक्षा सम्यक्त्वसामायिक के धारक असख्यात गुणे है । जघन्य एक, दो हो सकते है । श्रेणी के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उत्कृष्टत उतने प्रतिपद्यमानक जीव एक काल मे सम्यक्—मिथ्याश्रुत भेदो से रहित सामान्य अक्षरश्रुतात्मक श्रुतसामायिक के धारक होते हैं । जघन्य एक दो होते है । सर्वविरतिसामायिक के धारक उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व और जघन्य एक-दो होते है ।

सम्यक्त्व और देशविरति सामायिक के पूर्वप्रतिपन्नक एक समय मे उत्कृष्ट और जघन्य असख्यात होते है । सम्यक् और मिथ्या विशेषण से रहित सामान्य अक्षरात्मक श्रुतसामायिक के एक काल मे पूर्वप्रतिपन्नक घनीकृत लोकप्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्यात श्रेणियो के आकाशप्रदेश जितने होते है ।

चारित्रसामायिक, देशविरतिसामायिक और सम्यक्त्वसामायिक इन तीनो सामायिको से प्रपतित जीव सम्यक्त्व आदि सामायिको के प्रतिपत्ता (प्राप्त करने वाले) तथा पूर्वप्रतिपन्नक जीवो की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं ।

२१. अन्तर—सामायिक का अन्तर (विरह) काल कितना होता है ? सम्यक् और मिथ्या इन विशेषणो से विहीन सामान्य श्रुतसामायिक मे जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट अतर अनन्त काल का है । एक जीव की अपेक्षा सम्यक् श्रुत, देशविरति, सर्वविरतिरूप सामायिक का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तकाल रूप है । इतना बडा अन्तर काल आशातनाबहुल जीवो की अपेक्षा हुआ करता है ।

२२. निरन्तर काल—विना अन्तर के लगातार कितने काल तक सामायिक ग्रहण करने वाले होते हैं ? सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक के प्रतिपत्ता अगारी (गृहस्थ) निरतर उत्कृष्टत आवलिका के असख्यातवे भाग काल तक होते हैं और चारित्रसामायिक वाले आठ समय तक होते है । जघन्यत समस्त सामायिको के प्रतिपत्ता दो समय तक निरतर बने रहते है ।

२३. भव—कितने भव तक सामायिक रह सकती है ? पल्य के असख्यातवे भाग तक सम्यक्त्व और देशविरति सामायिक, आठ भव पर्यन्त चारित्रसामायिक और अनन्तकाल तक श्रुतसामायिक होती है ।

२४. आकर्ष—सामायिक के आकर्ष एक भव मे या अनेक भवो मे कितने होते है ? अर्थात् एक भव मे या अनेक भवो मे सामायिक कितनी बार धारण की जाती है ? तीनो सामायिको (सम्यक्त्व, श्रुत और देशविरत सामायिक) के आकर्ष एक भव मे उत्कृष्ट से सहस्रपृथक्त्व और सर्वविरति के शतपृथक्त्व होते है । जघन्य से समस्त सामायिको का आकर्ष एक भव मे एक ही होता है तथा अनेक भवो की अपेक्षा सम्यक्त्व व देशविरति सामायिको के उत्कृष्ट असख्य सहस्रपृथक्त्व और सर्वविरति के सहस्रपृथक्त्व आकर्ष होते हैं ।

२५. स्पर्श—सामायिक वाले जीव कितने क्षेत्र का स्पर्श करते है ? सम्यक्त्व और चारित्र (सर्वविरति) सामायिक वाले (केवलिसमुद्घात की अपेक्षा) समस्त लोक का और जघन्य लोक के असख्यातवे भाग का स्पर्श करते है । कितनेक श्रुत और देशविरति सामायिक वाले उत्कृष्ट से चौदह राजू प्रमाण लोक के सात राजू , पाच राजू , चार, तीन और दो राजू प्रमाण लोक का स्पर्श करते है ।

२६. निरुक्ति—सामायिक की निरुक्ति क्या है ? निश्चित उक्ति-कथन को निरुक्ति कहते हैं । अतएव सम्यग्दृष्टि अमोह, शोधि, सद्भाव, दर्शन, बोधि, अविपर्यय, सुदृष्टि इत्यादि सामायिक के नाम है । अर्थात् सामायिक का पूर्ण वर्णन ही सामायिक की निरुक्ति है ।

यह उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम की व्याख्या है । अब सूत्र के प्रत्येक अवयव का विशेष व्याख्या करने रूप सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम का कथन करते है ।

सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम

६०५. से किं तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे ?

सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे सुत्तं उच्चारेयव्वं अक्खलियं अमिलियं अविच्चामेलियं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं । तो तत्थ णज्जिहिति ससमयपयं वा परसमयपयं वा बंधपयं वा मोक्खपयं वा सामाइयपयं वा णोसामाइयपयं वा । तो तम्मि उच्चारिते समाणे केसिंचि

भगवंताणं केइ अत्थाहिगारा अहिगया भवंति, केसिंचि य केइ अणहिगया भवंति, ततो तेसिं अणहिगयाणं अत्थाणं अभिगमणत्थाए पदेणं पदं वत्तइस्सामि—

संहिता य पदं चेव पदत्थो पदविग्गहो।
चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥ १३५ ॥

से तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे। से तं निज्जुत्तिअणुगमे। से तं अणुगमे।

[६०५ प्र] भगवन्! सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम का क्या स्वरूप है?

[६०५ उ] आयुष्मन्! (जिस सूत्र की व्याख्या की जा रही है उस सूत्र को स्पर्श करने वाली निर्युक्ति के अनुगम को सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्त्यनुगम कहते हैं।) इस अनुगम मे अस्खलित, अमिलित, अव्यत्याम्रेडित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कठोष्ठविप्रमुक्त तथा गुरुवाचनोपगत रूप से सूत्र का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार से सूत्र का उच्चारण करने से ज्ञात होगा कि यह स्वसमयपद है, यह परसमयपद है, यह बधपद है, यह मोक्षपद है, अथवा यह सामायिकपद है, यह नोसामायिकपद है। सूत्र का निर्दोष विधि से उच्चारण किये जाने पर कितने ही साधु भगवन्तो को कितनेक अर्थाधिकार अधिगत हो जाते है और किन्ही-किन्ही को (क्षयोपशम की विचित्रता से) कितनेक अर्थाधिकार अनधिगत रहते है—ज्ञात नही होते है। अतएव उन अनधिगत अर्थो का अधिगम कराने के लिये (ज्ञात हो जायें इसलिये) एक-एक पद की प्ररूपणा (व्याख्या) करूगा। जिसकी विधि इस प्रकार है—

१ सहिता, २ पदच्छेद, ३ पदो का अर्थ, ४ पदविग्रह, ५ चालना और ६ प्रसिद्धि। यह व्याख्या करने की विधि के छह प्रकार है।

यही सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम का स्वरूप है। इस प्रकार से निर्युक्त्यनुगम और अनुगम की वक्तव्यता का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप मे किये गये सकेतानुसार सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम की यहाँ व्याख्या की है। यह निर्युक्त्यनुगम सूत्रस्पर्शिक है। सूत्र का लक्षण इस प्रकार है—

अप्पग्गथमहत्थ बत्तीसा दोसविरहिय ज च।
लक्खणजुत्त सुत्त अट्ठहि य गुणेहि उववेय ॥

अर्थात् जो अल्पग्रन्थ (अल्प अक्षर वाला) और महार्थयुक्त (अर्थ की अपेक्षा महान्—अधिक विस्तार वाला) हो, (जैसे—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्) तथा बत्तीस दोषो से रहित, आठ गुणो से सहित और लक्षणयुक्त हो, उसे सूत्र कहते है।

सूत्र के बत्तीस दोषो के नाम—सूत्रविकृति के कारणभूत बत्तीस दोषो के लक्षण सहित नाम इस प्रकार हैं—

१ अलीक (अनृत) दोष—अविद्यमान पदार्थों का सद्भाव बताना, जैसे जगत् का कर्त्ता ईश्वर है और विद्यमान पदार्थों का अभाव बताना—अपलाप करना, जैसे आत्मा नही है। यह दोनो असत्य-प्ररूपक होने से अलीकदोष है।

२ उपघातजनक—जीवो के घात का प्ररूपक, जैसे वेद मे वर्णन की गई हिंसा धर्मरूप है।

३ निरर्थकवचन—जिन अक्षरो का अनुक्रमपूर्वक उच्चारण तो मालूम हो, लेकिन अर्थ कुछ भी सिद्ध नही हो। जैसे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ इत्यादि अथवा डित्थ डवित्थ आदि।

४ अपार्थकदोष—असबद्ध अर्थवाचक शब्दो का बोलना। जैसे—दस दाडिम, छह अपूप, कुण्ड मे बकरा आदि।

५ छलदोष—ऐसे पद का प्रयोग करना जिसका अनिष्ट अर्थ हो सके और विवक्षितार्थ का उपघात हो जाये। जैसे 'नवकम्बलोऽय देवदत्त इति'। यहाँ 'नव' शब्द का अर्थ नूतन है, किन्तु 'नौ' अर्थ भी हो सकता है।

६ द्रुहिलदोष—पाप व्यापारपोषक।

७ निस्सारवचनदोष—युक्ति से रहित वचन।

८ अधिकदोष—जिसमे अक्षर-पदादि अधिक हो। जैसे अनित्य शब्द कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्या घटपटवत्। यहाँ एक साध्य की सिद्धि के लिये कृतकत्व और प्रयत्नानन्तरीयकत्व यह दो हेतु और घट पट दो दृष्टान्त दिये गये है। एक साध्य की सिद्धि मे एक ही हेतु और एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। इसलिये अधिक दोष है।

९ ऊनदोष—(न्यूनवचन)—जिसमे अक्षरपदादि हीन हो अथवा हेतु या दृष्टान्त की न्यूनता हो। जैसे—अनित्य शब्द घटवत् तथा अनित्य शब्द कृतकत्वात्।

१० पुनरुक्तदोष—पुनरुक्तदोष के दो भेद है—एक शब्द से और द्वितीय अर्थ से। शब्द से पुनरुक्त—जो शब्द एक बार उच्चारण किया गया हो, फिर उसी का उच्चारण करना, जैसे—घटो घट। अर्थ से पुनरुक्त जैसे—घट, कुट, कुभ।

११ व्याहतदोष—जहाँ पूर्ववचन से उत्तरवचन का व्याघात हो। जैसे 'कर्म चास्ति फल चास्ति कर्त्ता नत्वस्ति कर्मणामित्यादि—कर्म है और उसका फल भी होता है किन्तु कर्मों का कर्त्ता कोई नही है।'

१२ अयुक्तदोष—जो वचन युक्ति, उपपत्ति को सहन न कर सके। जसे—हाथियो के गण्डस्थल से मद का ऐसा प्रवाह बहा कि उसमे चतुरगी सेना बह गई।

१३ क्रमभिन्नदोष—जिसमे अनुक्रम न हो, जो उलट-पुलट कर बोला जाये, जैसे—स्पर्श, रस, गध, रूप, शब्द के स्थान पर स्पर्श, रूप, शब्द, रस, गध इस प्रकार क्रमभग करके बोलना।

१४ वचनभिन्नदोष—जहाँ वचन की विपरीतता हो। जैसे वृक्षा ऋतौ पुष्पित। यहाँ 'वृक्षा' बहुवचन का पद है और 'पुष्पित' एकवचन है।

१५ विभक्तिभिन्नदोष—विभक्ति की विपरीतता-व्यत्यय होना। जैसे 'वृक्ष पश्य' के स्थान पर 'वृक्ष पश्य' ऐसा कहना। यहाँ द्वितीया विभक्ति के स्थान पर प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

१६ लिगभिन्नदोष—लिंग का विपरीत होना। जैसे—अय स्त्री। इसमे 'अयं' शब्द पुल्लिग है और 'स्त्री' शब्द स्त्रीलिंग का है।

१७ अनभिहितदोष—स्वसिद्धान्त मे जो पदार्थ ग्रहण नही किये गये, उनका उपदेश करना। जैसे साख्यदर्शन मे प्रकृति और पुरुष से अतिरिक्त तीसरा तत्त्व कहना।

१८ अपदोष—अन्य छन्द के स्थान पर दूसरे छन्द का उच्चारण करना जैसे—आर्या पद के बदले वैतालीय पद कहना।

१९ स्वभावहीनदोष—जिस पदार्थ का जो स्वभाव है, उससे विरुद्ध प्रतिपादन करना। जैसे—अग्नि शीत है, आकाश मूर्तिमान् है, ये दोनो ही स्वभाव से हीन है।

२० व्यवहितदोष—जिसका कथन प्रारम्भ किया है, उसे छोडकर जो प्रारम्भ नही किया, उसकी व्याख्या करके फिर पहले प्रारम्भ किये हुए की व्याख्या करना।

२१ कालदोष—भूतकाल के वचन को वर्तमान काल मे उच्चारण करना। जैसे—'रामचन्द्र ने वन मे प्रवेश किया, ऐसा कहने के बदले 'रामचन्द्र वन मे प्रवेश करते है' कहना।

२२ यतिदोष—अनुचित स्थान पर विराम लेना—रुकना अथवा सर्वथा विराम ही नही लेना।

२३ छविदोष—छवि अलकार विशेष से शून्य होना।

२४ समयविरुद्धदोष—स्वसिद्धान्त से विरुद्ध प्रतिपादन करना।

२५ वचनमात्रदोष—निर्हेतुक वचन उच्चारण करना। जैसे कोई पुरुष अपनी इच्छा से किसी स्थान पर भूमि का मध्यभाग कहे।

२६ अर्थापत्तिदोष—जिस स्थान पर अर्थापत्ति के कारण अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति हो जाये। जैसे—घर का मुर्गा नही मारना चाहिये, इस कथन से यह अर्थ निकला कि दूसरे मुर्गो को मारना चाहिये।

२७ असमासदोष—जिस स्थान पर समास विधि प्राप्त हो वहाँ न करना अथवा जिस समास की प्राप्ति हो, उस स्थान पर उस समास को न करके अन्य समास करना असमासदोष है।

२८ उपमादोष—हीन उपमा देना, जैसे—मेरु सरसो जैसा है, अथवा अधिक उपमा देना, जैसे—सरसो मेरु जैसा है अथवा विपरीत उपमा देना, जैसे—मेरु समुद्र समान है। यह उपमादोष है।

२९ रूपकदोष—निरूपणीय मूल वस्तु को छोडकर उसके अवयवो का निरूपण करना, जैसे—पर्वत के निरूपण को छोडकर उसके शिखर आदि अवयवो का निरूपण करना या समुद्रादि किसी अन्य वस्तु के अवयवो का निरूपण करना।

३० निर्देशदोष—निर्दिष्ट पदो की एकवाक्यता न होना।

३१ पदार्थदोष—वस्तु के पर्याय को एक पृथक् पदार्थ रूप मे मानना जैसे—सत्ता वस्तु की पर्याय है किन्तु वैशेषिक उसे पृथक् पदार्थ कहते है।

३२ सधिदोष—जहाँ सधि होना चाहिये, वहाँ सधि नही करना, अथवा करना तो गलत करना।

लक्षण युक्त सूत्र इन बत्तीस दोषो से रहित होने के साथ ही आठ गुणो से युक्त भी होता है। वे आठ गुण ये है—

निद्दोस सारवत च हेउजुत्तमलकिय।
उवणीय सोवयार च मिय महुरमेव च॥

१ **निर्दोष**—सर्व दोषो से रहित।
२ **सारवान्**—सारयुक्त होना।
३ **हेतुयुक्त**—अन्वय और व्यतिरेक हेतुओ से युक्त।
४ **अलकारयुक्त**—उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो से विभूषित।
५ **उपनीत**—उपनय से युक्त अर्थात् दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिक मे घटित करना।
६ **सोपचार**—ग्रामीण भाषाओ से रहित और सस्कृतादि साहित्यिक भाषाओ से युक्त।
७ **मित**—अक्षरादि के प्रमाण से नियत।
८ **मधुर**—सुनने मे मनोहर ऐसे मधुर वर्णों से युक्त।

अनधिगतार्थ की बोधविधि—सूत्र के समुच्चारित होने पर भी अनधिगत रहे अर्थाधिकारो के परिज्ञान कराने की विधि इस प्रकार है--

१. सहिता—अस्खलित रूप से पदो का उच्चारण करना। जैसे—करेमि भते सामाइय इत्यादि।

२ पद—सुबन्त और तिडन्त शब्द को पद कहते है। जैसे—करेमि यह प्रथम तिडन्त पद है, भते यह सुबन्त द्वितीय पद है, 'सामाइय' यह तृतीय पद है इत्यादि।

३ पदार्थ—पद के अर्थ करने को पदार्थ कहते है। जैसे करेमि=करता हू, इस क्रियापद से सामायिक करने की उन्मुखता का बोध होना है, 'भते! भगवन्!, यह पद गुरुजनो को आमत्रित करने के अर्थ का बोधक है, 'सामाइय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप सम का जिससे आय-लाभ हो, उस सामायिक को – यह सामायिक पद का अर्थ है।

४ पदविग्रह—सयुक्त पदों का प्रकृतिप्रत्ययात्मक विभाग रूप विस्तार करना। अनेक पदो का एक पद करना समास कहलाता है। जैसे भयस्य अतो भयान्त, जिनानाम् इन्द्रः जिनेन्द्र इत्यादि।

५ चालना—प्रश्नोत्तरो द्वारा सूत्र और अर्थ की पुष्टि करना।

६ प्रसिद्धि—सूत्र और उसके अर्थ का विविध युक्तियो द्वारा जैसा कि वह है उसी प्रकार से स्थापना करना प्रसिद्धि है। अर्थात् प्रथम अन्य युक्ति देकर फिर सूत्रोक्त युक्ति की सिद्धि करना प्रसिद्धि कहलाती है।

व्याख्या के इन षड्विध लक्षणो मे से सूत्रोच्चारण और पदच्छेद करना सूत्रानुगम का विषय है—कार्य है। सूत्रानुगम द्वारा यह कार्य किये जाने के बाद सूत्रालापकनिक्षेप-सूत्रालापको को नाम, स्थापना आदि निक्षेपो मे निक्षिप्त करता है, अर्थात् सूत्रालापको को नाम स्थापना आदि निक्षेपो मे सूत्रालापक निक्षेप विभक्त करता है। शेष पदविग्रह, चालना और प्रसिद्धि यह सब सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्ति के विषय हैं। अर्थात् इन कार्यों को सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम सपादित करता है तथा

नैगमादि नय भी प्राय पदार्थ आदि का विचार करने वाले होने से जब पदार्थ आदि को ही विषय करते हैं, तब इस दृष्टि से वे सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम के अन्तर्गत हो जाते हैं।

इस प्रकार जब सूत्र, व्याख्या का विषयभूत बनता है, तब सूत्र, सूत्रानुगम, सूत्रालापकनिक्षेप और सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम ये सब युगपत् एक जगह मिल जाते है।

स्वसमय आदि का अर्थ—सूत्र मे आगत स्वसमय आदि पदों का भावार्थ इस प्रकार है—

स्वसमयपद—स्वसिद्धान्तसम्मत जीवादिक पदार्थों का प्रतिपादक—बोधक पद।

परसमयपद—परसिद्धान्त-सम्मत प्रकृति, ईश्वर आदि का प्रतिपादन करने वाला पद।

बंधपद—परसमय—सिद्धान्त के मिथ्यात्व का प्रतिपादक पद। क्योंकि कर्मबंध एव कुवासना का हेतु होने से वह बध पद कहलाता है।

मोक्षपद—प्राणियो के सद्बोध का कारण होने से तथा समस्त कर्मक्षय रूप मोक्ष का प्रतिपादक होने से स्वसमय मोक्षपद कहलाता है। अथवा—

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार प्रकार के बध का प्रतिपादन करने वाला पद बधपद तथा कृत्स्नकर्मक्षय रूप मोक्ष का प्रतिपादक पद मोक्षपद कहलाता है।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रकार की व्याख्या करने से बंध और मोक्ष ये दोनो पद स्वसमय पद से भिन्न नही है, अभिन्न है, तथापि स्वसमय पद का दूसरा भी अर्थ होता है, यह दिखाने के लिये अथवा शिष्य जनो को सुगमता से बोध कराने और उनकी बुद्धि को विशद—निर्मल बनाने के लिये पृथक्-पृथक् निर्देश किया है। इसीलिये सामायिक का प्रतिपादन करने वाले सामायिक पद और सामायिक से व्यतिरिक्त नारक तिर्यंचादि के बोधक नोसामायिक पद इन दोनो पदो का अलग-अलग उपन्यास किया है।

इस प्रकार से सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम के अधिकृत विषयो का निरूपण हो जाने से निर्युक्त्यनुगम एव साथ ही अनुगम अधिकार की वक्तव्यता की भी समाप्ति जानना चाहिये।

नयनिरूपण की भूमिका

६०६. [अ] से किं त णए ?

सत्त मूलणया पण्णत्ता। त जहा—णेगमे सगहे ववहारे उज्जुसुए सद्दे समभिरूढे एवंभूते।

तत्थ—

णेगेहिं माणेहिं मिणइ त्ति णेगमस्स य निरुत्ती १।
सेसाण पि नयाणं लक्खणमिणमो सुणह वोच्छ।। १३६।।

सगहियपिंडियत्थं संगहवयण समासओ बिति २।
वच्चइ विणिच्छियत्थं ववहारो सव्वदव्वेसु ३।। १३७।।

पच्चुप्पन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो ४।
इच्छइ विसेसियतरं पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो ५।। १३८।।

वत्थओ संकमणं होइ अवत्थू णये समभिरूढे ७।
वंजण—अत्थ— तदुभयं एवंभूओ विसेसेइ ७ ॥ १३९ ॥

[६०६ प्र] भगवन् ! नय का क्या स्वरूप है ?

[६०६ उ] आयुष्मन् ! मूल नय सात है । वे इस प्रकार—१ नैगमनय, २ सग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजुसूत्रनय, ५ शब्दनय, ६ समभिरूढनय और ७ एवभूतनय ।

विवेचन—सूत्र मे सात नयो के नाम गिनाये हैं । यद्यपि वचनो के प्रकार जितने ही नय हे, लेकिन उन सब का समावेश सात नयो मे हो जाता है. और यह इसलिये कि उनके द्वारा सभी तरह के जिज्ञासुओ को वस्तुनिरूपण की शैली का सुगमता से बोध हो जाता है ।

नैगम आदि सात नयो के लक्षण

जो अनेक मानो (प्रकारो) से वस्तु के स्वरूप को जानता है, अनेक भावो मे वस्तु का निर्णय करता है (वह नैगमनय है) यह नैगमनय की निरुक्ति—व्युत्पत्ति है । शेष नयो के लक्षण कहूँगा, जिनको तुम सुनो । १३६

सम्यक् प्रकार से गृहीत—एक जाति को प्राप्त अर्थ जिसका विषय है, यह सग्रहनय का वचन है । इस प्रकार से (तीर्थंकर, गणधर आदि ने सक्षेप मे) कहा है ।

व्यवहारनय सर्व द्रव्यो के विषय मे विनिश्चय (विशेष-भेद रूप मे निश्चय) करने के निमित्त प्रवृत्त होता है । १३७

ऋजुसूत्रनयविधि प्रत्युत्पन्नग्राहो (वर्तमानकालभावी पर्याय को ग्रहण करने वाली) जानना चाहिये ।

शब्दनय (ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा सूक्ष्मतर विषय वाला होने से) पदार्थ को विशेषतर मानता है । १३८

समभिरूढनय वस्तु का अन्यत्र सक्रमण अवस्तु (अवास्तविक) मानता है ।

एवभूतनय व्यजन (शब्द) अर्थ एव तदुभय को विशेष रूप से स्थापित करता है । १३९

विवेचन—उल्लिखित चार गाथाओ मे नैगमादि सात नयो के लक्षण सक्षेप मे बताये है । स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१ नैगमनय—जो महासत्ता (परसामान्य) अपरसामान्य एव विशेष के द्वारा वस्तु का परिच्छेद करता है, वह नैगमनय है । अथवा निगम का अर्थ है वसति । अतएव 'लोके वसामि' (लोक मे रहता हू) इत्यादि पूर्वोक्त कथन का नाम निगम है और इन निगमो से सम्बद्ध नय को नैगमनय कहते है । अथवा अर्थ के ज्ञान को निगम कहते हैं । अतएव अनेक प्रकार से जो अर्थ के ज्ञान को मान्य करे वह नैगमनय कहलाता है । अथवा जिसके वस्तुविचार के अनेक गम-प्रकार हो उसे नैगमनय कहते है । अथवा पूर्वोक्त प्रस्थक आदि दृष्टान्त रूप सकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगमनय है ।

यह नय भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो कालो सबधी पदार्थ को ग्रहण करता है। इस नय के मत से भूत आदि तीनो कालो का अस्तित्व है।

२. संग्रहनय—सामान्य रूप से सभी पदार्थों का सग्रह करने वाले नय को सग्रहनय कहते है। यह नय सब वस्तुओ को सामान्यधर्मात्मक मान्य करता है, क्योकि विशेष सामान्य से पृथक् नही हैं।

३. व्यवहारनय— इसका दृष्टिकोण सग्रहनय से विपरीत है। अर्थात् यह सामान्य का अभाव सिद्ध करने वाला है। क्योकि लोकव्यवहार मे विशेषो से व्यतिरिक्त सामान्य का अस्तित्व सिद्ध नही होने तथा उसके अनुपयोगी होने के कारण व्यवहारनय सामान्य को स्वीकार नही करता।

४. ऋजुसूत्रनय—इसमे ऋजु और सूत्र यह दो शब्द है। इनमे से ऋजु का अर्थ प्रगुण-कुटिलतारहित—सरल है। अतएव ऐसे सरल को जो सूत्रित करता है—स्वीकार करता है उस नय को ऋजुसूत्रनय कहते है। अथवा जो नय अतीत और अनागत कालवर्ती पदार्थों को ग्रहण न करके वर्तमानकालिक पदार्थों को ही ग्रहण करता है वह ऋजुनयसूत्र है। उक्त दोनो लक्षणो का समन्वित आशय यह हुआ कि अतीत और अनागत ये दोनो अवस्थाएँ क्रमश विनष्ट और अनुत्पन्न होने के कारण असत् है और ऐसे असत् को स्वीकार करना कुटिलता है। इस कुटिलता का परिहार करके केवल सरल—वर्तमानकालिक वस्तु को स्वीकार करने वाला नय ऋजुसूत्रनय कहलाता है।

इस नय द्वारा वर्तमान कालभावी पदार्थ को ग्रहण करने का कारण यह है कि वर्तमान कालवर्ती पदार्थ ही अर्थक्रिया करने मे समर्थ होता है।

'उज्जुसुओ' की सस्कृत छाया 'ऋजुश्रुत' भी होती है। अतएव जिसका श्रुत ऋजु—सरल—अकुटिल है, वह ऋजुश्रुत है। आशय यह हुआ कि श्रुतज्ञान की तरह इतर ज्ञानो से आदान-प्रदान रूप परोपकार नही होता है, इसलिये यह नय श्रुतज्ञान को मानता है।

५ शब्दनय—जो उच्चारण किया जाये, जिसके द्वारा वस्तु कही जाये, उसे शब्द कहते है। इसमे शब्द मुख्य और अर्थ गौण है। अतएव उपचार मे इस नय को शब्दनय कहते है। तात्पर्य यह है कि वस्तु शब्द द्वारा कही जाती है और बुद्धि उसी अर्थ को मुख्य रूप से मान लेती है। अत शब्दजन्य वह बुद्धि भी उपचार से शब्द कह दी जाती है। बुद्धि जब यह विचार करती है कि जैसे तीनो कालो मे एक वस्तु नही है किन्तु वर्तमानकालस्थित ही वस्तु कहलाती है, वैसे ही भिन्न-भिन्न लिंग, वचन आदि से युक्त शब्दो द्वारा कही जाने वाली वस्तु भी भिन्न-भिन्न ही है, ऐसा विचार कर यह नय लिंग, वचनादि के भेद से अर्थ मे भेद मानने लग जाता है। इस तरह यह नय ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा अपने वाच्यार्थ को विशेषिततर करके मानता है। जैसे—

ऋजुसूत्रनय तट तटी तटम् इन भिन्न-भिन्न लिगो वाले शब्दो का तथा गुरु, गुरव इन भिन्न-भिन्न वचन वाले शब्दो का वाच्यार्थ एक मानता है, जबकि शब्दनय विभिन्न लिंग और वचन वाले शब्दो के लिंग और वचन की भिन्नता की तरह उनके वाच्यार्थ को भी भिन्न-भिन्न मानता है। लेकिन जिन शब्दो का लिंग एक है, वचन एक है, उन शब्दो के वाच्यार्थ में भिन्नता नही मानता है। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा इस नय मे यही विशेषता है।

शब्दनय नाम, स्थापना और द्रव्यनिक्षेप मे निक्षिप्त वस्तु को नही मानता क्योकि ये कार्य करने मे असमर्थ होने से अप्रमाण है। भाव से ही कार्यसिद्धि होती है इसलिये भाव ही प्रधान है।

६. **समभिरूढनय**—वाचकभेद से वाच्यार्थ मे भिन्नता मानने वाले अथवा शब्दभेद से अर्थभेद मानने वाले नय को समभिरूढनय कहते हैं। इसी का प्रकारान्तर से गाथा में सकेत किया है कि यदि शब्दभेद है तो अर्थ में भेद होना चाहिये और यदि एक वस्तु मे अन्य शब्द का आरोप किया जाये तो वह अवस्तु रूप हो जाती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शब्दनय लिंग और वचन की समानता होने से इन्द्र शुक्र पुरन्दर इन शब्दो का वाच्यार्थ एक मान लेता है किन्तु इस नय मे प्रवृत्ति का निमित्त जब भिन्न-भिन्न है तो मनुष्य आदि शब्दो की तरह इन शब्दो का वाच्यार्थ भी भिन्न-भिन्न है। क्योकि व्युत्पत्ति की अपेक्षा ऐश्वर्यवान् होने से इन्द्र, शकन-समर्थ होने से शक्र और पुरो—नगरो का दारण-नाश करने से पुरन्दर कहलाता है। किन्तु जो परम ऐश्वर्य पर्याय है, वही शकन या पुरदारण पर्याय नही है। इसलिये ये इन्द्रादि शब्द भिन्न-भिन्न अभिधेय वाले है। यदि सभी पर्यायो को एक माना जाये तो साकर्य दोष होगा। इस नय के मत से इन्द्र शब्द से शक्र शब्द उतना ही भिन्न है, जितना घट से पट और अश्व से हस्ती।

७. **एवभूतनय**—जो वस्तु जिस पर्याय को प्राप्त हुई है, उसी रूप निश्चय करने वाले (नाम देने वाले) नय को एवभूतनय कहते है। यही आशय गाथोक्त पदो का है कि व्यजन-शब्द से जो वस्तु का अभिधेय अर्थ होता है, उसको प्रकट किया जाये, उसे ही एवभूतनय कहते है। जैसे—जिस समय आज्ञा और ऐश्वर्यवान् हो, उस समय ही वह इन्द्र है, अन्य समयो मे नही।

समभिरूढनय से एवभूतनय मे यह अन्तर है कि यद्यपि ये दोनो नय व्युत्पत्तिभेद से शब्द के अर्थ मे भेद मानते है, परन्तु समभिरूढनय तो उस व्युत्पत्ति को सामान्य रूप से अगीकार करके वस्तु की हर अवस्था मे उसे स्वीकार कर लेता है। परन्तु एवभूतनय तो उस व्युत्पत्ति का अर्थ तभी ग्रहण करता है, जबकि वस्तुत क्रियापरिणत होकर साक्षात् रूप से उस व्युत्पत्ति की विषय बन रही हो।

सुनय और दुर्नय—पूर्वोक्त सात नयो मे से यदि वे अन्य धर्मों का निषेध करके केवल अपने अभीष्ट एक धर्म का ही प्रतिपादन करते हैं, तब दुर्नय रूप हो जाते है। दुर्नय अर्थात् जो वस्तु के एक धर्म को सत्य मानकर अन्य धर्मों का निषेध करने वाला हो। जैसे नैगमनय से नैयायिक—वैशेषिक दर्शन उत्पन्न हुए। अद्वैतवादी और साख्य सग्रहनय को ही मानते है। चार्वाक व्यवहारनयवादी ही है। बौद्ध केवल ऋजुसूत्रनय का तथा वैयाकरणी शब्द आदि तीन नयो का ही अनुसरण करते है। इस प्रकार ये सभी एकान्त पक्ष के आग्रही होने से दुर्नयवादी है।

सात नयो का वर्गीकरण और अल्पबहुत्व—पूर्वोक्त नैगम आदि सात नयो मे से नैगम, सग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थ के प्रतिपादक होने से अर्थनय कहे जाते हैं। शब्द समभिरूढ और एवभूतनय शब्द का प्रतिपादन करने से शब्दनय हैं।

इनमे पूर्व-पूर्व के नय अधिक विषय और उत्तर-उत्तर के नय परिमित विषय वाले है। जैसे सग्रहनय सामान्य मात्र को स्वीकार करता है जबकि नैगमनय सामान्य और विशेष दोनो को। इसलिये सग्रहनय की अपेक्षा नैगमनय का विषय अधिक है। व्यवहारनय सग्रहनय के द्वारा गृहीत पदार्थों मे से विशेष को जानता है और सग्रहनय समस्त सामान्य पदार्थों को जानता है, इसलिये सग्रहनय का विषय व्यवहारनय से अधिक है। व्यवहारनय तीनो कालो के पदार्थों को जानता है, जबकि ऋजुसूत्र केवल वर्तमानकालीन पदार्थों का ज्ञान करता है। अतएव ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा व्यवहारनय का विषय

अधिक है। शब्दनय काल आदि के भेद से वर्तमान पर्याय को जानता है किन्तु ऋजुसूत्र मे काल आदि का कोई भेद नही है। इसलिये शब्दनय मे ऋजुसूत्रनय का विषय अधिक है। समभिरूढनय पर्यायवाची शब्दों को भी व्युत्पत्ति की अपेक्षा भिन्न रूप से जानता है, परन्तु शब्दनय मे यह सूक्ष्मता नही है। अतएव शब्दनय की अपेक्षा समभिरूढनय का विषय अल्प है। एवभूतनय समभिरूढनय से जाने हुए पदार्थ मे क्रिया के भेद से भेद मानता है। अतएव एवभूत से समभिरूढनय का विषय अधिक है।

नयविचार का प्रयोजन—प्रस्तुत प्रकरण मे यह है कि पूर्व प्रकान्त सामायिक अध्ययन सर्वप्रथम उपक्रम से उपक्रान्त होना है और निक्षेप से यथासभव निक्षिप्त होता है। तत्पश्चात् अनुगम से वह जानने योग्य बनता है और इसके बाद नयो से उसका विचार किया जाता है।

यद्यपि पूर्व मे उपोद्घातनिर्युक्ति मे समस्त अध्ययन के विषय वाला नय विचार किया जा चुका है, तथापि यहाँ उसका पृथक् निर्देश इसलिये किया है कि चौथा जो अनुयोगद्वार है, वही नय-वक्तव्यता का मूल स्थान है। क्योकि यहाँ सिद्ध हुए नयो का पूर्व मे उपन्यास किया गया है।

नयवर्णन के लाभ

६०६. [आ] **णायम्मि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वम्मि चेव अत्थम्मि।**
जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥ १४० ॥
सव्वेसिं पि नयाण बहुविहवत्तव्वय निसामेत्ता।
त सव्वनयविसुद्ध ज चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ १४१ ॥

से त नए।

सोलससयाणि चउरुत्तराणि गाहाण जाण सव्वग्ग।
दुसहस्समणुट्ठुभछंदवित्तपरिमाणओ भणिय ॥ १४२ ॥
नगरमहादारा इव कम्मद्दाराणुओगवरदारा।
अक्खर-बिंदू-मत्ता लिहिया दुक्खक्खयट्ठाए ॥ १४३ ॥

नयवर्णन के लाभ—इन नयो द्वारा हेय और उपादेय अर्थ का ज्ञान प्राप्त करके तदनुकूल प्रवृत्ति करनी ही चाहिये। इस प्रकार का जो उपदेश है वही (ज्ञान) नय कहलाता है। १४०

इन सभी नयो की परस्पर विरुद्ध वक्तव्यता को सुनकर समस्त नयो से विशुद्ध सम्यक्त्व, चारित्र (और ज्ञान) गुण मे स्थित होने वाला साधु (मोक्षसाधक हो सकता) है। १४१

इस प्रकार नय-अधिकार की प्ररूपणा जानना चाहिये।

साथ ही अनुयोगद्वारसूत्र का वर्णन समाप्त होता है।

विवेचन—उपर्युक्त दो गाथाओ मे नयवर्णन से प्राप्त लाभ का उल्लेख किया है।

'जितने वचनमार्ग है, उतने ही नय है' इस सिद्धान्त के अनुसार नयो के अनेक भेद है। नैगम, सग्रह आदि सात भेद और अर्थनय एव शब्दनय के भेद से दो भेद पूर्व मे बताये है। इनके अतिरिक्त भी द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक, ज्ञान-क्रिया, निश्चय-व्यवहार आदि भेद भी किये जा सकते है, तथापि

यहाँ मोक्ष का कारण होने से सर्व अध्ययन का विचार ज्ञाननय और क्रियानय की अपेक्षा किया गय जानना चाहिये। क्योकि गाथा मे इसी प्रकार का कथन किया गया है—

पदार्थों में जो उपादेय हों उन्हे ग्रहण करना और जो हेय हो उन्हे त्याग करना चाहिये तथ ज्ञेय (जानने योग्य) हो उन्हे मध्यस्थ भाव से जानना चाहिये। इस लोक सम्बन्धी सुखादिसामग्री ग्रहण योग्य है, विषादि पदार्थ त्यागने योग्य और तृण आदि पदार्थ उपेक्षणीय हैं। यदि परलोक सम्बन्धी विचार किया जाये तो सम्यग्दर्शनादि ग्रहण करने योग्य है, मिथ्यात्वादि त्यागने योग्य है और स्वर्गिक सुख उपेक्षणीय है।

ज्ञाननय का मतव्य है कि ज्ञान के बिना किसी कार्य की सिद्धि नही होती है। ज्ञानी पुरुष ही मोक्ष के फल का अनुभव करते है। अन्धा पुरुष अन्धे के पीछे-पीछे गमन करने से वाछित लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकता है। ज्ञान के बिना पुरुषार्थ की सिद्धि नही होती है। सभी व्रतादि एव क्षायिक सम्यक्त्व आदि अमूल्य पदार्थो की प्राप्ति ज्ञान से होती है। अतएव सबका मूल कारण ज्ञान है।

क्रियानय का मतव्य है कि सिद्धि प्राप्त करने का मुख्य कारण क्रिया ही है। क्योकि तीनो प्रकार के अर्थों का ज्ञान करके प्रयत्न करना चाहिये। इस कथन से क्रिया की ही सिद्धि होती है। ज्ञान तो क्रिया का उपकरण है। इसलिये क्रिया मुख्य और ज्ञान गौण है। मात्र ज्ञान से जीव सुख नही पाते। तीर्थंकर देव भी अतिम समय पर्यन्त क्रिया के ही आश्रित रहते है। बीज को भी अकुरोत्पत्ति के लिए बाह्य सामग्री की आवश्यकता होती है। इसलिये सबका मुख्य कारण क्रिया ही है। यह क्रियानय का मतव्य है। किन्तु किसी भी एकान्त पक्ष मे मोक्षप्राप्ति का अभाव है। इसलिये अब मान्य पक्ष प्रस्तुत करते है—

सर्व नयो के नाना प्रकार के वक्तव्यो को सुनकर—नयो के परस्पर विरोधी भावो को सुनकर जो साधु ज्ञान और क्रिया मे स्थित है वही मोक्ष का साधक होता है। केवल ज्ञान और केवल क्रिया से कार्यसिद्धि नही होती है। अन्नादि का ज्ञान होने पर भी बिना भक्षण क्रिया के उदरपोषणादि नही होता है। केवल क्रिया से भी कार्यसिद्धि नही होती है। जैसे क्रिया से रहित ज्ञान निष्फल है वैसे ही ज्ञान से रहित क्रिया भी कार्यसाधक नही है। यथा—पगु और अधे भागते हुए भी सुमार्ग को प्राप्त नही होते, एक चक्र (पहिये) से शकट (गाडी) नगर को प्राप्त नही कर सकती, इसी प्रकार अकेले ज्ञान और अकेली क्रिया से सिद्धि नही होती, अपितु दोनो के समुचित समन्वय से सिद्धि प्राप्त होती है।

कदाचित् कहा जाए कि जब पृथक्-पृथक् दोनो मे मुक्तिसाधन की शक्ति नही तो उभय मे वह शक्ति कहा से हो सकती है? समाधान यह है कि ज्ञान और क्रिया पृथक्-पृथक् रूप में देश उपकारी होते है, दोनो मिलने से सर्व उपकारी होते हैं।

इस प्रकार से नयद्वार की वक्तव्यता के पूर्ण होने से चतुर्थ अनुयोगद्वार की और साथ ही श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र की भी पूर्ति होती है। अनुयोगद्वार सूत्र के चार मुख्य द्वार है, जिनमें यह नयद्वार चौथा है। अत इसकी पूर्ति होने से अनुयोगद्वार सूत्र की भी पूर्ति हो गई।

लिपिकार का वक्तव्य

अनुयोगद्वार सूत्र की कुल मिलाकर सोलह सौ चार (१६०४) गाथाए है तथा दो हजार (२०००) अनुष्टुप छन्दो का परिमाण है। १४२

जैसे महानगर के मुख्य-मुख्य चार द्वार होते हैं, उसी प्रकार इस श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र के भी उपक्रम आदि चार द्वार हैं। इस सूत्र मे अक्षर, बिन्दु और मात्रायें जो लिखी गई है, वे सब सर्व दुखो के क्षय करने के लिये ही हैं। १४३

विवेचन—यद्यपि ये गाथायें मूल सूत्र मे नही है वृत्तिकारो ने भी इनकी वृत्ति नही लिखी है। तथापि साराश अच्छा होने से अनुयोगद्वारसूत्र की पूर्ति के पश्चात् इनको उद्धृत किया गया है। गाथार्थ सुगम और सुबोध है।

।। श्रीमदनुयोगद्वारसूत्र समाप्त ।।

परिशिष्ट १

कथानक

सूत्रसख्या ९०

१. डोडिणी ब्राह्मणी

किसी ग्राम मे डोडिणी नाम की ब्राह्मणी रहती थी। उसकी तीन पुत्रियाँ थी। उनका विवाह करने के बाद उसे विचार हुआ कि जमाइयो के स्वभाव को जानकर मुझे अपनी पुत्रियो को वैसी शिक्षा-सीख देनी चाहिये, जिससे उसी के अनुरूप व्यवहार कर वे अपने जीवन को सुखी बना सके।

ऐसा विचार कर उसने अपनी तीनो पुत्रियो को बुलाकर सलाह दी—'आज जब तुम्हारे पति सोने के लिये शयनकक्ष मे आएँ तब तुम कोई न कोई कल्पित दोष लगाकर उनके मस्तक पर लात मारना। तब वह जो कुछ तुमसे कहे सुबह मुझे बताना।

पुत्रियो ने माता की बात मान ली और रात्रि के समय अपने अपने शयनखड मे बैठकर पति की प्रतीक्षा करने लगी।

जब ज्येष्ठ पुत्री का पति शयनखड मे आया, तब उसने कल्पित दोष का आरोपण करके उसके मस्तक पर लात मारी। लात लगते ही पति ने उसका पैर पकड कर कहा—'प्रिये! पत्थर से भी कठोर मेरे शिर पर तुमने जो केतकी पुष्प के समान कोमल पग मारा, उससे तुम्हारा चरण दुखने लगा होगा।' इस प्रकार कहकर वह उसके पैर को सहलाने लगा।

दूसरे दिन बडी पुत्री ने आकर रातवाली घटना मा को सुनाई। सुन कर ब्राह्मणी बहुत हर्षित हुई। जमाई के इस वर्ताव से वह उसके स्वभाव को समझ गई और पुत्री से बोली—तू अपने घर मे जो करना चाहेगी, कर सकेगी। क्योकि तेरे पति के व्यवहार से लगता है कि वह तेरी आज्ञा के अधीन रहेगा।

दूसरी पुत्री ने भी माता की सलाह के अनुरूप अपने पति के मस्तक पर लात मारी। तब उसका पति थोडा रुष्ट हुआ और उसने अपने रोष को मात्र शब्दो द्वारा प्रकट किया—मेरे साथ तूने जो व्यवहार किया वह कुलवधुओ के योग्य नही है। तुझे ऐसा नही करना चाहिये। ऐसा कहकर वह शान्त हो गया।

प्रात दूसरी पुत्री ने भी सब प्रसग माता को कह सुनाया। माता ने सतुष्ट होकर उससे कहा—बेटी! तू भी अपने घर मे इच्छानुरूप प्रवृत्ति कर सकेगी। तेरे पति का स्वभाव ऐसा है कि वह चाहे जितना रुष्ट हो, लेकिन क्षण मात्र मे शात-तुष्ट हो जायेगा।

तीसरी पुत्री ने भी किसी दोष के बहाने अपने पति के मस्तक पर लात मारी। इससे पति के क्रोध का पार नही रहा और डाट कर बोला—अरी दुष्टा! कुल-कन्या के अयोग्य यह व्यवहार मेरे

साथ क्यों किया ? फिर मार-पीट कर उसे घर से बाहर निकाल दिया । तब वह रोती-कलपती मा के पास आई और सब घटना कह सुनाई ।

पुत्री की बात से ब्राह्मणी को उसके पति के स्वभाव का पता लग गया और उसी समय वह उसके पास आई । मीठे-मीठे बोलो से जमाई के क्रोध को शात करके बोली—जमाईराज ! हमारे कुल की यह रीति है कि सुहाग रात मे प्रथम समागम के समय पति के मस्तक पर चरण-प्रहार किया जाता है, इसी कारण मेरी पुत्री ने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया है, किन्तु दुर्भावना या दुष्टता से यह सब नही किया है । इसलिये आप शान्त हो और इस वर्ताव के लिये उसे क्षमा करे ।

सासू की बात से उसका गुस्सा शात हुआ ।

उसके बाद डोडिणी ब्राह्मणी ने तीसरी पुत्री को सलाह दी—बेटो ! तेरा पति दुराराध्य है, इसलिये उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना और सावधानीपूर्वक देवता की तरह उसकी सेवा करना ।

इस प्रकार पूर्वोक्त युक्ति से ब्राह्मणी ने अपने जमाइयो के स्वभावों को जान लिया ।

२. विलासवती गणिका की कथा

किसी नगर मे एक गणिका रहती थी, जिसका नाम विलासवती था । वह चौसठ कलाओ मे निपुण थी । उसने अपने यहाँ आने वालो का अभिप्राय जानने के लिये अपने रतिभवन मे दीवारो पर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाये करते विविध जाति के पुरुषो के चित्र लगवाये थे । जो पुरुष वहाँ आता वह उसे अपने जात्युचित चित्र के निरीक्षण मे तन्मय देखकर उसकी रुचि, जाति, स्वभाव आदि को समझ जाती थी और उसी के अनुरूप उस पुरुष के साथ वर्ताव कर उसका आदर-सत्कार करके प्रसन्न कर देती थी । परिणामस्वरूप उसके यहाँ आने वाले व्यक्ति प्रसन्न होकर इनाम मे खूब द्रव्य देते थे ।

३. सुशील अमात्य की कथा

किसी नगर मे भद्रबाहु नाम का राजा राज्य करता था । उसके अमात्य का नाम सुशील था । वह परकीय मनोगत भावो को जानने मे निपुण था ।

एक दिन अश्वक्रीडा करने के लिये अमात्य सहित राजा नगर के बाहर गया । चलते-चलते रास्ते के किनारे बजर भूमि में घोडे ने लघुशका (पेशाब) कर दी । वह मूत्र वहाँ जैसा का तैसा भरा रहा, सूखा नही । अश्वक्रीडा करने के बाद राजा पुन उसी रास्ते से वापस लौटा । तब भी मूत्र को पहले जैसा भरा देख कर राजा के मन मे विचार आया—यदि यहाँ तालाब बनवाया जाय तो वह हमेशा जल से भरा रहेगा ।

इस प्रकार का विचार करता-करता राजा बहुत देर तक उस भूमि-भाग की ओर ताकता रहा और उसके बाद अपने महल मे लौट आया ।

चतुर अमात्य राजा के मनोगत भावो को बराबर समझ रहा था । उसने राजा से पूछे विना

ही उस स्थान पर एक विशाल तालाब बनवाया और उसके किनारे षड् ऋतुओ के फल-फूलो वाले वृक्ष लगवा दिये।

इसके बाद किसी समय पुन राजा अमात्य सहित उसी रास्ते पर घूमने निकला। वृक्ष-समूह से सुशोभित जलाशय को देखकर राजा ने अमात्य से पूछा—यह रमणीक जलाशय किसने बनवाया है ?

अमात्य ने उत्तर दिया—महाराज ! आपने ही तो बनवाया है।

अमात्य का उत्तर सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। वह बोला—सचमुच ही यह जलाशय मैने बनवाया है ? जलाशय बनवाने का कोई आदेश मैने दिया हो, याद नही है।

अमात्य ने पूर्व समय की घटना की याद दिलाते हुए बताया—महाराज ! इस स्थान पर बहुत समय तक मूत्र को विना सूखा देख कर आपने यहाँ जलाशय बनवाने का विचार किया था। आपके मनोभावो को जानकर मैने यह जलाशय बनवा दिया है।

अपने अमात्य की दूसरे के मनोभावो को परखने की प्रतिभा देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी प्रशसा करने लगा।

(यह तीनो अप्रशस्त भावोपक्रम के दृष्टान्त है।)

परिशिष्ट—२

कालगणना की संज्ञाओं एवं अनुक्रम में विविधता

क्रम.	तिलोयपण्णत्ति	अनुयोगद्वारसूत्र	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (दि.)	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (श्वे.)	ज्योतिष करण्डक
१	समय	समय	समय	समय	समय
२	आवलि	आवलिका	आवली	आवली	उच्छ्वास
३	उच्छ्वास	आन	उच्छ्वास	आनप्राण	स्तोक
४.	प्राण (निश्वास)	प्राण	स्तोक	स्तोक	लव
५	स्तोक	स्तोक	लव	लव	नालिका
६	लव	लव	नाली	मुहूर्त	मुहूर्त
७	नाली	×	मुहूर्त	अहोरात्र	अहोरात्र
८.	मुहूर्त	मुहूर्त	दिवस	पक्ष	पक्ष
९	दिवस	अहोरात्र	मास	मास	मास
१०	पक्ष	पक्ष	ऋतु	ऋतु	संवत्सर
११	मास	मास	अयन	अयन	पूर्वांग
१२	ऋतु	ऋतु	वर्ष	संवत्सर	पूर्व
१३	अयन	अयन	युग	युग	लतांग
१४	वर्ष	वर्ष	दसवर्ष	वर्षशत	लता
१५	युग	युग	वर्षशत	वर्षसहस्र	महालतांग
१६	वर्षदशक	×	वर्षसहस्र	वर्षशतसहस्र	महालता
१७	वर्षशत	वर्षशत	दशवर्षसहस्र	पूर्वांग	नलिनांग
१८	वर्षसहस्र	वर्षसहस्र	वर्षशतसहस्र	पूर्व	नलिन
१९	दशवर्षसहस्र	×	पूर्वांग	त्रुटितांग	महानलिनांग
२०	वर्षलक्ष	वर्षशतसहस्र	पूर्व	त्रुटित	महानलिन
२१	पूर्वांग	पूर्वांग	पर्वांग	अडडांग	पद्मांग
२२	पूर्व	पूर्व	पर्व	अडड	पद्म
२३.	नियुतांग	त्रुटितांग	नयुतांग	अववांग	महापद्मांग
२४	नियुत	त्रुटित	नयुत	अवव	महापद्म

२५	कुमुदांग	अटटांग	कुमुदांग	हूहू अंग	कमलांग
२६.	कुमुद	अटट	कुमुद	हूहू	कमल
२७	पद्मांग	अववांग	पद्मांग	उत्पलांग	महाकमलांग
२८.	पद्म	अवव	पद्म	उत्पल	महाकमल
२९	नलिनांग	हूहूकांग	नलिनांग	पद्मांग	कुमुदांग
३०	नलिन	हूहूक	नलिन	पद्म	कुमुद
३१.	कमलांग	उत्पलांग	कमलांग	नलिनांग	महाकुमुदांग
३२	कमल	उत्पल	कमल	नलिन	महाकुमुद
३३.	त्रुटितांग	पद्मांग	त्रुटितांग	अस्थिनेपुरांग	त्रुटितांग
३४	त्रुटित	पद्म	त्रुटित	अस्थिनेपुर	त्रुटित
३५	अटटांग	नलिनांग	अटटांग	आउअंग (अयुतांग)	महात्रुटितांग
३६	अटट	नलिन	अटट	आउ (अयुत)	महात्रुटित
३७	अममांग	अर्थनिपुरांग	अममांग	नयुतांग	अडडांग
३८.	अमम	अर्थनिपुर	अमम	नयुत	अडड
३९	हाहांग	अयुतांग	हाहांग	प्रयुतांग	महाअडडांग
४०	हाहा	अयुत	हाहा	प्रयुत	महाअडड
४१	हूहूअंग	नयुतांग	हूहूअंग	चूलितांग	ऊहांग
४२	हूहू	नयुत	हूहू	चूलित	ऊह
४३	लतांग	प्रयुतांग	लतांग	शीर्षप्रहेलिकांग	महाऊहांग
४४	लता	प्रयुत	लता	शीर्षप्रहेलिका	महाऊह
४५.	महालतांग	चूलिकांग	महालतांग	×	शीर्षप्रहेलिकांग
४६	महालता	चूलिका	महालता	×	शीर्षप्रहेलिका
४७	श्रीकल्प	शीर्षप्रहेलिकांग	शीर्षप्रकंपित	×	×
४८.	हस्तप्रहेलित	शीर्षप्रहेलिका	हस्तप्रहेलित	×	×
४९	अचलात्म	×	अचलात्म	×	×

□□

गाथानुक्रम

□□

विशिष्ट शब्दसूची

□□

संज्ञावाचक शब्दानुक्रम

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत] ५ ५ ५ ९

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए इदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सभाहि सज्झाय करेत्तए, तजहा—पढिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलो के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है, वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से ये वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश. आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए ।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही कर ।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं ।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है । इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं । इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है ।

२९-३२. प्रातः, साय, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात: सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे । सूर्यास्त होने मे एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे । मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

□□

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

सरक्षक

१. श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी महता, मेडता सिटी
४ श्री श० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचदजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, भूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सो० अमरचदजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरीलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचदजी जगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचदजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडता सिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचन्दजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बेंगलोर
४९. श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जमराज जी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९. श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलाराम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकोरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरूदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बेंगलौर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनादगाँव

९८. श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९९. श्री कुशालचदजी रिखबचदजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०३. श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरूदा
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेड़ता सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढ़ा, बम्बई
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बेंगलोर
११८. श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकु वर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क, बेंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड ☐☐